१२५ हिन्दी निबन्ध

तनसुखराम गुप्त

सूर्य-प्रकाशन, नई सड़क, दिल्ली-११०००६

प्रकाशक : सूर्य-प्रकाशन
नई सड़क, दिल्ली-११०००६

दूरभाष : २६६४१२

मुद्रक : वार्ष्णेय प्रिंटर्स
विश्वासनगर, शाहदरा, दिल्ली-११००३२

: कुमार आफसेट
विश्वासनगर, शाहदरा, दिल्ली-११००३२

सतरहवाँ संस्करण : तनसुखराम जी का ६२वाँ जन्म-दिवस २५-८-१९८९

मूल्य : ७०-००

विषय-सूची

विज्ञान सम्बन्धी निबन्ध

विज्ञान / आविष्कार सम्बन्धी निबन्ध

चुनाव सम्बन्धी निबन्ध

भौगोलिक निबन्ध

शिक्षा सम्बन्धी निबन्ध

खेल और स्वास्थ्य सम्बन्धी निबन्ध

प्रकृति सम्बन्धी निबन्ध

ग्राम और किसान सम्बन्धी निबन्ध

यात्रा सम्बन्धी (वर्णनात्मक निबन्ध)

वर्णनात्मक निबन्ध

हिन्दी सम्बन्धी निबन्ध

भावात्मक निबन्ध

समस्यात्मक निबन्ध

पारिवारिक निबन्ध

महापुरुष

वसन्त

'वसन्त' शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत की 'वस्' धातु से हुई है। 'वस्' का अर्थ है चमकना। वसन्त का अर्थ हुआ 'चमकता हुआ' या 'देदीप्यमान'। माघ शुक्ल पंचमी अर्थात् वसन्त पंचमी से फाल्गुन पूर्णिमा तक चालीस दिवसीय इस ऋतु में प्रकृति-राज्य में सत्वगुण, जो प्रकाशशील और चेतना-सम्पन्न है, का प्रभुत्व होता है।

वसन्त को सब ऋतुओं का राजा कहा गया है। इस ऋतु में वकुल पुलकित हो उठता है; मानव-मन सहज उत्कंठित हो जाता है; अग-जग में चित्तगत स्फूर्ति दीखने लगती है; कंकणों का रणन, नुपूरों की रुनझुन, किंकणियों का क्वणन सुनाई देने लगता है; कड़कड़ाती सर्दी कम हो जाती है; कानों को फाड़ देने वाली और हड्डियों को कँपा देने वाली सनसनाती हवा चलनी बन्द हो जाती है। इस समय शीतल मन्द सुगन्धित वायु चलती है। मौसम बड़ा सुहावना होता है। न अधिक गर्मी होती है और न अधिक सर्दी।

मादक महकती बासन्ती बयार।
प्रकृति के रूप का नूतन निखार।
मोहक रस पगे फूलों की बहार॥

अधिक सर्दी और अधिक गर्मी में मनुष्य का मन काम मे नही लगता, परन्तु इस ऋतु में मनुष्य की रुचि अधिक काम करने में होती है; बच्चों और नव-युवकों में उल्लास भर आता है, वूढों मे भी जवानी छा जाती है; प्राणिमात्र मे उत्साह और बल बढ जाता है; शीतल और सुगन्धित समीर रंग-बिरंगी कुसुमावली, भौंरों की गुंजार, बौराए आम्र-वृक्षों पर कोकिलों की कूक मन को प्रफुल्लित कर देती है।

वसन्त के दिनों मे लोग प्रातःकालीन सैर को निकलते हैं। स्वास्थ्य की दृष्टि से यह सैर बड़ी लाभप्रद है। यह कहना ठीक है कि बहुमूल्य औपधियाँ जो कार्य नहीं कर सकती, वह इस ऋतु की प्रातःकालीन हवा कर दिया करती है। अतः

आयुर्वेद-शास्त्र मे इसको 'स्वास्थप्रद ऋतु' के नाम से पुकारा गया है।

वसन्त के आगमन पर मनुष्य ही क्या, प्रकृति भी खुशी मनाती है। वह भी अपना पुराना चोला छोड़कर नए वस्त्र धारण करती है। महाकवि कालिदास का मत है, 'प्रथम पुष्प, फिर किसलय, फिर भौंरो की गुजार और कोयलों की कूक—इस प्रकार क्रमशः वसन्त का अवतार होता है।'

वसन्त सूखे को झाड़ देता है, हरे को सहला देता है। जो जीर्ण है, वह झड़ जाता है; जो नवीन है, वह पनपता है; जो सुकुमार है, वह फूट पड़ता है। भारत की प्रकृति मर्यादित है। वृक्ष कभी पत्ते रूपी वस्त्रों से विहीन नही होते। पुराने पत्ते झड़ने और नये पत्ते उगने का क्रम साथ-साथ चलता रहता है। खेत ऐसे लहरा उठते है, मानों किसी ने हरी और पीली मखमल बिछा दी हो। फूल खिल उठते हैं। सरसों वसन्ती रग के फूलों से लदकर मानो वासन्ती परिधान धारण कर लेती है। घने रूप से उगने वाला कमल-पुष्प जब बसन्त ऋतु में अपने पूर्ण यौवन के साथ खिलता है, तब जलाशय का जल छिप जाता है। आमों पर बौर आने लगते है। इधर 'चोबदार चातक विरदि बढ़ि बोले पर, दौलत पराग ऋतुराज महाराज को, और उधर कोयल पंचम स्वर में अपना राग अलापती है। पक्षी-गण अपने मधुर कलख से ऋतुराज वसन्त का स्वागत करते हैं।

महाकवि निराला वसन्त का चित्रण करते हुए लिखते है, 'नव पल्लवित वसन्त आता है। सरस्वती डाल-डाल पर न केवल किसलयों मे, अपितु कोकिल के मधुर स्वरों में भी फूट पडती है। वह फल-फूलो का सुनहरा आँचल फैला देती है। नयी-नयी सम्भावनाएँ मन मे उठती हैं। प्रति संध्या लोग समवेत फाग, धमार, होली, चैती की गति मे थिरक उठते हैं। बौरे आमों की मदिर महक धरती के कण-कण को उन्मादित कर देती है।' चाँदनी बिछ जाती है। फसल कटकर आती है।

वसन्त ऋतु का महत्त्वपूर्ण दिन 'वसन्त-पंचमी' है। यद्यपि यह दिन वसन्त ऋतु में न पड़कर माघ के शुक्ल पक्ष की पचमी तिथि को पड़ता है, फिर भी इसी दिन से वसन्त का प्रादुर्भाव माना जाता है। मदन देवता का जन्म-दिवस भी यही है।

वसन्त पंचमी के दिन विद्या और कला की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती का जन्म हुआ था। अतः इस दिन सरस्वती पूजन की प्रथा है। आज भी माँ भारती के उपासक इस दिन सरस्वती का पूजन करते है।

प्राचीनकाल में और वर्तमान युग मे इस दिन आनन्द मनाने के ढंग में भी अन्तर आ गया है। वैदिककाल में वसन्त के दिन गुरुकुलो में विद्वानों का सम्मेलन होता था और उसी दिन दीक्षान्त-समारोह आयोजित किए जाते थे। महायज्ञ आदि भी इस दिन होते थे। नाचना-गाना, खेलना-कूदना एवं झूला झूलना आज-कल भी होता है, कई स्थानो पर आज के दिन कवि-सम्मेलनों का आयोजन भी होता है।

वसन्त-पंचमी के दिन प्राय: लोग पीले वस्त्र पहनते हैं, घर-घर मे तरह-तरह के भोजन बनते हैं। बसन्ती हलवा, पीले चावल और केसरिया खीर इस दिन के प्रसिद्ध खाद्य पदार्थ है।

सायकाल वसन्त-पचमी का मेला होता है। विशेष रूप से पतगें उड़ाई जाती हैं और आपस मे पेंच लडाए जाते है। इस दिन केवल बच्चे और युवा ही नही, अपितु प्रौढ़ भी वसन्ती रंग वाली पतंग लेकर मैदान में उतरते है। 'हुचका', 'ठुमका', 'खैंच' और 'ढील' के विविध नियमों से पतंगो के पेंच लडाते हैं। इस दिलचस्प और मनोहारी पतगबाजी के प्रति अकबर इलाहाबादी को भी कहना पड़ा—'करता है शाद दिल को उड़ाना पतग का।'

वसन्त-पंचमी के दिन का एक ऐतिहासिक घटना के साथ भी सम्बन्ध है। इस दिन मुसलमान-धर्म स्वीकार न करने के कारण वीर बालक हकीकतराय का सिर काटकर धड से अलग कर दिया गया था। उस वीर बालक की याद मे उसकी समाधि पर सायकाल बड़ा मेला लगता है। पहले यह मेला लाहौर मे लगता था। अब यह नई दिल्ली में हिन्दू-महासभा-भवन में लगता है।

इस प्रकार वसन्त जहाँ नवजीवन, नवोत्साह, स्फूर्ति और प्रेरणा देने वाली ऋतु है, वहाँ यह प्राचीन और गौरवमय बलिदानो का स्मरण कराकर हमें देश और धर्म के प्रति अपने कर्त्तव्यो के लिए जागरूक भी करती है। ▭

ग्रीष्म-ऋतु

भारत मे छः ऋतुएँ क्रम से आती-जाती है। ऐसा सुन्दर ऋतु-चक्र संसार के किसी अन्य भू-भाग को प्राप्त नही। अन्य देश या तो ठंडे है या गर्म, किन्तु भारत मे तो गर्मी भी प्रचण्ड पड़ती है और सर्दी भी अपना यौवन दिखाती है। वर्षा भी अपने आगमन से ताल-तलैयो को भरकर नद-नदियों को जल प्रदान करती है। जिस प्रकार स्वाद की दृष्टि से मिष्ठान्न के पश्चात् नमकीन चाहिए, इसी प्रकार सर्दी के बाद गर्मी की आवश्यकता है।

वसन्त के पश्चात् ग्रीष्म का आगमन होता है। ज्येष्ठ और आषाढ़ ग्रीष्म ऋतु के महीने है। ग्रीष्म के प्रारम्भ होते ही वसन्त ऋतु मे मन्द-मन्द चलने वाली पवन का स्थान साँय-साँय कर चलने वाली लू ले लेती है। हरियाली का गलीचा फटने लगता है। वसन्त के चैतन्य और स्फूर्ति का स्थान आलस्य और क्लान्ति ले लेती है।

ग्रीष्म तापमय लू की लपटों की दोपहरी।
झुलसाती किरणों की वर्षों की आ ठहरी॥ (निराला)

गर्मी के दिन भी लम्बे होते है। भगवान् भास्कर रात्रि के अन्धकार को नष्ट करने के लिए जल्दी प्रकट हो जाते है और बहुत देर तक जाने का नाम भी नहीं लेते। उदय होते ही वे अपनी प्रचण्डता का आभास प्रथम रश्मि मे दे देते हैं तथा दिन-भर परशुराम के समान क्रोधाग्नि बरसाकर, जन-जीवन को झुलसाकर सायं को अंधकार मे लीन हो जाते हैं। ऊपर से साँय-साँय कर लू चलती है, नीचे सड़को का तारकोल पिघलकर चिप-चिप करता है। सीमेंट की सड़कें अंगारे बरसाती हैं। ग्राम के ऊबड़-खाबड मार्गो की मिट्टी नगे पैरों को तप्त करती है और रेत में चलने वालों को तो दादी-नानी याद आ जाती है। घर से निकलने को न नर-नारियो का मन करता है, न पशु-पक्षियो का और न जीव-जन्तुओं का।

गरमी से व्याकुल जन-जीवन,
त्राहि-त्राहि कर रहा पशु-धन॥

मानव और पशु-पक्षी ही नहीं, ग्रीष्म की दुपहरी में तो छाया भी पनाह माँगती है। कविवर बिहारी इस तथ्य का वर्णन करते हुए लिखते हैं—

बैठि रहो अति सघन बन, पैठि सदन तन माँह।
देखु दुपहरी जेठ की, छाहौं चाहति छाँह॥

ग्रीष्म का प्रकोप प्राणियों को इतना व्याकुल कर देता है कि उन्हें सुध-बुध भी नहीं रह जाती। प्राणी पारस्परिक राग-द्वेष भी भूल जाते हैं, परस्पर विरोधी स्वभाव वाले जन्तु एक-दूसरे के समीप पड़े रहते हैं, किन्तु उन्हें कोई खबर नहीं रहती। इस दृश्य को देखकर कविवर बिहारी ने कल्पना की कि ग्रीष्म ऋतु सारे संसार को एक तपोवन बना देती है। जिस प्रकार तपोवन में रहते हुए प्राणी ईर्ष्या-द्वेष से शून्य होते हैं, उसी प्रकार इस ऋतु में भी प्राणियों की स्थिति ऐसी ही हो जाती है। वे लिखते हैं—

कहलाने एकत बसत, अहि-मयूर मृग-बाघ।
जगत तपोवन सौं कियो, दीरघ दाघ-निदाघ॥

प्यास और पसीना गर्मी के दो अभिशाप हैं। अभी-अभी पानी पिया है, किन्तु गला फिर भी सूखा का सूखा। सर-सरोवर सूख गए, नद-नदियों में जल की न्यूनता हो गई। परिणामतः पशु-पक्षी सूखे सरोवर को देखकर प्यास से व्याकुल हैं। नदियों में जलाभाव के कारण राजकीय नल भी तपती दुपहरी में अपना दिवाला निकाल देते हैं। प्रकृति भी प्यासी है और प्यास से उदास है। पसीने की कुछ न पूछिए। रूमाल से पोंछते-पोंछते परेशान है। इधर रूमाल भी गीला होकर अपनी असमर्थता प्रकट कर रहा है।

वैसे गर्मी के इस प्रकोप से अपने आपको बचाने के लिए मनुष्य ने उपाय खोज निकाले हैं। साधारण आय वाले घरों में बिजली के पंखे चल रहे हैं, जो नर-नारियों की पसीने से रक्षा करते हैं। अमीरों के यहाँ खस की टट्टी और वातानुकूलन के यन्त्र लगे हैं। समर्थजन गर्मी से बचने के लिए पहाड़ी स्थानों पर चले जाते हैं और ज्येष्ठ की तपती दोपहरी पहाड़ की ठण्डी हवाओं में बिताते हैं। प्यास बुझाने के लिए शीतल पेय हैं। बरफ तथा बरफ से बने पदार्थ ग्रीष्म के शत्रु और जनता के लिए वरदान हैं।

ग्रीष्म की धूप से बचने के लिए जन-साधारण अपना काम सुबह और शाम के समय करने का प्रयत्न करते हैं। अनेक सरकारी कार्यालय भी अपना समय

प्रातःकाल का कर लेते है। स्कूलों और कॉलिजो में अवकाश रहता है। यदि धूप मे निकलना ही पड़े, तो फिर देखिए अद्भुत दृश्य। हैटधारी बाबू, रूमाल बाँधे नव-युवक और सिर पर तौलिया या कपड़ा ओढ़े अधेड़ दिखाई देंगे। फैशनपरस्त नंगे-सिर नर-नारियों की विचित्र दशा अवर्णनीय है। सड़क पर चलते-चलते बेहोश होने वालों में इनकी सख्या ही अधिक होती है।

फलो के बेताज बादशाह आम को जी भर कर खाइए और कच्चे दूध की लस्सी पीजिए। खरबूजा और तरबूज का आनन्द लूटिए और पीजिए शरबत, किन्तु भूल से भी पानी न पीजिए। ककडी और खीरे का रसास्वादन कीजिए, खीरे के विष का मर्दन करके। अलूचे, आलूबुखारे, आड़ू और फालसे को भी चखिए।

हाँ, गर्मी से बचिए किन्तु थोडा ध्यान रखकर। धूप में चलकर आए हैं, प्यास बहुत तेज है, तुरन्त पानी न पीजिए अन्यथा जुकाम हो जाएगा। बरफ व उससे मिश्रित वस्तुओं का उपयोग बहुत अधिक न कीजिए, वरना गला खराब हो जाएगा। तरबूज खाने के बाद पानी पीना हैजे को बुलावा देना है।

वस्तुतः गर्मी अनाज को पकाती है। आम और तरबूज मे मिठास लाती है। यह ऋतु वर्षा की भूमिका है, जिसके अभाव मे न जलवृष्टि होगी, न धरती फलेगी, न खेती होगी और जनता अकाल का ग्रास बन जाएगी।

ग्रीष्म ऋतु उग्रता और भयकरता की प्रतीक है। यह हमे सन्देश देती है कि आवश्यकता पडने पर हमे भी उग्र रूप धारण करने में संकोच नही करना चाहिए। इसके अतिरिक्त ग्रीष्म ऋतु प्राणियो को कष्ट सहने की शक्ति भी प्रदान करती है। ग्रीष्म के बाद वर्षा का आगमन इस तथ्य का संकेत है कि कष्ट के बाद ही सुख की प्राप्ति होती है, कठोर संघर्ष के पश्चात् ही शांति और उल्लास का आगमन होता है। अतः हमें धरती के समान ही ग्रीष्म की उग्रता को झेलना चाहिए। रहीम के शब्दों मे—

जैसी परी सो सहि रहे, कह रहीम यह देह।
धरती पर ही परत हैं, सीत छाँव अरु मेह॥

□

ग्रीष्म ऋतु की दोपहर

ग्रीष्म ऋतु की दोपहर भगवान भास्कर के कोप का प्रचण्ड रूप है, प्राणि-मात्र मे उदासीनता और व्याकुलता की जनक है, आलस्य, थकावट और अकर्मण्यता के सचार का स्रोत है, कीटाणुओं की मृत्यु का सन्देशवाहक है और फलों के लिए प्राणपोषक पीयूष है।

ग्रीष्म वैसे ही जगती को संतप्त करती है, ऊपर से आ जाए उसकी दोपहर। एक करेला और ऊपर से नीम चढ़ा। भगवान भास्कर पृथ्वी के सिर पर अवस्थित होकर तीक्ष्ण किरणों से वसुधा को तपा रहे है। असह्य तपन से वसुधा व्याकुल है, उसका हृदय फट रहा है, उसका सुदृढ तारकोलीय परिधान पिघल रहा है, नंगे चरण कोई उसे स्पर्श तो करके देखे ! लगता है सूर्य की किरणें नही, प्रसाद जी के शब्दों में—

किरण नहीं, ये पावक के कण, जगती-तल पर गिरते हैं।

कष्ट एकाकी नही आता। सूर्य की प्रचंड गर्मी से पवन भी गर्म हो गई। उसने अग्नि में घृत का काम किया। वह चलने लगी, बहने लगी। उसका वेग बढ़ा। पवन का झोका लू में बदल गया। धूल उड़ने लगी। सांय-सांय कर वातावरण अपनी व्याकुलता व्यक्त करने लगा। विरहिणी वसुधा विरह-वेदना में उच्छ्वास ले रही है। प्रसाद का हृदय व्याकुल हो उठा—

स्वेद धूलि-कण धूप-लपट के साथ लिपटकर मिलते हैं।
जिनके तार व्योम से बँधकर ज्वाला ताप उगलते हैं॥

'धूल उड़ाता प्रबल प्रभंजन' भी 'आतप-भीत विहंगम कुल का क्रन्दन' कर जब भास्कर से भयभीत हो सुरक्षा हेतु छाँह ढूंढने चला जाता है, शान्त हो जाता है, तो उमस उत्पन्न हो जाती है। प्राणियो की व्याकुलता बढ़ जाती है। विरह-वेदना से वसुधा संज्ञाहीन हो जाती है और—

'दिन के इस सुनसान प्रहर में रुक-सी गई प्रगति जीवन की।'
(केदारनाथसिंह)

कविवर बिहारी का कहना है कि न केवल पथन ही छाँह ढूँढ़ने चला गया, अपितु छाँह भी छाँह की चाहत में निकल पड़ी—'बैठ, दुपहरी जेठ की छाँहौं चाहति छाँह।' उसी स्थिति का चित्रण करते हुए सेनापति कहते हैं—

तपति धरनि, जग जरत, झरनि सी री,
छाँह को पकरि पंथि, पंछी बिरमत हैं।
सेनापति नेंक दुपहरी के ढरत, होत
धमका विषम, ज्यों न पात खरकत हैं।

ग्रीष्म की दोपहर में सचमुच जीवन की प्रगति अवरुद्ध हो गई, सड़कें सुनसान हो गईं, नगरों का जन-कलरव मृत्यु की नीरवता मे बदल गया, वाहन रुक गए, जो चल रहे थे, वे गन्तव्य पर पहुँचकर शान्त हो गए, पशु-पक्षी बाड़ों-घोंसलों में घुस गए। जो मार्ग में फँस गए, वे तरु की छाया में बैठ गए। मानव का तो बाहर निकलते दम निकलता है। वह घर, कार्यालय, दुकान तथा सुरक्षित स्थान पर ठहर गया है। विवशतावश उसे निकलना ही पडे, सूर्य की चुनौती को स्वीकार करना ही पड़े, तो शरीर को अस्त्रों से सुसज्जित करके निकलेगा। तौलिया, रूमाल उसके अस्त्र होंगे। छाता उसका कवच होगा।

प्रकृति की हर चुनौती को मानव ने स्वीकारा और उसका मानमर्दन किया। ग्रीष्म की दोपहर को उसने पंखे से शान्त किया, कूलर से शीतल किया, खसखस से ठंडा बनाया। वातानुकूलित वाहनों से सफर को सुखद किया। वातानुकूलित पिक्चर हॉल में बैठकर शीतलता का अनुभव करते हुए भरपूर मनोरंजन किया।

प्यास और पसीना ग्रीष्म की दोपहरी के दो अभिशाप हैं। मानव ने प्यास शान्त की शीतल जल, एरियेटेड वाटर, शरबत, स्क्वेश तथा जूस से; पसीने को सुखाया पंखे और कूलर से। विद्युत् के अभाव को हाथ के पखे ने पूरा किया, शीतल-जल की पूर्ति की घड़े के पानी ने, बर्फ-युक्त जल ने। पथिक की प्यास मिटाई प्याऊ और पानी की रेहड़ियों ने। पथिक का पसीना उसका रूमाल पीने लगा।

ग्रीष्म ऋतु की दोपहर प्राणी-मात्र के लिए आलस्य-वर्द्धक है, उत्साहहीनता की जननी है, अकर्मण्यता की जनक है, उदासी की प्रेरक है, वैरभाव की नाशक

है, घृणा की विद्वधिका है। पेड़ की छाँह में, सड़क में किसी शेल्टर के नीचे (चाहे वह दिल्ली परिवहन का शैड हो या किसी व्यापारिक संस्थान का बरामदा) मानव, गाय-बैल-भैंस, कुत्ते, गधे—सब एक साथ खड़े दिखाई देते हैं। कविवर बिहारी तो इससे भी एक कदम आगे बढ़ गए। वे सांप और मयूर एवं मृग और वाघ को इकट्ठा कर गए—

कहलाने एकत बसत, अहि मयूर मृग बाघ।
जगत तपोवन सो कियो, दीरघ दाघ निदाघ॥

ग्रीष्म की दोपहरी प्राणियों को ही नहीं, प्रकृति को भी पीड़ादायिनी है। इस समय खेत-खलिहान मुरझा जाते है। खड़ी फसल कुम्हला जाती है। घास सूख जाती है। पुष्पो का सौन्दर्य नष्ट होने लगता है। उनकी सुगन्ध तिरोहित होती जाती है। वृक्ष योगी सदृश दोपहर की तपिश सहते है। अपनी आत्मजा पत्तियों को पीले पड़ते देखते है। काल के कराल गाल मे जाती जननी (पेड़ों) से विछुड़ती पत्तियाँ खड़-खड़ के शब्द से जननी को अन्तिम प्रणाम करती है।

ग्रीष्म की दोपहरी वसुधा, प्राणी और प्रकृति के लिए लाभप्रद भी है। धूप की तेजी अन्न और फसलों को पकाएगी। खरबूजा, तरबूज, ककडी, खीरा, अलूचे, आड़ू, आलूबुखारे, फालसे पर रगत लाएगी। फलों के बेताज बादशाह आम को स्वास्थ्यलाभ के लिए प्रस्तुत करेगी। तेज धूप से मक्खी-मच्छर, कीड़े-मकोड़े भी नष्ट हो जाते हैं।

प्रभाकर की प्रचण्ड किरणो से व्याकुल हो हिम का हृदय पिघलेगा, पर्वत से अजस्र जलधारा वसुधा को तृप्त करने निकल पड़ेगी। नदियों की नग्नता ढकेगी, सर-सरोवरों को जीवन मिलेगा।

दिवाकर की दिव्य किरणें ऊर्जा का साधन बनेंगी। ऊर्जा के सकट को हल करने में सहायक होंगी।

ग्रीष्म की दोपहरी एक ओर प्राणी, वसुधा और प्रकृति को जीवन के सघर्ष-पूर्ण काल में, अपार कष्टों, विपत्तियों और दुःखों से आक्रान्त क्षणों में प्रसन्नवदन रहकर उनके निराकरण की सचेष्टता सिखाती है और दूसरी ओर यह भी बताती है कि जीवन का यथार्थ आनन्द इन कष्टों, विपत्तियों, ... फूट रहा है।

वर्षा ऋतु

भास्कर की प्रचण्ड किरणों से सतप्त होकर वसुन्धरा के प्राणी त्राहि-त्राहि करने लगे। जल-हीन ताल-तालाव, नदी-नाले अपनी नग्नता का प्रदर्शन करने लगे। जीव-जन्तु, नर-नारी सभी व्याकुल और विह्वल रहने लगे। किसान जब भावी अकाल के भय से चिन्तित रहने लगे, तब जगह-जगह इन्द्र देवता को प्रसन्न करने के लिए गीत गाए जाने लगे—

बरसो राम झड़ाके से, बुढ़िया मर गई फाके से।

× × ×

काले मेघा पानी दे, पानी दे गुड़धानी दे।

इन्द्र देवता की नींद खुली। उन्हे ध्यान आ गया, वे चल पड़े पृथ्वी की प्यास बुझाने के लिए। भारतीय ऋतु-क्रम मे श्रावण और भाद्रपद, ये दो मास वर्षा के होते हैं। इन दो मासो मे वर्षा खूब होती है। चारों ओर हरियाली छा जाती है। वायुमडल शीतल और सुखद हो उठता है। वातावरण की मधुरता और कोमलता के कारण वर्षा ऋतु को 'ऋतुओं की रानी' कहा जाता है।

वर्षा काल मेघ नभ छाये। गरजत लागत परम सुहाये॥
दामिनी दमक रही घन माहीं। खल की प्रीति यथा थिर नाहीं॥

जन-जीवन में उल्लास छा गया। नव-यौवना नारियाँ कोकिल-कण्ठों से मल्हार गाने लगीं। पेड़ों पर झूला डालकर युवतियाँ और किशोरियाँ पेंगें भरने लगीं। नग्न और अर्ध-नग्न बच्चे सड़को पर वर्षा का आनन्द लेने लगे।

युवक-युवतियो की टोलियाँ पिकनिक पर निकल चलीं; वृद्धों के चेहरों पर रौनक आ गई। नर-नारियाँ या बच्चे और आधुनिकाएँ काले-काले या रंग-बिरगे छाते लिए या रगबिरगी बरसाती पहने अत्यन्त शोभायमान लगते हैं।

कृषक प्रसन्नता से झूम उठते हैं। वे खेत जोतने, उनमें खाद देने और पानी भरने में लग जाते हैं, क्योंकि—

पानी बरसे, बह ना पावे। तब खेती भी मजा दिखावे।

प्यासा पपीहा 'पीऊ-पीऊ' पुकार उठा। उसकी प्यास शान्त हुई। मोर पंख फैला-फैला कर नाचने लगे; बगुलों की पंक्ति आकाश मे विचरने लगी; मेंढक टर्राने लगे। मछलियाँ खुशी से जल में डुबकी लगाने लगी। केंचुए जल मे चलते-फिरते दिखाई देने लगे; रात्रि में जुगनू चमकने लगे; साँप, बिच्छू, मक्खी-मच्छर भी सैर को निकल पड़े।

भास्कर की क्रोधाग्नि से त्राण पाकर, पृथ्वी शान्त और शीतल हुई। मकान, सड़कें, पेड़ धुले-से नजर आने लगे। सर-सरोवर जल से भर गए। नदियाँ इतराती-इठलाती, किनारे की भूमि काटती, दूर-दूर तक आगे बढ़कर बिछड़ी हुई सहेलियों से गले मिल रही है। वसुधा हरी-भरी हो उठी। पीली पड़ी पत्तियो और मुरझाए पेड़ों पर हरियाली छा गई। उपवन मे पुष्प विकसित होने लगे। कुंजों में लताएँ एक-दूसरे से आलिंगन-बद्ध होने लगी। वर्षा के विशिष्ट फल आम मे मिठास आई।

यह है वर्षा, जो आँख-मिचौनी खेला करती है। इसके आगमन और गमन के पूर्वाभास मे मौसम-विशेषज्ञ भी धोखा खा जाते हैं। बेचारी 'आकाशवाणी' अविश्वसनीय सिद्ध हो जाती है। अभी-अभी बादल उमड़-घुमड़ कर आए और 'जो गरजते हैं, वे बरसते नहीं' के अनुसार बिन बरसे चले गए। कभी-कभी आकाश साफ होता है और अकस्मात् ही इन्द्र देवता बरस पड़ते हैं। थोडी देर बाद वर्षा रुकने की सम्भावना होती है, पर 'शनीचर की झडी, न कोठी न कडी' बन जाती है।

वर्षा होगी तो खेती फले-फूलेगी। अकाल नही पड़ेगा। अनाज महँगा नही होगा। सर-सरोवर और नद-नदियाँ जल से भरपूर हो जाएँगी, जो सम्पूर्ण वर्ष जीवधारियो की प्यास शान्त रखेंगी। कूप और जोहड मे एकत्रित जल खेती के सिंचन मे यथासम्भव काम आएगा। जलवायु पवित्र होगी, पृथ्वी का कूड़ा-कचरा धुल जाएगा, चातक की प्यास बुझ जाएगी।

वर्षा से अनेक हानियाँ भी है। सड़कों पर और झोपडियों मे जीवन व्यतीत करने वाले लोग भीगे वस्त्रो में अपना समय गुजारते हैं। उनका उठना-बैठना, सोना-जागना, खाना-पीना दुश्वार हो जाता है। वर्षा से मच्छरों का प्रकोप होता है, जो अपने दंश से मानव को बिना माँगे मलेरिया दान कर जाते हैं। इन

दिनों पाचन-क्रिया शिथिल होती है, अतः बुखार, टाइफाइड का जोर होता है। फुंसियाँ-फोडे इस ऋतु की सौगात हैं, जिससे बहुत कम लोग बच पाते हैं।

अतिवृष्टि विनाश का कारण भी होती है। गाँव के गाँव जलमग्न हो जाते हैं। पशु बह जाते हैं। जीवन भर की कमाई नष्ट हो जाती है और मानव अपनी तथा अपने बच्चों की जान बचाकर सुरक्षित स्थान में आश्रय ढूँढ़ता है। सड़कें जलमग्न हो जाती हैं; रेल की पटरी और पुल टूट जाते हैं, यातायात स्थगित हो जाता है। मकान गिर जाते हैं और निरीह प्राणी घायल हो जाते हैं या मर कर परमेश्वर की शरण में चले जाते हैं।

वर्षा-ऋतु में जनता को सावधान रहना चाहिए। भोजन कम करना चाहिए। अपथ्य और दुष्पच्य पदार्थों का सेवन नहीं करना चाहिए। मच्छरों के निवास-स्थल गड्ढों को नष्ट कर देना चाहिए। घरों में डी० डी० टी० छिड़कवा देनी चाहिए। नीम की कोपलें या किसी रक्त-शोधक औषधि का सेवन विशेष उपयोगी होता है।

निश्चित ही वर्षा अत्यन्त उपयोगी, सुहावनी एवं प्राणदायिनी ऋतु है। यह किसान की प्राण है, चातक की तृप्ति है और है प्राणिमात्र के जीवन का आधार।

▭

सर्दी का मौसम

(दिल्ली १९८२ : 'बी')

'वर्षा विगत शरद ऋतु आई।' 'फूले कास सकल महि छाई, जनु वर्षा कृत प्रगट बुढ़ाई।' आकाश निर्मल और स्वच्छ हुआ। रात्रि में सुधाकर अमृत की वर्षा करने लगा। मन्द-मन्द शीतल पवन चलने लगी। वर्षा की बौछारों से, कीट-पतंगों की भरमार से तथा वर्षा-व्याधि की सौगात से प्राणी को छुटकारा मिला। उसका हृदय शरद्-स्वागत के लिए झूम उठा।

भारतीय ऋतु-मान्यता की दृष्टि से आश्विन और कार्तिक शरद् ऋतु के मास हैं। वस्तुतः शरद् काल के चार मास होते है—आश्विन, कार्तिक, मार्गशीर्ष और पौष अर्थात् नवम्बर, दिसम्बर, जनवरी और फरवरी।

शरद् ऋतु के आगमन तक वर्षा की मेघ-मालाएँ लुप्त हो गईं। दुर्गन्ध और कीचड़ का अन्त हो गया। वातावरण की घुमस और घुटन समाप्त हो गई। 'पंक न रेनु, सोह् अस धरनी'। मक्खी-मच्छर दिखाई नहीं देते। स्वच्छ और निर्मल आकाश मण्डल चमकने लगा। चाँदनी का रूप निखर गया। नदी-तट पर काँस विकसित हो गए। सर्वत्र स्वच्छता और शांति का साम्राज्य छा गया।

शरद् ऋतु का प्रभाव शनैः-शनै. प्रकट हुआ। शीत का मौसम आया। हड्डियों को स्पर्श करती ठिठुराने वाली शीतल पवन चलने लगी। घास पर फैली हुई मोतियों जैसी ओस की बूंदे चमकने लगी। रात लम्बी और दिन छोटे होने लगे।

महाकवि जायसी ने शरद् का मनोहारी वर्णन किया है—

आई शरद रितु अधिक प्यारी।
नौ कुवार कातिक उजियारी।
पद्मावति में पुनिवें कला।
× × ×
सोरह करा सिंगार बनावा॥

[अत्यन्त प्यारी शरद ऋतु आई, नवरात्र युक्त कार्तिक प्रकट हुआ। नायिका (पद्मावती) शरत्कालीन पूर्णिमा की कला की भाँति खिल उठी। उसने सोलह शृंगार किए।]

जनजीवन मे जिन्दगी का संचार हुआ। हृदय प्रकृति-नटी के साथ प्रसन्न हो उठा। नर-नारी, युवा-युवती, बाल-वृद्ध सबके चेहरों पर रौनक आई। काम में मन लगा। उत्साह का सचार हुआ। प्रेरणा उदित हुई।

आयुर्वेद की दृष्टि से शरद् मे पित्त का सचय और हेमन्त में प्रकोप होता है। अत: पित्त के उपद्रव से बचने के लिए शरत्काल में पित्तकारक पदार्थों के सेवन से बचना चाहिए। दूसरे शरत्काल मे ही गरिष्ठ और पौष्टिक भोजन का आनन्द है। जो खाया, सो पच गया—रक्त बन गया। स्वास्थ्यवर्धन की दृष्टि से यह सर्वोत्तम काल है। आयुर्वेद-विज्ञान मे स्वास्थ्यवर्धक स्वर्णभस्म युक्त औषधियों के सेवन का विधान इन्हीं चार मास मे है।

ड्राई-फ्रूट इस मौसम का मेवा है। सेब, केला, चीकू, बगूगोसा आदि इस काल के मौसमी फल हैं। काजू की बरफी, मूँग की दाल का हलवा, पिन्नी तथा सोहनहलवे की टिकिया इस मौसम के चहेते मिष्ठान्न हैं। चाय-कॉफी शरद् की सर्दी को चुनौती देने वाले प्रकृति के वरदान पेय हैं। ब्राडी का सेवन शीत को भयभीत करने का चरणामृत है।

हिन्दू पर्वों की दृष्टि मे शरत्काल विशेष महत्त्वपूर्ण है। शारदी-पूर्णिमा के पवित्र, आनन्दवर्धक त्योहार मे शरद्-पर्व प्रारम्भ हुए। शारदी पूर्णिमा पर चन्द्रमा की किरणें सुधारस बरसाती है। सम्पूर्ण धरा शुभ्र चाँदनी मे स्नात हो जाती है। खीर बनाकर पूर्णिमा की ज्योत्स्ना मे रखकर रात्रि के अन्तिम पहर मे खाई जाती है। शरत्पूर्णिमा की चाँदनी मे नौका-विहार का आनन्द लूटने की उमंग उठती है। इस रात्रि को ताजमहल की शोभा विशेष दर्शनीय होती है। ताजमहल का एक-एक नग शुभ्र चाँदनी मे चमत्कृत हो उठता है। नवरात्र आए। विधि-विधान से दुर्गा-पूजा की गई। नवरात्र संयमित जीवन का संदेश दे गए। तत्पश्चात् दशहरा आया—शस्त्रपूजन का दिन, मर्यादापालन का सूचक पर्व, आसुरी वृत्ति पर देवत्व की विजय का प्रतीक। 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' का महापर्व दीपावली कार्तिक की अमावस्या को अवतरित हुई। लक्ष्मीपूजन का त्योहार। भगवती लक्ष्मी चेतावनी दे गई, 'जिसकी स्वामिनी बनती हूँ उसको उलूक बनाती हूँ,

जिसकी सखी बनती हूँ, वह कुबेर बन जाता है, जिसकी दासी बनती हूँ, वह स्वयं श्री लक्ष्मी-निवास अर्थात् भगवान बन जाता है।'

ईसाई पर्वों में क्रिसमस (बड़ा दिन : २५ दिसम्बर) तथा 'नववर्ष' (प्रथम जनवरी) भी इस मौसम को सुशोभित करते हैं। राष्ट्रीय पर्वो मे 'गणतंत्र दिवस' (२६ जनवरी) जन-जीवन को उल्लसित करता है। गणतन्त्र-दिवस की विशाल और भव्य परेड राष्ट्रवासियों को लोकतन्त्र का स्मरण करा जाती है।

वैज्ञानिक दृष्टि से शरद् का बहुत महत्त्व है। वर्षा के बाद घर की सफाई लिपाई-पुताई की परम्परा है। वर्ष भर के कूड़े-करकट को निकाला जाता है। घर की प्राचीरों को रंग-रोगन से चमत्कृत किया जाता है। दूकानो और व्यापारिक संस्थानो की सफाई का विधान है। गंदगी रोग का घर है। साफ-सुथरा घर स्वास्थ्यवर्धन का आधारभूत सिद्धान्त है।

सर्दी आई। मंद-मंद शीतल पवन चलने लगी। शरीर पर रंग-बिरंगे स्वैटर चमकने लगे। चप्पलों का स्थान जुराब-जूतों ने ले लिया। खेस की जगह कम्बल आ गया।

सर्दी में जोश आया। वह उत्तरोत्तर अपना भीषण रूप प्रकट करने लगी। शीतल पवन तेज हुई। मनुष्य सूटेड- बूटेड हुआ। गर्म वस्त्र धारण करने लगा। ऊनी चद्दर और कम्बल शरीर को सुशोभित करने लगे। रुई के गद्दे और रजाई-सौड़ उसके शयन-सुख के साथी बने। कमरों मे हीटर लग गए, अँगीठी सुलग गई। सर्दी की ठंड को वैज्ञानिक आविष्कारों ने दूर कर दिया।

मानव मन में अकुलाहट आई। वह अधिक ठंड मे काम से जी चुराने लगा। आलस्य ने उसे घेर लिया। प्रमाद ने उसे धर दबाया। वह सौड में लेटे-लेटे भगवान् भास्कर को नमस्कार करके कृपा बनाए रखने की प्रार्थना करने लगा किन्तु वह भूल गया कि 'ग्रीष्मकाले दिन दीर्घ, शीतकाले तु शर्वरी।'

शीतकाल की ठंडी तेज हवाओ को शात करती है वर्षा। 'प्रजा भाग जो बरस कुवार'। कारण शरद्-ऋतु में मेघ गरजता है, पर बरसता नही। शरत्कालीन वर्षा न केवल तीर जैसी चुभती हुई हवा से बचाएगी, अपितु पृथ्वी की हरियाली को द्विगुणित करके, खेती की उपज बढ़ाएगी; गेहूँ, गन्ने को बढ़ाएगी।

शरद् ऋतु-क्रम का स्वर्णिम काल है। इसमे वस्त्राधान का आनन्द है, विभिन्न पदार्थों के खाने-पीने और पचाने की मस्ती है, कार्य करने का उल्लास है, चेहरों पर उमंग है और है जीवन जीने के लिए प्रेरणा और स्फूर्ति। ▭

त्यौहारों का महत्त्व

(दिल्ली १६७७ : 'ए')

त्यौहार सांस्कृतिक चेतना के प्रतीक है। जन-जीवन में जागृति के प्रेरक हैं। समष्टिगत जीवन में राष्ट्र की आशा, आकांक्षा, उत्साह एवं उमगों के प्रदाता हैं, राष्ट्रीय एकता एव अखण्डता के द्योतक हैं। त्यौहारों की ही वह प्रतापी प्रथा है, जिसने भारत को मानव भूमि से भी अधिक देवभूमि बना दिया है।

'दक्षिण का ओणम, उत्तर का दशहरा, पूर्व की पूजा और पश्चिम का महारास, जिस समय एक-दूसरे से गले मिलते है, तब भारतीय तो अलग, पर-देशियो तक के हृदय-शतदल एक ही झोंके में खिल-खिल जाते हैं। इसमें अगर कही से बैसाखी के भगडा का स्वर मिल जाए या राजस्थान की पनिहारी की रुनक घुल जाए तो कहना ही क्या, भीलो का भगेरिया और गुजरात का गरबा अपने आप मे लाख-लाख इन्द्र-धनुषों की अल्हड़ता के साथ होड़ लेने की क्षमता रखते हैं।'

कश्मीर से कन्याकुमारी और कच्छ से कामरूप तक विस्तृत इस पुण्य भूमि भारत का जन-जन जब होली, दशहरा और दीपावली मनाता है—होली का हुडदंग मचाता है, दशहरा के रावण को जलाता है और दीपावली की पक्तियो से घर, आँगन, द्वार मे जगमगाहट करता है,—तब वह राजनीति-निर्मित उत्तर और दक्षिण का अन्तर समाप्त कर भारत की एकता का उद्घोष ही कर रहा होता है।

मनुष्य के सृजन से प्रकृति सजीव हो गई। प्रकृति ने सगिनी बनकर सहारा दिया और सखि बनकर जीवन। प्रसन्न मानव ने धरती में बीज डाला। वर्षा ने उसे सीचा, सूर्य की गर्मी ने उसे पकाया। जल और सूर्य उसके आराध्य बन गए। श्रम के पुरस्कार मे जब खेती लहराई तो मानव का हृदय खिल उठा, उसके चरण थिरक उठे, वाणी मुखर हो गई। सगीत-स्रोत फूट पड़े। वाणी ने उस आराध्य

की वन्दना की, जिसने उसे सहारा दिया था। सभ्यता के विकास में मन की उमंग और प्रभु के प्रति आभार प्रकट करने के लिए यह अभ्यर्थना और नृत्य-संगीत ही उसका माध्यम बने। यह वही परम्परा तो है, जो त्योहारो के रूप में आज भी मुखरित है, जीवन्त है।

महाकवि इकबाल की जिज्ञासा, 'कुछ बात है कि हस्ती मिटती नही हमारी' का समाधान हमारे पर्व और त्योहार ही हैं। सतयुग से चली आती त्योहार-परम्परा, द्वापर और त्रेता युग को पार कर कलियुग में भी भारतीय संस्कृति और सभ्यता की ध्वजा फहरा रही है। 'प्रत्येक आने वाले युग ने बीते युग को अपनाया और त्योहारों की माला मे गूँथकर रख दिया। इस माला के फूल कभी सूखे नही, क्योंकि हर आने वाली पीढी ने न सिर्फ उन फूलों को सहेज कर रखा, वरन् उनमें नए फूलों की वृद्धि भी की। और ये त्योहार भारतीय संस्कृति और सभ्यता के दर्पण बन गए।

भारत पर्व और त्योहारो का राष्ट्र है। वर्ष के ३६५ दिन भारत के किसी-न-किसी भू-भाग में कोई न कोई पर्व या त्योहार मनाया ही जाता है। 'जयन्तियाँ, पुण्यतिथियाँ और स्मृतियाँ सब हमारे यहाँ पर्व हो गई। दशावतार, चौबीस भगवान्, चौबीस तीर्थंकर, सात सरोवर, तीन महासागर तेंतीस कोटि देवता, अष्ट गंगा, बारह ज्योतिर्लिंग, चौसठ जोगनियाँ, ५६ भैरव और दो नवरात्रियाँ' इन्द्रधनुषी त्योहारों के माध्यम बने। सभ्यता और संस्कृति के प्रहरी बने।

भारत के राष्ट्रीय स्तर के जातीय त्योहारों मे होली, रक्षाबन्धन, दशहरा और दीपावली है। राष्ट्रीय राजनीतिक त्योहारों मे स्वतंत्रता-दिवस (१५ अगस्त) और गणतन्त्र-दिवस (२६ जनवरी) की प्रधानता है। धार्मिक दृष्टि से शिवरात्रि, कृष्ण-जन्माष्टमी, रामनवमी, नवरात्रि, दुर्गापूजा आदि प्रमुख पर्व हैं। जैन समाज महावीर-जयन्ती, बौद्ध समाज बुद्ध-जयन्ती तथा सिख समाज गुरु नानकदेव-जयन्ती पर्व विशेष उत्साह से मनाता है। कुछ त्योहार प्रांत-विशेष में भिन्न नामों से मनाए जाते है। जैसे—चैती, पंजाब की बैसाखी और तमिलनाडु का पोंगल, केरल का ओणम नव वर्षारम्भ के त्योहार है। श्रावण मास की हरियाली तीज और गणगौर प्रसिद्ध प्रांतीय पर्व है। पंजाब की लोढ़ी, उत्तर भारत की मकर-

संक्रांति, महाराष्ट्र की गणेश-चतुर्थी एवं बंगाल की दुर्गापूजा भी प्रांतीय त्योहार हैं।

यह ठीक है कि राष्ट्रीय पर्वों के स्वरूप और मनाने के ढंग में समय और परिस्थियों के अनुसार परिवर्तन आ गया है। जैसे श्रावणी की दुर्लभ और आदरणीय 'रक्षा-पोटलिका' का स्थान बाजारू राखी ने ले लिया। दीपावली के नेत्र-सुखद तेल-दीपों का स्थान बिजली के बल्वों ने ले लिया। 'नवान्नेष्टि यज्ञ' होली बना, जिसमें वेद-मन्त्रों का स्थान अश्लील और असभ्य वचनों ने ले लिया।

फिर भी, त्योहार अनेक गुणों से गुम्फित हैं, जिनसे हमारे आयु, आरोग्य, आदर, सम्मान, धर्म, कर्म, सम्पत्ति, सुख, सौभाग्यादि स्वतः ही बढ़ते हैं। इस दृष्टि से भी त्योहारो का अपना महत्त्व है।

□

भारत के त्योहार

भारत के त्योहार देश की सभ्यता और संस्कृति के दर्पण हैं, जीवन के शृंगार हैं, राष्ट्रीय उल्लास उमंग और उत्साह के प्राण हैं; विभिन्नता की इन्द्रधनुषी आभा में एकरूपता और अखंडता के प्रतीक हैं।

जब-जब प्रकृति-सुन्दरी ने सोलह शृंगार कर रूप निखारा, रंग-बिरंगे फूलों की चूनर ओढ़ी, खेत-खलियानों की हरीतिमा से अपना आवरण रँगा या चाँद-तारों की बिंदिया सजाई, माँग में बाल अरुण की लालिमा भरी, इन्द्रधनुष की भौंहें तान, काली घटा का अंजन आँजा और विराट् को लुभाने चली, तब-तब धरती मुग्ध हो झूम उठी, धरती-पुत्र कृतकृत्य, मद-मस्त हुआ। वह मस्ती में नाचने-गाने लगा। प्रकृति का बदलता सौन्दर्य मानव-मन में उमड़ती उमंग और उल्लास के रूप में प्रकट होकर पर्व और त्योहार कहलाया।

भारत त्योहारों का समुद्र है। पंचांग खोलकर देखिए हर दिन त्योहार है, हर दिन मेला है। हर पर्व पर पूजा-पाठ है, मौज-मस्ती है। वसन्त की मुस्कराहट 'होली', बहन-भाई के शाश्वत प्रेम का प्रतीक 'रक्षा-बंधन', विजय की प्रेरक 'विजयदशमी' तथा तमसो मा ज्योतिर्गमय का ज्वलन्त रूप 'दीपावली' राष्ट्रीय पर्व बने। 'रामनवमी', 'जन्माष्टमी' तथा 'नवरात्र' ने क्रमशः मर्यादा पुरुषोत्तम राम, चौंसठ कलाविद् कृष्ण एवं दुखमोचिनी माँ दुर्गा की पूजा का विधान किया, तो 'शिवरात्रि' पर भगवान 'शिव' की पूजा-अर्चना हुई। 'मकर-संक्रान्ति' 'बैसाखी' तथा 'गंगा-दशहरा' ऋतु-परिवर्तन के संदेशवाहक त्योहार बने।

राष्ट्र के इतिहास ने करवट बदली। भारत में पराधीनता की रात्रि समाप्त हुई। १५ अगस्त 'स्वतन्त्रता-दिवस' बना, तो २६ जनवरी 'गणतन्त्र दिवस' कहलाई। इन राष्ट्रीय पर्वों पर राष्ट्र उमंग से झूम उठा। इनमें आकर जुड़ा २ अक्तूबर। इस युग के महान् नेता विश्ववंद्य महात्मा गाँधी का जन्म-दिवस। 'गाँधी-जयन्ती'

राष्ट्रीय पर्व बन गई। संवैधानिक देन १४ सितम्बर 'हिन्दी दिवस' बना। हिन्दी-प्रेमियों का त्यौहार 'हिन्दी मेले' मे परिवर्तित हुआ। माँ भारती को और अधिक शृगारित करने का पर्व।

तमिलनाडु का 'पोंगल' जनवरी में लहलहाती फसल के घर आने पर प्रभु को भोग लगाने और गऊ-बैलो की पूजा करने का पर्व है। केरल की शस्यश्यामला पुष्पाच्छादित भूमि पर श्रावण मास में आनन्दोपभोग का त्यौहार है 'ओणम'। आश्विन सुदी सप्तमी से दशमी (विजयदशमी) तक बंगाल के नर-नारी 'दुर्गा-पूजा' मे मस्त हो गए। उडीसा में जगन्नाथजी की 'रथयात्रा' भारत का सर्वसमृद्ध और विश्वप्रसिद्ध समारोह बना। प्रकृति का सदाबहारी आँचल ओढ़े कर्नाटक की भूमि ने विश्वविख्यात दशहरे की धूम-धाम के अतिरिक्त दो प्रसिद्ध त्यौहारों का आयोजन किया—'गौरी-पूजा' और 'गणेश चतुर्थी'। बिहार में शिव-भक्तों द्वारा काँवर कंधे पर रख बैजनाथ धाम पहुँचकर शिवजी पर जल चढ़ाना वहाँ का महत्त्व-पूर्ण त्यौहार है। असम मे 'बिहू' पर्व की रंग-बिरंगी मस्ती लोक-संगीत और नृत्य में फूटी और नागाओं ने फसल पकने पर 'मो आत्सु' मनाया। उधर शतावरी फूलती है, इधर यौवन मजता है। इधर कोयल कूकती है, उधर कामना नाचती है। मेघालय की जैन्तिया पहाड़ियों का 'बेहदीन्खलम' त्यौहार प्लेग भगाने के पर्व के रूप मे आयोजित किया जाता है। पंजाब की 'बैसाखी' मस्ती भरे भँगडे पर जब नाचती है, तो पजाब जीवन्त हो उठता है। राजस्थान का 'गणगौर' और 'हरियाली तीज' का अपना ही उन्माद है। आंध्र का महान पर्व है 'उगादि' (युगादि अर्थात् युग का आरम्भ)। इस पर्व पर पचादि चटनी का भोग तथा पत्रागश्रवण मुख्य कर्म है। महाराष्ट्र मे 'गणेश-उत्सव' श्रद्धा और उल्लास मे मनाया जाता है।

'मिटी धुंध जग चानण होया' उक्ति के मूर्तरूप गुरु नानक तथा खालसा पंथ के प्रवर्तक गुरु गोविन्दसिंह का जन्मदिवस सिक्खो के महान पर्व हैं। पांचवे गुरु अर्जुनदेव तथा नवे गुर तेगबहादुर के बलिदान-दिवस सिक्खो के पवित्र त्यौहार बने। गुरुद्वारों मे भजन-कीर्तन, प्रसाद-वितरण तथा लंगर लगाने के अतिरिक्त इन त्यौहारों पर जलूस आदि का आयोजन पूजा तथा श्रद्धा-अर्पण की विधि है।

जैन धर्म के पवित्र पर्वों मे 'महावीर जयन्ती' तथा 'पर्युषण' विशेष उल्लेखनीय है। 'महावीर जयन्ती' जैनो के अन्तिम तीर्थंकर महावीर स्वामी के जन्मदिवस के उपलक्ष्य मे चैत्र शुक्ल त्रयोदशी को मनाया जाता है। 'पर्युषण' उपासना का पर्व

है। यह दस दिवसीय पर्व है। आत्मशोध द्वारा दस गुण जागृत करने का त्यौहार है।

मुसलमानों के दो प्रसिद्ध त्यौहार 'ईद-उल-फितर' अथवा 'सेवई ईद' और 'ईद-उल-जुहा' अथवा 'बकरीद' हैं, जो बेअन्त खुशियों और मसर्रतों के प्रदाता हैं। मुसलमानों के अन्य त्यौहार हैं—मुहर्रम, शबे-बरात तथा ईद मिला-दुअन्नवी (हजरत मोहम्मद का जन्म दिन)।

ईसाई-पर्वो मे 'क्रिसमस' और 'ईस्टर' दो प्रमुख त्यौहार है। क्रिसमस २५ दिसम्बर को मनाया जाता है। यह दिन ईसाई धर्म के मसीहा तथा शांतिदूत यीशु मसीह का जन्मदिन है। ईस्टर प्रभु ईसा के जन्म से फांसी चढ़ाए जाने तक का आठ दिवसीय पर्व है। 'गुड फ्राइडे' ईस्टर का एक अंग है। इस दिन ईसा को फाँसी पर चढ़ाया गया था।

कहाँ तक गिनाए जाएँ भारत के त्यौहार। भारत भगवान के रूपो, देवी-देवताओ तथा महापुरुषों का भंडार है तथा विविधता और रंगीनी से परिपूर्ण हैं। दशावतार, चौबीस तीर्थंकर, तेतीस करोड़ देवता, चौसठ जोगनियाँ, छप्पन भैरव, छप्पन करोड़ महापुरुष सबकी जयन्ती और पुण्यतिथियाँ स्थान-स्थान पर पर्व के रूप मे मनाए जाते है। ये सभी त्यौहार वर्ष के ३६५ दिनों मे मनाए जाते है। इसलिए साल का हर दिन पर्व है, पूजा-अर्चना का त्यौहार है, उत्साह, उमग और उल्लास का इन्द्र-धनुष है।

होली

होली हँसी-खुशी का पर्व है, नाचने-गाने का त्योहार है, व्यंग्य और विनोद का उत्सव है और गले मिलने का दिन है। निश्चित ही यह जीवन के दुःख, कष्ट, निराशा, चिन्ता, रोग, पीड़ा—सबको भूलकर आनन्द के सागर में डुबा देने वाला त्योहार है।

होली सर्दी के जाने और गर्मी के आने का सूचक पर्व है। प्रकृति मे बसन्त के यौवन का चिह्न है। पृथ्वी पर हरियाली, फूलों की रंगीनी और सुगन्धि का परिचायक है।

रंग-भरी होली जीवन की रंगीनी प्रकट करती है। मुँह पर अबीर-गुलाल, चन्दन या रंग लगाते हुए गले मिलने मे जो मजा आता है, मुँह को काला-पीला रँगने मे जो उल्लास होता है, रंग की भरी बाल्टी-एक-दूसरे पर फेंकने मे जो उमंग होती है, निशाना साधकर पानी-भरा गुब्बारा मारने में जो शरारत की जाती है, वे सब जीवन की सजीवता प्रकट करते हैं।

फाल्गुन पूर्णिमा मधु ऋतु का चरम उत्कर्ष-काल है। इसी दिन होली का त्योहार आता है। आर्य-संस्कृति के अनुसार देवता को बिना भोग लगाए कोई वस्तु उपयोग मे नही लाई जाती। यह समय हरी-भरी फसल काटने का है। इस नवान्न को देवता को समर्पित करने के लिए 'नवान्नेष्टि' का विधान है अर्थात् नए अन्न की आहुति अग्नि में डालते हैं। संस्कृत में भुने हुए अन्न को 'होलक' और हिन्दी मे 'होला' कहते हैं। इसी आधार पर इस पर्व का नाम होली पड़ा।

भारत के चार प्रमुख त्योहारों में होली का अपना एक विशेष स्थान है। ईसाई पर्वों में जो महत्त्व क्रिसमस का है और यवन-पर्वों में जो स्थान ईद का है, हिन्दू पर्वों मे वही स्थान होली का है। रंग-गुलाल-भरी होली कहती है—वर्ष-भर जो हो ली, सो हो ली, अब नवीन उत्साह और प्रेम से नये वर्ष का स्वागत करें। पिछली बातों को भुलाकर एक-दूसरे को गले लगाएँ। यही इस पर्व का सदेश है।

मानवीय अनुराग और वैदिक प्रेम के सम्मिलन को होली कहते हैं। आत्मा के मधुरतम और प्रियतम भाव को अनुभव किए बगैर होली-पर्व में प्रकट होने

वाले अनुराग को, जो मानव-हृदय में सहस्रों धाराओं में फूट पड़ता है, अनुभव नहीं किया जा सकता।

होली ऋतु-सम्बन्धी पर्व है। यह शिशिर की समाप्ति और ग्रीष्म के आगमन का सूचक है। प्रकृति में चहुँ ओर हर्ष और उल्लास छाया हुआ है। वसन्त भी अपने यौवन पर है। वृक्षों पर नए पत्ते आ गए हैं। फूलों की मन्द सुगन्ध से युक्त पवन बह रही है।

भारत कृषि-प्रधान देश है। अतः इस पर्व का सांस्कृतिक महत्त्व भी है। इस समय पकी हुई फसल काटी जाती है। अपने हरे खेतों को देखकर किसान का मन फूला नहीं समाता। वह खूब नाचता और गाता है।

ऐतिहासिक दृष्टि से इस पर्व का सम्बन्ध प्रह्लाद और होलिका की कथा से जुड़ा हुआ है। प्रह्लाद के पिता हिरण्यकश्यप नास्तिक थे और वे नहीं चाहते थे कि उनके राज्य मे कोई ईश्वर की पूजा करे। स्वयं उनका पुत्र ईश्वर-भक्त था। अनेक कष्ट दिए जाने के बाद भी जब उसने ईश्वर-भक्ति नहीं छोडी, तब उसके पिता ने अपनी बहिन होलिका को प्रह्लाद के साथ आग में बैठने को कहा। होलिका को यह वरदान प्राप्त था कि वह अग्नि मे नही जलेगी। अग्नि के एक ढेर में होलिका प्रह्लाद को लेकर बैठी। परिणाम उल्टा निकला। होलिका जल गई और प्रह्लाद सुरक्षित बाहर आ गया।

कुछ लोग इस उत्सव को भगवान् कृष्ण से सम्बद्ध करते हैं। उनका कहना है कि भगवान् कृष्ण ने पूतना नामक राक्षसी का वध इसी दिन किया था। इस हर्ष के समय उन्होने गोपी और गोपिकाओं के साथ रासलीला और रग खेलने का उत्सव मनाया था।

यह पर्व फाल्गुन की पूर्णिमा के दिन आता है। इस दिन लोग घरो से लकड़ियाँ इकट्ठी करते हैं। अपने-अपने मुहल्ले मे अलग-अलग होली जलाते हैं। होली जलने से पूर्व स्त्रियाँ लकड़ी के ढेर को उपलों का हार पहनाती हैं, उसकी पूजा करती हैं और रात्रि को उसमें आग लगा दी जाती है। लोग होली के चारों ओर खूब नाचते और गाते हैं तथा होली की आग में नई फसल के अनाज की बाल को भून कर खाते हैं।

होली से अगला दिन धुलेंडी का होता है। उस दिन प्रातःकाल से दोपहर तक फाग खेला जाता है। इस फाग में नर-नारी, बच्चे-बूढ़े सभी भाग लेते है। एक-दूसरे के मुँह पर अबीर-गुलाल मलना और रंगभरी पिचकारी छोड़ना इस दिन का विशेष मनोरंजन है। सड़कों पर टोलियाँ गाती, नाचती, गुलाल मलती और रंगभरी पिचकारी छोडती हुई नजर आती हैं। इस उत्सव मे छोटे-बड़े का,

ऊँच-नीच का, राजा-रक का अन्तर समाप्त हो जाता है। प्रेम से सब एक-दूसरे के गले मिलते है और गुलाल लगाते हैं। कही डफ, ढोल और मृदग बज रहे हैं; कही कोई 'मेरा रग दे बसन्ती चोला' का वीर-वैन उचार रहे है; कही मस्ती में राजस्थानी गीत गाए जा रहे हैं।

पारिवारिक होली के अपने ही रग है। देवर-भाभी की होली, पति-पत्नी की होली, भाभी-ननदो की होली, सलहज-ननदोई की होली मे एक-दूसरे को अधिक रँगने की होड़, एक-दूसरे को अधिक भिगोने का चैलेन्ज देखते ही बनता है। हर्षोल्लास का वातावरण देख पडोसी ठगे-से रह जाते है।

कवि पद्माकर ने फाग का बहुत ही सुन्दर वर्णन किया है—

फाग के भीर अभीरन में गहि गोविन्द लै गई भीतर गोरी।
भाइ करी मन की पद्माकर ऊपर नाइ अबीर की झोरी।
छीन पितम्बर कामर तें सु बिदा दई मीड़ि कपोलन रोरि।
नैन नचाइ कही मुस्काई लला फिर आइयो खेलन होरी॥

लगभग दो बजे दोपहर तक यह होली खेलना समाप्त हो जाता है। उसके बाद सब लोग शरीर को खूब रगड़कर नहाते है, ताकि शरीर पर फेंका गया रंग उतर जाए। सायकाल को नए-नए वस्त्र पहनकर लोग मेला देखने जाते है। कई स्थानो पर सायकाल को नृत्य का आयोजन होता है। बडे-बडे नगरो मे अब हास्य-रस के 'कवि-सम्मेलन' करने की प्रथा भी चल पड़ी है। इन कवि-सम्मेलनों में हास्य-रस की कविताओ के अतिरिक्त प्रसिद्ध व्यक्तियो को हास्यपूर्ण उपाधियों से विभूषित भी किया जाता है।

भगवान कृष्ण के साथ होली का सम्बन्ध होने के कारण वृन्दावन की होली बड़ी प्रसिद्ध है। यहाँ कृष्ण-रास का स्वाँग रचा जाता है। प्रभात के समय मिट्टी, पानी और गोबर घोल कर एक-दूसरे पर फेंकते है। इसे 'दधि-काँदो' कहते है।

आजकल होली मनाने के ढग में कुछ अपवित्रता आ गई है, जिसके कारण मेल के स्थान पर शत्रुता बढ जाती है। होली मे कीचड उछालने और तारकोल या अन्य गन्दी चीजें मलने को कोई भी सभ्य आदमी सहन नही करता। इसी कारण झगड़े हो जाते है। कुछ लोग शराब पीकर गन्दी हरकतें करते हैं, जो इस पर्व की पवित्रता को नष्ट कर देता है।

होली उल्लास का त्यौहार है। इस पर्व को उल्लास के साथ ही मनाना चाहिए। किसी के रग फेंकने और अबीर मलने को बुरा नही मानना चाहिए। पुरानी शत्रुता को भुलाकर सबसे गले मिलना चाहिए। इस दिन दुर्व्यसनों से दूर रहना चाहिए, तभी हम इस पर्व की पवित्रता को स्थिर रख सकते हैं। ▭

बैसाखी

त्यौहार साम्कृतिक चेतना के प्रतीक है, जन-जीवन मे जागृति के प्रेरक है, समष्टि-जीवन को उत्साह प्रदान करते है एव राष्ट्रीय एकता औ॰ अखडता के द्योतक हैं।

बैसाखी पजाव और पजाबियों का महान् पर्व है, अन्य तीज-त्योहारो की भांति हर्षोल्लास का दिवस है। धार्मिक ेतना और राष्ट्रीय जागरण का स्मृति दिवस है।

बैसाखी मुख्यत: कृषि-पर्व है। पजाब की शस्यश्यामला भूमि मे जब रबी की फसल पक कर तैयार हो जाती है और वहाँ का 'बाँका छैल जवान' उस अन्न-धन रूपी लक्ष्मी को सगृहीत करने के लिए लालायित हो उठता है, तो वह प्रसन्नता से मस्ती में नाच उठता है। 'वल्लिए कनक दीए, ओनू खाणगे नसीवा वाले।' पंजाब की युवतियाँ गा उठती है, "हे प्रीतम ! मैं सोने की दाँती बनवाकर गेहूँ के पूरे पचास पूले काटूंगी। मार्ग मे झोपडी बनवा लेंगे। ईश्वर तेरी इच्छा पूरी करेगा।"

दाँती बनावाँ सार दी पूले वड्डाँ पंजाह !
राह विच पाले कुल्ली करवाँ दी।
तेरी रब पचाऊ आस, गबरुवा ओए आस ॥

जिस दिन प्रथम बार मानव ने भूमि से अन्न प्राप्त किया, वह दिन पर्व बन गया और इस प्रकार बैसाखी का त्यौहार मनाया जाने लगा।

ऐतिहासिक दृष्टि से भी बैसाखी का दिन बहुत महत्त्वपूर्ण है। औरगजेब के अत्याचारों से भारत-भू को मुक्त कराने एवं हिन्दू-धर्म की रक्षा के लिए सिक्खों के दसवें, किन्तु अन्तिम गुरु, गुरु गोविंदसिंह ने सन् १६९९ में 'खालसा-पथ' की स्थापना इसी शुभ दिन (बैसाखी) पर किया था।

३ अप्रैल, १९१९ को बैसाखी के पावन पर्व पर भारत में 'रोलेट-ऐक्ट'

तथा अमृतसर में 'मार्शल लॉ' लागू करने के विरोध में अमृतसर के स्वर्ण-मंदिर के समीप जलियाँवाला बाग में एक महती सभा हुई थी। इस बाग के एकमात्र द्वार पर जनरल डायर ने अधिकार करके बिना कोई चेतावनी दिए सभा पर गोली बरसाना आरम्भ कर दिया। इस नृशंस हत्याकांड में १५०० व्यक्ति या तो मारे गए या मरणासन्न हो गए। अनेक लोग अपनी जान बचाने के लिए कुएँ में कूद पड़े। चार-पाँच सौ व्यक्ति ही जीवित बच पाए। शहीदों की स्मृति में 'जलियाँ-वाला बाग समिति' ने लाल पत्थरों का सुन्दर स्मारक बनवाया है।

भारतीय मास-गणना में वैसाख एक मास है। वैसाख मास के प्रथम दिन को 'बैसाखी' नाम दिया गया और पर्व के रूप में स्वीकार किया गया।

भारतीय ज्योतिष-गणना में चन्द्रमा के अनुसार चैत्र की प्रतिपदा वर्ष का प्रथम दिवस होता है, किन्तु सूर्य की गति के अनुसार वर्ष का प्रथम दिन बैसाखी ही है।

बैसाखी के दिन सूर्य मेष राशि मे प्रविष्ट होता है, अतः इसे 'मेष संक्रांति' भी कहते हैं। रात-दिन एक समान होने के कारण इस दिन को 'संवतहार' भी कहा जाता है। पद्म-पुराण में बैसाख मास को भगवत्प्रिय होने के कारण 'माधव-मास, कहा गया है। अतः इस मास तीर्थों पर कुम्भो का आयोजन करने की परम्परा है।

बैसाखी के दिन समस्त उत्तर भारत में पवित्र नदियों एवं सरोवरों में स्नान करने का माहात्म्य माना जाता है। अतः सभी नर-नारी, चाहे वह खालसा-पंथ के अनुयायी हों अथवा वैष्णव धर्म के, प्रातःकाल सरोवर अथवा नदी मे स्नान करना धर्म समझते हैं। गुरुद्वारो मे विशिष्ट उत्सव मनाया जाता है। पंथ की ओर से सभाओं एवं जलूसों का आयोजन किया जाता है।

बैसाखी का पर्व पंजाब मे ही नहीं, उत्तर भारत के अन्य प्रान्तो में भी उल्लास के साथ मनाया जाता है। पर्वतीय अंचल मे इस त्यौहार का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है। गढ़वाल, कुमाऊं, हिमाचल प्रदेश आदि सभी पर्वतीय प्रदेशों मे इस दिन अनेक स्थानों पर मेले लगते है। ये मेले अधिकांशतः उन स्थानों पर लगते है, जहाँ दुर्गा देवी के मन्दिर हैं। लोग इस दिन श्रद्धापूर्वक देवी की पूजा करते हैं और नए-नए वस्त्र धारण कर उल्लास के साथ मेला देखने जाते हैं।

आमोद-प्रमोद की दृष्टि से पंजाब में ढोल की आवाज में भाँगड़ा की धुन पर अनगिनत पाँव थिरक उठते हैं। नृत्य में ऊँचा उछलना, कूदना-फाँदना एवं एक-दूसरे को कन्धे पर उठाकर नृत्य करना भाँगडा की विशिष्ट पद्धतियाँ हैं। तुर्रेदार रंग-विरंगी पगड़ी, रंगीन रेशमी कसीदा की हुई बास्कट नृत्य के विशिष्ट और अनिवार्य परिधान हैं।

बैसाख मास में बसन्त ऋतु अपने पूर्ण यौवन पर होती है। अत बैसाखी का त्यौहार प्राकृतिक शोभा और वातावरण की मधुरता के कारण भी महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। इस वातावरण में जन-जीवन में उल्लास एवं उत्साह का संचार होना स्वाभाविक ही है।

वैसाखी प्रतिवर्ष १३ अप्रैल को आती है और आकर हमें देश एवं धर्म की रक्षा का स्मरण कराती है। जातिवाद और सम्प्रदायवाद से ऊपर उठकर समस्त हिन्दू यदि प्रांतीयता की संकुचित भावना को तिलांजलि देकर समस्त हिन्दू धर्म की एकता तथा भारत-भू की रक्षा करने का व्रत लें, तो सच्चे अर्थों में वैसाखी मना सकेंगे।

□

रक्षा-बन्धन

रक्षा-बन्धन हमारा राष्ट्रव्यापी पारिवारिक पर्व है। यह भारतीय लोक-संस्कृति की एक सुन्दर परम्परा है। श्रावण की पूर्णिमा को मनाया जाने के कारण यह पर्व 'श्रावणी' नाम से भी प्रसिद्ध है। प्राचीन आश्रमो में स्वाध्याय के लिए यज्ञ और ऋषियो के लिए तर्पण कर्म करने के कारण इसका 'उपाकर्म' नाम पड़ा। यज्ञ के उपरान्त रक्षा-सूत्र बाँधने की प्रथा के कारण 'रक्षा-बन्धन' लोक में प्रसिद्ध हुआ। सस्कृत 'रक्षा' शब्द का हिन्दी रूप 'राखी' है।

रक्षा-बन्धन का प्रारम्भ कब और कैसे हुआ, इस सम्बन्ध में कोई निश्चित प्रमाण उपलब्ध नही होता। एक किंवदन्ती प्रसिद्ध है कि एक बार देवताओ और राक्षसो का युद्ध शुरू हुआ। सघर्ष बढ़ता ही जा रहा था। देवता परेशान हो उठे। उनका पक्ष कमजोर होता जा रहा था। उस समय इन्द्र की पत्नी ने अपने पति की विजय एव मगलकामना से प्रेरित होकर एक दिन इन्द्र को राखी बाँध-कर युद्ध मे भेजा। राखी के प्रभाव से इन्द्र विजयी हुए। उसी दिन से राखी का महत्त्व स्वीकार किया गया और रक्षा-बन्धन की परम्परा प्रचलित हो गई।

मुसलमानो के शासनकाल मे यवन लोग जिस सुन्दर कन्या को देखते थे, उसे बलपूर्वक उठा ले जाते थे। इस विपत्ति से बचने के लिए कन्याएँ रक्षा-बन्धन का एक पवित्र धागा भेजकर बलवान राजाओ को अपना भाई बना लेती थीं। इस प्रकार उनकी सहायता से वे अपनी मान-मर्यादा की रक्षा करती थी।

मेवाड देश की वीरागना कर्मवती ने अपनी सहायता के लिए बड़े विश्वास के साथ हुमायूँ को राखी भेजी। राखी पाते ही हुमायूँ ने पुरानी शत्रुता भुलाकर उसके राज्य की रक्षा की। इससे पूर्व विश्व-विजय का स्वप्न देखने वाले सिकन्दर की रक्षार्थ एक यूनानी युवती ने महाराज पुरु के हाथ में राखी बाँधी थी। यही कारण था कि ऐसा अवसर आने पर भी, जब कि पुरु चाहते तो सिकन्दर की जीवन-लीला समाप्त कर सकते थे, उन्होंने उसे छोड़ दिया था।

बाद में रक्षा-बन्धन भाई-बहन के स्नेह का पर्व माना जाने लगा और आज इसी रूप में मनाया जाता है। बहन अथवा धर्म-बहन अपने भाई के माथे पर चावल और कुंकुम का टीका लगाकर उसके हाथ मे राखी बांधती है। राखी बँधवाकर भाई बहन की रक्षा का भार अपने ऊपर लेता है।

राखी का मंगलमय सूत्र वस्तुतः मनुष्य के सामाजिक कल्याण का सूत्र एवं बहन के निश्चल, सरल और पवित्र प्रेम का प्रतीक है।

कच्चे धागों में बहनों का प्यार है।
देखो, राखी का आया त्यौहार है ॥

बहन के अतिरिक्त ब्राह्मण अपने यजमानो को राखी बाँधते है। उसमे यजमान को आशीर्वाद देने एव दक्षिणा प्राप्त करने की भावना ही निहित रहती है।

राखी बाँधते हुए निम्नलिखित श्लोक पढ़ा जाता है—

येन बद्धो बली राजा, दानवेन्द्रो महाबलः।
तेन त्वां प्रतिबध्नामि, रक्षे ! मा चल, मा चल ॥

अर्थात् रक्षा के जिस साधन (राखी) से महावली राक्षसराज बली को बाँधा गया था, उसी से मैं तुम्हे बाँधता हूँ। हे रक्षासूत्र ! तू भी अपने धर्म से विचलित न होना अर्थात् इसकी भली-भाँति रक्षा करना। इस प्रकार स्पष्ट है कि रक्षा-बन्धन रक्षा की भावना का प्रतीक है। राखी बांधकर अथवा बँधवाकर रक्षा का आश्वासन लिया और दिया जाता है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि राखी के स्नेहमय सूत्रों से बँधने पर विदेशियो और विधर्मियो ने भी राखी बांधने वाली बहिन की रक्षा के लिए अपने प्राणों की बाजी लगा दी थी। इस प्रकार की घटनाओ का ऊपर उल्लेख किया जा चुका है।

इस दिन स्त्रियाँ प्रात.काल से ही घर की सफाई आदि करती है। भिन्न-भिन्न प्रकार के स्वादिष्ट भोजन बनाती है। उत्तर-भारत मे सेवियाँ, जवे और खीर आदि विशेष पदार्थ तैयार होते है। ननद या भाई के आने पर स्त्रियाँ उनसें राखी बँधवाती हैं या बांधती है। ननद अपनी भाभी को देखकर तथा बहन अपने भाई को पाकर फूली नही समाती।

इस पर्व को मनाने के कई लाभ हैं। सबसे बड़ा लाभ तो यह है कि भाई-बहन का अटूट प्रेम स्थिर रहता है। दूसरे, यजमान और पुरोहित को अपने कर्त्तव्य का स्मरण रहता है।

कई स्थानों पर तो रक्षा-बन्धन के पर्व के उपलक्ष्य में मेले लगते हैं। बच्चे-बूढ़े, बालक, बालिकाएँ सुन्दर-सुन्दर वस्त्र पहनकर मेला देखने जाते हैं। बच्चे तरह-तरह के खिलौने पाकर खुश होते हैं। कई स्त्रियाँ झूला-झूलकर अपना दिल बहलाती हैं।

आजकल रक्षा-बन्धन का पवित्र उद्देश्य समाप्त-सा हो रहा है। अतः हमें चाहिए कि रक्षा-बन्धन के पुरातन ध्येय को न भूलें। जिसने अपनी रक्षा के लिए हमारे हाथ में राखी बांधी है, चाहे वह सगी बहन न भी हो, फिर भी विशुद्ध भावनाओं से तन, मन, धन देकर उसकी रक्षा करनी चाहिए। जब यह पुनीत भावना हमारे अन्तःकरण मे राखी बँधवाते समय रहेगी, तभी हम इस पर्व की पवित्रता को स्थिर रख सकेंगे, अन्यथा नही



जन्माष्टमी

त्यौहारों एवं उत्सवो की प्रचुरता किसी जाति की सजीवता तथा शक्तिमत्ता की परिचायक होती है। प्रत्येक त्यौहार और पर्व उसकी किसी विशेष घटना का स्मरण कराता है। त्यौहारों का आधार कभी प्राकृतिक तथ्य होते है, तो कभी सामाजिक सुधार की भावना लेकर पर्व मनाए जाते है। कुछ त्यौहारों का सम्बन्ध महापुरुषों की जीवनी से होता है, जो उन महापुरुषों के आदर्शों का स्मरण कराते हैं तथा उनके जीवन का अनुसरण करने की प्रेरणा देते है। हिन्दू जाति में त्यौहारों की पर्याप्त प्रचुरता है। इसमे वर्ष भर में सभी प्रकार के त्यौहार मनाए जाते हैं। 'होली' समाज-सुधार के क्षेत्र में सम-भावना का सन्देश देने वाला त्यौहार है, तो 'दशहरा' रावणत्व पर रामत्व की विजय का सन्देश देता है। 'दीपावली' जहाँ अत्याचारी (रावण) पर विजय प्राप्त कर (राम के) स्वधाम लौटने पर प्रसन्नता व्यक्त करने की प्रेरणा देती है, वहाँ धन-धान्य और समृद्धि के विकास का सन्देश भी देती है। 'जन्माष्टमी' का सम्बन्ध भारतीय इतिहास के अन्यतम महापुरुष श्रीकृष्ण के जीवन से है। 'जन्माष्टमी' योगिराज श्रीकृष्ण का जन्म-दिन है। श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीकृष्ण ने अपने प्रादुर्भाव का उद्देश्य इस प्रकार बताया है—

यदा-यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत !
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ।।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्म-संस्थापनार्थाय, संभवामि युगे-युगे ।।

स्पष्ट है कि उनके जीवन के दो लक्ष्य थे—धर्म की संस्थापना और साधु-सज्जनों की रक्षा। इन्हीं महान गुणों के कारण श्रीकृष्ण को परमात्मा का अवतार —भगवान्—स्वीकार किया गया।

आत्म-विजेता, भक्त-वत्सल श्रीकृष्ण बहुमुखी व्यक्तित्व के महापुरुष थे। वे

महान् योद्धा थे, किन्तु उनकी वीरता सर्व-परित्राण में थी। वे महान् राजनीतिज्ञ थे, उनका ध्येय था 'सुनीति और श्रेय पर आधारित राजधर्म की प्रतिष्ठा।' वे महान् ज्ञानी थे। उन्होंने ज्ञान का उपयोग 'सनातन जन-जीवन' को सुगम और श्रेयोन्मुख स्वधर्म सिखाने में किया। वे महान् योगी थे। उनके योगबल और सिद्धि की सार्थकता 'लोकधर्म के परिमार्जन एवं सवर्धन में ही थी।'

पाञ्चजन्य का वज्रघोष करने वाले, कर्तव्य-पथ से विचलित अर्जुन को त्यक्त्वोत्तिष्ठ परतप' का उपदेश देने वाले, गीता के वक्ता, बाहुबल से कुवलया-पीड, मुष्टिक, चाणूर, कस तथा शिशुपाल का वध करने वाले और बुद्धिबल से जरासध, कालयवन एव कौरवो का विनाश करने वाले, युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ मे राष्ट्रनिर्माण के महान् स्वप्न-द्रष्टा भगवान् श्रीकृष्ण का जन्मदिवस है—भाद्रपद मे कृष्णपक्ष की अष्टमी—जन्माष्टमी।

इस दिन प्रायः प्रत्येक हिन्दू निर्जल व्रत रखता है और रात्रि के १२ बजे किसी मन्दिर मे कृष्ण-जन्म के उपलक्ष्य मे हुई आरती के बाद बँटने वाले प्रसाद को ग्रहण कर व्रत का समापन करता है।

दिन मे तो प्रायः प्रत्येक घर मे नाना प्रकार के पकवान बनाए जाते हैं। सायकाल को भी हिन्दू नए-नए वस्त्र पहनकर मन्दिर में भगवान् के दर्शन करने निकल पड़ते हैं। रात्रि के १२ बजे मन्दिरों में होने वाली आरती मे भाग लेते हैं और प्रसाद प्राप्त कर लौटते है। चन्द्रमा के दर्शन कर सब लोग बड़ी प्रसन्नता से पकवान खाते है।

इस दिन मन्दिरो की शोभा अवर्णनीय होती है। चार-पाँच दिन पहले से उन्हे सजाया जाने लगता है। कही भगवान् कृष्ण की प्रतिमा दर्शनीय है, तो कही उन्हे हिण्डोले पर झुलाया जा रहा है। कही-कही तो उनके सम्पूर्ण जीवन की झाँकी प्रस्तुत की जाती है। बिजली की चकाचौंध मन्दिर की शोभा को द्विगुणित कर रही है। उसमे होने वाले कृष्ण-चरित्र-गान द्वारा अमृत-वर्षा हो रही है और कही-कही मन्दिरो में होने वाली रास-लीला में जनता भगवान् कृष्ण के दर्शन कर अपने को धन्य समझती है।

यद्यपि यह उत्सव भारत के प्रत्येक ग्राम और नगर में बड़े समारोहपूर्वक मनाया जाता है, किन्तु मथुरा और वृन्दावन मे इसका विशेष महत्त्व है। भगवान् कृष्ण की जन्म-भूमि और क्रीड़ा-स्थली होने के कारण यहाँ के मन्दिरों

की सजावट, उनमें होने वाली रासलीला, कीर्तन एवं कृष्ण-चरित्र-गान बड़े ही सुन्दर होते हैं। भारत के कोने-कोने से हजारो लोग इस दिन मथुरा और वृन्दावन के मन्दिरो मे भगवान् के दर्शनो के लिए आते हैं।

जन्माष्टमी प्रतिवर्ष आती है और चली जाती है। हर साल यही कार्यक्रम होते हैं, किन्तु जनता कृष्ण के जीवन से शिक्षा ग्रहण करने का यत्न नही करती। महापुरुषों के जन्म-दिन मनाने का उद्देश्य यही है कि हम उनके गुणों को ग्रहण करें। जब हम भगवान् कृष्ण के उपदेशानुसार फल की इच्छा किए बिना कर्म करने की प्रेरणा प्राप्त करेंगे, तभी इस त्योहार को मनाना सार्थक होगा। ▭

देखकर दुःख होता है कि यह सारा आयोजन आडम्बर-मात्र बन गया है। इसे मात्र मनोरंजन का साधन समझा जाता है। श्रीराम के जीवन से प्रेरणा लेने की प्रवृत्ति लोगों में दिखाई नहीं देती।

विजयदशमी के पावन दिन देवराज इन्द्र ने महादानव वृत्रासुर पर विजय प्राप्त की थी। इसी दिन वीर पांडवों ने अपनी अज्ञातवास की अवधि समाप्त कर द्रौपदी का वरण किया था। महाभारत का युद्ध भी विजयदशमी को आरम्भ हुआ था।

भारत में चार मास वर्षा ऋतु के होते हैं। प्राचीनकाल में इन दिनों राजा लोग अपने शस्त्रास्त्रों को सुरक्षित रख देते थे और विजयदशमी पर उन्हें निकालकर साफ किया करते थे और इस दिन उनकी पूजा होती थी।

प्राचीनकाल में राजा लोग शत्रुओं को पराजित करने के लिए सेना सहित इस दिन कूच करते थे। इस कार्य के लिए यह समय उपयुक्त भी था। वर्षा ऋतु समाप्त हो जाती थी। मार्ग ठीक होकर यातायात के लिए खुल जाते थे। न अधिक जाड़ा, न अधिक गर्मी।

दशहरे का सांस्कृतिक पहलू भी है। हमारा देश कृषि-प्रधान देश है। जब किसान अपने खेत में सुनहली फसल उगाकर अनाज-रूपी सम्पत्ति घर लाता है, तो उसके उल्लास और उमंग का पारावार नहीं रहता। इस दिन वह भगवान् का पूजन करता है।

यह पर्व देश के विभिन्न राज्यों में विभिन्न ढंग से मनाया जाता है। महाराष्ट्र में दशहरे का 'सिलंगण' सामाजिक महोत्सव के रूप में मनाया जाता है। सायकाल गाँव के लोग नव वस्त्रों में सुसज्जित होकर गाँव की सीमा पार कर शमी वृक्ष के पत्तों के रूप में 'सोना' लूटकर गाँव लौटते हैं और उस सुवर्ण का आदान-प्रदान करते हैं।

कुल्लू का दशहरा विशेष रूप से प्रसिद्ध है। यहाँ एक सप्ताह पूर्व ही दशहरे की तैयारी आरम्भ हो जाती है। स्त्रियाँ और पुरुष तुरहियाँ, बिगुल, ढोल, नगाड़े, बाँसुरी और घण्टियों के तुमुल नाद के मध्य नृत्य करते, कन्धों पर देवगण को उठाकर नगर-परिक्रमा करते हुए कुल्लू नगर के देवता रघुनाथ जी की वन्दना से दशहरे का पर्व प्रारम्भ करते हैं और अन्तिम दिन अपराह्न में समस्त देवगण रघुनाथ जी के चारों ओर जोश से परिक्रमा करते हैं। तत्पश्चात् युद्ध

के बाजो के साथ लका पर चढ़ाई की जाती है और व्यास नदी के किनारे कांटों के ढेरो की लका जलाकर नष्ट कर दी जाती है। पंच-प्राणी—भैंस, कौआ, बकरा, मछली और केंकडे की बलि के साथ उत्सव की समाप्ति होती है।

सभी दिव्य गुणों से सम्पन्न दुर्गादेवी ने इस दिन आसुरी शक्ति पर विजय प्राप्त की थी। अत बंगाल में इसको दुर्गापूजा के रूप में मनाया जाता है। बगालियो की यह धारणा है कि इस दिन दुर्गा कैलाश पर्वत को प्रस्थान करती है। अत वे दशहरे के दिन दुर्गा की प्रतिमा को बड़ी धूमधाम-से गली मुहल्लों मे घुमाते हुए पवित्र नदी, सरोवर अथवा महानद मे विसर्जित कर देते हैं। तत्पश्चात् वे अपने मित्रो को बधाई देते हैं और मिठाई वितरित करते है।

उत्तर-भारत में इस दिन प्रातःकाल ही नारियाँ घरों को पानी से साफ करती है। सभी लोग नए वस्त्र पहनते है और फिर दशहरे का पूजन करते है। पूजन के बाद बहनें भाइयो को 'नोरतें' टाँगती हैं। तत्पश्चात् सभी मिठाई खाते है। शाम को सब लोग रामलीला देखने जाते हैं और यह दिन हँसते-खेलते समाप्त हो जाता है।

अब हम स्वतन्त्र देश के नागरिक हैं। हमें अपने देश से अज्ञान को दूर कर ज्ञान की ज्योति जलानी है। नारी-जाति पर होने वाले अत्याचारो और स्वतन्त्रता के नाम पर होने वाले अपमान को दूर करना है। साथ ही वानरो की भाँति राम की सेना के रूप में संगठित होकर देश में व्याप्त आर्थिक संकट, प्रान्तीयता की सकीर्ण भावना और साम्प्रदायिक प्रवृत्ति रूपी राक्षसराज रावण को परास्त करना है।



दीपावली

दीपमालिका मना रही है,
रात हमारी तारों वाली। —'बच्चन'

दीवाली या दीपावली का अर्थ है 'दीपों की पक्ति।' यह त्यौहार कार्तिक की अमावस्या को मनाया जाता है। अमावस्या की रात बिल्कुल अँधेरी होती है, किन्तु भारतीय जनता घर-घर में दीपकों की पक्ति जलाकर उसे पूर्णिमा से भी अधिक उजियाली बना देती है। इस प्रकार दीपावली हर्ष और उत्साह का प्रतीक ज्योति-पर्व है।

दीपावली वस्तुत: एक पर्व-समूह है, जो कार्तिक कृष्णा त्रयोदशी से शुक्ल पक्ष की दूज तक बड़ी धूम-धाम से सम्पन्न होता है। कार्तिक कृष्ण त्रयोदशी को धन-तेरस कहते हैं। इस दिन नए बर्तन खरीदना शुभ माना जाता है तथा यमराज की पूजा के लिए एक दीपक जलाकर घर के मुख्य दरवाजे पर रखा जाता है।

इसी दिन भगवान् विष्णु ने नृसिंह रूप में अवतरित होकर हिरण्यकश्यप का वध किया था। समुद्र-मंथन में इसी दिन भिषगाचार्य धन्वन्तरि का आविर्भाव हुआ था। फलत: वैद्य-गण इसे धन्वन्तरि-दिवस के रूप में मनाते हैं।

अगले दिन चतुर्दशी को 'नरक-चौदस' अथवा 'छोटी दीवाली' भी कहते हैं। पुराणों की कथा के अनुसार इस दिन योगेश्वर कृष्ण ने नरकासुर का वध कर उसके कारागार में बन्दी सोलह हजार कन्याओं का उद्धार किया था। नरक-चौदस उसी आनन्द और उल्लास का प्रतीक है।

अमावस्या के दिन 'ज्योति-पर्व' अर्थात् 'बड़ी दीवाली' मनाई जाती है। इस दिन लक्ष्मी-गणेश का पूजन होता है। लक्ष्मी धन की अधिष्ठात्री देवी है, गणेश जी जन-कल्याण के देवता हैं। लक्ष्मी जी के साथ गणेश-पूजन का अर्थ है—अर्जित धन को जन-कल्याण में व्यय करें, उसका दुरुपयोग न करें।

कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा को गोवर्धन पूजा का दिन मानते हैं। यह पूजा भगवान् कृष्ण के गोवर्धन-धारण की स्मृति में की जाती है। वस्तुतः यह गोधन के महत्त्व की सूचक भी है। इसी दिन अन्नकूट भी मनाया जाता है। इसी दिन से व्यापारी लोग आर्थिक वर्ष का आरम्भ करते हैं।

पाँचवें दिन को 'भैयादूज' या 'यम द्वितीया' कहते हैं। इस दिन बहन भाई की आरती उतारकर, तिलक लगाकर उसकी मंगल-कामना करती है। साथ ही ऐसा भी विश्वास किया जाता है कि इस दिन भाई और बहन एक साथ यमुना-स्नान कर यमराज के चक्कर से बच जाते हैं।

भारतीय संस्कृति के आदर्श पुरुष राम, रावण पर विजय पाकर इसी दिन अयोध्या लौटे थे। उनके आगमन की खुशी में घरों को सजाया गया और रात्रि को दीपमालिका की गई। आधुनिक युग के महान् समाज-सुधारक स्वामी दयानन्द सरस्वती, सास्कृतिक नेता स्वामी रामतीर्थ एवं जैन-धर्म के प्रवर्तक महावीर स्वामी तथा सर्वोदय नेता आचार्य विनोबा भावे का स्वर्गवास भी इसी दिन हुआ था। सिक्खों के छठे गुरु हरगोविंदसिंह जी ने इसी दिन कारावास से मुक्ति पाई थी। महाराज युधिष्ठिर का राजसूय-यज्ञ भी इसी दिन समाप्त हुआ था। पौराणिक गाथाओं के अनुसार समुद्र-मन्थन के समय लक्ष्मी जी का अवतार भी इसी दिन हुआ था।

दीपावली कृषि की गौरव-गरिमा बढ़ाने वाला राष्ट्रीय त्यौहार है। शरद् की सुहावनी ऋतु में मधुर-मधुर ठंड और सुनहली धूप के बीच फसल के पक कर घर आने के दिनों में जब यह त्यौहार आता है, तो स्वभावतः चारों ओर आनन्द और उल्लास छा जाता है। वर्ष भर के कड़े श्रम के बाद घर आई 'अन्न-धन' रूपी लक्ष्मी का स्वागत करने के लिए घर-आंगन लीप-पोत कर साफ-सुथरे किए जाते हैं और अभावों के कूडे-करकट को झाड़-बुहार कर एक किनारे फेंक दिया जाता है। प्रत्येक घर में नए कपास की बाती और नए तिल के तेल से नया दीप सँजोया जाता है और नए वर्ष की अगवानी की जाती है।

धन, सम्पत्ति, सौभाग्य एवं सत्त्वगुण की अधिष्ठात्री लक्ष्मी के पूजन के रूप में आजकल दीपावली का विशिष्ट महत्त्व है। यद्यपि प्रमुख रूप से यह वैश्यों का त्यौहार है, किन्तु सभी भारतीय इस दिन लक्ष्मी का पूजन करते हैं उसकी कृपा की कामना करते हैं।

दीपावली से पूर्व वर्षा ऋतु समाप्त हो जाती है, किन्तु घरो मे मच्छरों, खटमलों, पिस्सुओ और अन्यान्य विषैले कीटाणुओं का अधिकार होता है। मलेरिया व टाइफाइड के फलने-फूलने के दिन होते हैं। दूसरे, वर्ष भर की गन्दगी से घर की अस्वच्छता पराकाष्ठा पर होती है। अतः दीवाली के महीने भर पहले से ही इसकी तैयारी शुरू हो जाती है। गरीब और अमीर सभी अपनी-अपनी आमदनी के अनुसार घरो की सफाई, लिपाई-पुताई और सजावट करते हैं। इससे घर की गदगी दूर हो जाती है। नीले थोथे के मिश्रण से की गई सफेदी से मच्छर मर जाते है। सरसो के तेल के दीपक जलाने से रोगादि के कीटाणु नष्ट हो जाते है। सरसो के तेल का धुआँ (काजल) आखों के लिए अत्यन्त लाभप्रद है।

पटाखे, मोमबत्ती, वागड-बिल्ले, अगरबत्ती, कंडील, मिट्टी के खिलौने और तसवीरों की दुकानो की शोभा निराली होती है। खरीदने वालों की भीड़ के मारे सड़क पर चलना कठिन होता है।

रात्रि आई। घरो मे दिए जलाए गए। घरो की मुडेरो और आलो पर दीपो की पक्तियाँ लगने लगी। झिलमिल करती दीप-पक्तियाँ सर्वत्र अनुपम छटा उपस्थित करने लगी। अमा की इस रात्रि मे धरती के दीपक आकाश के नक्षत्रों से होड़ लगाने लगे। इसके बाद पटाखे, चुटपुटी, अनार आदि छूटने लगे। बच्चे खुश होने लगे। बिजली के रग-बिरगे बल्वों ने भी जगमग-जगमग प्रकाश करना शुरू किया। बिजली की शोभा देखिए—कहीं 'स्वागतम्' आदि लिखा है, कही कृष्ण बासुरी बजा रहे है, तो कही भारतमाता के दर्शन हो रहे हैं। इधर जगमग हो रही है, उधर लक्ष्मीजी की पूजा शुरू हो गई है । पूजा के पश्चात् सब खुशी-खुशी खाते-पीते और रोशनी देखते हैं।

जहा फूल होते है, वहाँ काटे भी होते है। आज के दिन कुछ लोग जगह-जगह जुआ खेलते है और नाना प्रकार के कुकृत्य करते हैं। जुआ खेलने वालों का विश्वास है कि आज यदि जीत गए तो सारे साल लक्ष्मी की हम पर कृपा रहेगी। कही-कहीं आतिशबाजी भी आज के दिन लडाई-झगडे का कारण बन जाती है। बच्चों के हाथ-पैर जल जाना तो मामूली-सी बात है। कभी-कभी इससे आग भी लग जाती है। अत: इन चीजों से सावधान रहकर हमे दीवाली को पवित्र ढंग से मनाना चाहिए।

'तमसो मा ज्योतिर्गमय' जागरूक मानव का प्रबुद्ध नारा है। आज राष्ट्र पर अँधियारा छाया हुआ है। लक्ष्मी की रजत-प्रतिमा औंधी पडी है। हम इस ज्योति-पर्व पर व्यष्टि से ऊपर उठकर समग्र राष्ट्र के अन्तस्तल मे व्याप्त तिमिर को दूर करें—दीपमालिका का सत्य रूप यही है। ▭

पन्द्रह अगस्त (स्वतन्त्रता-दिवस)

भारत शताब्दियों से परतन्त्र था। पहले मुगलों ने और बाद में अंग्रेजों ने आकर इस पर राज्य किया। अनेक प्रकार के दमन और अत्याचार भारतीयों पर किए गए। भारत ने भी स्वतन्त्रता-प्राप्ति के लिए अनेक प्रयत्न किए। हजारों ने जानें गँवाई, अनेक तबाह हुए, लाखों ने जेल-यातनाएँ सह-सहकर अपना यौवन खोया। इतना सब कुछ होने पर आखिर वह दिन भी आ ही गया, जब जेल की यातना सहने वालों की आशा, भारतीय जनता की आकांक्षा और शहीदों की साधना पूरी हुई। १५ अगस्त, १९४७ को देश स्वतन्त्र हो गया।

१५ अगस्त, १९४७ की रात्रि को १२ बजे स्वतन्त्रता-समारोह का शुभारम्भ करते हुए भारत के प्रथम प्रधानमंत्री स्वर्गीय प० जवाहरलाल नेहरू ने कहा था, "बहुत साल बीते, हमने तकदीर के साथ एक बाजी बदी थी और आज वह दिन आ गया है, जब हम उस प्रण को पूरा करेंगे। पूर्णता के साथ तो नहीं, लेकिन काफी हद तक। आधी रात के समय जब दुनिया सो रही है, हमारा भारत जीत और स्वाधीनता के नव-जागरण में प्रवेश कर रहा है।"

दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि १५ अगस्त वर्तमान स्वतन्त्र भारत का जन्म-दिन है। जिस प्रकार व्यक्तियों के जीवन में 'जन्म-दिन' का महत्व होता है, उसी प्रकार राष्ट्रों के जन्म-दिन का भी महत्त्व होता है। जन्म-दिन मनाते हुए हम अतीत की सफलताओं एवं असफलताओं का विश्लेषण करते हैं तथा भविष्य में निरंतर सफलता के पथ पर अग्रसर होने का सकल्प करते हैं। इस अवसर पर हितैषियों की ओर से दीर्घायुष्य की कामना प्रकट की जाती है। हमारे राष्ट्र का जन्म-दिन (१५ अगस्त का पर्व) भी हमे इसी भावना से मनाना चाहिए।

१५ अगस्त को देश को आजादी तो मिली, किन्तु भारत-मां के दो टुकड़े हो गए। भारत का एक अंग 'पाकिस्तान' के रूप में मुसलमानों को सौंप दिया गया। देश में साम्प्रदायिकता का नग्न नृत्य हुआ। जन-जीवन के साथ

खून की होली खेली गई। लाखो लोग बेघर हुए, हजारों मारे गए और न जाने कितनी माताओं और बहनों का सतीत्व नष्ट हुआ। हमने यह सब कुछ सहन किया, स्वतन्त्रता के नाम पर।

अब हम हर वर्ष १५ अगस्त मनाते हैं एक राष्ट्रीय पर्व के रूप मे। इस दिन लाल-किले पर प्रधानमन्त्री द्वारा राष्ट्रीय ध्वज लहराया जाता है और हम प्रतिज्ञा करते हैं कि अपनी स्वतन्त्रता को स्थिर रखने के लिए सर्वस्व न्यौछावर कर देंगे।

स्वतन्त्रता-दिवस की पूर्व सध्या को आकाशवाणी तथा दूर-दर्शन के माध्यम से राष्ट्र के नाम महामहिम राष्ट्रपति का भाषण प्रसारित किया जाता है।

इस दिन दिल्ली के बाजार जगह-जगह राष्ट्रीय ध्वजो से सजे होते है। प्रातःकाल से ही लोग 'लाल किले' पर पहुँचना प्रारम्भ कर देते हैं। लाल-किले के सामने का मैदान और सडकें खचाखच भरी होती हैं। जन-समूह उमड़ पड़ता है।

लालकिले की प्राचीर पर ध्वज-स्थल के पार्श्व मे विशिष्ट व्यक्तियों के बैठने की व्यवस्था होती है। संसद-सदस्य, मत्रीगण, उच्चाधिकारी, विभिन्न दलों के राजनीतिक नेता, विदेशो के राजदूतो एव कूटनीतिज्ञो के लिए यह स्थान सुरक्षित होता है।

प्रधानमन्त्री के आने से पूर्व राष्ट्रीय गीत सुनाए जाते है, ताकि जनता मे राष्ट्रीय भावनाओं का उदय हो। 'विजयी विश्व तिरगा प्यारा' गीत तो बड़ा ही श्रुति मधुर होता है।

हमारे देश के प्रधानमन्त्री प्रातः सात बजे के लगभग लाल किले पर पहुँच जाते हैं। उनके दर्शन करते ही जनता करतल-ध्वनि से उनका स्वागत करती है। वे हाथ जोडकर जनता का अभिवादन स्वीकार करते है। जल, थल, वायु—तीनों सेनाओ के सैनिक एवं दिल्ली एन०सी०सी० के छात्र-छात्राएँ उन्हे सलामी देते है। प्रधानमन्त्री राष्ट्रीय ध्वज लहराते है। ध्वज चढते ही ३१ तोपो से उसे सलामी दी जाती है। उसके बाद प्रधान-मन्त्री अपना भाषण आरम्भ करते हैं।

भाषण मे वे राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय सभी मुख्य घटनाओं की ओर जनता का ध्यान आकृष्ट करते हुए 'संसार की विकट परिस्थितियो में हम कैसे खड़े

हो सकते है, इसका सकेत देते हैं। भाषण के अंत मे वे तीन बार 'जय-हिन्द' का उच्चारण करते है और लाखो कण्ठ उस घोष को दोहराते हैं। इसके तुरन्त बाद 'जन गण मन अधिनायक जय हे' राष्ट्रगान होता है। यह है 'स्वतन्त्रता दिवस-समारोह' का प्रात.कालीन कार्यक्रम।

सायंकाल सरकारी भवनो (विशेषकर लालकिले) पर रोशनी की जाती है। आतिशबाजी चलाई जाती है। प्रधानमन्त्री दिल्ली के प्रमुख नागरिकों, सभी राजनीतिक दलो के नेताओ, प्रत्येक धर्म के आचार्यों और विदेशी राजदूतों एव कूटनीतिज्ञो को सरकारी भोज पर निमन्त्रित करते है।

इस प्रकार यह दिन हँसी-खुशी से बीत जाता है। भारत के सभी प्रान्तों मे इसी प्रकार सरकारी स्तर पर यह पर्व मनाया जाता है। प्रभात-फेरियाँ निकलती है। मुख्यमन्त्री पुलिस की सलामी लेते है। राज्य-सचिवालयो पर राष्ट्रीय ध्वज लहराया जाता है, आतिशबाजी छोडी जाती है और गण्यमान्य नागरिको को भोज दिया जाता है।

१५ अगस्त जहाँ हमारा राष्ट्रीय पर्व है, वहाँ यह विश्व-प्रसिद्ध योगी, अंग्रेजी के विख्यात लेखक और इस शताब्दी के प्रथम दशक के क्रान्तिकारी नेता अरविन्द घोष का जन्म-दिन भी है। पाडिचेरी के इस सन्त ने अनेक भारतीयो और विदेशियो मे आत्मज्ञान की ज्योति जलाई। आज वे हमारे मध्य नही है, किन्तु उनके द्वारा प्रज्वलित आध्यात्मिक ज्योति दिन-प्रतिदिन नि:सन्देह तेज होती जाएगी और एक दिन ऐसा आएगा कि भारत विश्व-गुरु के पद पर पुन. आसीन होकर ससार के कल्याण के लिए विदेशियो को ज्ञान की शिक्षा देगा।

छब्बीस जनवरी (गणतन्त्र दिवस)

(दिल्ली १६८१, ८४ : ए)

भारत के राष्ट्रीय पर्वों में २६ जनवरी का विशेष महत्त्व है। यह प्रति वर्ष आती है और हमें हमारी स्वतन्त्र सत्ता का भान कराकर चली जाती है। यह हमारा अत्यन्त लोकप्रिय राष्ट्रीय त्योहार बन गया है।

स्वतन्त्रता मिलने से पूर्व हम इस दिन स्वतन्त्र होने की प्रतिज्ञा दोहराते थे और अब स्वाधीनता मिलने के पश्चात् उस प्रगति पर दृष्टि डालते हैं, जो हमने पिछले वर्षों में की है।

भारतीय स्वतन्त्रता-संग्राम का इतिहास बहुत लम्बा है। २६ जनवरी का दिन इस संघर्ष में नया मोड़ देने वाला बिन्दु है। सन् १६२६ तक स्वतन्त्रता-संग्राम के सेनानी औपनिवेशिक स्वराज्य की माँग कर रहे थे, किन्तु जब अंग्रेज किसी भी तरह इसके लिए तैयार नहीं हुए, तब अखिल भारतीय कांग्रेस के तत्कालीन अध्यक्ष पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने अपनी दृढ़ता एवं ओजस्विता का परिचय देते हुए २६ जनवरी, १६२६ को लाहौर के समीप रावी नदी के तट पर घोषणा की कि यदि ब्रिटिश सरकार औपनिवेशिक स्वराज्य देना चाहे, तो ३१ दिसम्बर, १६२६ से लागू होने की स्पष्ट घोषणा करे, अन्यथा १ जनवरी, १६३० से हमारी मांग पूर्ण स्वाधीनता होगी। इस घोषणा के बाद आन्दोलन को नया जीवन मिला। संघर्ष और अधिक तेज हो गया।

इसी पूर्ण स्वतन्त्रता के समर्थन में २६ जनवरी, १६३० को सारे देश में राष्ट्रीय ध्वज के नीचे जलूस निकाले गए, सभाएँ की गईं, प्रस्ताव पास करके प्रतिज्ञाएँ की गईं कि जब तक हम पूर्ण स्वतन्त्र न हो जाएँगे, तब तक हमारा स्वतन्त्रता-युद्ध चलता रहेगा। लाठियों, डण्डों, तोपों, बन्दूकों और पिस्तौलों से सजी हुई फौज और पुलिस से घिरे हुए भी हमने प्रतिवर्ष इस स्वतन्त्रता-दिवस को अपनी पूर्ण स्वतन्त्रता-प्राप्ति की प्रतिज्ञा दोहराते हुए मनाया।

के लिए अनेक माई के लालों ने स्वतन्त्रता की वेदी पर रक्त चढ़ाया, कितनों ने लाठिया खाई और लाखो जेल गए। यह सब होता रहा और प्रतिवर्ष प्रतिज्ञा दुहराते-दुहराते अन्त में १५ अगस्त, १९४७ को देश स्वतन्त्र हो गया। स्वप्न, स्वप्न न रहा, अपितु साकार सत्य बन गया।

अब स्वतन्त्रता-दिवस का महत्त्व १५ अगस्त को प्राप्त हो गया, किन्तु २६ जनवरी फिर भी अपना महत्त्व रखती है। भारतीयों ने इसके गौरव को स्थिर रखने के लिए देश के गण्यमान्य नेताओं द्वारा निर्मित विधान को २६ जनवरी, १९५० को लागू किया। इस दिन भारत मे प्रजातान्त्रिक शासन की घोषणा की गई। भारतीय सविधान में देश के समस्त नागरिकों को समान अधिकार दिए गए। भारत को 'धर्म निरपेक्ष गणराज्य' घोषित किया गया। इसीलिए २६ जनवरी को 'गणतन्त्र-दिवस' कहा जाता है।

लोगो मे उत्साह और प्रेरणा जागृत करने के लिए गणतन्त्र-दिवस के अवसर पर सभी राज्यो मे सरकार की ओर से अनेक कार्यक्रम रखे जाते हैं। सभी प्रातो की राजधानियो मे सरकारी स्तर पर प्रात: झडाभिवादन होता है; पुलिस-परेड की सलामी ली जाती है। स्कूलो तथा कॉलिजों के छात्र-छात्राओ का पथ-सचलन होता है। राज्य-विकास की झाकियां प्रदर्शित की जाती हैं। सायंकाल राज्यपाल राज्य के गण्यमान्य नागरिकों को पार्टी देते हैं।

राष्ट्र की राजधानी दिल्ली मे यह समारोह विशेष उत्साह से मनाया जाता है। गणतन्त्र दिवस की पूर्व संध्या को राष्ट्रपति राष्ट्र के नाम सन्देश प्रसारित करते हैं। यह कार्यक्रम दूरदर्शन पर देखा तथा आकाशवाणी से सुना जा सकता है।

गणतन्त्र-दिवस का प्रात.कालीन कार्यक्रम आरम्भ होता है 'शहीद-ज्योति' के अभिवादन से। प्रधानमन्त्री प्रात: ही 'इंडिया गेट' पर प्रज्वलित 'शहीद-ज्योति' के समीप जाकर उसका अभिनन्दन करके राष्ट्र की ओर से शहीदों को श्रद्धाजलि अर्पित करती हैं।

कुछ ही क्षण पश्चात् राष्ट्रपति-भवन से राष्ट्रपति की सवारी चलती है। छ. घोडों की बग्घी पर यह सवारी दर्शनीय होती है। इस शाही बग्घी पर राष्ट्रपति अपने अग-रक्षकों सहित जलूस के रूप मे विजय चौक तक आते हैं। तीनों सेनाध्यक्ष राष्ट्रपति का स्वागत करते हैं। तत्पश्चात् राष्ट्रपति प्रधानमन्त्री

बाल-दिवस

बच्चे राष्ट्र की आत्मा हैं, देश की मुस्कराहट हैं, राष्ट्र के दर्पण हैं और हैं मानवीय जगत् के जनक। बालक प्रकृति की अनमोल देन हैं, सुन्दरतम कृति हैं, निर्दोष वस्तु हैं। बालक मनोविज्ञान का मूल है, शिक्षक की प्रयोगशाला है।

बालक के विकास पर राष्ट्र का विकास निर्भर है। बालक की सेवा ही राष्ट्र की सच्ची सेवा है, बालकों की कर्त्तव्यशीलता ही सब गुणों की नींव है, इसी विचार से प्रेरित हो 'बाल-दिवस' का प्रारम्भ हुआ।

बाल-दिवस की मूल भावना है बाल-कल्याण। बालकों के मानसिक और शारीरिक विकास की योजनाएँ बनाकर उनको कार्यान्वित करना इसका उद्देश्य है। कल्याण-संस्थाओं, सामाजिक संगठनों, केन्द्रीय तथा प्रांतीय सरकारों का बाल-कल्याण की ओर ध्यान दिलाने, स्मरण कराने का पुनीत दिन है। बालकों को अपने कर्त्तव्य और अधिकारों के प्रति सचेष्ट करना इसका ध्येय है।

बाल-दिवस आता है १४ नवम्बर को। १४ नवम्बर वर्तमान भारत के निर्माता पंडित जवाहरलाल नेहरू का जन्म-दिन है। पंडित नेहरू अपने जन्म-दिन पर कुछ मिनट के लिए राजनीति की उलझनों, षड्यन्त्रों तथा विवादों से दूर रहकर बच्चों की मुस्कराहट में खो जाना चाहते थे। वे भाव-विभोर हो आत्मविस्मरण करके बच्चे बन जाते थे। बच्चे उन्हें 'चाचा नेहरू' कहने लगे। चाचा-भतीजे का यह प्यारा रिश्ता जनक बना बाल-दिवस का। चाचा-नेहरू का जन्म-दिन बालकों को समर्पित हो गया और 'बाल-दिवस' कहलाने लगा।

मानव-शरीर अनश्वर नहीं। चाचा नेहरू चले गए, पर बाल-दिवस के रूप में अपनी स्मृति छोड़ गए। भारत का प्रधानमन्त्री १४ नवम्बर को बच्चों के बीच उपस्थित होकर बच्चों से प्रेरणा लेने की चेष्टा करने लगा। सर्वश्री लालबहादुर शास्त्री तथा मोरारजी देसाई ने इस परम्परा का पालन किया और श्रीमती इन्दिरा गांधी भी इसका पालन कर रही हैं।

भारत में बाल-दिवस तीन रूपों में प्रचलित हुआ—एक मनोरंजन के रूप में, दूसरा पुरस्कारों की घोषणा के रूप मे, तीसरा भाषणबाजी के रूप में। मनोरंजन के लिए स्कूलो में, स्टेडियमों मे, विभिन्न स्थलों पर बालको की सामूहिक ड्रिल, लोक-नृत्य, संगीत, पथ-संचलन, एकाकी प्ले, वेश-भूषा की विविधता प्रदर्शित करते हुए फैशन-शो आदि कार्यक्रम प्रस्तुत किए जाने लगे। दिल्ली का नेशनल स्टेडियम इसका प्रमाण है। यहाँ दिल्ली के स्कूलों के चुने हुए बच्चे आते हैं और अपना रंगारंग कार्यक्रम प्रस्तुत करते हैं। रंगारंग कार्यक्रम की सुन्दरता देखकर प्रधानमन्त्री मुस्कराकर, बच्चों को उपदेश देकर चले जाते हैं। व्यवस्थापक अपनी सफलता की दाद देते हैं।

बाल-दिवस का दूसरा रूप है पुरस्कारों की घोषणा का। वीरतापूर्ण साहसिक कार्य करने वाले बच्चों के नामों की घोषणा की जाती है। यह चयन भारत के सम्पूर्ण २२ प्रान्तों और केन्द्रशासित प्रदेशों से किया जाता है। प्राय: १०-१२-१४ वर्ष के बच्चे इस श्रेणी मे आते हैं। उनके चित्र अखबारों मे छपते है। इनके शौर्य की गाथाएँ छापी जाती हैं, ताकि शेष भारतीय बच्चे इनसे प्रेरणा लें, साहस का वरण करें वीर जीवन को अंगीकार करें।

बाल-दिवस का तीसरा रूप है भाषणबाजी का। बिना दिए भाषण और बिन-माँगे उपदेश दिए बिना भारत के राजनीतिक चेहरे पर मुस्कराहट आ ही नही सकती। राजनेता बच्चों को उपदेश देने है। इसी का रूपान्तर स्कूलों मे होता है। वहाँ प्रधानाध्यापक तथा वरिष्ठ शिक्षक बाल-दिवस की घुट्टी पिलाते है। समाचार-पत्र-पत्रिकाएँ नेताओं के लेख छापते है। एक ओर बच्चों को शुद्ध और पवित्र आत्मा का रूप समझा जाता है और दूसरी ओर उनके सामने राजनीति-प्रेरित ज्ञान का आख्यान किया जाता है।

राजनीति के संरक्षण मे बाल-दिवस दिग्भ्रान्त हो गया। चापलूस अधिकारियों की कर्त्तव्य-परायणता में बाल-दिवस बाल-कल्याण की भावना से शून्य 'परम्परागत शो' मात्र बन गया। शिक्षाविदों की अदूरदर्शिता से बालविकास के प्रण और कार्यान्विति का दिन उनके जीवन को कुण्ठित करने में परिणत हो गया।

दिल्ली के दस लाख विद्यार्थियों में से चुन-चुनकर एक सहस्र बच्चों का नेशनल स्टेडियम में प्रदर्शन क्या शेष बच्चों में हीन भावना उत्पन्न नहीं करता? क्या कभी गरीब, मैले-कुचैले, हीन भावना से ग्रस्त बालकों को प्रधानमन्त्री के सामने आने दिया जाता है? सामने आना तो दूर, क्या उन्हें कभी नेशनल स्टेडियम में प्रवेश मिला है? कदापि नही। तो फिर बाल-दिवस कैसा? हां,

प्रधानमंत्री का दिल-बहलाव तो हो गया, किन्तु प्रदर्शनकारी बच्चों से पूछिए, उनका क्या हाल हुआ ? जो सुकोमल कलियाँ प्रात:काल से निकली हैं. विभिन्न वाहनों के माध्यम से नेशनल स्टेडियम पहुची है, अनुशासन के नाम पर कठोर बैन सुनती हैं और भय से ग्रस्त अभ्यास द्वारा प्रदर्शन करके ठण्डी सांस लेती हैं, उनकी भूख-प्यास, थकान और कुण्ठा की किसे चिन्ता है ?

नेशनल स्टेडियम का कार्यक्रम १५ अगस्त के लालकिले के कार्यक्रम और २६ जनवरी के जलूस मे बच्चो की परेड और प्रदर्शन का ही रूपान्तर तो है। फिर बाल-दिवस मे क्या आकर्षण है, क्या विशिष्टता है ?

पुरस्कार-घोषणा बाल-दिवस का श्रेष्ठ और उत्साहवर्धक कार्यक्रम है। इसमे सुधार और विकास की आवश्यकता है। प्रत्येक प्रात से कम-से-कम दो बच्चों को और केन्द्रप्रशासित प्रदेशो से एक-एक बच्चे को लेना चाहिए। दूसरे, १४ नवम्बर को ही उनका सामूहिक अभिनन्दन करना चाहिए। इस अभिनन्दन कार्यक्रम मे व्यवस्थापको के अतिरिक्त स्कूली बच्चो को भी प्रवेश मिलना चाहिए। पडाल मे वीर बच्चो के बड़े-बड़े चित्र होने चाहिएँ, जिनके नीचे उनके शौर्यपूर्ण कार्य का विवरण अकित हो।

बाल-दिवस बच्चो को प्रोत्साहन देने का दिन है। अत: नगर-स्तर पर खेल-कूद प्रतियोगिताएँ होनी चाहिएँ। बाद-विवाद गोष्ठियाँ, अन्त्याक्षरी, नृत्य-सगीत, निबन्ध-चित्रकला आदि मे प्रतियोगिताएँ करनी चाहिएँ।

बाल-दिवस पर गरीब बालको को स्कूली गणवेश, पुस्तकें तथा लेखन-सामग्री भेंट करनी चाहिए। शुद्ध तथा स्वास्थ्यप्रद सामूहिक भोजन का आयोजन होना चाहिए। प्रत्येक सिनेमाघर मे एक-एक बाल-पिक्चर दिखाई जानी चाहिए, जिसमें केवल बच्चो के लिए प्रवेश हो। दूरदर्शन तथा आकाशवाणी पर बच्चो के रंगारग कार्यक्रम प्रस्तुत किए जाने चाहिएँ।

बाल-दिवस के कार्यक्रमो से राजनीतिज्ञो को दूर रखना चाहिए। उनकी छाया और साये से भी बच्चों को बचाना चाहिए। शिक्षाविदों, साहित्यकारों तथा पत्रकारों की उपस्थिति, अध्यक्षता, पुरस्कार-वितरण तथा प्रवचन बाल-दिवस को उद्देश्यात्मक बनाने मे अधिक सहायक होंगे।

इन कार्यक्रमो तथा प्रतियोगिताओं का आयोजन नगर-स्तर पर हो तथा सभी नगरो में विजेता बालको तथा टीमो को पुरस्कृत किया जाए।

बाल-दिवस राष्ट्र के भविष्य के कर्णधारों मे सद्गुणों के बीज बोने का दिन है। सुशिक्षा, प्रेम निश्छल व्यवहार के जल-सिंचन से यह बीज अंकुरित होंगे, पुष्पित होंगे और उनकी सुगंधित सुवास से राष्ट्र उल्लसित हो सकेगा। ▭

मेरा जीवन-लक्ष्य

(ऑल इण्डिया १९८५, ८३ : बी; दिल्ली १९७९, ८१,८३, बी; १९८० : ए) मैं क्या बनना चाहता हूँ : दिल्ली १९८५ : ए)

लक्ष्य लेकर चलना जीवन की सफलता का लक्षण है। एक बार जब मनुष्य अपना कोई लक्ष्य निर्धारित कर लेगा, तब वह उसे पूरा करने के लिए प्रयत्न भी अवश्य करेगा और तब तक प्रयत्न करता रहेगा, जब तक वह पूर्ण रूप में या आंशिक रूप में उस लक्ष्य तक पहुँच नही जाता। लक्ष्य-निर्धारण मनुष्य को योजनाबद्ध रूप से कार्य करना सिखाता है। इससे मनुष्य परिश्रमी और दृढ़-निश्चयी बनता है। इसके अभाव में व्यक्ति थाली के बैंगन के समान लुढकता रहता है। जिस यात्री का कोई गन्तव्य स्थान निश्चित नही होगा, वह रेलगाडी में बैठकर व्यर्थ ही इधर से उधर और उधर से इधर भटकता रहेगा। खेल के मैदान में यदि खिलाडियो के सामने 'गोल' नही होगा, तो वे दौड़ते-भागते थक-कर चूर हो जाएँगे, किन्तु खेल का कोई परिणाम न निकल सकेगा। लक्ष्य-हीन जीवन जंगल मे भटकने के समान है। मानटेन का कहना है कि 'ध्येय रहित व्यक्ति की सहायता पवन भी नही करता।' इसलिए जीवन मे लक्ष्य का होना अनिवार्य है।

कुछ आलसी लोग लक्ष्य-निर्धारण को व्यर्थ समझते है। उनका विचार है कि शेखचिल्ली की भाँति खयाली पुलाव पकाने से क्या लाभ? जीवन मे जो कुछ होना है, वह तो होगा ही। वास्तव में यह विचार कायरता का परिचायक है, निकम्मेपन की निशानी है। लक्ष्य मनुष्य को निश्चित ध्येय की ओर बढ़ने की प्रेरणा देता है और उसके मन मे उत्साह का संचार करता है।

लक्ष्य का निर्धारण करने में व्यक्ति की रुचि एवं प्रतिभा कार्य करती है। विज्ञान के क्षेत्र मे यशोपार्जन की महत्त्वाकांक्षा तभी की जा सकती है, जब प्रतिभा तीव्र हो और वैज्ञानिक विषयों का अध्ययन करने मे समर्थ हो। यदि जीवन-लक्ष्य निर्धारित करने में इस सत्य का ध्यान नही रखा जाएगा, तो सफलता

नहीं मिल सकेगी। अनेक महापुरुषों के जीवन से एक और सत्य प्रकट होता है कि कभी-कभी कोई विशेष घटना व्यक्ति के जीवन-लक्ष्य को बदल देती है। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी और जन-नायक पण्डित नेहरू उत्कृष्ट वकील बनकर धन और यश प्राप्त करने की महत्त्वाकांक्षा लेकर जीवन-क्षेत्र मे उतरे थे, किन्तु स्वतन्त्रता-सग्राम की घटनाओं ने उन्हें देश-प्रेम का मतवाला बना दिया और उन्होने देश को स्वतत्र कराने का व्रत ले लिया।

अथर्ववेद मे कहा है, 'उन्नत होना और आगे बढ़ना, प्रत्येक जीवन का लक्ष्य है।' घर के वातावरण से भी जीवन-लक्ष्य निर्धारित करने मे प्रेरणा मिलती है। मुझ पर यही बात लागू होती है। हमारा परिवार शिक्षित-जनो का कुटुम्ब है। मेरे पिताजी सस्मरणकार हैं, साहित्यकार हैं। मेरी बड़ी बहन की भी दो-तीन पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। मेरा मन अंग्रेजी या हिन्दी में एम० ए० करने की ओर प्रवृत्त है। हमारे घर मे अनेक साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक पत्र-पत्रिकाएँ आती हैं। इसके अतिरिक्त बाल-पत्रिकाएँ, हास्य-पत्रिकाएँ समाचार-दर्शन-पत्रिकाएँ सभी प्रकार की श्रेष्ठ पत्रिकाएँ, हमारे परिवार के सदस्य देखते हैं, पढ़ते है। धर्मयुग, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, दिनमान, कादम्बिनी, हिन्दी-नवनीत की तो अनेक वर्षों की फाइले हमारे घर मे है। इस प्रकार के वातावरण मे मेरा जीवन-लक्ष्य क्या हो सकता है, इसका अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है।

कार्लाइल उपदेश देते हैं, 'अपने जीवन का एक लक्ष्य बनाओ और उसके बाद सारा शारीरिक और मानसिक बल, जो ईश्वर ने तुम्हें दिया है, उसमे लगा दो।' प्रसिद्ध दार्शनिक सुकरात का कथन है, 'हमारा ध्येय सत्य होना चाहिए, न कि सुख।' मेरा लक्ष्य है साहित्यकार बनना। मेरी हार्दिक कामना है कि मैं मुंशी प्रेमचन्द बनूं, कामायनी के रचयिता की आत्मा मुझमें समाविष्ट हो जाए; 'निराला' का निरालापन, महादेवी की वेदना और सुभद्राकुमारी चौहान का राष्ट्रीयत्व मुझ-में उद्भावित होने लगे; मैं मैथिलीशरण गुप्त की भावना 'इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया' को अधिकाधिक मुखरित कर सकूं। मैं चाहती हूँ कि मै अपनी लेखिनी से राष्ट्र की सेवा कर सकूं। दरिद्रनारायण की उपासिका बन सकूं। शोषण के विरुद्ध प्रचण्ड आवाज बुलन्द कर सकूं। भारतीय संस्कृति और सभ्यता की प्रचारिका बन सकूं, सत्य का उद्घाटन कर सकूं।

अपनी इस महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए मैं प्राध्यापिका बनना चाहूँगी। जहाँ वेतन अच्छा है, अध्यापन का समय बहुत कम है, पढने-लिखने की रुचि बनी रहती है। विशाल पुस्तकालय सदा उपलब्ध होता है। निश्चिंतता है। जीवन के भौतिक अभावों की पूर्ति यहाँ सहज-साध्य है। अभावों की पूर्ति पर ही मानव अपने समय को अपनी महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति में सुन्दर रीति से लगा सकता है।

यों तो मानव कभी सन्तुष्ट नही हुआ। एक लक्ष्य की प्राप्ति दूसरे लक्ष्य को जन्म देती है; दूसरे लक्ष्य की पूर्ति तीसरे के लिए मार्ग प्रशस्त करती है, किन्तु फिलहाल मैंने अपने जीवन का लक्ष्य रखा है, साहित्यकार बनने का। उसके लिए मैं अभी से प्रयत्नशील हूं, संलग्न हूं। परीक्षाएँ, डिग्रियां और प्रमाण-पत्र इस लक्ष्यपूर्ति के सोपान है।

भगवन् ! आपसे प्रार्थना है कि आप मेरे इस लक्ष्य की पूर्ति मे सहयोग प्रदान कीजिए।

□

मेरा आदर्श इतिहास-पुरुष

इतिहास महापुरुषों का कोश है। सैकड़ों महापुरुष राष्ट्र की सेवा कर इतिहास-पुरुष बन गए। परकीयो से राष्ट्र की रक्षा, जनता के हितार्थ चिन्तन तथा उसकी प्रगति का कार्यान्वियन ऐतिहासिक महापुरुषों का जीवन-लक्ष्य रहा है। ऐसे महापुरुषो के सम्मुख मस्तक स्वतः झुक जाता है। उनके जीवन से प्रेरणा लेकर अपना जीवन राष्ट्र-हित समर्पित करने की इच्छा बलवती होती है।

मर्यादा पुरुषोत्तम राम से लेकर श्रीमती गांधी तक भारत-भू पर इतिहास पुरुषों की यशस्वी शृंखला है, किन्तु मेरे आदर्श इतिहास पुरुष है, छत्रपति शिवाजी।

राखी हिन्दुआनी, हिंदुअन को तिलक राख्यो,
स्मृति औ, पुरान राख्यो बेद विधि सुनी मैं।
राखी रजपूती, राजधानी राखी राजन की,
धरा में धरम राख्यो, गुन राख्यो गुनी में॥ —भूषण

मुगलों के अत्याचारो से जब हिन्दू जनता त्राहि-त्राहि कर रही थी, स्त्रियों का अपमान सरे-आम हो रहा था, गौ तथा ब्राह्मण की मान्यता समाप्त हो चुकी थी, हिन्दू-घर में जन्म होने पर कर देना पड़ता था, अपनी आन के पक्के राजपूत तलवार को छोड विलासिता का जीवन व्यतीत कर रहे थे, ऐसे समय मे हिन्दू-धर्म-रक्षक छत्रपति वीर शिवाजी का जन्म हुआ।

शिवाजी का जन्म १० अप्रैल, सन् १६२७ को शिवनेरी के दुर्ग में हुआ। उनकी माता का नाम जीजाबाई और पिता का नाम शाहजी था। शाहजी बीजापुर के शासक के अधीन थे। शिवाजी के जन्म के बाद शाहजी ने दूसरा विवाह कर लिया। जीजाबाई अब शिवनेरी से पूना आ गई।

शिवाजी के जीवन-निर्माण का श्रेय माता जीजाबाई को ही है। वे शिवाजी को रामायण और महाभारत की कथाएँ सुनाती। बाल्यकाल में ही उन्होंने शिवाजी के हृदय मे हिन्दुत्व का भाव कूट-कूटकर भर दिया। साधु-सन्तो की

संगति में उन्हें धर्म, राजनीति और रण-कौशल का शिक्षण मिला। कालान्तर में दादाजी कोंडदेव पूना की जागीर के प्रबन्धक नियुक्त हुए। शिवाजी ने उन्हीं से युद्ध-विद्या और शासन-प्रबन्ध करना सीखा।

दादाजी कोंडदेव की मृत्यु के उपरांत जागीर का प्रबन्ध शिवाजी ने अपने हाथ में ले लिया। उन्होंने मराठा जाति को संगठित कर एक सुसंगठित सेना भी तैयार कर ली।

शिवाजी ने सर्वप्रथम आक्रमण बीजापुर के एक दुर्ग 'तोरण' पर किया। तोरण को जीत लेने के बाद उन्होंने रायगढ़, पुरन्दर और राजगढ़ के किलों को भी जीता। इस विजय में बहुत-सा धन प्राप्त होने के साथ-साथ एक अरब-शाहजादे की अनुपम सुन्दर स्त्री भी मिली। जब लूट के सामान के साथ सुन्दरी को भी शिवाजी के सम्मुख पेश किया गया, तो उन्होंने उसे 'माँ' कहकर सम्बोधित किया और बहुत से आभूषण देकर वापस लौटा दिया।

शिवाजी की निरन्तर विजय से बीजापुर के शासक ने क्रोध में आकर शिवाजी के पिता शाहजी को जेल में डाल दिया। शिवाजी ने अपनी बुद्धिमत्ता और नीति से उन्हें छुड़ा लिया। इसके पश्चात् शिवाजी कुछ काल तक शान्त रहकर अपनी शक्ति बढ़ाते रहे।

बीजापुर के शासक ने सेनापति अफजलखाँ के नेतृत्व में एक बड़ी सेना शिवाजी पर आक्रमण करने के लिए भेजी। उसने दीवान कृष्णजी भास्कर द्वारा शिवाजी को मिलने का सन्देश भेजा। शिवाजी ने भेंट करना स्वीकार कर लिया। भेंट के समय अफजलखाँ ने शिवाजी की पीठ पर वार करना चाहा। शिवाजी पहले से ही तैयार थे। उन्होंने कवच पहन रखा था। अतः वार व्यर्थ गया, किन्तु तत्क्षण शिवाजी ने बघनख से अफजलखाँ का पेट चीर दिया। इधर तोपों के दगते ही मराठा सेना अफजलखाँ की फौज पर टूट पड़ी। अफजलखाँ की हार हुई।

अपने भाइयों से निपटने के पश्चात् औरंगजेब का ध्यान शिवाजी की ओर गया। उसने अपने मामा शाइस्ता खाँ को उधर भेजा। शाइस्ता खाँ ने चाकन आदि कई किले जीतकर पूना पर अधिकार कर लिया। एक रात शिवाजी ने एक बारात के रूप में पूना में प्रवेश किया। उनके साथ चार सौ मराठा सैनिक थे। महल में पहुँचते ही उन्होंने मुगलों पर धावा बोल दिया। शाइस्ता खाँ स्वयं तो बड़ी कठिनाई से बच गया, किन्तु उसका पुत्र मारा गया।

औरंगजेब ने इस पराजय के पश्चात् राजा जयसिंह को शिवाजी-विजय के लिए भेजा। जयसिंह ने अपनी वीरता और चातुरी से अनेक किले जीते। इधर, शिवाजी ने दोनो ओर हिंदू-रक्त की हानि देख राजा जयसिंह से संधि कर ली। राजा जयसिंह के विशेष आग्रह पर शिवाजी ने औरंगजेब के दरबार में उपस्थित होना स्वीकार कर लिया। दरबार में शिवाजी का अपमान किया गया और उन्हे बदी बना लिया गया। यहाँ भी उन्होंने कूटनीति का आश्रय लिया और फलों अथवा मिठाई के टोकरे मे छिपकर भाग निकले।

अब शिवाजी यवनो के कट्टर दुश्मन बन गए। उन्होंने पुनः यवन-किलों पर आक्रमण कर उन्हे हस्तगत करना प्रारम्भ कर दिया। सिंहगढ का दुर्ग, सूरत की बन्दरगाह, बुलढाना और बरार आदि तक जीतकर खूब धन लूटा और वहाँ के लोगों से चौथ लेना शुरू कर दिया। ६ जून, १६७४ को शिवाजी का रायगढ़ के किले में राज्याभिषेक हुआ। इस प्रकार सैकडों वर्षों के पश्चात् पुनः हिन्दूपद-पादशाही की स्थापना हुई।

हिन्दूपद-पादशाही की स्थापना के अनन्तर साम्राज्य-प्रसार और धन-प्राप्ति की इच्छा से शिवाजी ने बहुत से किले जीते। हैदराबाद और बिल्लौर ने आत्म-समर्पण ही कर दिया। अन्त मे शिवाजी ने कर्नाटक तक अपना राज्य बढ़ाया।

युद्ध मे अत्यन्त व्यस्त रहने के कारण शिवाजी अपने उत्तराधिकारी को उचित शिक्षा न दे सके। उनका पुत्र शम्भाजी विलासी, व्यभिचारी और कायर बन गया था। शिवाजी अपने अन्तिम समय मे बड़े निराश थे। उनके शरीर को रोगों ने आ दबाया और ५ अप्रैल, १६८० को इस वीर पुरुष की मृत्यु हो गई।

शिवाजी एक कुशल सगठनकर्त्ता और एक श्रेष्ठ शासक थे। उनकी शासन-व्यवस्था अत्युत्तम थी। वे एक आदर्श पुरुष थे, दूसरे धर्मों के प्रति सहिष्णु थे। उन्होंने अन्य धर्मों के पूजा-स्थलों का कभी अनादर नही किया, कभी उन्हें तुड़-वाया नही।

समर्थ गुरु रामदास शिवाजी के गुरु थे। गुरु के प्रति उनकी अटूट श्रद्धा थी। यही कारण है कि भिक्षा मे गुरुजी को इन्होंने अपना सम्पूर्ण राज्य तक दे डाला था। वे उनके प्रवधक के नाते राज्य-प्रबन्ध करते थे।

कुशल राजनीतिज्ञ, असाधारण सगठनकर्त्ता, गौ-ब्राह्मण के प्रतिपालक, हिन्दू-धर्म परित्राता, धैर्य और साहस के स्वामी, आदर्श-चरित, न्याय-मूर्ति शिवाजी को प्रत्येक हिन्दू आदर और श्रद्धा की दृष्टि से देखता है तथा उनके जीवन से स्वराष्ट्र-स्वधर्म की सुरक्षा की प्रेरणा लेता है। ☐

मेरी प्रिय पुस्तक : रामचरितमानस

(दिल्ली १९८५ : बी; ऑल इण्डिया १९८० : ए)

हमारी पाठ्य-पुस्तक में रामचरितमानस की कुछ चौपाइयाँ है। उनमें अच्छे मित्र के गुणों का वर्णन किया गया है। वे चौपाइयाँ मुझे बहुत अच्छी लगी। हमारे अध्यापक महोदय ने बताया कि रामचरितमानस बहुत श्रेष्ठ ग्रथ है। उसमें इससे भी अच्छी-अच्छी सैकड़ों चौपाइयाँ और दोहे हैं। मैंने मन मे निश्चय किया कि रामचरितमानस को अच्छी तरह अवश्य पढ़ूँगा।

अवसर मिलने पर मैंने रामचरितमानस का अध्ययन किया और आज वह मेरी प्रिय पुस्तक है। स्वान्तःसुखाय लिखी गई तुलसी की यह रचना न केवल बहुजन-हितकारी है, अपितु सर्वजनहित के आदर्श को प्रतिपादित करती है। हिन्दुओं का यह धर्म-ग्रंथ है। साहित्यिक दृष्टि से हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ महा-काव्य है।

चार सौ वर्ष पूर्व लिखी गई यह पुस्तक जन-जन का कठहार, जीवन की प्रेरक, धर्म-ज्ञान की प्रदाता और कर्त्तव्य-बोध कराने वाली है। विद्यार्थी से लेकर राष्ट्रपति तक, साधारण-जन से लेकर प्रधानमत्री तक सोल्लास मानस-उत्सवों मे भाग लेते हैं। इतना ही नहीं, यह ग्रन्थ विदेशों मे हिन्दी के प्रचार और प्रसार का माध्यम है। जहाँ-जहाँ हिन्दू गया, वहाँ-वहाँ मानस उसके साथ गया। मॉरिशस में रामचरितमानस के कारण हिन्दी जन्मी, विकसित हुई। रामकथा को मचित करने में अनेक विदेशी नृत्य-मंडलियों में होड़ रहती है।

मानस अवधी भाषा में लिखा गया ग्रंथ है। इसमें अयोध्या-नरेश दशरथ के पुत्र, पतित-पावन भगवान श्री रामचन्द्र का जीवन-चरित दोहा-चौपाइयों में वर्णित है। राम के जन्म से लेकर सिंहासनारूढ होने तक की सम्पूर्ण कथा मानस में सात काण्डों (अध्यायों) में विभक्त है। इनके नाम हैं : बालकाण्ड,

अयोध्याकाण्ड, अरण्यकाण्ड, किष्किंधाकाण्ड, सुन्दरकाण्ड, लंकाकाण्ड और उत्तरकाण्ड।

मानस में जीवनोपयोगी अनेक सूक्तियाँ हैं, जिन्हें मानव यदि अपने जीवन में उतार ले, तो उसका जीवन सफल और सुन्दर हो सकता है। जैसे—

करम प्रधान विश्व करि राखा। जो जस करइ सो तस फलु चाखा॥
बड़े सनेह लघुन्ह पर करहीं। गिरि निज सिरनि सदा तृण धरहीं॥

× × ×

पर उपदेश कुशल बहुतेरे। जे आचरहिं ते नर न घनेरे॥
जहाँ सुमति तहँ सम्पति नाना। जहाँ कुमति तहँ विपति निदाना॥

× × ×

धीरज धर्म मित्र अरु नारी। आपत काल परखेहि चारी॥

× × ×

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृप अवसि नरक अधिकारी॥

× × ×

परहित सरिस धरम नहीं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई॥
जे न मित्र दुःख होहिं दुखारी। तिन्हहिं बिलोकत पातक भारी॥

मानस आचार और धर्म की शिक्षा एक साथ देने वाला सामाजिक और पारिवारिक प्रवृत्तियों का ग्रंथ है। जैसे—राजा दशरथ ने तीन विवाह किए, रानियों में सौतिया डाह उत्पन्न हुई। राम का वन-गमन, भरत का नन्दी ग्राम में तपस्या करना आदि सौतिया डाह का ही परिणाम था। इतना ही नहीं पिता-पुत्र में, भाई-भाई में, सास-बहू में, गुरु-शिष्य में, स्वामी-सेवक में, राजा और प्रजा में कैसा व्यवहार होना चाहिए, यह हमें मानस से ही ज्ञात होता है, शिक्षा मिलती है। मानस के विभिन्न प्रवृत्तियों वाले पात्रों-राजा दशरथ; पुत्र राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न; माताएँ कौशल्या, सुमित्रा, कैकेयी; पत्नी सीता; गुरु वशिष्ठ; सेवक सुमन्त; मित्र हनुमान और विभीषण आदि-ने हमें गृहस्थ-धर्म की मर्यादा का ही पाठ पढ़ाया है।

मानस मानव मात्र में एकरूपता, समानता और कल्याण की भावना का ... है। समाज में ऊँच-नीच का भाव हिन्दू-समाज के लिए विघटनकारी है,

इसकी शिक्षा राम अपने आचरण से देते हुए निषाद को अपना सखा बनाते हैं, भीलनी के जूठे बेरों का स्वाद लेते हैं तथा जटायु का अन्तिम संस्कार अपने हाथों से करते हैं।

भगवान् राम शील, शक्ति और सौन्दर्य के प्रतीक है। उन्हें जो देखता है, उन्ही का हो जाता है। शीलवान वे इतने हैं कि वे सब पर अकारण ही कृपा करते हैं। वे दुष्टों और आततायियों का संहार एवं राक्षसों का विनाश कर सकते हैं। राक्षसराज रावण जैसे महाबली शत्रु से लड़ने के लिए वे जनता को सगठित होने का मार्ग प्रशस्त करते हैं। वन मे केवल दो भाई होते हुए भी वानरो का संगठन कर, उनके नेताओं का सहयोग प्राप्त कर, समुद्र पर पुल बाँध कर लंका में प्रवेश करना और भाई-भाई की फूट से लाभ उठाकर लका-विजय करना, राम के जीवन की महानता का द्योतक है, शत्रु पर विजय प्राप्त करने का अद्वितीय उदाहरण है।

इन्हीं विशेषताओं के कारण तुलसी का मानस आज घर-घर मे पूज्य है। वह धर्म-ग्रंथ है। गरीब की झोंपड़ी से लेकर राजाओं के महलों तक में उसका समान आदर है। अब तो विदेशी भी मानस का महत्त्व स्वीकार करते हैं। अनेक विदेशी भाषाओं में मानस का अनुवाद हो चुका है। भारत की ही भांति विदेशों में भी राम के पावन चरित्र की गाथा रामलीला की भाँति प्रदर्शित की जाती है।

ऐसा पवित्र ग्रन्थ, जो सकल ब्रह्माण्ड मे पूज्य है, वन्दनीय है, मेरी भी प्रिय पुस्तक है। मैं इसका दैनिक पाठ करता हूँ। जीवन की कठिनाइयों को मानस के माध्यम से हल करता हूँ। मानस के पात्रों से सद्गुणों की शिक्षा ग्रहण कर इस मानव-जीवन को सफल करने की चेष्टा करता हूँ।

▭

मेरा प्रिय कवि : सूरदास

(ऑल इण्डिया १९८४ : बी; ७९, ८२ : ए)

हिन्दी-साहित्य में सैकडों कवि हुए हैं, जिन्होने माँ-भारती की सेवा में कविता रूपी श्रद्धा-सुमन अर्पित किए। सुमन सभी सुवासित होते हैं। अतः हिन्दी के सभी कवियो के सम्मुख मैं श्रद्धा से सिर झुकाता हूँ। फिर भी जिस प्रकार गुलाब को फूलो का राजा माना जाता है, उसी प्रकार कवियों में भक्त-शिरोमणि सूरदास को मैं कवियो का सिरमौर मानता हूँ। पांच सौ वर्ष बीत जाने पर भी उनकी कविता आज भी काव्य-रसिको को रसोन्मत्त करती है, भक्तों को भाव-विभोर करती है। यही भक्त-शिरोमणि सूरदास मेरे प्रिय कवि हैं।

भक्त-प्रवर सूरदास का जन्म सम्वत् १५३५ मे दिल्ली के निकट सीही ग्राम में हुआ था। आप सारस्वत ब्राह्मण थे। यह कहना तो असम्भव है कि इनकी शिक्षा किस प्रकार हुई, किन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि साधु-संगति और ईश्वर-प्रदत्त अपूर्व प्रतिभा के बल पर ही उन्होंने बहुत ज्ञान प्राप्त कर लिया। युवावस्था मे वे आगरा और मथुरा के बीच गौघाट पर साधु-जीवन व्यतीत करते थे। सगीत के प्रति उनकी स्वाभाविक रुचि थी। मस्ती के क्षणों में वैरागी सूर अपना तानपूरा छेडकर गुनगुनाया करते थे। यहीं उनकी महाप्रभु स्वामी वल्लभाचार्य जी से भेंट हुई। आपने एक पद उन्हें गाकर सुनाया। स्वामी जी को यह पद बहुत पसन्द आया और उन्होने सूरदास जी को अपने मत में दीक्षित कर लिया तथा श्रीमद्‌भागवत की कथाओं को सुललित गेय पदों मे रूपान्तरित करने का आदेश दिया एवं श्रीनाथ जी के मन्दिर की कीर्तन-सेवा का भार भी उन्ही को दे दिया गया।

इसके बाद काव्य-मनीषी सूरदास कीर्तन-सेवा में संलग्न रहकर श्रीकृष्ण की पावन लीलाओं का गान करते रहे। इनके जन्मान्ध होने अथवा बाद में अन्धे होने के बारे मे विभिन्न विद्वानो मे मतभेद है। अधिकांश प्रामाणिक मत

जन्मान्धता की ही पुष्टि करते हैं।

सूरदास जी का जीवन श्रीनाथ जी की कीर्तन-सेवा में ही बीता। प्रतिदिन नया पद रचना और कीर्तन गाना ही इनके जीवन का एकमात्र कार्य था। सूरदास जी की मृत्यु सम्वत् १६४० में पारसोली ग्राम में हुई। आप अन्तिम समय तक कृष्णलीला पद गाते रहे।

सूरदास जी कृत तीन ग्रंथ प्राप्त है—सूरसागर, सूरसारावली और साहित्य-लहरी। 'सूरसागर' सूरदास जी की सर्वश्रेष्ठ एवं महान् रचना है। इसमें प्रसगानुसार कृष्ण-लीला सम्बन्धी भिन्न-भिन्न पद संगृहीत है। सूरदास के कृष्ण तो सौन्दर्य, प्रेम और लीला के कृष्ण हैं। इनके पदो की कुल संख्या सवा लाख कही जाती है, किन्तु अभी तक प्राप्त पदों की संख्या २० हजार से अधिक नही है।

सूरसागर में भगवान् कृष्ण की बाल-लीलाओं एवं बाल-प्रवृत्ति का सूक्ष्म निरीक्षण और विवेचन है। बाल-लीलाओ का जितना स्वाभाविक एव सरस चित्रण सूरदास कर सके हैं, उतना हिन्दी का कोई अन्य कवि नही कर सका। एक-दो चित्रो से हम इसकी परख कर सकते है।

बालकों की स्पर्द्धाशील प्रकृति का रूप देखिए—

मैया कबहिं वढ़ेगी चोटी ?
किती बार मोहिं दूध पियत भइ, यह अजहूँ है छोटी।
तू जो कहति बल की बेनी ज्यों ह्वै है लाँबी मोटी।
काचो दूध पियावति पचि-पचि, देत न माखन रोटी ॥

कृष्ण की वाक्-चातुरी का उत्कृष्ट उदाहरण—

मैया मैं नहिं माखन खायो।
ख्याल परे ये सखा सबै मिलि, मेरे मुख लपटायो।
देख, तु ही छीके पर भाजन, ऊँचे करि लटकायो।
तू ही निरख नान्हे कर अपने, मै कैसे करि पायो॥

अतः वियोगी हरि जी का यह कथन, "सूर जैसा वात्सल्य-स्नेह का भावुक चित्रकार न हुआ है, न होगा" युक्तिसंग ही है।

सूर का शृंगार-वर्णन भी केवल कवि-परम्परा का पालन-मात्र न होकर जीवन की सजीवता व पूर्णता की अभिव्यक्ति करता है। गोपियों का विरह-

वर्णन तो एक विशेष महत्त्व रखता है। उनके पद वर्ण्य-विषय का मनोहारी चित्र प्रस्तुत कर देते हैं और साथ ही सरस भाव की स्पष्ट व्यंजना करते हैं। राधा और कृष्ण के प्रथम मिलन पर नोक-झोंक का सौन्दर्य देखिए—

बूझत स्याम कौन तू गोरी।
कहाँ रहति, काकी है बेटी, देखी नाहिं कबहूँ ब्रज-खोरी॥
काहे को हम ब्रज-तन आवति, खेलति रहति आपनी पौरी।
सुनत रहति स्रवननि नद-ढोटा,करत फिरत माखन-दधि चोरी॥
तुम्हरो कहा चोरि हम लैहैं, मेलन चलो संग मिलि जोरी।
सूरदास प्रभु रसिक-सिरोमनि, बातनि भुरइ राधिका भोरी॥

विरह-वर्णन मे सूर ने कमाल कर दिया है। कृष्ण-विरह में गोपियों की दशा देखिए—

निसि दिन बरसत नैन हमारे।
सदा रहत बरषा रितु हम पर, जब तें स्याम सिधारे॥

सूर के काव्य की एक और विशेषता है—वह है सूर के पदों की गेयता। इस विशिष्ट गुण के कारण ही हजारों नर-नारी सूर के पदों में कृष्ण-लीला गाकर मस्ती मे झूम जाते हैं। दूसरे, उक्ति-वैचित्र्य अर्थात् एक ही भाव, विषय एव चित्र को अनेक प्रकार से तथा अनूठे ढग से प्रस्तुत करने के गुण ने उनके काव्य मे एक विशेष आकर्षण उत्पन्न कर दिया है। सूर के दृष्टकूट पद हिन्दी-साहित्य मे नई छटा दिखाते हैं।

सूरदास जी की भाषा ब्रजभाषा है। चलती हुई ब्रजभाषा में सर्वप्रथम और सर्वोत्तम रचना करने वाले सूर ही हैं। उनकी भाषा पूर्ववर्ती कवियों की भाषा की अपेक्षा अधिक सयत, सुव्यवस्थित और मँजी हुई है। कोमल पदों के साथ *उनकी भाषा स्वाभाविक, प्रवाहपूर्ण, सजीव और भावो के अनुसार बन पड़ी है।* माधुर्य और प्रसाद उनके काव्य के विशेष गुण है।

□

मेरा प्रिय लेखक : प्रेमचन्द

(दिल्ली १९७९ : 'बी')

हिन्दी-कथा-साहित्य में युगान्तरकारी मुंशी प्रेमचन्द मेरे प्रिय लेखक हैं। उनका कथा-साहित्य मानव-जीवन से सम्बन्धित है, हमारे राष्ट्रीय-जीवन का भाष्य है। जो कार्य महात्मा गाँधी ने राजनीतिक क्षेत्र में और महर्षि दयानन्द ने सामाजिक क्षेत्र में किया, वही कार्य मुंशी प्रेमचन्द ने अपने कथा-साहित्य के माध्यम से किया। उनके कथा-साहित्य की रोचकता पाठक को पढ़ने के लिए विवश करती है। वे सच्चे देशभक्त थे, ईमानदार समाज-सुधारक थे और थे साहित्यिक कर्मयोगी।

मुंशी प्रेमचन्द का जन्म बनारस से चार मील की दूरी पर स्थित लमही नामक ग्राम में ३१ जुलाई, १८८० को हुआ था। इनके पिता का नाम अजायबराय और माता का नाम आनन्दीदेवी था। कायस्थ परिवार की प्रथानुसार आपको पाँच वर्ष की आयु में एक मौलवी के पास पढ़ने के लिए भेजा गया। यद्यपि आप शारीरिक दृष्टि से दुर्बल थे, तथापि पढ़ने-लिखने में चतुर और स्वभाव से विनोदप्रिय थे।

प्रेमचन्द जी का बाल्यकाल अत्यन्त निर्धनता में व्यतीत हुआ। उन्हें पैसों की कठिनाई तो प्रारम्भ से ही थी। यद्यपि स्कूल में केवल बारह आने शुल्क लगता था, किन्तु उसे देने में भी प्रेमचन्द जी को कठिनाई का सामना करना पड़ता था। प्रेमचन्द जी के साहित्य में गरीबों के प्रति जो सहानुभूति सर्वत्र दिखाई पड़ती है, उसका एकमात्र कारण उनकी अपनी गरीबी है।

पन्द्रह वर्ष की आयु में वे पढ़ने लिए बनारस गए। यहाँ इन्हें मासिक खर्च के लिए पिताजी से केवल पाँच रुपए मिलते थे। इसी गरीबी की दशा में मुंशी जी का विवाह हो गया और कुछ काल पश्चात् उनके पिताजी का देहावसान हो गया। अब गृहस्थी चलाने का सम्पूर्ण भार इनके ऊपर आ पड़ा।

इसलिए इन्टर पढ़ने के साथ-साथ ट्यूशन करनी पड़ती थी और इस भाँति इन्हें गृहस्थी चलाने के लिए काफी परिश्रम करना पड़ता था। इधर अध्ययन के लिए समयाभाव के कारण ये इन्टर में कई बार अनुत्तीर्ण हुए। बहुत बाद में चलकर इन्होंने इन्टर और बी० ए० कर ही लिया।

अपने वैवाहिक जीवन में नितान्त असफल रहने के कारण उन्होंने शिवरानी देवी से, जो एक बालविधवा थीं, दूसरा विवाह कर लिया। विवाह के पश्चात् इनकी नौकरी लग गई और ये शिक्षा-विभाग में डिप्टी-इन्स्पेक्टर पद को सुशोभित करने लगे। किन्तु सन् १९२० में गांधी जी के भाषण से प्रेरित होकर असहयोग आन्दोलन में भाग लेने के लिए इन्होंने इस पद से त्याग-पत्र दे दिया। अब ये केवल लिखने-लिखाने से ही समय-यापन करने लगे, किन्तु इस अल्प आय से परिवार का खर्च न चलता। निराश होकर इन्हें पुनः नौकरी करनी पड़ी। इस बार आप मारवाड़ी विद्यालय में मुख्याध्यापक बने। डेढ़ वर्ष के लगभग आपने 'मर्यादा' पत्र में भी कार्य किया।

सन् १९३० में सत्याग्रह आन्दोलन आरम्भ हुआ। इस समय ये 'माधुरी' में कार्य कर रहे थे। आन्दोलन में सक्रिय भाग लेने के लिए जेल जाने का प्रश्न उपस्थित हुआ। दम्पती ने परस्पर इस प्रश्न को हल किया और निर्णयानुसार शिवरानी जी सत्याग्रह करके जेल चली गईं। इधर घर का सारा काम-काज प्रेमचन्द जी को सँभालना पड़ा।

इस बीच आपकी कई पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी थीं, किंतु प्रकाशकों के व्यवहार से ये सन्तुष्ट नहीं थे। अतः इन्होंने एक प्रेस खरीद लिया और अपनी पुस्तकों को स्वयं प्रकाशित करना आरम्भ किया। इसके अतिरिक्त आपने 'हंस' और 'जागरण' नामक दो पत्र भी इस प्रेस से अपने सम्पादकत्व में निकाले। अनुभवहीनता के कारण प्रेस और पत्रों में घाटा होने लगा। इस आर्थिक क्षति-पूर्ति के लिए आपने फिल्म-कम्पनी में नौकरी कर ली। यहाँ आपने 'मजदूर' नामक एक फिल्म भी तैयार की, जो असफल रही। हतोत्साह हो आपने इस नौकरी को भी छोड़ दिया। इधर आपका स्वास्थ्य दिन-प्रतिदिन गिर रहा था। स्वास्थ्य सुधारने की दृष्टि से आप बम्बई छोड़कर गाँव वापस आ गए। यहाँ लिखने-पढ़ने पर अधिक परिश्रम करने के कारण आपका स्वास्थ्य सुधरने के स्थान पर बिगड़ता गया और ८ अक्टूबर, १९३६ को आपने इस संसार से सदा के लिए मुक्ति पाई।

प्रेमचन्द पहले उर्दू में लिखा करते थे। हिन्दी मे उन्होने सन् १६१६ में पदार्पण किया। तब से मृत्यु-पर्यन्त (२० वर्ष की अल्पावधि मे) आपने ११-१२ उपन्यास और ३०० के लगभग कहानियाँ तथा कई नाटक लिखकर हिन्दी-साहित्य को उन्नत किया। इसलिए आप हिन्दी-जगत् मे 'उपन्यास-सम्राट्' के नाम से प्रसिद्ध हैं।

मुंशी प्रेमचन्द प्रगतिशीतल लेखक थे। सुधारवादी दृष्टिकोण सदा उनके सम्मुख रहता था। उन्होने विधवा-विवाह पर रोक, वृद्ध-विवाह, बाल-विवाह, देहज, अनमेल-विवाह, आभूपण-प्रियता, वेश्या-जीवन आदि दोषो को दूर करने के लिए सेवा-सदन, गवन, निर्मला जैसे उपन्यास और अनेक कहानियाँ लिखी।

दूसरी ओर, राजनीति मे वे गांधीवाद से प्रभावित थे। अत. सन् २१ से ३० तक के आन्दोलनों और उनके परिणामों की सामाजिक प्रतिक्रिया ही उनके उपन्यास तथा कहानियों का विषय बनी।

तीसरे, मुंशी प्रेमचन्द जी गाँव के रहने वाले थे। अतः वे कृषको के जीवन, उनकी सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक स्थिति एव ग्रामीण जीवन की शोचनीय अवस्था से भलीभाँति परिचित थे। इसलिए गरीबी के पक्षपाती मुशी प्रेमचन्द ने उपन्यासों में गाँव के सूक्ष्म से सूक्ष्म चित्र को भी सजीव रूप मे उपस्थित किया है।

मुशी प्रेमचन्द भापा की दृष्टि से भी सदा स्मरणीय रहेंगे। इनकी भापा ठेठ हिन्दुस्तानी, सीधी-सादी, मंजी, प्रौढ, परिष्कृत, सस्कृत-पदावली से प्रौढ और उर्दू से चंचल है। ये अपनी भापा मे प्रचलित ग्रामीण शब्दो का प्रयोग करने मे भी नही झिझकते थे। भापा मे सजीवता लाने के लिए उन्होंने मुहावरो और कहावतों का खूब प्रयोग किया है। यही कारण है कि उनकी जैसी चलती और मुहावरेदार भापा बहुत कम स्थानों पर देखने को मिलती है।

वस्तुत: मुंशी प्रेमचन्द ने हिन्दी-साहित्य की आजीवन सेवा की और उसका यशोवर्द्धन करते हुए मर मिटे। हिन्दी-गद्य का रूप स्थिर करने, उपन्यास-साहित्य को मानव-जीवन से सम्बन्धित करने तथा कहानी को साहित्य-जगत् में अग्रसर करने का श्रेय महामानव मुशी प्रेमचन्द जी को ही है। आपकी अमूल्य कृतियों के लिए हिन्दी-जगत् सदा आपका ऋणी रहेगा। ▭

श्रीमती इन्दिरा गाँधी

[ऑल इंडिया १९८५ : ए तथा बी; दिल्ली १९८४ 'ए']

हिन्दू धर्म में ३३ कोटि देवताओं की मान्यता है। आज के भारत में ३३ लाख नेताओं की गणना अवश्य की जा सकती है। इन नेताओं में कुछ सामाजिक हैं, तो कुछ धार्मिक और कुछ राजनीतिक। ये नेता-गण समाज का सुधार कर और धर्म का सच्चा ज्ञान बताकर तथा राजनीतिक दृष्टि से मार्ग-दर्शन कर चले जाते है। उनकी मृत्यु के पश्चात् उनके अनुयायी कुछ दशाब्दियों तक उन्हें स्मरण रखने का प्रयास करते हैं, परन्तु उँगलियों पर गिने जाने योग्य कुछ महापुरुष ऐसे भी होते है, जो सांसारिक पथ पर अपने पद-चिह्न छोड जाते हैं और इतिहास के पृष्ठो मे उनका नाम स्वर्णाक्षरों मे लिखा जाता है। ऐसे महान् नेताओं में श्रीमती इन्दिरा गांधी भी एक थी। वे ही मेरी प्रिय नेता हैं।

नेता वह, जिसमे नेतृत्व करने की शक्ति हो, सामर्थ्य हो। श्रीमती गाँधी में यह गुण कूट-कूट कर भरा था। १९७१ में भारत-पाक युद्ध में विजयश्री वरण करने का श्रेय उनकी रणनीति को ही था। इसी विजय के उपलक्ष्य मे राष्ट्र ने उन्हें सर्वोच्च अलंकरण 'भारत-रत्न' से सम्मानित किया। सन् १९७४ में अणु-विस्फोट कर विश्व के अणु-प्रांगण में भारत को छठा स्थान प्राप्त कराने का श्रेय श्रीमती गांधी को है। रूस की सहायता से १९७६ में बाल-उपग्रह वायुमंडल में भेजने तथा १९८० मे एस० एल० वी०-३ राकेट द्वारा रोहिणी उपग्रह की उड़ान एवं १९८२ मे 'इनसेट-१ए' की संक्षिप्त यात्रा तथा १९८३ में 'इनसेट-१बी' की स्थापना का श्रेय भी इन्दिरा जी को ही है। इतना ही नही, अप्रैल, १९८४ मे भारत पुत्र को अंतरिक्ष मे भेजने का श्रेय भी इन्दिरा जी को है।

नेतृत्व-क्षमता का सजीव चित्र उनकी पार्टी है। वे जिस ओर बढ़ी, जनता उनके पीछे चली। वे जहाँ खडी हो गई, वहाँ पार्टी बन गई। १९६९ मे अखिल भारतीय कांग्रेस का विभाजन हुआ। १९७७ की पराजय के पश्चात् दल का पुनः विभाजन हुआ। वे घबराई नही। उच्च मनोबल से आन्तरिक विद्रोह और विरो-

धियों के प्रहारों को काटती हुई वे १६८० में अपने दल को पुन: सत्तारूढ़ करवाने में सफल हो गईं।

श्रीमती गाँधी जन-प्रिय थीं। वे जनता के मर्म को पहचानती थी, जनता के दिल की धड़कन को सुनती थी। उन्होंने सन् १६७१ मे गरीब जनता की भलाई के लिए 'गरीबी हटाओ' का नारा दिया। १६७६-८० के महानिर्वाचन मे वे गरीब, पददलित, अल्पसंख्यक और हरिजन-जनता की मसीहा बनकर अवतरित हुईं। यह उनकी जनप्रियता का प्रबल प्रमाण था कि जिस जनता ने सन् १६७७ में उनको और उनके दल को ठुकरा दिया था, उसी भारत ने केवल तीन वर्ष की अत्यल्प अवधि में भारी बहुमत से उन्हें जिताया, उन्हे स्नेह और सम्मान दिया।

श्रीमती इन्दिरा गाँधी कुशल राजनेता हैं। जे० एफ० क्लार्क का कथन है, 'कुशल राजनेता अगली पीढ़ी के बारे में सोचता है।' देश की राजनीति पर वृद्धों के आधिपत्य को कम करके युवकों को राजनीति मे लाने के पीछे श्रीमती इन्दिरा गाँधी की यही भावना है। युवा विधायक एवं सासद राष्ट्र के नेतृत्व की द्वितीय पंक्ति हैं, जो अनुभव प्राप्त कर सहज ही बुजुर्गों से स्थान ग्रहण कर राष्ट्र को कुशल नेतृत्व प्रदान कर सकेंगे।

श्रीमती इन्दिरा गाँधी महान् कूटनीतिज्ञ और कुशल राजनीतिज्ञ नेता थी। वे विश्व के महान् राष्ट्रों में अपनी कूटनीति के बल पर भारत का भाल उन्नत किए हुए थी। अमरीका, रूस, जापान और जर्मनी से सभी प्रकार की सहायता बटोरते हुए भी, उनकी हाँ में हाँ न मिलाना उनकी कूटनीति का परिचायक है। इतना ही नहीं, सन् १६७१ के भारत-पाक-युद्ध मे अमेरिका को अँगूठा दिखाकर पाकिस्तान को विभाजित करने में उनकी कूटनीति की सफलता थी। सुदृढ़ तथा जनप्रिय जनता पार्टी को ढाई वर्ष के अल्पकालीन समय मे खण्ड-खण्ड कर इतिहास के कूड़ेदान में फेंक देने का श्रेय मात्र इन्दिरा जी की कूटनीति को ही था।

श्रीमती इन्दिरा गाँधी विश्व की राजनीति मे बहुत तेजी से उभरी और उन्होंने भारत के भाल को उन्नत किया। १६८२ मे सफल 'एशियाड' का आयोजन किया। मार्च १६८३ में निर्गुट आन्दोलन के देशों के राष्ट्राध्यक्षों और शासनाध्यक्षों की सफल मेजबानी की। परिणामतः इन्दिरा जी निर्गुट आन्दोलन की अध्यक्ष बनी। नवम्बर १६८३ मे राष्ट्रकुल के ४७ राष्ट्रों का सम्मेलन आयोजित किया, जिसमे ब्रिटेन की महारानी एलिजाबेथ और प्रधानमन्त्री श्रीमती

मारग्रेट थचर ने भाग लिया। ये तीन आयोजन प्रत्येक दृष्टि से इतने सफल रहे कि विश्व के महान् कूटनीतिज्ञों ने भारत की इस क्षमता पर दाँतों में उँगली दबा ली।

इन्दिरा जी साहस और शक्ति की पुंज थी। पराजय ने उनको पराजित नहीं किया। आपत्तियों और विपत्तियों से उनका मनोबल नही टूटा। वे जेल-जीवन से घबराई नही, जनता सरकार के मुकदमों से हतोत्साहित नहीं हुईं। दो बार पार्टी टूटने पर साथियों के अलगाव से विचलित नही हुई, बल्कि दृढ चट्टान की तरह अडिग खड़ी रही। जनप्रिय जनता-सरकार के नेता पराजित इन्दिरा गांधी के भय से भयभीत रहते थे। श्रीमती गाँधी के चेहरे की कल्पनामात्र से हतोत्साहित हो जाते थे, उन्हें कँपकँपी छूटने लगती थी। ऐसा था वीरता की देवी श्रीमती इन्दिरा गाँधी का तेजस्वी रूप।

लोकप्रिय नेता इन्दिरा जी का जन्म १९ नवम्बर, १९१७ को हुआ था। उनके जनक थे भारत के प्रथम प्रधानमन्त्री श्री जवाहरलाल नेहरू और जननी थी श्रीमती कमला नेहरू। इनका बचपन का नाम था 'इन्दिरा प्रियदर्शिनी'।

नियमित रूप से पढाई के अभाव में वे कोई विश्वविद्यालीय डिग्री प्राप्त न कर सकीं। विदेश-भ्रमण के प्रभाव ने इनमें उन्मुक्त विचारों को जन्म दिया। इन्होंने विवाह भी एक पारसी युवक श्री फीरोज गाँधी से किया था। इन्होंने दो पुत्र-रत्नों को जन्म दिया—राजीव गांधी और संजय गाँधी। दुर्भाग्य से २३ जून, १९८० को संजय गांधी भी स्वर्ग सिधार गए। राजीव गांधी आज भारत के प्रधानमन्त्री हैं।

इन्दिरा जी ने पिता के साथ रहकर राजनीति की शिक्षा ग्रहण की थी। कूटनीतिज्ञों के सम्पर्क में आकर वे कूटनीति में दीक्षित हुईं। अखिल भारतीय कांग्रेस की अध्यक्षा रही। पिता की मृत्यु के पश्चात् सूचना तथा प्रसारण मन्त्री बनी। श्री लालबहादुर शास्त्री की मृत्यु के उपरान्त आपने सन् १९६७ ई० में प्रधानमंत्री का पद सुशोभित किया था।

३१ अक्तूबर, १९८४ को उनके ही दो अंगरक्षकों, जो वस्तुतः सिख उग्रवाद के समर्थक थे, ने गोलियाँ चलाकर उनकी हत्या कर दी। उनका पार्थिव शरीर इस लोक को छोड़कर चला गया, किन्तु उनकी आत्मा का स्वर विकसित भारत की ध्वनि में सुना जा सकता है। अतः वे मर कर भी अमर हो गईं।

राशन की दुकान पर मेरा अनुभव

(दिल्ली १६८० : 'ए')

नियंत्रित मूल्य तथा निश्चित मात्रा मे वस्तुओं के वितरण की व्यवस्था को 'राशनिंग' कहते हैं। जिस दुकान से वितरण की व्यवस्था की जाती है, उसे 'राशन की दुकान' कहते है। लगभग ७-८ वर्ष से राशन की दुकान का नाम 'उचित दर की दुकान' रख दिया गया है, जो असगत है। कारण, उचित की व्याख्या राजकीय दृष्टि से सही हो सकती है, किन्तु मात्रा का नियत्रण इस नाम से प्रकट नहीं होता। लकड़ी-कोयले के राशन-डिपो से निर्धारित मात्रा से अधिक सौ ग्राम कोयला तो ले लीजिए ! दुकानदार राशन की ब्लैक करने के अपराध में जेल की यातनाएँ भोगेगा और ग्राहक को गवाहियों के भुगतान में धन और समय बरबाद करना पड़ेगा।

'शस्य श्यामला' भारत-भूमि में राशन ! घी-दूध की नदियाँ जिस राष्ट्र में बहती थीं, वहाँ उचित दर की दुकान की व्यवस्था ! यह देश का अपमान है और अधिकारियों की कार्य-विधि की अक्षमता का परिचायक। आज देश में गेहूँ, चना, चावल खूब मिलता है, किन्तु फिर भी राशन है ! सरकार को इसमें दो लाभ हैं—प्रथम है जनता का ध्यान राष्ट्र-हित की समस्याओं से विचलित करना और दूसरा है अधिकारियों की चाँदी और देश के व्यापारी-वर्ग का नैतिक बल कमजोर करना। द्वितीय विश्व-युद्ध के समय चली राशन-व्यवस्था तत्कालीन स्वतन्त्रता-आन्दोलन की अग्नि को बुझाने का प्रयास था और आज हमारे शासनाधिकारी इसे अपनी असफलताओं को छिपाने का माध्यम समझते हैं। वे चाहते हैं कि जनता गेहूँ, चीनी, कोयला-लकड़ी और मिट्टी के तेल के राशन से जूझती रहे, और उसे अवकाश ही न मिले—देश और देश की समस्याओं के विषय में सोचने का।

देश में गेहूँ, चावल, मैदा, सूजी खूब हैं, अत. राशन की दुकानों पर इनकी

कोई समस्या नहीं। हां, इतना अवश्य है कि देश के अधिकारियों का नैतिक पतन होने के कारण सरकारी एजेंसीज द्वारा खरीदे गेहूँ में कूड़ा-करकट अधिक होगा। गेहूँ बढ़िया किस्म का मोटा दाना नहीं होगा। दूसरे, सरकार के गोदाम में से निकला गेहूँ, कितना पुराना है, क्या कहा जा सकता है?

घर के लिए राशन लाने की ड्यूटी मेरी है। मैं ही इसे प्रेम से निभाता हूँ। साइकिल ली, एक बोरी या कट्टा तथा दो थैले लिए और चल पड़ा राशन की दुकान पर। हमारा दुकानदार प्रसन्न-वदन व्यापारी है। मेरी शक्ल देखते ही 'आओ राजकुमार' कहकर मेरा अभिवादन करता है। भीड़ क्या, लाइन नाम की कोई समस्या नहीं। एक बार मैंने कह दिया, 'मेरा नाम स्वदेशकुमार है, राजकुमार नहीं।' हँसकर बोला 'स्वदेश के कुमार हो सकते हो, किन्तु अपने माता-पिता के तुम्हीं राजकुमार हो।' मैं चुप। मैं भी मजाक में उसे 'अन्न-प्रदाता' का अपभ्रंश 'अन्नदाता' कहने लगा। वैसे उसकी बात का बुरा कोई नहीं मानता। एक दिन राशन लेने वाला एक युवक कीमती वस्त्र पहने अपने नौकर के साथ आया था। उसे उसने 'शहजादा सलीम' की संज्ञा दे डाली।

राशनकार्ड दिखाकर पर्ची कटवाई। पैसे दिए, पर्ची ली। पर्ची राशन तोलने वाले को दी। उसने सब पदार्थ ठीक-ठीक तोलकर बोरी और थैलों में डाल दिए। बोरी का मुँह सुतली से बांध दिया। मैंने कहा—'लाला, जरा गेहूँ की बोरी को साइकिल पर रखवा दो।' हँसकर कहता है—'कैसे हो देश के कुमार, जो एक मन गेहूँ नहीं उठा सकते। बदल दो अपना नाम।'

मेरी बातचीत चल ही रही थी कि एक वृद्धा आई। लाला ने कहा—'माता जी को पहले राशन दे दूँ, फिर उठवाऊँगा। मैं खड़ा रहा। तोलने वाले ने गेहूँ तोल कर माताजी की बोरी में डाले ही थे कि वृद्धा ने ४-५ 'श्लोक' सुना दिए। 'कम तोलता है, तुझे कीड़े पड़ेंगे। तू आँखों में धूल झोंकता है, तेरी औलाद अन्धी होगी।' लाला हक्का-बक्का। काटो तो खून नहीं। उसने हाथ जोड़कर कुछ कहना चाहा, तो वृद्धा और गालियां देने लगी। देखते-देखते ८-१० आदमी इकट्ठे हो गए। पास ही खड़ा नागरिक-सुरक्षा का प्रहरी (सिपाही) भी आ गया।

बात बढ़ गई। लाला की दलील थी कि इस गेहूँ को पुनः तोल देता हूँ। पर्ची के हिसाब से ठीक निकले, तो मैं सच्चा, किन्तु पुलिस वाला दोनों को पुलिस स्टेशन ले जाने के लिए बजिद। वह लाला से रुपए ऐंठने के चक्कर में था। इसी

बीच कहीं से राशन-इन्सपेक्टर आ टपका। उसने जनता को शान्त किया, बोरी का गेहूँ तुलवाया। पर्ची के हिसाब से गेहूँ बिलकुल ठीक।

'जनता बालक एक समान'। हवा का रुख पलट चुका था। लाला सच्चा निकला। लोग बुढ़िया का मजाक उड़ाने लगे। कोई कहता—'बहू से लड़कर आई है', तो कोई और कुछ। बहरहाल बुढ़िया के विदा होने के मैंने बाद लाला से पुनः प्रार्थना की—'सत्यवादी हरिश्चन्द्र जी मेरी बोरी तो उठवा दो।' इस उपाधि से लाला हँसा और बोला, 'बोरी उठाई की मजदूरी थोड़े ही मिलती है। गेहूँ का पैसा लिया है—उठवाने का नहीं।' और चलचित्र की भाँति पल झपकते बोरी मेरी साइकिल पर थी।

घर जाकर सामान उतारा तो देखा राशन कार्ड थैले में ही नहीं है। सारे थैले देखे, बोरी-कट्टा देखा। कहीं न मिला। दौड़ा गया लाला की दुकान पर। पर्ची काटने वाले क्लर्क की मेज पर शान्त भाव से कार्ड पड़ा था, व्याकुलता से अपने संरक्षक की प्रतीक्षा कर रहा था। कारण, उसे भय था कि उसका संरक्षक न आया, तो यह लाला उसे संदूकची में कैद कर देगा। मैंने बिना लिपिक को सम्बोधित किए कार्ड उठा लिया। लिपिक भी समझ गया। अतः उसने कुछ न कहा। कार्ड हाथ में लेने पर जान में जान आई। दो क्षण पंखे के नीचे खड़ा हुआ। कार्ड भी हवा में फर-फर करके अपनी प्रसन्नता प्रकट करने लगा।

राशन लेने जाना मेरा धर्म बन गया और उस दिन से लाला को 'सत्यवादी जी' कहकर पुकारना मेरा स्वभाव बन गया। परिणामतः आज वह राशन की दुकान का मालिक 'सत्यवादी जी' के नाम से जाना जाता है।

▭

यदि मैं पक्षी होता!

(दिल्ली १९८१ : 'बी' १९८३ 'ए')

यदि मैं पक्षी होता तो स्वन्त्रतापूर्वक मुक्त गगन में विचरण करता, भूमंडल के दर्शन करता, इच्छानुसार भोजन करता और हरी-भरी तरु-टहनियाँ मेरी शय्या होतीं। मेरा जीवन स्वतन्त्र और स्वच्छन्दतापूर्ण होता।

स्वतन्त्रता और स्वच्छन्दता मानव का जन्मसिद्ध अधिकार है। राजनीतिक रूप में स्वतन्त्र होने के बाद भी मानव अन्य अनेक दृष्टियों से पराधीन है। समाज में रहकर स्वच्छन्दता उसे प्राप्त नही। पग-पग पर मान-मर्यादा, सामाजिक बंधन, कानूनी व्यवस्था उसकी स्वच्छन्दता का दमन करती हैं। यदि मैं पक्षी होता, तो सब प्रकार के बन्धनों से मुक्त होता। स्वच्छन्दता मेरी सहचरी होती। इच्छानुसार उठना-बैठना-सोना होता। मन-पसन्द खाना-पीना होता। मैं मनमानी शरारत और क्रीड़ा करता। कोई रोकने वाला नही होता, कोई आदेश देने वाला नही होता।

मानव भ्रमण के लिए तरसता है, सवारी का अवलम्ब लेता है, परमिट, पासपोर्ट और वीसा की प्राप्ति मे रात-दिन एक करता है, फिर भी वह न भ्रमण का पूरा आनन्द ले पाता है और न जगती की विविधता को पूरी तरह देख पाता है। यदि मैं पक्षी होता तो—

होती सीमा क्षितिज से, इन पंखों की होड़ा-होड़ी।
या तो क्षितिज मिलन बन जाता, या तनकी साँसों की डोरी॥

(शिवमंगलसिंह 'सुमन')

मानव पर मुसीबत आ जाए, उसके दु:ख-दर्द में दूसरा शामिल नही होता। परदु:खकातरता की भावना लुप्त होती जा रही है। यदि मैं पक्षी होता तो मेरी एक आवाज पर सैकड़ों पक्षी इकट्ठे होकर मेरे सुर में सुर मिलाकर इतना शोर मचा देते कि दु:ख, दर्द और मुसीबत काफूर हो जाती।

यदि मैं पक्षी होता तो मनुष्य मेरे रंग-बिरंगे शरीर की आकृतियाँ अपने वस्त्रों पर उतारते; काष्ठ, मिट्टी या प्लास्टिक की मूर्तियाँ बनाकर अपने ड्राइंगरूम की शोभा बढ़ाते; तूलिका से मेरे रंग-बिरंगे चित्र बनाकर दीवारों को शोभायमान करते और मैं इस पर हर्ष अनुभव करता।

यदि मैं पक्षी होता तो मानव मेरे अंग, मेरी चाल, मेरे स्वभाव पर गर्व करता। मुझमें उपमाएँ और मुहावरे ढूँढ़कर अपने कथन में प्रभावोत्पादकता लाता। सुन्दरियों की मनोहर नासिका की उपमा शुक की चोंच से, गर्दन की उपमा हंस और मोर की ग्रीवा से दी जाती। नव-युवतियों की चाल को हंसिनी और मोरनी की चाल बताया जाता। अनिन्द्य सुन्दरियों के नेत्रों की उपमा चकोरी के नेत्रों से की जाती। छिद्रान्वेषी, धूर्त, ढीठ रूप में मेरे कौवे रूप से उपमा की जाती। लोभी होने पर 'गिद्ध' कहा जाता। चील-सदृश झपट्टा, तोते-सी रटन्त, भ्रमर-सी वृत्ति मोर के से पंख, कोयल की-सी सुरीली वाणी, हारिल की लकड़ी, नीर-क्षीर विवेकी हंस, बगुला भगत, शान्ति का प्रतीक कबूतर, शक्ति और वीरता का प्रतीक बाज बताया जाता। इस प्रकार की उक्तियाँ मेरे लिए निश्चित ही गर्व का कारण बनतीं।

यदि मैं पक्षी होता तो मानव से मित्रता गाँठकर उसका हित करता। छोटे-मोटे कीड़े-मकोड़ों को खाकर फसल की रक्षा करता। मरे हुए पशुओं को खाकर वायु को दूषित होने से बचाता। दूर-दूर संदेश पहुँचाने के काम आता। जो लोग मुझे पालते, मैं उनका मनोरंजन करता। परस्पर युद्ध (तीतर-बटेर) करके मानव का मनोविनोद करता। अपनी और अपने अंडों की आहुति देकर उनकी क्षुधा शान्त करता।

यदि मैं पक्षी होता तो आलसी और प्रमादी मानव-मात्र को सूर्योदय से पूर्व 'कुकड़ूं कूं' (मुर्गा) का उद्घोष करके जगाता। आँगन में चहक-चहककर (चिड़ियाँ) कलरव करता। मुंडेर पर बैठकर कांव-कांव (कौवा) कर शोर मचाता और छत पर चढ़कर 'गुटर-गूँ-गुटर-गूँ' (कबूतर) गुंजरित करता।

यदि मैं पक्षी होता तो महाकवि रसखान की इच्छा पूरी करता, 'कालिंदी कूल कदम्ब की डारन' पर बसेरा करता। आदि कवि वाल्मीकि और धर्म व्याख्याता कवि-शिरोमणि तुलसीदास के शब्दों को कार्यान्वित करता। काक

भुशुण्डि बनकर प्रभु राम के हाथ से रोटी का टुकड़ा छीन लेता। जटायु बन सीता के अपहरणदर्त्ता महाप्रतापी रावण से युद्ध करता। बादशाह अकबर के सुपुत्र सलीम के प्रेम-पत्र अनारकली तक पहुँचाकर उसकी प्रेमाग्नि को प्रज्वलित करता। युद्ध में जासूसी कर तथा सन्देश पहुँचाकर राष्ट्र के ऋण से उऋण होता।

यदि मैं पक्षी होता तो देवगण का वाहन बनता। कितनी प्रसन्नता होती मुझे। इतनी प्रसन्नता तो कृष्ण को रथी बनने में नहीं हुई होगी, कैकेयी को रथ की धुरी में उँगली डालने से नहीं हुई होगी। गरुड बन भगवान् विष्णु का, उल्लू बन भगवती लक्ष्मी का तथा हंस बन ज्ञान की देवी सरस्वती का वाहन बनने का गौरव प्राप्त करता।

यदि मैं पक्षी होता तो मानव के भविष्य का लेखा पढ़कर उसे घटनाक्रम से पूर्व ही सचेत कर देता। प्रात.काल द्वार पर काँव-काँव करके अतिथि-आगमन की सम्भावना प्रकट करता। चील रूप में मेरे सामूहिक मंडराने से मृत्यु का बोध होता। मयूर रूप मे मेरे नृत्य की तैयारी से वर्षा के आगमन का पूर्वाभास होता।

यदि मैं पक्षी होता तो मानव को स्वावलम्बिता का पाठ पढ़ता। रोटी के लिए हाथ पसारने की बजाए श्रम के महत्त्व को समझाता। उन्हें बताता कि मैं क्षुधा-शाति के लिए दूर-दूर तक चक्कर काट लेता हूँ। मानव को सीना (पत्तों के किनारे), बुनना (मकड़ी का जाला) और नीड़-निर्माण की कला बताता। व्योम-विहार के नए-नए आविष्कार का प्रेरक बनता। संगठन-सूत्र का मंत्र बताता (कौए समूह में रहते और विहार करते हैं)।

प्रभु की असीम कृपा होती यदि मैं पक्षी होता। तब प्रभु इस मायावी ससार से मुझे शीघ्र अपने सान्निध्य में बुला लेते। मैं अस्पताल या घर की चारदीवारी के घुटे वातावरण में दम नहीं तोड़ता, बल्कि प्रकृति की स्वच्छन्दता मे अन्तिम साँस लेता। ईश्वर प्रकृति का ही रूप है। प्रकति-प्रेमी होने के कारण मुझे ईश्वर भक्त माना जाता। ईश्वर-भक्ति मोक्ष की अधिकारिणी। अत: यदि मैं पक्षी होता तो स्वर्ग-नरक के झंझट, इहलोक और परलोक की विडम्बना से मुक्त होकर परमपद को प्राप्त होता। ▭

बस की आत्मकथा
(ऑल इण्डियो : १९७७ई)

मैं बस हूँ—आपकी यात्रा का सर्वश्रेष्ठ सरल, सुलभ और आरामदेह माध्यम; आपके अभीष्ट स्थान पर रुकने वाली, शहरों के कोने-कोने, सुदूर ग्राम-अंचल या उत्तुंग शैल-शिखरों तक आपको पहुँचाकर दम्र लेने वाली—बस। 'कम खर्च ज्यादा सुखद सफर', मेरे जीवन का उद्देश्य है। डीजल मेरा भोजन है, पानी मेरी प्यास मनाव-शरीर पाँच तत्त्वों द्वारा निर्मित है, किन्तु मेरे शरीर मे छ. तत्त्वों का मिश्रण है—लोहा, लकड़ी, शीशा और रबड़ मेरे बाहरी अवयव हैं। मेरी आत्मा मेरा इंजन है, जो सारे ढाँचे को जीवन प्रदान करता है। वायु मेरे चरण हैं। मनुष्य का वायु तत्त्व समाप्त हो जाए, तो शरीर शव बन जाता है, उसी प्रकार मेरे छ: पगों में से किसी एक की भी हवा निकली, तो मेरा शरीर जड, गतिहीन।

जमाने की चाल का असर मेरे ऊपर भी पडा है। भगवान् विष्णु ने पृथ्वी का भार हरण करने के लिए दस बार अवतार लिया है, मैंने भी अपने बदलते रूप-विधानमें यात्री को अधिकतम सुविधाएँ देने का प्रयास किया है। साधारण, डीलक्स, एअर-कंडीशंड, सुपर डीलक्स रूप मेरी प्रगति के द्योतक हैं। डीलक्स बस में बैठने और थोड़ा लेटने की सुविधा है, तो एअर-कंडीशड मे वातावरण को वातानुकूलित करने की क्षमता है। सुपर डीलक्स मे शंका-निवारण का भी प्रबन्ध है।

रेलों से मैंने चाल सीखी। चाल के अनुरूप मैंने नाम धारण किए—पैसेन्जर, फास्ट, सुपर फास्ट, नॉन स्टॉप नाम मेरी गति के परिचायक हैं। स्थान-स्थान पर सवारी लेती-उतारती चलती हूँ, तो पैसेन्जर बस कहलाती हूँ। छोटे-मोटे स्टॉपों की परवाह न कर बड़े स्टॉपों पर क्षण-दो-क्षण रुकती हूँ, तो फास्ट कहलाती हूँ। लॉग रूट पर जब चलती हूँ, तो अनेक बड़े स्टॉपों को उसी प्रकार नमस्कार करती हूँ, जैसे किसी अन्य कार्य में व्यस्त श्रद्धालु मनुष्य मन्दिर, मस्जिद या गुरुद्वारे में

अन्दर न घुसकर बाहर से ही हाथ जोड़ कर, सिर झुकाकर आगे बढ़ जाता है। 'नॉन स्टॉप' तो न रुकने का वाचक है ही, गन्तव्य से पूर्व न ठहरने की शपथ है।

आइए, अब मेरा आकार देखिए। साधारण बस में ४०-४२ सीटें होती हैं, तो कुछ बड़े आकार की बसों में ताश के बावन पत्तों के समान ५२ सीटें। 'आवश्यकता आविष्कार की जननी है' के अनुसार पहाड़ों पर, सड़कों के भयंकार मोड़ों के कारण बड़े आकार वाली बसें नहीं चल सकती थीं, किन्तु अब वैज्ञानिक प्रगति ने पहाड़ों के मोड़ों की भयंकरता का मर्दन कर दिया है और वहाँ भी साधारण और लम्बी बसें चलने लगी हैं, किन्तु ये लम्बी बसें महानगरों में बढ़ती जनसंख्या की भयंकरता का सामना करने मे असफल हो गईं। अतः मैंने हनुमान जी की भाँति 'मिनी बस' के रूप में लघु आकार ग्रहण किया। शहरों की बड़ी-बड़ी सड़कों पर चलने वाली 'डबल डेकर' तथा 'टेलर बस' मेरे नए आकार थे। दुमंजिली बस (डबल डेकर) या जुड़वाँ बस (टेलर बस) जनसेवा के लिए वरदान ही हैं।

मैं आपके उपयोग के लिए हूँ। उपयोगी पदार्थ का प्रयोग ही उसका मूल्य है, अन्यथा कूड़ेदान की रद्दी से अधिक उसकी कोई कीमत नहीं। पर उपयोगी वस्तु का प्रयोग भी प्रेम से कीजिए, उसके प्रयोग में नियमों का ध्यान रखिए। नियमोल्लंघन करेंगे, तो दण्ड मिलेगा। मेरे द्वारा यात्रा करते हुए अपने शरीर का कोई अंग खिड़की से बाहर न निकालिए, वरना दुर्घटना हो सकती है। ड्राइवर के समीप वाली कम-से-कम तीन सीटों पर सोइए नहीं, वरना चालक को झपकी आ सकती है और सबकी जीवन-लीला समाप्त हो सकती है। धूम्रपान न कीजिए। इससे दुर्गन्ध फैलती है और बस में आग भी लग सकती है। बस में थूकिए नहीं, इससे रोग के कीटाणु दूसरों को लग सकते है। मैं चाहूँगी कि आप मेरे सौन्दर्य का मजा तो लूटें, पर उसे विकृत न करें, मुझे गन्दा न करें। बीड़ी-सिगरेट के टुकड़े, माचिस की तिल्ली, मूँगफली, ड्राई फ्रूट, फलों के छिलके, रद्दी कागज मेरे अन्दर न डालें। मेरी सीटों को पाँव से गन्दा न करें। मेरी सीटों को फाड़ें नहीं, शीशों को तोड़ें नहीं, मेरे सवाहक से झगड़ा करके उसका मूड खराब न करें। चालक को परेशान न करें।

अहर्निश सेवा मेरा धर्म है। जनता-जनार्दन को गन्तव्य तक पहुँचाना मेरा कर्त्तव्य है। क्षण-दो-क्षण विश्राम करता हूँ, वह भी शरीर को पुनः स्वस्थ करने

के लिए। कारण, कभी-कभी निरन्तर यात्रा से मेरा इंजन गरम हो जाता है। गरम इंजन चलने से इन्कार कर देता है, आपकी यात्रा में व्यवधान डालता है। चालक और सवाहक अपनी ड्यूटी पूरी करके चले जाते हैं, किन्तु मेरे कदम कभी नही रुकते। दूसरे चालक और संवाहक आकर मुझे चलाते है, कार्यरत करते है।

मेरी सेवा मेरी लोकप्रियता की निशानी है। चाहे स्थानी सेवा हो या लम्बा सफर, लोग रेलों से कतराते है और मुझे प्राथमिकता देते है। मुझे देख कर प्रसन्न होते हैं और किसी कारणवश आप मुझ पर चढ न सकें, तो उदासी आपके चेहरे को गमगीन बना देती है। दिल्ली से जम्मू तक का महा-विस्तृत सफर मैं एक सांस में पूरा करती हूँ। रेल को आप मनचाही जगह रोक नही सकते, स्टेशन पर समय से अधिक ठहरा नही सकते। पर साहब, मुजे जहाँ चाहे, रोक लीजिए। बस-अड्डे पर आप कुछ खा-पी रहे है, तो आपकी प्रतीक्षा करूँगी, आपको छोड़कर जाऊँगी नही।

मेरा एक भयंकर रूप भी है...वह है मृत्यु से साक्षात्कार। यमराज का निमन्त्रण। मेरे अग का एक अवयव 'ब्रेक' फेल हो जाए, मेरा चालक असावधान हो जाए या अन्य कोई वाहन अनचाहे प्रेम दिखाने लगे, तो टकराव के परिणाम के लिए जगत्-नियंता प्रभु ही रक्षक है। उस स्थिति में मैं बस नही, 'वेबस' हो जाती हूँ, असहाय और असमर्थ हूँ।

आइए, सानन्द, सोत्साह तथा सरलता से अपनी मगलमयी यात्रा के लिए मुझे अपनाइए, मेरा निमन्त्रण स्वीकार कीजिए।

□

रेलगाड़ी की आत्म-कथा

(दिल्ली १६८२ : 'ए')

मेरा नाम रेलगाड़ी है। जार्ज स्टीफेन्सन मेरे जनक हैं। यूरोप मेरी जन्म-भूमि है। मैं लोह-पथ-गामिनी हूँ। अनेक दशकों तक कोयला मेरा भोजन था, पानी मेरे प्राण तथा भाप मेरी शक्ति। वैज्ञानिक अनुसधानों की प्रगति ने मेरे खाद्य-पदार्थ बदले और मैं डीजल और बिजली द्वारा जीवन-शक्ति ग्रहण करने लगी।

भारत में मेरा जन्म-दिवस १६ अप्रैल, १८५३ है। इस शुभ दिन मैं ४०० यात्रियों को लेकर बम्बई से थाना के लिए चली थी। आज १३० वर्ष पश्चात् मेरा यौवन विकसित हुआ है। भाप, डीजल तथा बिजली—तीनों की सहायता लेकर मैं यात्रियों की सेवा कर रही हूँ। भारत में न केवल मेरी व्यवस्था का तेजी से विस्तार हुआ है, अपितु मेरी प्रौद्योगिकी में भी उल्लेखनीय विकास हुआ है। आज लगभग मेरे १०,८०० प्रतिरूप ७० लाख से अधिक यात्रियों और ५.५ लाख टन सामान को लगभग ७००० रेल-स्टेशनों तक पहुँचाने की सेवा में रत हैं।

मूलतः मैं लोह-निर्मित हूँ और लौह-चरणों से लौह-पथ पर चलती हूँ। मेरी दुम—डिब्बे—कम्पार्टमेंटस् लकड़ी की कारीगरी के कौशल हैं। मैं विद्युत्-शक्ति से विभूषित हूँ, आरामदेह, गद्देदार सीटों से अलंकृत हूँ।

मेरा एक-एक अंग (डिब्बा) वैज्ञानिक तथ्यों का सदुपयोग है। स्थान का सदुपयोग करना कोई मुझसे सीखे। पूरे परिवार के लिए जो कुछ अनिवार्य है, एक डिब्बे में सभी कुछ प्राप्त है—बैठने के लिए बर्थ, सामान रखने अथवा विश्राम के के लिए 'टांड', क्रास वेंटीलेटेड विन्डोज, प्रकाश के लिए बल्ब, हवा के लिए पंखे, शौचालय तथा हाथ-मुँह धोने के लिए वाश-बेसिन। इन सबके अतिरिक्त आपात-काल में मेरी गति अवरुद्ध करने के लिए हर डिब्बे में 'खतरे की जंजीर' भी है।

गति के अनुसार मेरे तीन रूप है—पैसेन्जर, मेल, सुपरफास्ट । इसी के अनुसार मेरे डिब्बों के भी तीन विभाग हैं—द्वितीय श्रेणी, प्रथम श्रेणी तथा वातानुकूलित । बर्थ-व्यवस्था भी तीन प्रकार की है—लकडी के बैंच, गद्देदार सोफा तथा आरामदेह कुर्सियाँ । इसी प्रकार बैठने की तीन व्यवस्थाएँ हैं—सार्वजनिक व्यवस्था ४ या ६ यात्रियों की सामूहिक व्यवस्था तथा एक-एक कमरा (कॉरीडोर) व्यवस्था । इसी प्रकार मेरी फीस भी त्रिरूपा है—पैसेन्जर की कम, मेल *की लगभग डेढ गुनी तथा सुपरफास्ट की लगभग ढाई गुनी ।*

भारत में मेरा रूप एशिया में सर्वाधिक विराट् है, तो विश्व मे विराटता की दृष्टि से मेरा चौथा स्थान है । मेरे लोह-पथ की लम्बाई मात्र भारत मे ६०१४६ किलोमीटर है । इसमे ३०२२६ किलोमीटर बडी लाइन है, तो २५४४७ किलोमीटर मीटर लाइन तथा ४४७६ किलोमीटर छोटी लाइन है ।

मेरे प्रस्थान करने तथा ठहरने के निश्चित स्थान है । इन्हें स्टेशन कहते है । स्टेशन भी तीन प्रकार के हैं—छोटे ग्रामीण स्टेशन, बडे नगरीय स्टेशन (जंक्शन) तथा महान महानगरीय स्टेशन । ये स्टेशन मेरी व्यवस्था, सुरक्षा के लिए उत्तरदायी है । प्राय: स्टेशनों के चार भाग होते है—बाहरी प्रागण, प्रवेशप्रागण, प्लेट फार्म तथा पटरी । हर जंक्शन पर मेरे पहियो की देखभाल होती है, मुझे पानी प्रदान किया जाता है, हर विशिष्ट अवयव की जाँच होती है ।

मैं समय की पाबन्द हूँ । समय की पक्चुअलिटी को कोई मुझसे सीखे । मेरी गति 'घड़ी की सुइयो' को खुले नेत्रों से देखती रहती है । आप एक सेकेण्ड विलम्ब से स्टेशन पहुँचे, मैं प्लेटफोर्म छोड रही होती हूँ । यात्रा करते हुए आप किसी स्टेशन पर पानी पीने या जलपान करने उतरे और आपने मेरी चेतावनी की उपेक्षा करके एक क्षण का विलम्ब कर दिया, तो मैं आपकी प्रतीक्षा नहीं करूँगी, आपको चाहे कितनी भी हानि उठानी पड़े । किसी भी स्टेशन पर धक्का-मुक्की मे चढ़ न सके या गतव्य पर उतर न सके, तो मुझे क्षमा कर देना, क्योकि मैं आपको चार बार चेतावनी देती हूँ—दो बार सीटी बजाकर और हरी झंडी दिखाकर मेरा अगरक्षक 'गार्ड' आपको सावधान करता है तथा दो बार मैं सीटी मारती हूँ । मेरे लिए टाइम की कीमत है । मैं जानती हूँ कि मुँह से निकले शब्द 'समय और कभी वापस नहीं बुलाए जा सकते ।' तथा 'जो वक्त की जरूरतें को पूरा नहीं करते, वक्त उन्हे बरबाद कर देता है !'

सवारी और सामान ढोना मेरा कर्त्तव्य है। देश के एक छोर से दूसरे छोर तक, एक प्रांत से दूसरे प्रांत तक, एक नगर से दूसरे नगर तक, महानगर के एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र तक यात्रियों की सेवा करके राष्ट्र का आशीर्वाद एवं स्नेह प्राप्त करती हूँ। इसी प्रकार हलका अथवा भारी से भारी बोझ उठाकर गंतव्य तक पहुँचाना मेरा दायित्व है। डाक-व्यवस्था के सुचारु संचालन की मैं रीढ़ हूँ। आपकी चिट्ठी, पार्सल, मनीआर्डर मैं ही आपके नगर तक पहुँचाती हूँ।

मैं सच्चे अर्थों में धर्म-निरपेक्ष हूँ। सभी जाति, धर्म, सम्प्रदाय तथा प्रांतों के लोग मेरी सवारी करते हैं। एक साथ बैठते हैं, हँसी-ठट्ठा करते हैं। कोई किसी से नफरत नहीं करता। मेरे स्टेशन 'असाम्प्रदायिकता' के जीवन्त प्रतीक हैं। यहाँ के नल, बैंच, शौचालय, प्लेटफोर्म सभी लोग समान रूप से प्रयोग कर सकते हैं। धर्म-विशेष के कारण किसी को कोई रियायत नहीं, किसी पर कोई प्रतिबन्ध नहीं।

जीवन-व्यवस्था में जहाँ मेरा महत्त्वपूर्ण स्थान है, वहाँ मैं अत्यन्त शक्तिशाली भी हूँ। 'जो मुझ से टकराता है, चूर-चूर हो जाता है।' मुझे कोई हानि नहीं पहुँचती। बस, कार, ट्रक तो मेरे सामने चींटी हैं। यही सोचकर जीवन-जगत् से निराश मानव आत्महत्या करने मेरे लोह-पथ की शरण लेता है। हाँ, कभी-कभी दो बहनों (रेलों) की टक्कर मनुष्यों को नानी-दादी याद करवा देती है, हमारे रूप विकृत कर देती है, हमारी सवारियों को यमलोक पहुँचा देती है ठीक ही कहा है—गृह-कलह नाश की जड़ है।

भ्रष्टाचार और चरित्र-हीनता आज के भौतिकवादी दृष्टिकोण की सबसे बड़ी देन हैं। उसकी काली छाया ने मेरे स्वरूप को विकृत करने में भी कोई कसर न छोड़ी। चोरी, डाके, हत्या, बलात्कार मेरे सौन्दर्य को बिगाड़ रहे हैं, तो मेरे डिब्बों से शीशे, पंखे, गद्दों की चोरी, मेरे खाद्य-पदार्थों कोयला-डीजल की चोरी मेरी काया को क्षीण कर रहे हैं। कार्य में प्रमाद करने या कार्य के प्रति उपेक्षा भाव के कारण दो बहनों (रेलों) की टक्कर कराने वाले अधिकारी विश्व में हमारा मुँह काला करने पर तुले हैं।

घरेलू-नौकर की आत्मकथा

(दिल्ली १९८२ : 'बी')

मैले वस्त्र पहने, नीची निगाह किए, डाट-फटकार सहता, अर्ध-बुभुक्षित यह कौन प्राणी है ? कौन है यह जो ब्राह्ममुहूर्त मे उठकर देर रात्रि तक कर्मनिष्ठ रहता है ? कौन है यह जीवधारी, जिसकी भूख की किसी को चिन्ता नहीं, प्यास की परवाह नहीं ?

'मैं हूँ', चौंकिए नही, मैं हूँ आपका घरेलू नौकर। आपके घर पर एक दशक वर्ष से सेवारत हूँ। आपने तो कभी जानने की कोशिश ही नही की कि मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ ? मेरे ऊपर क्या बीत रही है ? दो दशक पूर्व हिन्दी की कवयित्री महादेवी जी ने 'रामा' से पूछा था। २० वर्ष पश्चात् दिल्ली के माध्यमिक स्कूल के परीक्षक को मेरी याद आई है। कहता है अपनी आत्मकथा लिख।

शोपेनहार के शब्दों में 'प्रत्येक आत्मकथा पीड़ा का इतिहास है, क्योंकि प्रत्येक जीवन महान् और छोटे दुर्भाग्य का क्रमिक विकसित रूप है। 'महादेवी जी ने 'यामा' मे कहा है—'अपने विषय में कुछ कहना प्रायः बहुत कठिन हो जाता है, क्योंकि अपने दोष देखना अपने आपको अप्रिय लगता है और उनको अनदेखा करना औरों को।'

गृह-स्वामी के पुत्रों का कर्णवेध संस्कार हुआ। घर भर मे खुशी का आलम। घर की सजावट, दिलों की रंगीनी, सम्बंधियों की हँसी-ठट्ठा, मित्रों की चुहल, बहुत बड़ा मेला और इसमें मैं अकेला। जितना जमघट, उतनी बोझ की बढ़ोत्तरी। दम मारने की फुरसत नही। शरीर टूटकर बेहाल। रात को अनचाहे नींद आ गई।

प्रगाढ़ निद्रा। ब्रह्म मुहूर्त का समय। १५ वर्ष पूर्व का दृश्य सामने आ गया। मेरे पिता का दूसरा विवाह। घर में खुशियाँ। विमाता आई। एक तो गरीबी,

ऊपर से विमाता । अत्याचार, अनाचार का अतिक्रमण हुआ । एक दिन मेरे मामा से न सहा गया । वह मुझे दिल्ली ले आया। वह बेचारा भी गरीब था। मामी झल्लाई—'अपने पेट को तो पूरा पड़ता नहीं, ऊपर से एक और' । ५ वर्ष का बालक डाँट से डर गया । भय से सिहर उठा ।

मामा ने एक चाय वाले की दूकान पर नौकर रखवा दिया । दो वक्त की रोटी, दो वक्त की चाय । प्रातः ५ बजे से रात दस बजे तक काम । गाँव का नासमझ, खेल-कूदी बच्चा और १६ घंटे की ड्यूटी । दिन में तारे नजर आने लगे, मरता क्या न करता । साथियों ने बेईमानी सिखा दी, चाय-बिस्कुट चोरी करना सिखा दिया । मैं सब कुछ सीखता रहा । साथी कहते—'जब साला मालिक नहीं सोचता, दिल्ली-श्रम कानून हमें नहीं बचाता, तो हम ही वफादार, ईमानदार क्यों रहें' ? दो साल गुजर गए । मैं सात साल का हो गया ।

नौकरी बदली । घर का मुड्ढू बन गया । मालिक दयालु, किन्तु मालकिन जालिम । सुबह अँगीठी सुलगाने से लेकर रात को सबको निद्रा-देवी की गोद में सुलाने तक की जिम्मेवारी । यहाँ चाय दो-तीन बार मिलती तो थी, पर जब मालिक की कृपा हो जाए अथवा बच जाए । बची-खुची चीज मालकिन ऐसे प्यार से पिलाती-खिलाती, मानो मैं उनकी कोख से जन्मा हूँ । यहाँ एक सुख था। मालिक के दो बच्चे थे—एक मेरा हम उमर, दूसरा मुझसे छोटा । घड़ी-दो-घड़ी उनके साथ खेलने को मिल जाता था ।

जीवन के संघर्षों ने अनुभूति उत्पन्न कर दी थी, दुनियादारी समझने लगा था, भला-बुरा पहचानने लगा था । अल्पायु में मन का विकास हो रहा था । बच्चों को पढ़ते देखकर मेरे मन में भी लालसा जगी। मालिक के दोनों बच्चे मेरे भाई बन गए । मालकिन के स्वभाव में भी अन्तर आ गया था । दोपहर एक घंटा पढ़ने-लिखने को मिलने लगा । मेरे गुरु थे मेरे मालिक-पुत्र । हिन्दी में पढ़ना और लिखना मुझे आ गया । अब मैं घर का नौकर नहीं, तीसरा पुत्र बन गया ।

एक दिन जब दोनों भाइयों के लिए नए कपड़े लाए गए, तो मैं मचल गया। जिद कर बैठा—मुझे भी ऐसे ही कपड़े सिलवाओ। मालकिन डाँटती रहीं, मालिक समझाते रहे, मैं रोता रहा, जिद पर अड़ा रहा । बड़े भाई की सिफारिश काम आई । अब मैं साफ, सुन्दर वस्त्रों में रहता था। अब मैं घर का नौकर बहुत कम लगता था ।

माँ मुझे इस दुनिया में अकेला छोड़कर चली गई थी। विमाता की याद मुझ कभी आती नही थी। साल में पिताजी के दो-चार पत्र घर की याद ताजा कर देते थे। उन पत्रो में सदा पैसों को फरमाइश रहती थी। मेरे चार सौतेले भाई-बहिन हैं, यह पिताजी की चिट्ठियाँ बताती है। वे मुझे नहीं जानते, मैंने उन्हें कभी देखा नही। विमाता की बीमारी, घर का दारिद्रय, पिताजी की वेबसी अब मुझ पर कम असर डालते थे।

मैं सुखी हूँ। सुख की नीद मे करवट बदलता हूँ। मालकिन झकझोर रही हैं—'उठ पगले, दिन निकल आया। मेहमानों को चाय पिलानी है।' मैं उठा। अलसाई आँखों में कर्त्तव्य का बोध हुआ।

परिवार चाय पी रहा था। अचानक मालकिन ने बताया कि कल भात में जो ११००-रुपए आए थे, वे थाली में नही हैं। शोर मच गया। खोजबीन शुरू हुई। शक-आशंकाएँ होनी शुरू हुईं। प्रश्न था कौन किसकी तलाशी ले ? घर का वातावरण बदल गया। जो रिश्तेदार दो-चार दिन ठहरने वाले थे, शाम तक चले गए। चलते वक्त सब एक ही सलाह दे गए—'घर के नौकर से सावधान रहना। आज तो ११०० रुपये गए है, कल को जेवरो से हाथ न धो बैठो।'

मालिक-मालकिन और दोनों पुत्रों का विश्वास हिल गया। शका ने मेरे प्रति उनका दृष्टिकोण बदल दिया। मुझे लगा, अब यहां नही रहना चाहिए। तुरन्त छोड़ता हूँ, तो चोर कहलाऊँगा। अतः तीन मास पश्चात् गाँव चले जाने का निश्चय करके उससे एक मास पूर्व मालिक को सूचना दे दी। मेरा चिन्तन प्रखर हुआ। टेलीविजन पर 'तीसरी कसम' पिक्चर देखी थी। मैंने भी एक कसम खाई, 'घरेलू नौकरी नही करूँगा।'

मालिक-मालकिन तथा बंधुओं का परिवार छोड़ने से पूर्व अपने शरीर, वस्त्र, अटैची, पोटली की स्वयमेव चैकिंग करवाई। एक-एक जेब उल्टी करके दिखाई। मालकिन मेरे इस व्यवहार से रुआँसी हो गई। उनकी आँखों मे आँसू छल-छला आए।

उन्होंने मुझे घरेलू नौकर से हटाकर मेरी पदोन्नति कर दी। अब मैं उनके व्यवसाय का कर्मचारी हूँ। आठ घटे काम करता हूँ। मालिक का अत्यन्त विश्वसनीय कर्मचारी—घरेलू नौकर नहीं।

नदी की आत्म-कथा

हिमगिरि के हिम से निकल-निकल, यह विमल दूध-सा हिम का जल,
कर-कर निनाद कलकल छलछल, बहता आता नीचे पल-पल,
तन का चंचल, मन का विह्वल।

—गोपालसिंह नेपाली

हिमगिरि से निकल, कलकल छलछल करती, निरन्तर प्रवहमान निर्मल जल-धारा नदी—जी हाँ, मैं 'नदी' हूँ। पर्वतशृंखला मेरी माता है, समुद्र मेरा पिता है। माता की गोद से निकलकर कहीं धारा के रूप में और कहीं झरने के रूप में इठलाती-गाती आगे-आगे बढ़ती हुई वसुधा के वक्षस्थल का प्रक्षालन करती हूँ, सिंचन करती हूँ और अन्त में पितृ-अंक—विशाल जल—निधि में शरण लेती हूँ।

हृदय की विशालता देखकर मुझे 'दरिया' कहा गया। सदा-सतत बहाव के कारण मेरा 'प्रवहिणी' नाम पड़ा। मेरे सर्वाधिक पवित्र पुण्य-सलिल रूप को 'गंगा' कहा गया। गंगा के समानान्तर बहने वाले रूप को 'यमुना' नाम से पहचाना गया। दक्षिण भारत के गंगा रूप को 'गोदावरी' कहा गया। पवित्रता की इस शृंखला में मुझे 'कावेरी', 'नर्मदा' तथा 'सिंधु' नाम भी दिए गए।

मैं लोक-मंगल की देवी हूँ। प्राणि-मात्र की सेवा मेरा व्रत है, सतत जनहित मेरी तपस्या है, जन-कल्याण मेरी चिर कामना है। भूमि-सिंचन मेरा धर्म है। मुझसे नहरें निकालकर खेतों तक पहुँचाई जाती हैं, सिंचाई से भूमि उर्वरा होती है, अनाज अधिक पैदा होता है। अनाज ही जीवों का प्राण है ('अन्नं वै प्राणाः'—वेद)। अतः मैं जीवों की प्राणदात्री हूँ। मैं पेड़-पौधों का सिंचन करती हूँ।

मेरे जल से प्राणी अपनी प्यास बुझाते हैं, बहते नीर में स्नान करके न केवल आनन्दित होते हैं, अपितु स्वास्थ्यवर्धन भी करते हैं। आज का अभिमानी नागरिक कह सकता है कि हम तो नगर-निगम द्वारा वितरित जल पीते हैं, जो नलों से आता है। ओ अभिमानी मानव! यह न भूल कि मेरा ही जल है, जिसे संगृहीत

करके रासायनिक विधि द्वारा पेय बनाकर नलों के माध्यम से तुम्हारे पास पहुँचाया जाता है। इसलिए कहती हूँ —मेरा जल अमृत है और पहाड़ों से जड़ी-बूटियों के सम्पर्क के कारण औषधियुक्त है।

मेरे तट तीर्थ बन गए। शायद इसीलिए घाट को 'तीर्थ' कहा गया, क्योंकि तीर्थ भवसागर पार करने के घाट ही तो हैं। सात पुरियाँ—अयोध्या, मथुरा, गया, काशी, कांची, अवन्तिका तथा द्वारिका एवं असंख्य धार्मिक पवित्र स्थान मेरे ही तट पर बसे हैं। इतना ही नहीं वर्तमान भारत के पिता महात्मा गाँधी और प्रथम महामात्य पं० नेहरू और लालबहादुर शास्त्री की समाधियाँ भी मेरे ही तट को अलंकृत कर रही है। मुझे 'मोक्षदायिनी' का पद प्रदान कर मेरी स्तुति गाई *जाती है, आरती उतारी जाती है।*

स्नान की दृष्टि से मेरे अन्दर स्नान पुण्यदायक कृत्य माना गया है। अमावस्या, पूर्णमासी, कातिक-स्नान, गंगा-दशहरा तथा अन्यान्य पर्वों पर मेरे दर्शन, स्नान तथा मेरे जल से सूर्य-अर्चन तो हिन्दू-धर्म में पवित्र धर्म-कर्म की कोटि में सम्मिलित है।

मेरी धारा को ऊँचे प्रपात के रूप मे परिवर्तित करके विद्युत् का उत्पादन किया जाता है। विद्युत् आधुनिक सभ्यता का जीवनाधार है, उन्नति का मूल मत्र है, आविष्कार और उद्योगों का प्राण है। यह दैनिक चर्या मे मानव की चेरी है और बुद्धि-प्रयोग में वह मानवीय-चेतना का 'कम्प्यूटर' है। यदि मेरे शरीर रूपी जल से विद्युत् तय्यार न हो, तो उन्नति के शिखर पर पहुँची विश्व-सभ्यता वसुधा पर औंधी पड़ी कराह रही होगी।

मैं परिवहन के लिए भी उपयोगी माध्यम सिद्ध हुई हूँ। परिवहन व्यापार-वृद्धि का अनिवार्य अग है। प्राचीन काल मे तो सम्पूर्ण व्यापार ही मेरे द्वारा होता था, किन्तु आज जबकि परिवहन के अन्यान्य सुगम साधन विकसित हो चुके है, तब भी भारत-भर मे नौका-परिवहन-योग्य जलमार्गों द्वारा ५६ लाख टन सामान की ढुलाई की जाती है। यही कारण है कि मेरे तट पर बसे नगर व्यापारिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण समझे जाते हैं।

मैं एक जीवन्त इतिहास हूँ। जगती के आदिकाल मे अब तक की घटनाओं को हृदय मे सजोए हुए हूँ; मर्यादापुरुषोत्तम राम ने मुझ में समाधि ली; ६४ कला-

पूर्ण भगवान् कृष्ण ने मेरे तट पर अविस्मरणीय क्रीड़ाएँ की ; भारत के प्रथम महामात्य श्री जवाहरलाल नेहरू ने मेरे तट पर पूर्ण स्वराज्य-प्राप्ति की शपथ ली थी।

मैं मानव के आमोद-प्रमोद के काम आई; मनोरजन का साधन बनी। एक ओर मानव मेरी धारा मे तैराकी का मजा लेने लगा, तो दूसरी ओर जल-क्रीड़ा मे घटों आनन्दित होने लगा। नौका-विहार का आनन्द लेने के लिए वह मचल उठा। चाँदनी रात हो, समवयस्क हमजोलियों की टोली हो, गीत-सगीत का मूड हो, तालियो की लयबद्ध ताल हो, तो नौका-विहार के समय किसका हृदय बल्लियों नही उछलेगा ?

मैं अबाध हूँ। विघ्न-बाधाओं से घबराती नही हूँ। निरन्तर आगे बढना मेरा धर्म है। मार्ग मे रोड़े-पत्थर, शिलाएँ मेरी गति को अवरद्ध करने की चेष्टा करती हैं। उनकी चेष्टा निष्फल होती है। मैं पत्थरों को अपने साथ बहा लाती हूँ, शिलाओं को अपने प्रवाह से टुकड़े-टुकडे करके अस्तित्वहीन कर देती हूँ। उस समय का स्थिति का वर्णन गोपालसिंह नेपाली के शब्दो में आप भी सुनिए—

आकुल, आतुर, दुख से कातर, सिर पटक-पटक रो-रोकर।
करता है कितना कोलाहल, यह लघु सरिता का बहता जल ॥

मनोमुग्धकारी फूल के साथ कष्टदायक काँटे भी होते है। अति शीतल चन्दन से भी अग्नि प्रकट हो जाती है। अतिवृष्टि के कारण बरसाती नाले जब मेरे पवित्र जल को गदा करने लग जाते हैं, तो मेरा वक्ष फट जाता है। मैं अमर्यादित हो जल-प्लावन का दृश्य उपस्थित कर देती हूँ। तब धन, जन, सम्पत्ति—पेड-पौधे, हरियाली खेती और पशुधन का विनाश होता है। कुछ काल पश्चात् मेरी दु'खित आत्मा अपना रोष शान्त कर पुनः अपने मंगलकारी रूप मे परिवर्तित हो जाती है।

मानव मरणोपरान्त भी मेरी ही शरण में आता है। उसकी अस्थियाँ मुझे ही समर्पित की जाती है। आदिकाल से अब तक कितने ही ऋषियों, मुनियों, महा-पुरुषों, समाज-सुधारकों, राजनीतिज्ञों और अमर शहीदों के फूलो से मेरा जल उत्तरोत्तर पवित्र हुआ है। अतः मेरे पवित्र जल मे डुबकी लगाने का अर्थ मात्र स्नान नही, उन पवित्र आत्माओ के सान्निध्य से अपने को कृतार्थ करना भी है।

मैंने ग्रीष्मावकाश कैसे बिताया

दिल्ली-प्रदेश के स्कूलों में पन्द्रह मई से चौदह जुलाई तक दो मास का ग्रीष्मावकाश होता है। सूर्य की प्रचण्ड किरणों, गर्म-गर्म और तेज लुओं तथा तपती हुई धरती से बच्चों की सुरक्षा और सुविधा के लिए यह अवकाश किया जाता है।

आठ-दस मई से स्कूल में छुट्टियों की चर्चा होने लगी थी। एक-दो मित्र बार-बार कश्मीर और मसूरी जाने की बात कहकर कक्षा के शेष विद्यार्थियों को चिढ़ाते थे। आठ-दस मित्र अपने गाँव के खेतों को ही नन्दन-वन की उपमा देकर वहीं छुट्टियाँ बिताने की कहानी सुनाते थे। चार-पाँच सहपाठी शिक्षण-प्रवास की काल्पनिक गाथा गाते थे। मेरे जैसे गरीब विद्यार्थी अपनी विवशता को छिपाकर उल्टा रोब झाड़ते हुए कहते थे—'तुम्ही धक्के खाओ जगह-जगह के, हम तो दिल्ली मे ही मजे लूटेंगे।'

आखिर छुट्टियों का पहला शुभ दिन आ ही गया। मैं मन में सोचने लगा कि इस बार छुट्टियाँ इस शानदार ढग से बिताऊँ कि अध्यापक और सहपाठी सुनकर दंग रह जाएँ।

मेरा नियमित क्रम यह था कि प्रातः उठकर शौच आदि से निवृत्त होकर दिल्ली विश्वविद्यालय की ओर घूमने जाता। तीन मील पैदल जाना और आना बड़ा सुहावना लगता। 'बाऊँटे' की चढाई और उतराई में जो मजा आता, उसे शिमला वाले भी क्या उठाते होंगे। प्रात.काल की शीतल एव सुगन्धित पवन के मध्य थोड़ा-सा व्यायाम शरीर मे स्फूर्ति ला देता।

वहाँ से वापस आने पर खूब रगड-रगडकर स्नान करता। थोडा अल्पाहार करता और स्कूल के कार्य में लग जाता। घटा-डेढ-घटा पढता। इधर, भोजन तैयार हो जाता। माता जी के हाथ का ताजा भोजन करता। भोजन के बाद दो-ढ़ाई घटे सोता। फिर, छोटे भाई-बहनों के साथ ताश, कैरम-बोर्ड आदि

खेलता। चार बजे अल्पाहार करके फिर पढ़ने बैठ जाता और सायंकाल छः बजे भोजन करने के उपरान्त घूमने चला जाता। घूमकर आता तो चारपाई बिछी होती, सो जाता।

आप यह न समझें कि मैं रोजाना एक ही कार्यक्रम मे कोल्हू के बैल की तरह घूमता रहता। मैंने यह विचार किया कि जिस दिल्ली में मैं रहता हूँ, क्या उसको मैंने अच्छी तरह देखा है ? मन कहता था नहीं। इसलिए मैंने पिताजी से आग्रह किया कि वे मुझे दिल्ली के महत्त्वपूर्ण दर्शनीय स्थान दिखाने की कृपा करें। उन्होंने मेरी प्रार्थना स्वीकार कर ली और वे हर रविवार को मुझे एक दर्शनीय स्थान दिखाने ले जाते रहे।

नई दिल्ली का वह भव्य बिड़ला मन्दिर, जिसे देखने न केवल भारत के, अपितु विदेशों के लोग भी आते है, मैंने अच्छी तरह देखा। उसकी दीवारें भारत के महापुरुषों के दर्शन करा रही है, उनका जीवन-परिचय दे रही है और उनकी वाणी सुनाकर उपदेश दे रही है। उनकी भव्य प्रतिमाएँ बरबस हमें नतमस्तक कर देती है। मन्दिर का पहाड़ी उद्यान और झरना बारम्बार खेलने को बुलाते हैं।

कैसे भूलूँ कुतुबमीनार की उन सीढ़ियों को, जिन पर चढ़ते-चढ़ते पैर थक गए, पर मन नहीं थका था। आखिर पिताजी की उँगलियाँ पकड़कर चढ़ ही गया था। सच बताऊँ, ऊपर चढ़कर मुझे बड़ा डर लगा था। फिर भी मैंने एक बार नीचे का दृश्य देखा था। विचित्र अनुभूति थी वह। दूर-दूर तक फैला हुआ दिल्ली नगर एक फैले हुए नक्शे जैसा दिखाई दे रहा था, बड़े-बड़े भवन छोटी झोंपड़ियों जैसे नजर आ रहे थे और दौड़ती हुई मोटरें या चलते हुए आदमी चींटियों के समान रेंगते हुए प्रतीत हो रहे थे। कुतुबमीनार के आस-पास का वातावरण क्या कुछ कम लुभावना है। चारों ओर दूर-दूर तक फैले घास से ढके हरे-भरे मैदान मन को आनन्द और शान्ति प्रदान कर रहे थे। कुतुबमीनार से कुछ दूर महरौली में देवी का अति प्राचीन मन्दिर और भूल-भुलैयाँ भी हमने देखी।

मुगल बादशाहों का राज-भवन लालकिला तो सचमुच किला है और वह भी लाल पत्थर का। अब अन्दाजा लगाया, मुगल बादशाहों की शान-शौकत

. I .

जिस दिन मैं राष्ट्रपति-भवन देखने गया, पैरों पर तेल की मालिश करके गया था। राष्ट्रपति-भवन क्या है, किसी राजा की पूरी रियासत है। उसके शानदार कमरे देखे, तो होश-हवास गुम हो गए। बड़े आलीशान और कीमती सामान से सुसज्जित है।

वास्तुकला का चमत्कार आधुनिक तकनीक का करिश्मा, एशियाई खेलों का क्रीडांगण जवाहरलाल नेहरू स्टेडियम या इन्द्रप्रस्थ इन्डोर स्टेडियम देखे। इसके अलावा जन्तर-मन्तर, गाँधी-समाधि, विजयघाट और संसद-भवन के दर्शन भी किए।

और एक ऐसा अवसर आया जबकि एक दिन के लिए मित्र कमलेश के बड़े भाई की शादी में मैं दिल्ली से बाहर भी गया। शादी के ठाठ देखे। खूब खाया-पीया, किन्तु पेट खराब भी किया। बरातियों की हँसी-मजाक भी देखी और अपनी भाभी को भी देखा।

छुट्टियाँ समाप्त हुईं। सहपाठी मिले। कोई पूछता है, मित्र कश्मीर गए थे, जो इतने मोटे हो आए हो। दूसरा कहता है, नहीं ये नैनीताल गए थे। उन्हें यह पता न था कि नियमित जीवन से स्वास्थ्य कितना बनता है।

मास्टर जी ने पूछा, 'किस-किसने काम पूरा नहीं किया ?' डलहौजी और मसूरी जाने वाले बैंच पर खड़े हो गए। मैंने मध्यावकाश में उनसे पूछा, 'सुनाओ, इस बार तो प्रथम आओगे न ?' 'मित्र कुछ न पूछो, सारी छुट्टियाँ खेल-कूद और सैर-सपाटे में बिताई। बड़ी भूल हुई।' कहकर वे चुप हो गए।

यह है छुट्टियों की कहानी, बड़ी सीधी-सादी और कम खर्चीली। स्वास्थ्य भी बनाया, जिस नगर में रहता हूँ उसके दर्शनीय स्थान भी देखे, पढ़ाई की कमी पूरी की और आनन्द भी लूटा।

विज्ञान : वरदान और अभिशाप

विज्ञान : वरदान के साथ अभिशाप भी : दिल्ली १९८५, ८० : ए
विज्ञान की देन : ऑल इंडिया · ९८० : 'ए'
विज्ञान : एक वरदान : दिल्ली १९७९ : 'बी'
विज्ञान और मनुष्य : दिल्ली १९७६ : 'ए'

विज्ञान मानव के लिए 'कामधेनु' है, कल्पतरु है। यह प्राणी-मात्र के लिए अमृत-कुंड है, जीवनदायिनी शक्ति का पुंज है, प्रकृति की गुप्त निधियों के पट खोलने की कुंजी है, विश्व को पारिवारिक रूप प्रदान करने का माध्यम है। वस्तुत विज्ञान मानव-कल्याण के नेत्र हैं, जो अहर्निश मानव-कल्याण की चिन्ता मे ध्यानस्थ हैं।

विज्ञान ने मनुष्य को अपरिमित शक्ति प्रदान की, प्रकृति को उसकी चेरी बनाया ; ऐश्वर्य और वैभव उसके चरणो मे उँडेल दिए; काल तथा स्थान की बाधाएँ मिटा दीं; अन्धों को आँखें दीं; बहरों को सुनने की शक्ति दी; पंगु को पैर दिए; जीवन को दीर्घायु बनाया; भय को कम किया; पागलपन को वश मे किया ; रोग को रौंद डाला।

आज का विश्व विज्ञान के दृढ़ स्तम्भ पर टिका है। अतः आज का युग 'विज्ञान का युग' कहलाता है। प्रतिदिन होने वाले वैज्ञानिक आविष्कार संसार में नूतन क्रांति कर रहे हैं। आज मानव-जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में विज्ञान-देवता अपना आधिपत्य जमा चुके हैं। उसकी आशातीत उन्नति से आज सभी चमत्कृत है। विज्ञान की इस महत्ता का एकमात्र कारण है—विज्ञान द्वारा प्रदत्त विभिन्न आविष्कार।

विज्ञान की इस आशातीत उन्नति और सर्वव्यापकता का श्रेय पिछली चार दशाब्दियों को है, जिनमें क्रमशः जापान, जर्मनी, इंग्लैण्ड, रूस, अमेरिका आदि देशों ने एक से एक बढ कर आश्चर्यजनक आविष्कार करके विज्ञान को चरम-

सीमा तक पहुँचा दिया है। विज्ञान के इन आविष्कारो को दैनिक-जीवन सम्बन्धी, शैक्षिक, चिकित्सा सम्बन्धी आदि अनेक वर्गों में बाँटा जा सकता है।

यातायात-साधनों के विकास ने जहाँ मानव को सरलतापूर्वक एक स्थान से दूसरे स्थान पर कम से कम समय में पहुँचाया, वहाँ सम्पूर्ण विश्व एक राष्ट्र-सा लगने लगा। साइकिल, मोटरसाइकिल, कार, बस, रेल, वायुयान, जलयान आदि वाहन बने। यातायात सरल हुआ, सुगम हुआ और हुआ द्रुतगामी। मीलों का सफर क्षणों मे तय हुआ। पृथ्वी-पुत्र मानव चन्द्रमा, शुक्रग्रह एवं मगल-ग्रह तक पहुँचने का दम भरने लगा।

अन्धकार में प्रकाश हुआ। अमावस पूनम में बदली। विद्युत् ईंधन बनी। पंखे, कूलर, हीटर वातानुकूलन के यन्त्र बने। रेडियो, टेलीविजन, रेडियोग्राम, लाउडस्पीकर, सिनेमा आदि मचार और मनोरंजन के माध्यम बने। इन आविष्कारों से मानव-जीवन सरल, सुविधा-सम्पन्न, ज्ञानवर्धक और मनोरजन-पूर्ण बना। विश्व मे घटित घटनाओं के सजीव चित्र घर की चहारदीवारी में बैठे टेलीविजन पर देखने को मिले। चलचित्रों द्वारा मनोरंजन हुआ।

मुद्रण-विज्ञान से ज्ञान-विज्ञान का क्षेत्र व्यापक हुआ। पुस्तकों के द्वारा मानव शिक्षित हुआ, ज्ञानी हुआ, आगामी पीढ़ी के लिए ज्ञान का भडार सुरक्षित रख सका। मुद्रण-कला ने समाचार-पत्र एव पत्रिकाओं को जन्म दिया। विश्व के ताजा समाचार और ज्ञानवर्धक सामग्री मानव के ज्ञान-कोष के विकास मे सफल हुए।

चिकित्सा-क्षेत्र में विज्ञान की मफलता अद्भुत है, आश्चर्यजनक है। इंजेक्शन, ऐक्स-रे, रेडियम एव विद्युत्-चिकित्सा ने मरे हुए मानव को प्राणदान दिया। छोटी-मोटी शल्य-क्रिया की बात छोड़िए, आज तो हृदयारोपण तक में सफलता प्राप्त हो रही है। मशीन जिगर का काम करने लगी है। कृत्रिम गर्भाधान से 'ट्यूब बेबी' जन्म लेता है।

समाचार भेजने के क्षेत्र में विज्ञान ने अद्भुत योगदान दिया। टेलीफोन, तार, बेतार का तार और रेडियो से तुरन्त समाचार पहुँचने लगे। बड़े नगरों में पत्र भी हवाई जहाज से भेजे जाने लगे।

विज्ञान ने हमारे घरेलू जीवन को भी प्रभावित किया। बिजली तथा गैस भोजन बनाने लगी। सिलाई की मशीन कपड़े मीने लगी। पिसाई की मशीनें गेहूँ, जौ, बाजरा पीसने लगी। गन्ने से गुड़ और चीनी बनाने की मशीनें बनी। जुराब, बनियान और स्वैटर बुनने की मशीनें मिनटो में काम तैयार करने लगीं।

ससार में विशाल भीमकाय मशीनो का जाल बिछा पड़ा है। वे दिन-रात मानव-सुविधाओ को जुटाने में लगी हैं। नद-नदियो का जल भूमि-सिंचन और पीने के काम आता है। ट्रैक्टर भूमि को जोतते है। तन ढँकने के लिए बढ़िया से बढिया ऊनी, सूती, रेशमी वस्त्र तैयार होते है और तो और मानव-मस्तिष्क का काम भी लोहे की मशीन 'कम्प्यूटर' करने लगा है।

वैज्ञानिक आविष्कारो ने आकाश की विशाल छाती को फाड़ा, समुद्र की अतल गहराई को नापा, अलघ्य पर्वतों को वश मे किया, प्रकृति को मानव की दासी बनाया।

कुछ लोग विज्ञान को मानव के लिए अकल्याणकारी भी मानते हैं। उनका कहना है कि एक ओर विज्ञान द्वारा निर्मित अस्त्र-शस्त्र और बम नागासाकी और हिरोशिमा जैसे सुन्दर नगरो को खडहरो मे बदल देते हैं। दूसरी ओर, यान्त्रिक उन्नति ने मानव को आलसी, सुस्त और निकम्मा बना दिया है। तीसरी ओर, यान्त्रिक खराबी और मानव की जरा-सी भूल जीवन को नष्ट कर देती है, पदार्थ का अस्तित्व समाप्त कर देती है। नभ मे उड़ता विमान जरा-सी यान्त्रिक खराबी से यात्रियो को परलोक मे पहुँचा कर धूल चाटने लगता है। बिजली के नगे तार पर भूल से हाथ लगा और मृत्यु का साक्षात्कार हुआ। खाने की गैस रिसी नही कि आग लगते देर नही लगती। नगरो मे प्रदूषण की समस्या विज्ञान की ही देन है, जिसके कारण न स्वच्छ वायु मिल पाती है और न शुद्ध जल और न शुद्ध भोजन प्राप्त होता है।

किन्तु एक बात यह भी सच है कि महान् वैज्ञानिक उन्नति के कारण ही एक राष्ट्र दूसरे से भयभीत है, जिसका सुखद परिणाम यह है कि विश्व तृतीय महायुद्ध के कगार पर पहुँचकर भी वापस लौट आता है। तृतीय विश्व-युद्ध की कल्पना से ही सबको बुखार चढने लगता है।

सचाई यह है कि आज सभी राष्ट्रो का अधिकाश बजट वैज्ञानिक उन्नति द्वारा मानव को स्वस्थ, सुखी, समृद्ध और जीवन को सर्वाधिक आनन्दप्रद बनाने मे खर्च हो रहा है। भूमि, जल तथा नभ के विस्फोटो द्वारा हो या नभ मे उपग्रह की स्थापना द्वारा, विज्ञान मानवीय कल्याण में अग्रसर है। उपग्रह की क्षमता से गाँवो मे टेलीविजन कार्यक्रम मानव-कल्याण का ही एक भाग है।

ईश्वर की तीनों शक्तियों ब्रह्मा (उत्पत्ति), विष्णु (पालन) तथा महेश (विनाश) को विज्ञान आज अपने हाथो में ले रहा है—मानव के सुख, समृद्धि और कल्याण के लिए। ▭

विज्ञान और हमारा जीवन

(ऑल इण्डिया १६७६ : 'ए')

विज्ञान के बिना हमारा जीवन कष्टमय है, सुख-शान्ति से वंचित है, जीवन के प्रति विद्रोह है, मृत्यु का शीघ्र आह्वान है और है एक निरर्थक स्वप्न। जीवन विज्ञान के बिना नीरस है। विज्ञानहीन जीवन जिन्दगी की विकृति है, प्रकृति नहीं।

स्वेड मार्टेन ने कहा है—'हमारा सदा यही लक्ष्य रहा है कि हमारा जीवन सुख और आनन्द से परिपूर्ण हो।' महाकवि जयशंकर प्रसाद प्रसन्नता को ही जीवन का सत्य मानते है। सत्य का अर्थ है विज्ञान। कारण, विज्ञान सत्य का खोजी है। अतः जीवन में सुख, आनन्द और प्रसन्नता के लिए विज्ञान परमावश्यक है।

स्वामी विवेकानन्द जीवन का रहस्य भोग मे नही मानते। उनके मतानुसार धर्म के प्रति आस्था रखते हुए, धार्मिक जीवन व्यतीत करते हुए मोक्ष-प्राप्ति जीवन का उद्देश्य है। जीवन के धार्मिक क्षेत्र मे भी विज्ञान हस्तक्षेप करता है। अलबर्ट आइन्स्टाइन की धारणा है—'धर्म के बिना विज्ञान लंगडा है और विज्ञान के बिना धर्म अन्धा है।' सर आलीवर लॉज का कथन है, 'धर्म का क्षेत्र और विज्ञान का क्षेत्र एक ही है।' सर बेकन विज्ञान और धर्म को एक-दूसरे का पूरक मानते है। एक भारतीय सन्त की मान्यता है कि 'भौतिक-विज्ञान बल है और धर्म-विज्ञान विवेक है।'

भौतिक क्षेत्र मे विज्ञान ने हमारे जीवन को कष्टो, यातनाओ और असुविधाओं से मुक्त करके सुखमय बनाया। गैस, तेल तथा विद्युत् जहाँ ईंधन बन कर खाना बनाने लगे, वहाँ वस्त्र धोने तथा कमरों को वातानुकूलित बनाने के लिए मशीनें, कूलर, हीटर आदि हमारी सेवा करने लगे। तन ढकने के लिए विभिन्न प्रकार के वस्त्र बनने लगे। सिलाई की मशीनें कपड़े सीने लगी।

यातायात के साधनों ने हमारे जीवन को युग-सम्पन्न बना दिया। संसार एक शहर की भाँति लगता है। वायुयान दिनों की दूरी मिनटों में तय करते हैं। कार, बस, जलयान, रेल, मोटरसाइकिल, स्कूटर, जलयान, हमें गन्तव्य स्थानों पर शीघ्र पहुँचाते हैं।

विद्युत् ने तो कमाल ही कर दिया। अमावस को पूनम में बदल दिया। रेडियो, टेलीविजन, वीडियो, सिनेमा आदि जीवन में मनोरंजन के साधन बने। बेतार के तार ने दूर सचार व्यवस्था स्थापित की। हजारों मील दूर बैठे व्यक्ति से दूरभाष पर बात कीजिए। कुछ ही क्षणों में विश्व में सन्देश प्रसारण विज्ञान की जीवन के लिए महान् उपलब्धि है।

चिकित्सा के क्षेत्र मे विज्ञान ने क्रान्तिकारी चमत्कार किया। अकाल-मृत्यु का निमन्त्रण विज्ञान के भय से भयभीत हुआ,कैंसर और तपेदिक जैसे रोगविज्ञान से पराजित हुए। हृदय और किडनी का प्रत्यारोपण हुआ। मशीन जिगर का काम करने लगी। कृत्रिम गर्भाधान से ट्यूब बेबी ने जन्म लिया। प्लास्टिक सर्जरी ने कुरूप को सुन्दर बनाया। इस प्रकार विज्ञान ने हमारे जीवन में एक महान् क्रांति कर दी—पगु को पैर देकर, नेत्रहीनों को आँखें देकर, बहरों को सुनने का यन्त्र देकर।

ज्ञान-प्रसारण द्वारा विज्ञान ने हमारे जीवन को उन्नत बनाया। मुद्रणकला तथा कागज-निर्माण ने ज्ञान को लिपिबद्ध करके सर्वसुलभ बनाया। पुस्तकें छपी, पत्र-पत्रिकाएँ निकली। पुस्तकें जाग्रत देवता है उनकी सेवा करके तत्काल वरदान प्राप्त किया जा सकता है। पुस्तकें जादूई दर्पण है, जो महापुरुषों के मस्तिष्क का परावर्तन हमारे मस्तिष्क में करती हैं। पुस्तकें प्रकाश-गृह हैं, जो समय के विशाल समुद्र में स्थित होकर मानव का पथ-प्रदर्शन करती हैं। समाचार-पत्र ज्ञान-विज्ञान अर्जन करने के प्रमुख साधन है और लोकतन्त्र के प्रहरी हैं। सचाई तो यह है कि विचारों के युद्ध में पुस्तकें और पत्र-पत्रिकाएँ ही जीवन के अस्त्र हैं।

जीवन को गर्मी, सर्दी, बरसात से बचाने के लिए भवन निर्मित किए गए, उन्हें वातानुकूलित किया गया, संचय की प्रवृत्ति बढी। सुख के साधन इकट्ठे होने लगे।

विज्ञान ने हमारे जीवन को सुखमय तो बनाया, किन्तु साथ ही भय का निर्माण भी किया। भूल से बिजली के नग्न तार पर हाथ लगा कि पहुँचे

यमपुरी। रेलों की भिड़न्त, बसों के ऐक्सीडेन्ट और हवाई-जहाजों के 'क्रैश' दो क्षण में मानव को परलोक पहुँचा देते हैं। प्रदूषण ने तो महानगरों के जीवन को बुरी तरह विपाक्त कर दिया है। शुद्ध वायु, शुद्ध जल तथा शुद्ध भोजन न मिलने का कारण प्रदूषण ही है।

प्रत्येक क्षेत्र में विज्ञान ने हमारे जीवन को सुखमय बनाया, मानव की तीन प्रमुख आवश्यकताओं—कपड़ा, रोटी, और मकान—को विज्ञान ने पूरा कर दिया, श्रेष्ठ से श्रेष्ठ परिधान, षड्रस भोजन और सुदृढ़ एवं सुरक्षित भवन मानव को प्रदान किए। इतना ही नहीं, लोहे का कम्प्यूटर तैयार किया, जो मानव-मस्तिष्क का काम करता है, गणित के प्रश्नों एवं जीवन की उलझनों-समस्याओं का उत्तर देता है।

इस प्रकार हमारे जीवन के लिए विज्ञान वरदान सिद्ध हुआ। उसने जीवन को सुखमय बनाया, शान से जीना सिखाया तथा मंगल-पथ का दर्शन कराया।

□

विज्ञान और विश्व-शांति

विज्ञान और विश्व-शान्ति का सम्बन्ध विरोधाभास रूप में दिखाई देता है। ऐसा प्रतीत होता है कि विज्ञान 'चोर को कहता है तू चोरी कर, शाह को कहता है तू जागता रह।' एक ओर विज्ञान के उत्कर्ष से विश्व-शान्ति के लिए प्रयत्नों के साथ विश्व को नष्ट करने के लिए महान् घातक शस्त्रों का निर्माण हुआ, तो दूसरी ओर उन शस्त्रों के प्रयोग से सभी राष्ट्र भयभीत भी हैं। वे डरे हुए हैं कि कहीं इन घातक शस्त्रों के प्रयोग से विज्ञान रूपी भस्मासुर अपने प्रभाव से स्वयं ही नष्ट न हो जाए तथा पृथ्वी का अस्तित्व ही समाप्त न हो जाए।

विश्व-शान्ति भंग होने के दो प्रमुख कारण हैं—प्रकृति का क्रूर अट्टहास अर्थात् प्रलयकारी रूप तथा विश्व के महान् राष्ट्रों का युद्ध-भूमि में उतर आना।

प्रकृति का प्रलयंकारी रूप विज्ञान के अधीन है। विज्ञान ने मनुष्य को ऐसा गुरुमन्त्र प्रदान किया है, जिससे प्रकृति की गुप्त निधियों के द्वार सहज में खुल जाते हैं। दूसरे, प्रकृति विज्ञान की चेरी है। प्रकृति पर विजय पाकर विज्ञान ने ऐश्वर्य और वैभव विश्व के चरणों में उंडेल दिया है। फिर भी चेरी के नखरे सम्भावित हैं। जैसे भूकम्प, बाढ़ और ज्वालामुखी-विस्फोट। इनसे क्षेत्र-विशेष की जनसंख्या पीड़ित हो सकती है। ये नखरे इतने भयंकर नहीं हो सकते कि विश्व-शांति को ही खतरा उत्पन्न हो जाए। कामायनी में वर्णित महाप्रलय कभी नहीं होगी कि केवल 'मनु' ही शेष रह जाए।

प्रकृति से एक अन्य रूप में विश्व-शान्ति भंग हो सकती है। वह रूप है प्राकृतिक पदार्थ-कोष की समाप्ति। विश्व में वृक्षों की कमी आ जाए, कोयले का कोष समाप्त हो जाए, पेय जल का अभाव हो जाए, भूमि अपनी उपजाऊ शक्ति से विहीन हो जाए, तो जग में प्रलय हो जाएगी। इस पर विजय प्राप्त करने के लिए भी विज्ञान दृढ़-प्रतिज्ञ है। वह इन अभावों के विकल्प ढूँढ लेगा और प्रकृति को विश्व-शान्ति भंग करने की छूट नहीं देगा।

विश्व के दो महान् राष्ट्र हैं—रूस और अमेरिका। 'वर्ल्ड किंग' बनने की इन दोनों राष्ट्रों में होड़-सी लगी है। इसके लिए वे व्यापारिक प्रलोभन देकर, ऋण देकर, विकास की सुविधाएँ देकर, अस्त्र-शस्त्र तथा दैनिक जीवन की उपयोगी वस्तुएँ देकर विश्व के अन्य राष्ट्रों को उपकृत करते हैं। विश्व में अपने अनुकूल परिस्थिति उत्पन्न करने के लिए राष्ट्रों के राष्ट्राध्यक्षों को बदलवा देते हैं, सैनिक क्रान्ति करवा देते हैं, प्रजातांत्रिक राष्ट्रों मे चुनाव के समय और चुनाव के पश्चात् पानी की भांति रुपया बहाकर अपने समर्थक उम्मीदवारों को विजय-श्री दिलवाने और विपक्षी उम्मीदवारों को खरीदने का प्रयत्न करते हैं।

अमेरिका सभ्यता से क्रान्ति का पक्षधर है। वह कूटनीति से अपने प्रभाव का विस्फोट करता है। रूस राक्षसी विधान पर विश्वास करता है। पिछली दशाब्दी में क्यूबा मे सशस्त्र घुसपैठ और इस दशाब्दी के अन्त मे अफगानिस्तान में सशस्त्र प्रवेश इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं। बडी मछली छोटी मछली को निगल रही है और विश्व के किसी राष्ट्र मे अफगानिस्तान के लुटते सम्मान को बचाने का साहस नही। द्रौपदी का चीर-हरण हो रहा है, वीर पाडव मुँह लटकाए बैठे हैं। कुछ नपुंसक कौरवी राष्ट्र रूस की इस कार्यवाही का समर्थन कर रहे है। इससे बढ़कर विडम्बना क्या हो सकती है?

दूसरी ओर विश्व-शान्ति को खतरा उत्पन्न कर रखा है इस्लाम के मदान्ध राष्ट्र ईरान और ईराक ने। दो वर्ष से भी अधिक समय से ये दोनो युद्धरत है। किसी बड़ी शक्ति ने बीच मे हस्तक्षेप कर दिया, तो विश्व-शान्ति खतरे मे पड़ जाएगी। दूसरी ओर, पाकिस्तान और अफगानिस्तान की घरेलू लडाई विश्व-संकट में बदल सकती है।

तीसरी ओर, इजराइल ने यवन-राष्ट्रो की नीद हराम कर रखी है। वह साहस और शक्ति का प्रदर्शन गत अनेक वर्षों से कर रहा है। फिलिस्तीनियो को तो उसने दर-दर की ठोकरें खाने को विवश कर दिया है।

विश्व-शान्ति के शत्रु ये दोनों महान् राष्ट्र जहाँ एक-दूसरे पर वाग्बाण चलाते रहते हैं, वहाँ प्रत्यक्ष मैदान मे उतरकर हाथ दिखाने से डरते है। आज दोनो राष्ट्रों ने प्रक्षेपणास्त्रों, अणु बमों तथा न्यूक्लीयरों का कल्पनातीत सग्रह कर रखा

को चन्द मिनटों में श्मशान बनाकर रख देगा। द्वितीय विश्व-युद्ध में अमेरिका द्वारा हाईड्रोजन बमों की मार से ध्वस्त हिरोशिमा और नागासाकी के श्मशान की बुझी राख आज भी युद्ध का नाम सुनकर दहशत खाती है। अतः यह सत्य है कि विश्व तृतीय विश्व-युद्ध के कगार पर पहुँच कर भी विज्ञान के कारण वापिस मुड जाता जाता है। अत विश्व-शान्ति का आधार स्तम्भ विज्ञान है।

सचाई यह है कि आज विज्ञान की कृपा से विश्व में शान्ति है, 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना साकार है। विश्व के राष्ट्र एक-दूसरे के सुख-दुःख के साथी हैं, एक-दूसरे से लाभान्वित होते हैं। जिनके पास पैट्रोलियम-पदार्थ हैं, वे विश्व को पैट्रोलियम पदार्थ देकर और जिनके पास कच्चा माल है, वे कच्चा माल देकर सन्तुलन बनाए हुए हैं, मानव को अभाव की पीड़ा से बचाए हुए हैं।

विज्ञान ने विश्व-मानव को सुख और सम्पन्नता प्रदान करने के लिए मनुष्य की दिनचर्या में घर कर लिया है। उसको सुख देने का प्रत्येक साधन विज्ञान ने उपलब्ध करा रखा है विज्ञान की सहायता से मनुष्य शान्तिपूर्वक इहलोक को भोग सकता है।

विज्ञान के कारण विश्व की शान्ति के लिए खतरा अनुभव करते हुए विश्व की तृतीय शक्ति 'तटस्थ राष्ट्रों' ने नारा लगाया है—'विज्ञान को शान्ति-कार्यों में उन्मुख किया जाए। विनाशक शस्त्रों की होड-समाप्ति के लिए संहारक शस्त्रों के निर्माण पर प्रतिबन्ध लगाया जाए।' मद मे मतवाले राष्ट्र इस आवाज के महत्व का मूल्यांकन तो करते हैं, किन्तु झुकने को तैयार नहीं होते।

वर्तमान विश्व विज्ञान के विधान से विश्व-शान्ति को बारूद के छिद्र पर घसीट लाया है। जरा-सी चिंगारी इस बारूद से छूने पर ज्वाला बनकर विश्व को श्मशान की शान्ति मे परिणत कर देगी। अतः भयभीत राष्ट्र अपमान का घूंट पीकर भी पहल करने मे हिचक रहे हैं।

नेपोलियन के शब्दों मे, 'युद्ध असभ्य लोगों का व्यापार है।' वह व्यापार छोटे-मोटे राष्ट्र करते रहें, तो विश्व-शान्ति को खतरा नहीं होता। इजराइल-अरब-फिलिस्तीनी-युद्ध तथा ईरान-ईराक युद्ध इसके ज्वलन्त प्रमाण हैं। इन युद्धों रूपी सुनार की खट्-खट् से विश्व-शान्ति की निद्रा तो उचटी, किन्तु निद्रा भंग नहीं हुई। विश्व-शान्ति भंग तभी होगी, जब विश्व के महान् राष्ट्र युद्ध-भूमि में उतर आएँगे।

□

अन्तरिक्ष में मानव के बढ़ते चरण

महाभारत तथा पुराण ग्रंथों में चांद व दूसरे ग्रहों की यात्रा का वर्णन है। लगभग चार सौ साल पहले गैलीलियो ने अपनी बनाई दूरबीन के माध्यम से देखकर चांद के बारे में वर्णन किया था। उसी कल्पना को साकार करते हुए, आज के वैज्ञानिक अन्तरिक्ष-यान में उड़ान भरते हैं।

अन्तरिक्ष-यात्रा का वास्तविक आरम्भ ४ अक्तूबर, १९५७ से समझना चाहिए, जब रूस ने 'स्पुतनिक-१' छोड़ा। यह कृत्रिम भू-उपग्रह अन्तरिक्ष मे तीन महीने तक पृथ्वी के चक्कर लगाता रहा। इसने पृथ्वी की १४०० परिक्रमाएँ की। रूस ने इसके एक महीने बाद 'स्पुतनिक-२' छोड़ा, जिसमे लाइका नामक कुतिया थी। अमेरिका भी इस क्षेत्र में २१ जनवरी, १९५८ को आ गया, जब उसने 'एक्सप्लोरर-१' नामक अपना पहला भू-उपग्रह छोड़ा और फिर १७ मार्च, १९५८ को 'वेनगार्ड-१' उपग्रह छोड़ा, जो एक हजार साल तक पृथ्वी के चक्कर लगाता रहेगा।

अनेक परीक्षण और प्रयोगों के पश्चात् रूस ने १२ अप्रैल, १९६१ को प्रथम मानव यात्री यूरी गागारिन को अन्तरिक्ष में भेजा। इस सफल परीक्षण के पश्चात् अमेरिका ने 'जैमिनी-११' और जैमिनी-१२' में एक-एक मानव भेजे। रूस और अमेरिका, दोनों राष्ट्र अन्तरिक्ष में जाकर अनेक प्रकार के परीक्षण करते रहे।

इन सफल परीक्षणों के पश्चात् अन्तरिक्ष में स्टेशन-निर्माण की टोह आरम्भ हुई। चाँद को ही स्टेशन बनाने की योजना अमरीकी वैज्ञानिको ने बनाई। अन्ततः अमेरिका का 'अपोलो-११' तीन यात्रियों सहित २१ जुलाई, १९६९ को प्रातः १-४८ पर चन्द्रतल पर उतर गया। उसके दो यात्री सर्वश्री नील ए० आर्मस्ट्रांग और एडविन एल्ड्रिल ने चन्द्रतल पर पग रखकर करोड़ो पृथ्वीपुत्रों की आकांक्षाओं को पूर्ण कर दिया।

'अपोलो ११' के चार महीने बाद अमेरिका ने 'अपोलो-१२' छोड़ा, जिसमें

तीन यात्री थे। ये २६ नवम्बर, १९६९ को रात्रि में चाँद के तूफानी महासागर में उतरे। ये पहले यात्रियों से अधिक समय तक चाँद पर विचरण करते रहे।

इन दोनों यानों के यात्री अपने साथ चन्द्रतल से मिट्टी व चट्टानों के अनेक नमूने लाए थे, जिनका अध्ययन विश्व के प्रमुख वैज्ञानिकों ने किया है। अध्ययन करने वालों में चार वैज्ञानिक भारतीय भी थे। इन वैज्ञानिकों ने महत्त्वपूर्ण तथ्यों का उद्घाटन किया। फिर भी चाँद के बारे में अनेक गुत्थियाँ अभी तक सुलझी नहीं हैं।

इस प्रकार रूसी और अमेरिकी वैज्ञानिक पृथक्-पृथक् अन्तरिक्ष-अन्वेषण में जुटे हुए थे। सौभाग्य से राजनैतिक एवं विभिन्न जीवन-पद्धतियों के इन दो प्रखर प्रतिद्वन्द्वी राष्ट्रों ने २४ मई, १९७३ को अन्तरिक्ष-विज्ञान के अध्ययन में परस्पर सहयोग की सन्धि पर हस्ताक्षर कर दिए।

१७ जुलाई, १९७५ को सोवियत 'सोयुज-१९' तथा 'अपोलो-२१' यान का भारतीय समय के अनुसार रात्रि ९-३९ पर पुर्तगाल व स्पेन के समुद्रतटों के २२५ किलोमीटर ऊपर अन्तरिक्ष में संगमन हो गया। संगमन निर्धारित समय से ६ मिनट पूर्व होने के कारण पश्चिमी जर्मनी के ऊपर नहीं हो सका।

संगमन के लगभग तीन घंटे के बाद सोयुज और अपोलो के अन्तरिक्ष यात्री दोनों यानों को जोड़ने वाली सुरंग के अन्दर मिले और उन्होंने एक-दूसरे से हाथ मिलाए। तत्पश्चात् उन्होंने अपने-अपने राष्ट्रों के ध्वज एक-दूसरे को भेंट किए। 'सोयुज' तथा 'अपोलो' का यह संगमन अन्तरिक्ष-वैज्ञानिकों की ऐतिहासिक उपलब्धि थी।

अब अन्तरिक्ष-अनुसंधान का नया लक्ष्य बना मंगल ग्रह। इस बार भी अमेरिका ने पहल की, और सफल रहा। २० अगस्त, १९७५ को 'वाईकिंग-१' ने मंगलग्रह की यात्रा आरम्भ की। ११ मास में ८० करोड़ किलोमीटर की यात्रा तय कर २० जुलाई, १९७६ को ५ बजकर ४३ मिनट पर उसने मंगलग्रह के धरातल पर पदार्पण किया। अमेरिका का यह विमान मानव-रहित था। अमेरिकी जनता हर्षातिरेक से नाच उठी।

वैज्ञानिकों ने मंगल-ग्रह की उपलब्धि के पश्चात् शुक्रग्रह को अपना लक्ष्य बनाया। २० मई, १९७८ को छोड़ा गया 'पायनीयर वीनस-१' ४ दिसम्बर, १९७८ को शुक्र ग्रह में पहुँच गया। इसके पश्चात् 'पायनीयर-२' ने शुक्र ग्रह में पहुँच कर वहाँ के वायुमण्डल की रचना और मौसम का अध्ययन करने के उद्देश्य से उसके वायुमण्डल में पाँच प्रायोगिक पैकेज छोड़े।

१९ अगस्त, १९७९ का दिन अन्तरिक्ष-विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में स्मरणीय रहेगा। इस दिन दो सोवियत अन्तरिक्ष यात्री—बी० ए० ल्याखोव और वी० वी० रियुमिन १७५ दिन तक अन्तरिक्ष-प्रयोगशाला सेल्यूज में अनुसंधान करके सकुशल धरती पर लौटे थे। अन्तरिक्ष प्रयोगशाला मे छः महीने तक रहने और काम करने का यह एक नया और सबसे लम्बा कीर्तिमान है।

इन अन्तरिक्ष यात्रियों को समय-समय पर सात 'प्रोग्रेस' यानों (मानव-रहित मालवाहक अन्तरिक्ष यान) द्वारा रसद तथा अन्य सामग्री पहुँचाई गई। इन यानो का संचालन पृथ्वी से रिमोट-कंट्रोल प्रणाली द्वारा किया गया था। प्रोग्रेस द्वारा एक टेलिविजन रिसीवर 'सेल्यूज-६' तक पहुँचाया गया। अन्तरिक्ष यात्री इसे दूरभाष की भाँति प्रयोग करके पृथ्वी-स्थित अपने प्रियजनों से बात-चीत कर सकते थे। साथ ही उन्हे देख भी सकते थे।

१२ अप्रैल, १९८१ को अमेरिका द्वारा अन्तरिक्ष शटल 'कोलम्बिया' को अन्तरिक्ष में भेजकर तथा १५ अप्रैल, १९८१ को सकुशल वापिस लौटाकर अन्तरिक्ष-यात्रा मे नए युग का आरम्भ कर दिया गया है। इस शटल में दो वैज्ञानिक भी गए थे।

४ अक्तूबर, १९८२ को अन्तरिक्ष-यात्रा के २५ वर्ष पूर्ण हुए। इन २५ वर्षों के अनुभव ने अन्तरिक्ष-यात्रा के उद्देश्य को ही बदल दिया है। चन्द्रमा तथा अन्य ग्रहों पर बस्तियाँ बसाने का कार्यक्रम खटाई मे पड गया है। अब बारी आ गई है अन्तरिक्ष मे रहकर उसका शोषण करने की।

अंतरिक्ष में ऐसी औषधियों का निर्माण-कार्य चल रहा है, जो पृथ्वी पर गुरुत्वाकर्षण के कारण असम्भव था। दूसरे, अन्तरिक्ष स्टेशनो से उपग्रह की मरम्मत की जा सकती है, जिससे उनकी अकाल मृत्यु न हो और लाखों की क्षति से बचा जा सके। यदि भारतीय उपग्रह 'इन्सेट-१ए' शटल से छोड़ा जाता, तो उसे बचाया जा सकता था। तीसरे, वायुयान और समुद्री-यान की अज्ञात दुर्घटनाओ को उपग्रह द्वारा बचाया जा सकता है। १० सितम्बर, १९८३ को कनाडा मे विमान-दुर्घटना मे फँसे तीन व्यक्तियो को बचाकर पहली सफलता उपग्रह-बचाव-कार्य को मिली। चौथे, अन्तरिक्ष-नियन्त्रण-केन्द्रो द्वारा दूसरे राष्ट्रों की खोज-खबर रखी जा सकती है।

अन्तरिक्ष-अनुसंधान दिन-प्रतिदिन प्रगति पर है। वैज्ञानिक अहर्निश अन्तरिक्ष में अनुसंधान कर मानव के लिए कल्याणकारी और मंगलकारी तत्व ढूँढ़ने मे लगे है। वह दिन दूर नही, जब इन अन्तरिक्ष-यानों से भूमिपुत्र अत्यधिक लाभान्वित होंगे।

▭

अन्तरिक्ष-विज्ञान में भारत की प्रगति

भारत विकासशील राष्ट्र है। निर्धनता, निरक्षरता, अन्धविश्वास, अज्ञानता, रूढ़िवादिता, बीमारी, गन्दगी और भूख यहाँ व्याप्त हैं। विदेशों का बढ़ता अरबों रुपए का ऋण राष्ट्र को घुन की तरह खा रहा है। यहाँ का राजनीतिज्ञ राष्ट्र को राजनीतिक छल-छन्द की धूल से धूलि-धूसरित करने को कटिबद्ध है, फिर भी भारत का वैज्ञानिक दिन-प्रतिदिन विशाल राष्ट्र की अनन्त समस्याओं को विज्ञान द्वारा हल करने के लिए दृढ़प्रतिज्ञ है।

वैज्ञानिकों की वैज्ञानिक सूझ-बूझ, कार्य-कौशल, दृढ़ निश्चय और कार्य के प्रति समर्पण ने आज भारत को अन्तरिक्ष-सचार-युग में पहुँचा दिया है, जहाँ अब तक सोवियत संघ, कनाडा, संयुक्त राज्य अमेरिका, जापान और विकासशील राष्ट्र इन्डोनेशिया ही पहुँच पाए थे।

१८ मई, १९७४ को पहला सफल परमाणु-विस्फोट पोखरण (राजस्थान) से लेकर ३० अगस्त, १९८३ को 'इन्सेट-१बी' की सफल अन्तरिक्ष-स्थापना तक का ९ वर्षीय इतिहास भारत की अन्तरिक्ष विज्ञान सम्बन्धी प्रगति का क्रमबद्ध लेखा-जोखा है, कोई जादुई चमत्कार नहीं।

भारत द्वारा अन्तरिक्षयात्रा का प्रारम्भ लगभग दो दशाब्दी पूर्व किया गया था। जब भारत ने एक छोटा-सा पग उठाया था और थुम्बा से एक अमेरिकी राकेट छोड़ा था, किन्तु १९ अप्रैल १९७५ का दिन वह ऐतिहासिक दिन है, जब भारत में निर्मित प्रथम उपग्रह 'आर्यभट्ट' कक्षा में स्थापित किया गया। उस दिन से विश्व में भारत की गणना 'उपग्रह-निर्माण' की क्षमता रखने वाले राष्ट्रों में होने लगी।

भारत ने अन्तरिक्ष में अगला पग रखते हुए ७ जून, १९७९ को सोवियत संघ के एक केन्द्र से उपग्रह 'भास्कर' छोड़ा। यह उपग्रह भारतीय अन्तरिक्ष-अनुसंधान-संगठन द्वारा तैयार किया गया था। इसका उद्देश्य भू-पर्यवेक्षण और पृथ्वी के प्राकृतिक ससाधनों का पता लगाना था।

भारतीय वैज्ञानिकों ने अपनी प्रयोगशाला में निर्मित राकेट 'एस० एल० वी-३' के द्वारा रोहिणी उपग्रह को १८ जुलाई, १९८० को पृथ्वी की कक्षा में

स्थापित करके अन्तरिक्ष-विज्ञान के इतिहास में नया स्वर्णिम अध्याय जोडने में अद्भुत सफलता प्राप्त की। 'एस. एल.वी -३' भारत का पहला उपग्रह-प्रक्षेपण वाहन है, जिसे भारतीय-अनुसधान-सगठन ने स्वदेशी साधनों से ही बनाया है। यह ठोस प्रणोदक (प्रोपलैंट) वाला चार खड का राकेट है, जिसका कुल वजन १७ टन है। इसके निर्माण के साथ ही भारत की गणना अमेरिका, सोवियत सघ, चीन, जापान और फ्रास के साथ होने लगी, जिन्होने अपने उपग्रह प्रक्षेपण-वाहनो से उपग्रहो को अन्तरिक्ष कक्षा मे स्थापित किया है।

१६ जून, १६८१ को भारत के महान् वैज्ञानिको ने अन्तरिक्ष विज्ञान मे एक पग और बढाया। पहला संचार उपग्रह 'एपल' (एरियन पैसेंजर पेलोड एक्सपेरिमेन्ट) यूरोपीय अन्तरिक्ष एजेन्सी के सहयोग से अन्तरिक्ष में पहुँचाया गया। यह उपग्रह पूर्णतः भारतीय अन्तरिक्ष-अनुसधान-सगठन के बगलौर केन्द्र में भारतीय वैज्ञानिको ने तैयार किया। इसके प्रक्षेपण से भारत में एक नए संचार-युग का आरम्भ हो गया और देश को उपग्रह-सचार के लाभ मिल रहे हैं। १५ अगस्त, १६८१ को लाल किले पर सम्पन्न हुआ स्वतन्त्रता-दिवस कार्यक्रम 'एपल' द्वारा राष्ट्र के अनेक दूर दर्शन-केन्द्रो से प्रसारित किया गया था।

सूचना-प्रसार और सचार-व्यवस्था भौतिक और राजनीतिक विकास की आधारशिला है। विश्व की सचार आवश्यकताएँ दिन-प्रतिदिन बढती जा रही हैं और साथ ही जटिल भी होती जा रही है। विश्व के विकसित राष्ट्रो ने दूरस्थ स्थानों को जोडने के लिए परम्परागत माध्यमो को अपर्याप्त मानकर उपग्रह-संचार-व्यवस्था का आश्रय ढूँढा। मौसम का पूर्वाभास, सुदूर स्थानो मे दूरदर्शन प्रसारणो को पहुँचाना, तारो के जटिल जाल स विमुक्त दूरभाष-व्यवस्था, समुद्र, वन, बीहड रेगिस्तान आदि का सही-सही अनुमान लगाना, सचार व्यवस्था के विस्तृत कार्यक्रम है।

नवम्बर, १६८१ मे भारत ने दूसरा भू-पर्यवेक्षण उपग्रह 'भास्कर-२' सोवियत संघ की सहायता से अन्तरिक्ष मे भेजा।

सचार-व्यवस्था मे प्रगति की दृष्टि मे जुलाई, १६७८ मे अमेरिका की फोर्ड एरोस्पेस एण्ड कम्यूनिकेशन कारपोरेशन के साथ भारत ने 'इन्सेट' निर्माण का समझौता किया। परिणामत. १० अप्रैल, १६८२ को अमेरिका के अन्तरिक्ष केन्द्र से 'इन्सैट-१ए' (इंडियन नेशनल सैटलाइट) अंतरिक्ष मे स्थापित किया गया। इसके निर्माण की बुनियादी परिभाषा और आवश्यकताओ का निरूपण भारतीय अन्तरिक्ष वैज्ञानिकों द्वारा ही किया गया था, किन्तु दुर्भाग्यवश वह १५० दिन ही अन्तरिक्ष मे टिक पाया और उसकी अकाल मृत्यु हो गई। उसकी अकाल मृत्यु से हमारे अन्तरिक्ष कार्यक्रम को बहुत धक्का लगा।

फिर भी, भारतीय वैज्ञानिक हतोत्साहित नहीं हुए और अन्तरिक्ष-विज्ञान के क्षेत्र में सफलता-प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील रहे। अन्ततः ३० अगस्त, १९८३ को उनका सपना साकार हुआ, जिस दिन उन्हें अमरीकी अन्तरिक्ष-यान चैलेंजर से बहुद्देशीय तथा बहुआयामी उपग्रह 'इन्सेट-१बी' को अन्तरिक्ष में प्रेषित करने में सफलता प्राप्त हुई। अन्तरिक्ष मे भारत की इस महान छलांग ने राष्ट्र को विकास के नए धरातल पर खड़ा कर दिया।

इसी उपग्रह के कारण आज देश के विभिन्न भागों में टी० वी० के कार्यक्रमों का सीधा प्रसारण सम्भव हुआ है। इसके अतिरिक्त मौसम सूचना-प्रणाली द्वारा दिल्ली संचार भू-केन्द्र की सहायता से हर आधे घंटे पर तस्वीर प्राप्त की जाती है। अन्तरिक्ष से मौसम पर इस तरह नजर गड़ाने से बाढ़-नियंत्रण, तूफ़ान की पूर्व चेतावनी, सिंचाई-नियोजन, वैमानिक आदि सेवाएँ ली जा रही हैं।

३ अप्रैल, १९८४ को भारतीय सैनिक राकेश शर्मा ने रूस के अन्तरिक्ष-यान में अन्तरिक्ष मे जाकर अनेक प्रयोग किए। उसके साथ ही रवीश मल्होत्रा ने भी अंतरिक्ष-उड़ान का प्रशिक्षण प्राप्त किया था।

२९ अप्रैल, १९८५ को अमरीका स्पेसलैब-३ पर स्थित भारतीय अन्तरिक्ष प्रयोगशाला, 'अनुराधा' ने अपनी एक सप्ताह की यात्रा मे सूर्य तथा ब्रह्माण्ड में अन्य स्रोतों से निकलकर पृथ्वी के वायुमंडल मे आने वाली ऊर्जा-किरणों के गठन तथा तीव्रता का अनुसंधान किया।

इसके पश्चात् अंतरिक्ष विज्ञान में भारत ने तेजी से कदम बढ़ाए। दुर्भाग्यवश २४ मई १९८८ को छोड़ा गया पहला 'ए०एस०एल०वी०' (ASLV) विफल रहा। 'ए०एस०एल०वी : डी २' १३ जुलाई १९८८ को श्री हरिकोटा से उड़ा और ५४ सेकिण्ड बाद ही बंगाल की खाड़ी में गिरकर डूब गया। भारत के करोड़ो रुपए नष्ट करता हुआ वैज्ञानिकों की अनुसंधान प्रतिभा की अक्षमता का परिचय दे गया।

२२ जुलाई १९८८ को 'फ्रेंच गियाना' की भूमि से विदेशी कम्पनी 'फोर्ड एअरोस्पेस एण्ड कम्युनिकेशन कार्पोरेशन' द्वारा निर्मित भारतीय अंतरिक्ष यान 'इन्सैट-१-सी' छोड़ा गया। दुर्भाग्यवश अंतरिक्ष के कक्ष मे पहुँचने पर इसमे भी खराबी आ गई। यदि यह खराबी दूर न हुई तो विवशतावश इसके आंशिक उपयोग पर ही धैर्य धारण करना पड़ेगा। विकासशील, दरिद्र, महान भारत मुनिक प्रगतिशील वैज्ञानिक टेक्नोलोजी के लाभों से वंचित रह जाएगा।

प्रदूषण की समस्या

प्रदूषण की समस्या विज्ञान की देन है, महा-उद्योगो की समृद्धि का बोनस है, मानव को मृत्यु के मुँह में धकेलने की अनचाही चेष्टा है, बीमारियों को बिन माँगे शरीर मे प्रवेश की सुविधा है, प्राणिमात्र के अमंगल की अप्रत्यक्ष कामना है।

सृष्टि के आरम्भ में प्रदूषण का नाम-निशान भी न था। प्रकृति मे एक सन्तुलन बना हुआ था। दूसरे शब्दों में प्रत्येक वस्तु स्वच्छ थी। वायु शुद्ध थी, जल शुद्ध था, धरती उपजाऊ थी। वृद्धि और क्षय का प्राकृतिक क्रम था। ऋतुओं का भी नियमबद्ध चक्र था।

जनसख्या-वृद्धि के साथ-साथ उत्पादन पर बल दिया जाने लगा। विज्ञान और प्रौद्योगिकी को पूरी तरह से उत्पादन बढ़ाने मे लगा दिया गया। उत्पादन के साथ अवशेष अथवा व्यर्थ पदार्थ संगृहीत होने लगे। कचरा मशीनयुग की भयंकर समस्या बन गई। इस कचरे को जला दिया जाता है अथवा भराव में काम लिया जाता है, जिससे वायु-प्रदूषण अथवा जीवाणु-प्रदूषण उत्पन्न होता है। यदि यो ही उसका ढेर इकट्ठा कर दिया जाए, तो दुर्गन्ध उत्पन्न होती है और साथ ही प्राकृतिक सौन्दर्य की क्षति भी होती है।

कारखानो की चिमनियों से, मोटर वाहनों के एग्जासिट पाइपो से, रेल के इंजनों से, घरों में काम आने वाले स्टोवो से तथा किसी भी जलने वाली वस्तु से जो गैस निकलती है, वे वायु को प्रदूषित करती है। मोटर-वाहनो के एग्जासिटों से जो कार्बनडाइ ऑक्साइड, नाइट्रोजन, नाइट्रिक ऑक्साइड, सल्फ्यूरिक एसिड और शीशे के तत्त्व (पेट्रोल मे शीशा डाला जाता है, उसके घोल मे से होकर निकलने वाले तत्त्व) हवा में घुलते है। वे प्रत्येक व्यक्ति को प्रभावित करते है। टोकियो में मोटरों के धुएँ से इतना प्रदूषण पैदा होता है कि वहाँ का यातायात नियन्त्रण करने वाला ट्रैफिक-सिपाही थोडी-थोडी देर बाद ऑक्सीजन सूंघता रहता है।

वायु-प्रदूषण से श्वास सम्बन्धी रोग उत्पन्न होते है। जैसे—श्वसनी-शोध,

फेफड़ा-कैंसर, खाँसी, दमा, जुकाम। महानगरीय जीवन की यह सौगात है। भारत के महानगरों मे बम्बई और कलकत्ता का जलवायु प्रदूषण में अधिक प्रभावित है। एक बार कलकत्ता मे रूस के तत्कालीन प्रधानमन्त्री खुश्चेव भाषण देने गए। साथ में रूसी पत्रकार भी थे। एक पत्रकार ने दिल्ली पहुँचने पर शिकायत की कि कलकत्ता की हवा में तो हमें साँस लेते समय ऐसा लगा जैसे दम घुट रहा हो।

घरेलू गन्दा पानी, नालियों में प्रवाहित मल तथा कारखानों से निकलने वाले व्यर्थ पदार्थ नदियों और समुद्रों में प्रवाहित कर दिए जाते है। भारत की महानगरीय व्यवस्था मे भूमिगत सीवर अन्ततः समीपस्थ नदी मे गिरते हैं। इससे पानी विषाक्त हो जाता है। पानी मे ऑक्सीजन की कमी हो जाती है, जिससे जलजीवों का विनाश होने लगता है।

प्रदूषित जल के उपयोग से आमाशयिक विकार, खाद्य विषाक्तता तथा चर्म-रोग उत्पन्न हो जाते हैं। प्रदूषित जल खाद्य फसलों और फलों को सारहीन बना देता है। साथ ही उसमें अवशिष्ट जीवनाशी रसायन मानव-शरीर में पहुँच कर खून को विषाक्त कर देता है, जिससे अनेक बीमारियाँ उत्पन्न हो जाती हैं।

न्यूक्लीयर-विस्फोट से प्रशांत महासागर का जल दूषित हो गया, परिणामतः लाखों टन मछलियाँ सदूषित हो गईं, खाने के अयोग्य हो गईं। समुद्र मे तेल बिखर जाने के कारण शुक्तियों को बम्बई पोताश्रय में जाना पड़ा। ऐसा प्रदूषित जल जिसमें बहुत अधिक लवण, कार्बनिक द्रव तथा अन्य रसायन हों, किसी भी उद्योग में प्रयुक्त नहीं हो सकता। उसे शुद्ध करना यदि असम्भव नहीं, तो दुस्साध्य अवश्य है।

ताप, शोर और दुर्गन्ध भी प्रदूषण के बहुत बड़े कारण हैं। ताप-बिजलीघरों से अथवा परमाणु भट्टियों द्वारा बड़ी मात्रा में ऊष्मा निकलती है, उससे जलवायु का सन्तुलन बिगड़ जाता है। क्षेत्रीय पेड़-पौधों को हानि पहुँचती है। अधिक शोर तथा अधिक दुर्गन्ध मनुष्य को रोग-शय्या पकड़ने को बाध्य कर देते हैं।

ऊर्जा के क्षेत्र में बिजली सर्वाधिक शुद्ध ऊर्जा का साधन है। बिजली के प्रयोग से कोई प्रदूषण नहीं होता, परन्तु बिजली का उत्पादन स्वयं प्रदूषण का साधन बन सकता है। बिजलीघरों में जो कोयला जलता है, वह चिमनियों से राख के रूप

में फैल जाता है। यह राख भी स्वास्थ्य के लिए पर्याप्त हानिकर है।

प्रदूषण से मौसम में भी काफी परिवर्तन आता है। ईंधन जलने से वायुमंडल में कार्बनडाई ऑक्साइड की मात्रा प्रतिवर्ष बढ़ रही है। इस गैस के बढ़ने से वायुमडल का तापमान इतना बढ सकता है कि हिमखण्ड पिघलने लगें और जल-प्लावन का ताडव-नृत्य होने लगे। विख्यात मौसम-विज्ञान-विशेषज्ञों का मत है कि यदि प्रदूषण इसी गति से बढ़ता रहा, तो लगभग सौ वर्ष पश्चात् वायुमंडल इतना विषाक्त हो जाएगा कि मनुष्य का जीना दूभर हो जाएगा।

संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम में अनेक बार चेतावनी दे चुके हैं कि हमें स्वनिर्मित नाश की चेतावनियों के निदेशक चिह्नों को पहचानना होगा और हमें इस युग की चुनौतियों का सामना कर अपने इस लक्षण को सुरक्षित और स्वच्छ वातावरण में बदलना होगा।

प्रदूषण-नियन्त्रण के लिए उन्नत वैज्ञानिक साधनों और उत्पादन-उद्योगों को नष्ट करने की आवश्यकता नहीं, बल्कि विकल्प ढूंढने की आवश्यकता है। इसके लिए महानगरीय व्यवस्था में बड़े-बड़े वन-उपवनों के जाल बिछाने की अनिवार्य व्यवस्था होनी चाहिए। कारखाने, मिल तथा अन्य छोटी औद्योगिक इकाइयाँ शहरों से दूर होनी चाहिएँ। मिल के अवशेष (कचरा) तथा मल-मूत्र को नदियों में न डालकर इसके लिए कोई वैज्ञानिक विकल्प प्रस्तुत करना होगा। जल और वायु के प्रदूषण को रोकना होगा।

शुद्ध जल, शुद्ध वायु तथा शुद्ध भोजन मानव-सृष्टि के लिए अनिवार्य तत्त्व हैं। इनकी प्राप्ति की समस्या राष्ट्रों के समक्ष जीवन-मरण का प्रश्न लिए खड़ी है। प्रदूषण गम्भीर समस्या है, गूढ पहेली है। इसके हल होने पर ही मनुष्य स्वस्थ जीवन व्यतीत कर सकेगा, दीर्घायु प्राप्त कर सकेगा। ▭

समाचार-पत्र

(ऑल इण्डिया १९८५, ८३ : बी)

समाचार-पत्र संसार का दर्पण है, विश्व में घटित घटनाओं का विश्वसनीय दस्तावेज है, घटनाओ के गुण-दोष-विवेचन का राज-हंस है, लोकतंत्र का चतुर्थ स्तम्भ है। ज्ञान-वर्धन का सबसे सस्ता, सरल और प्रमुख साधन है। मानवीय जिज्ञासा, कौतूहल और उत्सुकता की शान्ति के लिए अमर कोष है।

विज्ञान के वरदान से विस्तृत वसुधा एक कुटुम्ब बन गई है। प्रातः उठते ही व्यक्ति वसुधा की जानकारी के लिए व्यग्र होता है। वह समाचार-पत्र का प्रातःकालीन शीतल, सुगन्धित पवन के सदृश स्वागत करता है। देश-विदेश की घटनाओं की जानकारी प्राप्त कर आत्म-तुष्टि अनुभव करता है।

समाचार-पत्र मात्र ५०-६० पैसे मे विश्व-दर्शन करवाता है। कितना सस्ता साधन है ज्ञानवर्धन का। हॉकर समाचार-पत्र को घर पर डाल जाता है। बिना कष्ट किए ही हमे उसकी उपलब्धि हो जाती है। कितनी सुगम है इसकी प्राप्ति। जीवन और जगत् की अद्यतन जानकारी देने वाला विश्वसनीय दूत है यह। इसकी प्रामाणिकता में सन्देह के लिए कोई स्थान नही।

समाचार-पत्र मे देश-विदेश के ताजे समाचार पढ़िए। शासकीय, व्यापारिक एवं खेलकूद की खबरें पढ़िए। सरकारी आज्ञा, निर्देश, सूचनाएँ पढ़िए। सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, साहित्यिक तथा सिने-संसार की गतिविधियों की जानकारी लीजिए।

व्यापार मंडियों के भाव, शेयरों के उतार-चढ़ाव, नौकरी के लिए कहाँ-कहाँ स्थान खाली है? वांछित पिक्चर किस सिनेमाघर में लगी है? इसकी जानकारी के लिए समाचार-पत्र पढ़िए। बेटी-बेटे के लिए वर-वधू की तलाश समाचार-पत्र के माध्यम से कीजिए।

समाचार-पत्र के विज्ञापन व्यापार-वृद्धि के प्रमुख साधन है। ये लेख छापकर आय के स्रोत बनते है। सवाददाताओं, फोटोग्राफरों की आमदनी बढाते है। लाखों कर्मचारियो को जीविका प्रदान करते है। लाखो हॉकरो को रोजी-रोटी देते है।

समाचार-पत्र लोकतत्र के चतुर्थ स्तम्भ है, उसके जागरूक प्रहरी है। राजनैतिक बेईमानी, प्रशासनिक शिथिलता-भ्रष्टता तथा झूठे वायदो, आश्वासनों और जन-अहित के षडयत्रों का पर्दा फाश करते हैं। १९७४ से १९७७ तक के भारतीय तिमिरावृत काल के चीर-हरण का श्रेय समाचार-पत्रो को ही है। अमेरिका के वाटरगेट काण्ड का भडाफोड समाचार-पत्रो ने ही किया था। असम के चुनावों के खोखलेपन की शल्यक्रिया करने वाले ये समाचार-पत्र ही है। भारत मे प्रजातत्र के छद्म वेश मे राजतन्त्र की स्थापना के प्रति सचेत करने का दायित्व समाचार-पत्र ही वहन किए हुए है। वनस्पति घी मे चर्बी मिलाने के कुत्सित, घृणात्मक षड्यंत्रो को समाचार-पत्रो ने ही उछाला। सचाई तो यह है कि महान् राजनीतिज्ञ और महान् शूरवीर भी समाचार-पत्रों से घबराते हैं। विश्वविख्यात वीर नेपोलियन ने एक बार कहा था—'मैं लाखों विरोधियो की अपेक्षा तीन विरोधी समाचार-पत्रों से अधिक भयभीत रहता हूँ।'

समाचार-पत्र सामाजिक कुरीतियों तथा धार्मिक अंधविश्वासो को दूर करने का भी सुन्दर साधन हैं। अखबार के सम्पादकीय बडे-बडो के मिजाज ठीक कर देते हैं। ये सरकारी नीति के प्रकाशन तथा सरकार की आलोचना का भी सुन्दर साधन है। वास्तव में विचारो को स्पष्ट और सही रूप में प्रस्तुत करने के लिए समाचार-पत्र से अधिक अच्छा साधन और कोई नही है। वर्तमान युग मे विचारों की—बुद्धि की—प्रधानता है। सर्वत्र बुद्धिवाद का ही बोलबाला है। तर्कसम्मत और प्रभावोत्पादक ढग से विचारो को प्रस्तुत करना ही सफलता की कुजी है। इसके लिए समाचार-पत्र सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण साधन है। प्रसिद्ध विचारक श्री हेन ने ठीक ही कहा है—'आजकल हम विचारों के लिए सघर्ष करते है और समाचार-पत्र हमारी किलेबन्दियाँ है।'

समाचार-पत्रों से जहाँ लाभ है, वहाँ हानियाँ भी है। प्रायः समाचार-पत्र किसी-न-किसी सस्था अथवा राजनीतिक-दल से सम्बन्धित होते है। वे कई बार अपनी विचारधारा को जनता में फैलाने के लिए समाचारों को अपने रंग में रँग

कर प्रस्तुत करते हैं, इससे जनता पर अच्छा प्रभाव नहीं पड़ता।

समाचार-पत्र का जन्म सोलहवीं शताब्दी में चीन में हुआ था। 'पीकिंग गजट' विश्व का प्रथम समाचार-पत्र था। अंग्रेजों के आगमन के पश्चात् मुद्रण-कला के विकास के साथ-साथ भारत में भी समाचार-पत्र का प्रारम्भ हुआ। भारत का प्रथम समाचार-पत्र 'इंडिया गजट' था। इसके बाद ईसाई पादरियों ने समाचार-पत्र निकाले। हिन्दी का पहला-पत्र 'उदन्त-मार्तण्ड' ३० मई, १८२६ को प्रकाशित हुआ। यह साप्ताहिक था। तत्पश्चात् राजा राममोहन राय ने 'कौमुदी' और ईश्वरचन्द्र ने 'प्रभाकर' पत्र निकाला। आजकल तो समाचार-पत्रों की बाढ़ आई हुई है।

समाचार-संग्रह का प्रमुख साधन है—टेलीप्रिंटर। समाचार-पत्र-कार्यालयों में लगी ये मशीनें अहर्निश टप टप की ध्वनि में समाचारों को टंकित करती रहती है। टेलीप्रिंटर को संचालित करती है—समाचार-एजेन्सीज। ये समाचार-संग्रह की विश्वव्यापी संस्थाएँ हैं। ये अपने संवाददाताओं द्वारा समाचार-संग्रह करके टेलीप्रिंटर द्वारा समाचार-पत्रों को भेजती है। भारत में चार प्रमुख समाचार-ऐजेंसीज हैं—(१) पी टी आई. (२) यू एन. आई. (३) हिन्दुस्तान समाचार तथा (४) समाचार भारती। इनके अतिरिक्त समाचार-पत्र अपने संवाददाता भी रखते है, जो उन्हें टेलीफून, तार, समुद्री केबिल तथा डाक द्वारा समाचार भेजते रहते हैं।

दैनिक समाचार-पत्र नवीनतम दैनिक समाचारों का दस्तावेज है, तो साप्ताहिक-पत्र साप्ताहिक गतिविधियों के मीमांसक दर्पण। पाक्षिक, मासिक, त्रैमासिक पत्र-पत्रिकाएँ विषय-विशेष के रूप को उजागर करती है। ये विविध रूपा हैं—जैसे साहित्यिक, राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक आदि। विशिष्ट ज्ञानवर्धक सामग्री प्रस्तुत करना इनका ध्येय है।

जैसे-जैसे मानव में ज्ञान के प्रति जागरूकता बढ़ेगी, जीवन और जगत की जानकारी के प्रति जिज्ञासा जागृत होगी, संसार की अद्यतन गतिविधियों के प्रति जल बिन मीन की तरह छटपटाहट होगी, वह 'समाचार-पत्रम् शरणम् गच्छामि' के आन्तरिक उद्घोष को मुखरित करेगा, कार्यान्वित करेगा। □

जन-जागरण और समाचार-पत्र

समाचार-पत्र जन-जागरण का सर्वश्रेष्ठ, सर्वसुलभ, सस्ता तथा सुगम साधन है। समाचार-पत्र के लेखों में जनता पर जादू का-सा प्रभाव पड़ता है। वह बुरे कर्म से सचेत होती है, अच्छी और लाभप्रद बातों का लाभ उठाती है।

जनता को जागरित रखना समाचार पत्रों का कर्तव्य है। जन-जीवन के जागरण की विविध दिशाएँ हैं—सामाजिक, धार्मिक राजनीतिक, पारिवारिक, आर्थिक, व्यापारिक, वैज्ञानिक, साहित्यिक आदि। जनता को विकास-पथ पर अग्रसर होने के लिए सचेत करने को जन-जागरण कह सकते हैं। वस्तुतः समाचार-पत्र जन-जागरण के प्रहरी ही नहीं, मतदाता और मार्गदर्शक भी है।

महाकवि जयशंकर प्रसाद ने जागरण का अर्थ कर्म-क्षेत्र में अवतीर्ण होना माना है। वे लिखते है—'कर्म क्षेत्र क्या है? जीवन-संग्राम।' जनता को जीवन-संग्राम में अवतरित करने में समाचार-पत्र का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसलिए कुछ महापुरुषों ने तो समाचार-पत्रों को 'जनता के शिक्षक' माना है और जे० पार्टन ने उन्हें 'जनता के विश्वविद्यालय' स्वीकार किया है।

भारतीय स्वतन्त्रता-संग्राम में समाचार-पत्रों ने जनता को राजनीतिक कर्त्तव्यों के प्रति जागरूक रखा। परतन्त्रता के युग में अंग्रेजों के दमन-चक्र के विरुद्ध सत्याग्रह के लिए वातावरण तैयार करने एवं अंग्रेजों के विरुद्ध जनाक्रोश उत्पन्न करने में समाचार-पत्रों की भूमिका अविस्मरणीय थी। आपातकाल में इंडियन एक्सप्रेस, वीर अर्जुन, प्रताप आदि पत्रों ने अपने अग्रलेखों से जनता को जागरूक रखा।

किसी भी सरकार की नीतियों के विवेचक समाचार-पत्र ही होते हैं। उनके सम्पादकीय लेख तानाशाही सत्ताधारियों के मिजाज ठीक कर देते हैं। भारतीय शासन में बढ़ते और पनपते भ्रष्टाचार, भाई-भतीजावाद तथा स्वार्थपूर्ति के लिए किए गए कुकर्मों का पर्दाफाश भारत के समाचार-पत्र ही करते रहे। ब्रिटेन में

प्रसिद्ध प्रधानमंत्री डिजरायली का विचार था कि अत्याचारी शासक-वर्ग का सबसे बड़ा शत्रु समाचार-पत्र है। प्रसिद्ध अमेरिकी संवाददाता जैक ऐंडर्सन ने लिखा है, 'समाचार-पत्रों की स्वतन्त्रता एक पहरेदार कुत्ते की तरह है, जो कभी भयंकर रूप धारण कर सकती है और इसकी घ्राणशक्ति हमें उन अलमारियों तक ले जाती है, जिनमें सरकारी, बड़े-बड़े औद्योगिक संस्थानों तथा नेताओं की भयावनी योजनाएँ छिपी रहती हैं।'

अमेरिका के सुप्रसिद्ध 'वाटरगेट कांड', जिसके कारण राष्ट्रपति निक्सन का पतन हुआ, जापान के शक्तिशाली प्रधानमंत्री काकुई तनाका के पतन, इंग्लैंड के मंत्री प्रोफ्यूमा के सेक्स कांड के उद्घाटन का श्रेय समाचार-पत्रों को ही है। इसीलिए विश्वविख्यात वीर नेपोलियन ने एक बार कहा था—'मैं लाखों विरोधियों की अपेक्षा तीन विरोधी समाचार-पत्रों से अधिक भयभीत रहता हूँ।

समाचार-पत्र सामाजिक कुरीतियों का पर्दाफाश कर जनता को उनके विषाक्त परिणाम से अवगत कराते हैं। दहेज की बलिवेदी पर चढ़ने वाली नारियों के समाचारों को प्राथमिकता देने की यही पृष्ठभूमि है। 'कल्याण' ने धार्मिक क्षेत्र में जन-जागरण का जो कार्य किया है और कर रहा है, उसे भारतीय जनता विस्मृत नहीं कर सकेगी। उसमें पारिवारिक जीवन की सुचारुता, शान्ति और प्रगति के लिए लेखों की भरमार रहती है। राष्ट्र की आर्थिक समीक्षा का विश्लेषण करके जनता को सचेत करने में समाचार-पत्र कभी पीछे नहीं रहे। आर्थिक-विकास के साधनों के प्रयोग को समाचार-पत्र प्रकाश में लाते रहते हैं। आर्थिक सचेतन के लिए तो भारत में अब अनेक आर्थिक पत्र छपते हैं। जनता को वैज्ञानिक उन्नति की जानकारी देने एवं उनके हानि-लाभ से परिचित कराने का श्रेय समाचार-पत्रों को ही है। वैज्ञानिक-पत्रिकाओं का उद्देश्य तो मात्र यही है कि जनता वैज्ञानिक प्रयोगों और उनकी आश्चर्यजनक उपलब्धियों से परिचित रहे। जनता जानती है कि अब बड़ी-से-बड़ी बीमारी पर भी विज्ञान ने विजय प्राप्त कर ली है। तपेदिक, कैंसर, हृदय तथा मस्तिष्क रोगों से अब मानव मरता नहीं। इसी प्रकार स्वास्थ्य-रक्षा के साधनों, उसके कार्यक्रमों तथा उपायों की विस्तृत जानकारी देकर ये समाचार-पत्र जनता को जागरित करते रहते हैं।

यद्यपि राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक,

वैज्ञानिक, स्वास्थ्य-सम्बन्धी अनेक पत्रिकाएँ प्रकाशित होती हैं, तथापि मात्र समाचार प्रदान करने वाले दैनिक पत्र भी सप्ताह में एक बार इन विषयों पर विशिष्ट लेख देकर जनता को जागरूक रखने का प्रयास करते हैं।

लोकतंत्री राष्ट्रों में समाचार-पत्र जन-शक्ति का चतुर्थ-स्तम्भ माना जाता है। राजकीय नीतियों ने जहाँ भी जन-विरुद्ध रुख अपनाया, वहीं समाचार-पत्रों ने सम्पादकीयों तथा विशिष्ट लेखों के द्वारा और विपक्षी नेताओं के भाषणों को महत्त्व देकर जनमत को जागृत किया। भारत में समाचार-पत्रो ने ही असम चुनाव का मजाक उड़ाया, पंजाब की साम्प्रदायिकता को उजागर किया, देश मे गिरती कानून और अनुशासन की स्थिति पर प्रहार किया, देश मे आपात स्थिति लगाने वाली सत्ता कांग्रेस (इ) के विरुद्ध १६७७ के महानिर्वाचन में जनमत तैयार किया।

समाचार-पत्र वह जन-शक्ति है, जो जनता के अधिकारो के लिए लड़ती है और उसे कर्तव्यपूर्ति के लिए प्रेरित करती है। सरकार-निर्माण के लिए मतदान के अवसर पर वह प्रत्येक उम्मीदवार, पार्टी या दल की गति-विधियो की शल्य-क्रिया करके उसकी अच्छाई-बुराई को स्पष्ट करती है, ताकि जनता वोट डालते समय जागरूक रहे। राजनीतिज्ञो की धूर्तता के मोह-जाल में न फँस जाए।

इस प्रकार जनता को जागरूक रखने का बहुत बड़ा श्रेय समाचार-पत्रों को है। जनता के अधिकारों के लिए लड़ना और जनता को अपने कर्त्तव्यों के प्रति सचेत करना समाचार-पत्र अपना धर्म समझते है। अत्याचार और अनाचार के विरुद्ध जनता में पांचजन्य का घोष करके उसे क्रांति के लिए प्रस्तुत करने एवं उसे आर्थिक, धार्मिक तथा सामाजिक विद्रोही तत्त्वों से सजग रखने मे ही समाचार-पत्रों की इतिकर्त्तव्यता है।

□

समाचार-पत्र और वर्तमान युग

(दिल्ली १९७९ : 'ए')

समाचार-पत्र का महत्त्व

(ऑल इण्डिया १९८५, ८२ : ए)

समाचार-पत्र वर्तमान युग का दर्पण है, साधारण जनता का शिक्षक है; जनता का विश्वविद्यालय है, जन-जागरण का सर्वश्रेष्ठ, सर्वप्रिय, सस्ता तथा सुलभ साधन है। लोकतन्त्री राष्ट्रों मे समाचार-पत्र जन-शक्ति का चतुर्थ स्तम्भ स्वीकार किया जाता है। यह जन-भावनाओ की अभिव्यक्ति का माध्यम है।

समाचार-पत्र वर्तमान-युग की 'बैड टी' है। जिस प्रकार बिना 'बैड टी' के आज का सभ्य नागरिक बिस्तर से नीचे पग नही रखता, उसी प्रकार मानसिक अल्पाहार के लिए 'समाचार-पत्र' पढे बिना उसे चैन नहीं पड़ता। कुछ लोग प्रात. उठकर दर्पण मे अपना मुँह देखते हैं, कुछ हथेलियों के माध्यम से आत्म-दर्शन करते है, उसी प्रकार आज का शिक्षित नागरिक समाचार-पत्र रूपी दर्पण मे दिव्य-दर्शन किए बिना सन्तुष्ट नही हो पाता। वर्तमान-युग में समाचार-पत्र का इससे बढकर महत्त्व क्या होगा कि प्रात काल उसके दर्शनो के अभाव मे मनुष्य ऐसे तड़पता है, जैसे जल के बिना मछली।

भारतीय संस्कृति का उद्घोष है, 'वसुधैव कुटुम्बकम्।' इसके कार्यान्वयन का सत्य रूप प्रकट किया समाचार-पत्रों ने। समाचार-पत्र विश्व के समाचारों का सग्रह है, ससार की गति-विधि का आईना है। वह वसुधा के समाचारों को जन-जन तक पहुँचाना अपना लक्ष्य मानता है। इस प्रकार समाचार-पत्र वर्तमान युग के ज्ञान-वर्धन का माध्यम है; जनता का विश्वविद्यालय है। इसीलिए आज-कल लड़ाई का मैदान कुरुक्षेत्र, मिश्र या ईरान कभी-कभी ही होता है। समाचार-पत्रों ने इनका स्थान ले लिया है। वे दैनन्दिन अपने नेताओं, राष्ट्र और राज्य की कटु आलोचना करते हुए अग्निवर्षा करने मे नही चूकते।

समाचार-पत्र वर्तमान युग के लोक-तान्त्रिक राष्ट्रों में जन-शक्ति का महान् प्रवक्ता है, जन-भावनाओं की अभिव्यक्ति का माध्यम है, राष्ट्र के कर्णधारों के बहरे कानों में जनता की आवाज फूंकने वाला पाचजन्य है। भारत के सूखा-पीड़ितों की बेहाली, जन-असुरक्षा की घटनाओं, चोरी, डाके, बलात्कार, हरिजनों पर हुए अत्याचारों तथा पीड़ित जनता की चीत्कार को आन्दोलित कर भारत के समाचार-पत्रों ने सरकार को झकझोर डाला है।

समाचार-पत्र वर्तमान युग में जन-जागरण का प्रहरी है। एक सजग प्रहरी की भाँति समाचार-पत्र समाज पर कड़ी दृष्टि रखते हैं। वे हमें अपनी दिव्य दृष्टि एव तीव्र सूझ-बूझ के माध्यम से उन आलमारियों तक ले जाते हैं, जिनमे सरकारों, बड़े-बड़े औद्योगिक संस्थानों तथा स्वार्थी नेताओं की भयावनी योजनाएँ छिपी रहती है। अमेरिका के सुप्रसिद्ध 'वाटरगेट काड', जापान के शक्तिशाली प्रधानमन्त्री काकुई तनाका के पतन, इंग्लैण्ड के मन्त्री प्रोफ्यूमा के सेक्स काड, इजराइली मन्त्री का मोरारजी-वाजपेयी से मिलन आदि के समाचारों का प्रकाशन समाचार-पत्रों द्वारा जन-जागरण के ज्वलन्त प्रमाण है। इसलिए विश्वविख्यात वीर नैपोलियन ने कहा था, 'मैं लाखो विरोधियो की अपेक्षा तीन विरोधी समाचार-पत्रों से अधिक भतभीत रहता हूँ।'

वर्तमान युग मे समाचार-पत्र ही जनमत तैयार करने का सबसे सुलभ साधन है। प्रकाशित समाचारों, अग्रलेखों और सम्पादकीय-टिप्पणियो मे जनता की विचार-धारा को मोडने और दृष्टिकोण को बदलने की महान् शक्ति होती है। खतरे की घंटी को बजा-बजाकर समाचार-पत्रों ने आपातकाल की ज्यादतियों एवं संजय-राजनारायण-चरणसिंह की विभेदक नीतियों के प्रति क्षोभ उत्पन्न किया। रूस के अधिनायकवादी रवैये पर समाचार-पत्र ही टिप्पणियाँ लिख-लिखकर जनता को सही बात समझाने की चेष्टा कर रहे हैं।

सामाजिक बुराइयों, धार्मिक प्रवञ्चना, राजनीति के छल-छन्द, राजकीय चक्रव्यूह, आर्थिक दुरवस्था तथा समाज-द्रोही तत्त्वों के दुष्कृत्यों की पोल खोलने, उनसे बचने, सचेत रहने तथा विपत्ति पड़ने पर किसी ढंग मे निकलने की शिक्षा देने का दायित्व भी आज का समाचार-पत्र ही वहन करता है। कुरीतियों, कुप्रथाओं, कुसंस्कारो के ववाद मे समाचार-पत्र वर्तमान युग की किलेबन्दियाँ हैं।

वर्तमान युग विज्ञापन का युग है। किसी वस्तु, भाव या विचार को विज्ञापन द्वारा प्रसिद्ध किया जा सकता है, उसे प्रधानता दिलाई जा सकती है। समाचार-पत्र विज्ञापन का एक बड़ा साधन है। इसमे प्रकाशित विज्ञापन पढ़े जाते हैं। ये विज्ञापन पाठक पर अपना प्रभाव भी छोड़ते हैं। इसीलिए व्यापारी वर्ग विज्ञापन के लिए समाचार-पत्रों का सहारा लेकर व्यापार की वृद्धि करते हैं। दूसरी ओर, अपने विचारों के प्रचार और प्रसार के लिए राजनीतिक, सामाजिक तथा धार्मिक संस्थाएँ अपने-अपने अखबार निकालती है। समाचार-पत्र योग्य वर या वधू, काम के लिए उपयुक्त कर्मचारी, कार्यालय या निवास के लिए उचित स्थान की खोज का श्रेष्ठ एवं सरल साधन बन गए है।

वर्तमान युग में नवोदित लेखकों, कवि-कवयित्रियों को प्रकाश मे लाने का श्रेय भी समाचार-पत्रों को ही है। उनके लेखों का मानदण्ड जनता का हृदय है। अपरिचितों को जनता उनके लेखों के माध्यम से आँखों पर बैठाती है, श्रद्धा-सुमन चढ़ाती है। यश के साथ-साथ समाचार-पत्र आय का साधन भी है। लेखक को लेख का पारिश्रमिक मिलता है, कवि-कवयित्री को अपनी प्रकाशित कविता के लिए 'दक्षिणा' प्राप्त होती है।

इन सबसे बढ़कर समाचार-पत्र वर्तमान युग मे करोड़ो लोगो की आजीविका का साधन है। समाचार-पत्रों के कार्यालय मे कार्यरत कर्मचारी, सम्पादक वर्ग, सम्वाददाता, समाचार-एजन्सियों के कर्मचारी आदि लाखों लोग समाचार-पत्रों से अपनी रोजी-रोटी चलाते है, धन उपार्जन करते है।

वर्तमान युग में समाचार-पत्र के बिना जीवन अन्धकारपूर्ण है, मानव को बैलगाड़ी के युग में धकेलने का प्रयास है। किसी कवि ने ठीक ही कहा है—

इस अँधियारे विश्व में, दीपक है अखबार।
सुपथ दिखावे आपको, आँख करत है चार।।



सिनेमा (चलचित्र)

(ऑल इण्डिया १९८१ : 'ए')

चलचित्र वर्तमान युग का एक जन-प्रिय आविष्कार है। ध्वनि और चित्र का अद्भुत संगम है। मनोरंजन का शक्तिशाली, किन्तु सस्ता साधन है। वर्तमान सभ्यता का महत्त्वपूर्ण अंग है। जन-जन की इच्छा का मूर्त रूप है।

सिनेमा लोकप्रियता के शिखर पर है। ऐडवांस बुकिंग, टिकट-घर पर लम्बी लाइनें, 'हाउस फुल' के बोर्ड, टिकटों की ब्लैक, सिनेमा-प्रियता के प्रमाण हैं इसके कर्णमधुर गीत सुनने के लिए लोग ट्रांजिस्टर और रेडियो को 'ऑन' रखते हैं। 'चित्रहार' और 'चित्रमाला' मे गीत सुनने और दृश्य देखने के लिए टेलीविजन पर धरना देकर बैठते हैं। आज के शिशु को भी सिनेमा-गीत गाते सुना जा सकता है। युवक-युवतियों का सिनेमा स्टाइल में बाल रखना, वेशभूषा अपनाना तथा बात-चीत करना तो आम बात हो गई है।

चित्रपट पर चलचित्र दिखाने का वैज्ञानिक ढंग है। प्रोजेक्टर के ऊपर और नीचे दो चरखियाँ लगी होती हैं और एक आर्कलैम्प लगा होता है. जो रोशनी फेंकता है। ऊपर की चरखी पर उल्टी फिल्म लगाई जाती है। मशीन चलाने पर ऊपर की चरखी से फिल्म नीचे की चरखी में लिपटती जाती है। जब फिल्म प्रोजेक्टर के उस भाग के सामने आती है, जहाँ प्रकाश बाहर निकलता है, तब वहाँ कुछ क्षण रुकती है। फिल्म के पीछे एक कटा हुआ पहिया घूमता रहता है। जैसे ही फिल्म वहाँ रुकती है, वैसे ही पहिये का कटा हुआ भाग उसके पीछे आ जात है। इसमें से होकर तेज रोशनी फिल्म पर पड़ती है। यह प्रकाश फिल्म में से होकर प्रोजेक्टर के लैंस में से गुजरता है और चित्र सामने दिखाई देता है। पर्दे के पीछे लगे लाउडस्पीकर ध्वनि उत्पन्न करते हैं। इस प्रकार चित्रपट पर चित्र और ध्वनि का संगम बनता है।

चलचित्र का आविष्कार अमेरिका में हुआ। सर्वप्रथम वाशिंगटन-निवासी टामस आर्नाट ने सन् १८५६ ई० में सिनेमा-यन्त्र तैयार किया था। परिष्कृत यन्त्रों से युक्त आधुनिक सिनेमा दिखाने की मशीन सन् १९०५ में तैयार हुई। तत्पश्चात् इग्लैण्ड, फ्रांस आदि में इसका प्रचार हुआ। भारत मे १८९७ मे मे प्रथम लघु फिल्म बनी। सन् १९३१ मे 'आलमआरा' बनी। यह प्रथम सवाक् चित्र था। अब तो सिनेमा ने भी अकथनीय तरक्की कर ली है। हर प्रकार के दृश्य उनमे देखिए। जिस दृश्य को साक्षात् देखकर मानव-मन दहल उठता है, उसको आप वहाँ पाएँगे। रग-बिरंगे चित्र देखिए और साथ ही सुनिए श्रुतिमधुर गीत।

सिनेमा जहाँ मनोरजन का साधन हैं, वहाँ शिक्षा व प्रचार का भी सर्वश्रेष्ठ साधन है। भूगोल, इतिहास और विज्ञान जैसे शुष्क विषयों को अमेरिका और यूरोपीय देशो मे चलचित्रो द्वारा समझाया जाता है।

समाज को सुधारने मे चित्रपट का पर्याप्त हाथ है। सामाजिक कुरीतियो को दूर करने मे सहस्रो प्रचारक जो काम न कर सके, वह चलचित्र ने कर दिखाया। 'बॉबी', 'प्रेमरोग', 'आँधी', 'जागृति', 'चक्र', 'आक्रोश', 'फिर भी' आदि फिल्मो ने समाज पर अपना प्रभाव स्थापित किया है।

इसी भाँति पौराणिक और धार्मिक चलचित्र हमारे पुरातन इतिहास को सम्मुख लाकर धर्म के प्रति जनता की श्रद्धा बढ़ाने का यत्न करते है, तो राष्ट्रीय चलचित्र देश के प्रति मर-मिटने की भावना जाग्रत करते हैं। 'झाँसी की रानी', 'शहीद', 'भगतसिंह', 'गाँधी' आदि चित्रों को इसी श्रेणी में रखा जा सकता है।

भारत सरकार के सूचना-विभाग की ओर से प्रत्येक छविगृह मे १०-१५ मिनिट तक संसार मे घटित गत सप्ताह की गतिविधियो के चल-चित्र दिखाए जाते हैं। कई बार इनके स्थान पर सरकार विभिन्न योजनाओं की प्रगति के दृश्य, भारत के ऐतिहासिक स्थानो की झाँकी, देश मे शिक्षा की प्रगति, बाढ़ रोकने के उपाय आदि अनेक शिक्षाप्रद फिल्मे भी दिखाती है। इन फिल्मों के द्वारा जहाँ मनोरजन होता है, वहाँ ज्ञानवर्धन भी होता है। साथ ही हम अनेक ऐसे दृश्यों को भी देख पाते है, जिनको जीवन में देख पाना कठिन ही नहीं असम्भव भी है।

सिनेमा व्यापार के प्रचार का भी साधन है। बड़ी कम्पनियों का विज्ञापन

एक रील में दिखाया जाता है, तो छोटी व्यापारिक संस्थाओ की स्लाइडे दिखाई जाती हैं। इससे व्यापार की उन्नति होती है।

सिनेमा से जहाँ इतने लाभ है, वहाँ हानियाँ भी बहुत है। ठीक भी है, जहाँ फूल होगे, वहाँ काँटे भी अवश्य होंगे। आज भारत मे अधिकाश चित्र नग्न-प्रेम और अश्लील वासना-वृत्ति पर आधारित होते हैं। इनसे जहाँ नवयुवको के चरित्र का अध.पतन हुआ है, वहाँ समाज में व्यभिचार और अश्लीलता भी बढ़ गई है।

दूसरे, आजकल सिनेमाओं में जो गाने चलते हैं, वे प्राय अश्लील और वासनात्मक प्रवृत्तियों को उभारने वाले होते हैं, किन्तु उनकी लय और स्वर इतने मधुर होते है कि आज तीन-तीन और चार-चार वर्ष के बच्चो से भी आप वे गाने सुन सकते है।

तीसरे, समाज मे आए-दिन नए-नए फैशन का रोग फैलाने की जड भी सिनेमा ही है। सिनेमा के अभिनेता जिस रूप में दिखाई देते है, नवयुवक वर्ग उसका अन्धानुकरण करने के लिए उतावला हो उठता है। परिणामत नए फैशन छूत की बीमारी की तरह फैलते चले जाते है।

चौथे, अधिक सिनेमा देखने से तीन हानियाँ होती है—(१) सिनेमा की तेज रोशनी से आँखो पर बुरा प्रभाव पडता है। (२) धन और समय का अपव्यय होता है। (३) पैसा न मिलने पर उसकी प्राप्ति के लिए चोरी आदि बुरे काम करने की आदत पडती है।

इन सब बुराइयों के होते हुए भी सिनेमा एक लाभप्रद आविष्कार है। इतना अवश्य ध्यान रखना होगा कि हमें सामाजिक दृष्टि से सार्थक, सास्कृतिक दृष्टि से प्रामाणिक, कला की दृष्टि से सन्तोषप्रद और शिल्प की दृष्टि से चमत्कारी फिल्में बनानी चाहिएँ; तभी सिनेमा शिक्षा और मनोरजन का सर्वश्रेष्ठ साधन सिद्ध हो सकेगा।

▭

समाज पर चलचित्रों का प्रभाव

(दिल्ली १९७९ : 'ए')

सिनेमा मनोरंजन का सस्ता, किन्तु प्रभावशाली साधन है। बड़े गाँवों तथा कस्बों तक में सिनेमाघर का होना इसकी लोकप्रियता का प्रमाण है। नगरों तथा महानगरों मे तो अनेक सिनेमाघर होते हैं, तब भी हाल यह होता है कि टिकट आसानी से नही मिल पाती। टिकटें ब्लैक में बिकती हैं। नई फिल्मों की टिकटों के लिए तो अगाऊ बुकिंग करवानी पड़ती है। जब टेलीविजन पर पिक्चर आती है, तब क्या बच्चे, क्या बूढ़े कमरे मे बन्द होकर पिक्चर का आनन्द ले रहे होते हैं।

समाचार-पत्र और साप्ताहिक-पत्रों मे सिनेमा की चर्चा न हो तो अखबार की बिक्री कम हो जाए। अनेक मासिक-पत्र तो केवल सिनेमा पर ही जीवित हैं। अभिनेता या अभिनेत्री का रंगीन चित्र मुख-पृष्ठ पर छापते हैं। आजकल सिनेमा की अभिनेत्रियाँ और अभिनेता हमारे लिए पूजा के पात्र बन गए है। लोग उनके चित्र अपने कमरे मे लगाते है, पर्स मे रखते हैं। उनकी ऐक्टिंग एवं डायलॉग्स का अनुकरण करते हैं।

जहाँ दो युवा या युवतियाँ मिली, वही पिक्चर, अभिनेता तथा अभिनेत्री, उनके प्रेम-सम्बन्ध किस-किस से है और रेखा का किस-किस से रोमांस चल रहा है, दिलीप कुमार किस ढंग से बाल बनाता है, राजकपूर ने कितनी नायिकाओं को शिखर पर चढा दिया—आदि बातें ही चर्चा के विषय होते है।

अब आइए सिनेमा के गानों पर, कितने कर्णप्रिय है कि बार-बार सुनने पर भी मन नही भरता। रेडियो भिन्न-भिन्न स्टेशनों से सिनेमा-गीत सुनाता है, पर जनता की फरमाइश कम नहीं होती। इसके अतिरिक्त धार्मिक सम्मेलन हो या चुनाव की सभा अथवा शादी का मंगल-कार्य, सभी में सिनेमा-गीतों के रिकार्ड बजते हुए सुनाई देते है।

आज जीवन में सिनेमा ने अपना विशिष्ट स्थान बना लिया है। संक्रामक रोग के कीटाणुओं की तरह यह हमारे समाज में बुरी तरह घर कर गया है।

वर्तमान काल में सिनेमा ने युवक-युवतियों के चरित्र भ्रष्ट कर दिए हैं। उनमे गन्दी आदतें डाल दी है। सिनेमा मे प्रदर्शित अर्धनग्न शरीरो का प्रदर्शन, कामुक हाव-भाव, प्रेम-सम्बन्धों के अश्लील और भोड़े दृश्य, वक्षस्थल का कृत्रिम उभार, नृत्यों में कामुक दृश्य समाज में कैंसर रोग उत्पन्न कर रहे हैं। सिनेमा देख-देखकर समाज वासना से ग्रस्त होता जा रहा है। सरेआम लड़कियों को छेड़ा जाना, गन्दे कर्णमधुर गीतों के माध्यम से उन पर आवाजें कसना, वासनापूर्ति के लिए अनाप-शनाप पैसे खर्च करना, सिनेमा की ही देन है। आज के युवक-युवतियाँ सिनेमा-स्टाइल पर बाल बनवाने, कलमें रखने, कपड़े पहनने और साड़ी बाँधने में गौरव अनुभव करते हैं। लड़कियाँ टेलर को कहती हैं कि अमुक पिक्चर में अमुक सीन में नायिका ने जो सूट पहना है, वैसा ही सूट चाहिए।

शराब, चोरी, डाका, धोखा और दु साहसिक कुकृत्यो के दृश्यों को देखकर समाज में ये भावनाएँ पहले की अपेक्षा बहुत बढ गई हैं। नशे की आदत आज के समाज को चौपट कर रही है। सम्पन्न परिवार के युवक सिनेमा-स्टाइल पर चोरी करते हैं, डाके डालते हैं; सिनेमा-स्टाइल पर अपराधपूर्ण कृत्य करते हैं। बात-बात मे चाकू निकाल लेना तो फैशन बन गया है।

देश के विभिन्न भागों से युवक-युवतियाँ घर से भाग कर बम्बई पहुँचती हैं—धर्मेन्द्रकुमार और हेमामालिनी बनने। कितने अपने लक्ष्य को प्राप्त कर पाते हैं ? उत्तर है अँगुली पर गिने जाने योग्य। शेष तो अपना जीवन बरबाद कर लेते हैं। वेश्या से बुरी हालत युवतियो की होती है और वेटरो से अच्छी हालत युवको की नही रहती।

सिने जगत के प्रभाव से भारत में 'प्रेम-संस्कृति' का जन्म हुआ है। नारी के प्रति 'मातृवत् पर दारेषु' की भारतीय संस्कृति की मान्यता विलुप्त हो रही है। आज का पुरुष हर नारी में, चाहे वह आयु मे छोटी हो या बहुत बड़ी, प्रेम-रोग के दर्शन करना चाहता है। इसी 'प्रेम-संस्कृति' की उपज है 'गर्ल फ्रेन्ड' तथा 'बॉय फ्रेन्ड' का प्रचलन। यही कारण है कि पति-पत्नी के सम्बन्धों में

शिथिलता आ रही है। तलाक के केसों से न्यायालय व्यस्त हैं, त्रस्त हैं। भाई-बहनों, देवर-भाभियों के सम्बन्धों में विकृति आ रही है। सालियों की तो बात ही छोड़िए। कहाँ तक है पतन की सीमा। सिनेमा जो न प्रभाव दिखाए, थोड़ा है।

मानव-मन अच्छी चीजें ग्रहण नहीं करता। बुरी बातों पर झपट्टा मारता है। उसको जीवन में आत्मसात् करने की चेष्टा करता है। सिनेमा की विकृतियों को जीवन में ओढ़ने के पीछे मानव का यही मनोविज्ञान काम कर रहा है। अन्यथा सोचिए; गरीबी के अभिशाप को जब परदे पर दिखाया जाता है, तो कितने मनुष्यों ने गरीबों की सेवा कर उन्हें इस अभिशाप से मुक्ति दिलाने का प्रयत्न किया? पेट की ज्वाला को शान्त करने के लिए नारी किस प्रकार बदमाशों के चंगुल में फँसती है, यह दृश्य देखकर कितने लोगों ने नारी को निस्वार्थ भाव से नौकरी दिलवाने में सहायता की, ताकि वह बदमाशों के चंगुल में न फँसे। राष्ट्रीय चित्र देखकर कितने लोगों में वीरता, धीरता या देशभक्ति के गुण जागृत हुए? समाज जनसंख्या-वृद्धि और दहेज एवं बलात्कार जैसी बुराइयों के कारण परेशान है, विक्षुब्ध है। कितने चलचित्र-प्रेमियों ने परिवार-नियोजन किया? कितने युवक-युवतियों ने बिना दहेज शादी की?

इस प्रकार चलचित्रों का प्रभाव वातावरण को दूषित करने, विषैला बनाने तथा उसका कुत्सित रूप उभारने में ही अधिक प्रभावी सिद्ध हुआ है।

□

रेडियो (आकाशवाणी)

रेडियो इस युग की लोकप्रिय देन है। विद्युत् चुम्बकीय तरंगों का क्रांतिकारी चमत्कार है। मनोरंजन और ज्ञानवर्धन का श्रेष्ठ साधन है। वर्तमान समाज की आवश्यकता-पूर्ति का माध्यम है।

आधुनिक काल में रेडियो के आविष्कार का श्रेय इटली निवासी श्री मारकोनी को है। इन्हीं दिनों इस दिशा मे भारत के महान् वैज्ञानिक श्री जगदीशचन्द्र बसु ने भी काफी प्रयत्न किए थे।

रेडियो ध्वनि-प्रसार का यंत्र है। यह बिना तार एक स्थान की आवाज को दूसरे स्थान तक पहुँचाने का काम करता है। बिजली द्वारा आकाशवाणी केन्द्र से ध्वनि को बिजली की लहरों मे परिणत कर दिया जाता है। ये विद्युत् चुम्बकीय तरगे सारे आकाश मे फैल जाती हैं। आकाश मे फैली हुई उन लहरो को रेडियो एरियल द्वारा तुरन्त पकड लेता है।

ध्वनि-तरगे तीन रूप मे प्रसारित होती हैं—छोटी तरगे, मध्य तरंगे तथा लम्बी तरंगे। इसी के अनुसार रेडियो भी तीन प्रकार के होते हैं—स्थानीय (Local), अखिल भारतीय (All India) और समस्त विश्व मे सम्बन्धित (All World) स्थानीय रेडियो पर केवल स्थान-विशेष के आकाशवाणी-केन्द्र द्वारा प्रसारित ध्वनि ही सुन सकते है, अखिल भारतीय रेडियो द्वारा सम्पूर्ण भारत के आकाशवाणी-केन्द्रो की ध्वनि सुन सकते है और ससार-रेडियो द्वारा ससार भर के प्रमुख आकाशवाणी-केन्द्रों की ध्वनि सुनी जा सकती है। रेडियो की मशीन मे ऐसी व्यवस्था होती है कि श्रोता अपनी इच्छानुसार किसी भी आकाशवाणी-केन्द्र से प्रसारित होने वाले कार्यक्रम को सुन सकते हैं।

अब रेडियो ने अपनी उन्नति का एक पग और बढ़ाया है। रेडियो से हम देश-विदेश की बातें तो सुनते थे, किन्तु बोलने वाले का चित्र नही देख पाते थे। यह कमी टेलीविजन के आविष्कार ने दूर कर दी।

रेडियो समाचार-प्रसारण का प्रमुख साधन है। इससे प्रतिदिन देश-विदेश-प्रसारण सेवा मे २२४ समाचार बुलेटिन प्रसारित होते है। इनमे ६८ बुलेटिन, जो १६ भाषाओ मे होते हैं, दिल्ली से गृह-सेवा में प्रसारित किए जाते है। इनके अतिरिक्त राज्यों, विकासात्मक कार्यों और खेल-जगत् से सम्बन्धित अनेक समाचार बुलेटिन प्रसारित होते हैं। 'धीमी गति के बुलेटिन, आधा घंटे तक दिल्ली से हिन्दी और अंग्रेजी में तथा श्रीनगर से उर्दू मे प्रसारित होते हैं। दिल्ली तथा प्रादेशिक केन्द्रों से 'लोकरुचि समाचार बुलेटिन' हिन्दी तथा अन्य प्रादेशिक भाषाओ में प्रसारित होते हैं।

रेडियो समाचार-प्रसारण का सरलतम एव द्रुतगामी साधन है। वायुयान जलयान, पुलिस तथा गुप्तचर एजेन्सीज अपने समाचारो को अभीष्ट स्थान तक रेडियो द्वारा ही तुरन्त भेज पाते हैं। आकाश मे उड़ता जहाज, समुद्र में दौड़ता यान विपत्ति पड़ने पर बाढ़ से घिरे लोग, युद्धभूमि मे बिछुड़े सैनिक, जगल पहाड़ों मे भटक गए यात्री रेडियो द्वारा शेष ससार को अपनी मुसीबत बता पाते हैं।

रेडियो मनोरजन का भी सशक्त और प्रमुख साधन है। शास्त्रीय और सुगम संगीत के बहुत अधिक कार्यक्रम प्रसारित होते है। जनता मन्त्रमुग्ध हो इन गानों के सगीत, स्वरलहरी तथा बोल मे खो जाती है। इतना ही नही सैनिकों के लिए यह कार्यक्रम 'जयमाला' के अन्तर्गत प्रतिदिन उनके अनुरोध गीत सुनाता है।

रेडियो से प्रसारित नाटक, एकांकी, प्रहसन, नृत्य, लोकनृत्य, प्रायोजित कार्यक्रम, हास्य वार्ताओं द्वारा जनता का सशक्त मनोरंजन होता है। विविध भारती तो रात्रि ९.१५ पर प्रतिदिन प्रहसन-एकांकी प्रसारित करता है, तो ९, ३० से १० बजे तक प्रायोजित कार्यक्रम। इनके अतिरिक्त कवि-सम्मेलन, हॉकी, क्रिकेट की कॉमेन्ट्री इतना आनन्द प्रदान करती है कि लोग काम करते-करते भी ट्रांजिस्टर को कान से लगाए रहते है।

रेडियो शिक्षा-प्रसार का भी महत्त्वपूर्ण साधन है। रविवार और अवकाशीय दिवसों को छोड़कर प्रतिदिन दिल्ली से पाठ्य-पुस्तको के पाठो को समझाया जाता है। जो पाठ बच्चा कक्षा मे ठीक से हृदयंगम नही कर पाता, उसे रेडियो के माध्यम से समझ लेता है।

टेलीविजन (दूरदर्शन)

(ऑल इंडिया १६७८, ८१ : 'ए')

'टेलीविजन' (Television) अंग्रेजी के दो शब्दों 'Tele' और 'vision' से मिलकर बना है। Tele का अर्थ है 'दूर' और vision का अर्थ है 'देखना' अर्थात् 'दूरदर्शन'। विज्ञान के जिन चमत्कारों ने मनुष्य को आश्चर्यचकित कर दिया है, उनमें टेलीविजन भी मुख्य है। इस यन्त्र के द्वारा दूर के स्थान से प्रसारित ध्वनि चित्र सहित दर्शक के पास पहुँच जाती है।

'टेलीविजन' की कला रेडियो की कला का विकास है। रेडियो में हम दूर देशों तक ध्वनि-प्रसार कर सकते हैं, किन्तु टेलीविजन में यह विशेषता है कि बोलने वाले का चित्र भी दूर स्थान पर दिखाई देता है। इससे प्रत्यक्ष दर्शन में सहायता मिलती है तथा सारी बात स्पष्ट रूप से सामने आ जाती है।

महाभारत में एक प्रसंग आता है कि धृतराष्ट्र ने संजय से घर बैठे युद्ध-क्षेत्र का आँखोंदेखा हाल सुना था। रेडियो के आविष्कार से पूर्व लोग इस बात पर विश्वास नहीं करते थे, किन्तु अब प्रतीत होता है कि सम्भवतः दूरदर्शन जैसा यंत्र महाभारत काल में रहा होगा, जो प्राचीन भारतीय सभ्यता के ह्रास होने के साथ-साथ ही समाप्त हो गया हो।

भारत में 'टेलीविजन' का आगमन कुछ वर्ष पूर्व दिल्ली में आयोजित एक प्रदर्शनी में हुआ था, किन्तु इसका विधिवत् प्रबन्ध तब न हो सका। वस्तुतः हमारे देश में टेलीविजन का आगमन १५ सितम्बर १६५६ से ही समझना चाहिए, जबकि हमारे तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ०राजेन्द्रप्रसाद ने आकाशवाणी के टेलीविजन विभाग का उद्घाटन किया था। तब से अब तक भारत के अनेक प्रांतों की राजधानियों में टेलीविजन केन्द्र स्थापित हो चुके हैं तथा अन्य अनेक बड़े नगरों में दूर-दर्शन टावर स्थापित हो चुके हैं।

प्रगति का एक पग और बढ़ा। १ अगस्त, १६७५ से अमेरिकी उपग्रह-द्वारा

भारत में ६ राज्यों के २४०० गाँवों की २५ लाख जनता दूरदर्शन से लाभान्वित हुई।

१५ अगस्त, १९८२ को भारतीय उपग्रह 'इन्सेट-१ ए' के माध्यम से विभिन्न दूर-दर्शन केन्द्रों में एक ही कार्यक्रम दिखाना सम्भव हुआ। दूसरी ओर 'इन्सेट-१ बी' उपग्रह के सफल स्थापन के बाद सितम्बर, १९८३ से न केवल भारत के विभिन्न दूरदर्शन-केन्द्रों में तालमेल स्थापित हो सका, अपितु देश के कोने-कोने में बसे हुए गाँव भी दूर-दर्शन कार्यक्रम से लाभान्वित होने लगे।

दूरदर्शन विश्व में घटित होने वाली घटनाएँ, कार्यक्रम एवं विविध प्रसंग सब कुछ घर बैठे दिखाता है। 'जहाँ न पहुँचे रवि, वहाँ पहुँचे दूरदर्शन।' हिमालय-अभियान देखने आप जा नहीं सकते, राष्ट्रमंडलीय देशों अथवा गुटनिरपेक्ष देशों के सम्मेलन आपके प्रवेश के लिए वर्जित है, फिल्मी सितारों, कवि-सम्मेलनों, फैशन-शो के रंगारंग कार्यक्रम में आप शामिल नहीं हो सकते, कारण उनके टिकट बहुत मँहगे हैं, तो स्विच ऑन कीजिए। और घर बैठे देखिए इन सब कार्यक्रमों को दूरदर्शन के माध्यम से।

दूरदर्शन से अनेक झंझट मिटे। आने-जाने का समय बचा और कष्ट भी दूर हुआ। वाहन की खोज खत्म हुई, टिकटों की चिंता मिटी, अड़ोस-पड़ोस में बैठे दर्शक की हील-हुज्जत खत्म हुई और सबसे अधिक बचत हुई धन की।

दूरदर्शन मन को साधने का व्यायाम है, एकाग्रचितता का अभ्यास है। कार्यक्रम देखते हुए हृदय, नेत्र और कर्ण की एकता दर्शनीय है। जरा-सा भी व्यवधान साधक को बुरा लगता है। दूरदर्शन के दर्शक को बेचैन कर देता है, क्रोधित कर देता है।

दूरदर्शन मनोरंजन, ज्ञानवर्धन, शिक्षा तथा विज्ञापन का सुलभ और सशक्त माध्यम है। फीचर फिल्में, चित्रहार, चित्रमाला, नाटक-एकांकी-प्रहसन, लोक-नृत्य-संगीत, शास्त्रीय-नृत्य-संगीत, सरकस, अंग्रेजी धारावाहिक हास्य फिल्में, ये सभी दूरदर्शन के मनोरंजक कार्यक्रम ही तो हैं। ये दिनभर के थके-हारे मानव के मन को गुदगुदा कर स्वस्थ और प्रसन्न करते हैं, स्फूर्ति और शक्ति प्रदान करते हैं।

जीवन और जगत के विविध पहलुओं के कार्यक्रम दर्शक का निःसंदेह ज्ञानवर्धन करते हैं। 'बातें फिल्मों की' कार्यक्रम जहाँ फिल्म-जगत की पूरी जानकारी

देता है, वहाँ 'विज्ञान-जगत' के अन्तर्गत वैज्ञानिक प्रगति का सूक्ष्म-परिचय भी देता है। टेलीविजन द्वारा शरीर के कष्टों से मुक्ति दिलाने के लिए डॉक्टरी सलाह दी जाती है, तो कानून की पेचीदगियों को समझाने के लिए कानून की शल्य-क्रिया की जाती है। प्रकृति के रहस्य, समुद्र की अतल गहराई, नभ की अनन्तता, विदेश का सर्वांगीण परिचय, भारत की कला एवं संस्कृति की विविधता की जानकारी, सभी ज्ञानवर्धन के कार्यक्रम हैं।

विश्व में घटने वाली घटनाओं को जब हम अपनी आँखों से देखते हैं, तो विश्वसनीयता बढ़ती है, आत्म-विश्वास जागृत होता है। नेताओं की स्वदेश-विदेश-यात्रा, विश्वनेताओं का भारत-आगमन, रेल-बस-एक्सीडेंट, एअर-क्लैश, धार्मिक-सामाजिक समारोह, जलसे जलूस-भाषण, खेल-मैच, २६ जनवरी की परेड, १५ अगस्त को लालकिले का कार्यक्रम जब हम देखते हैं, तो लगता है, ये सब हमने खुले नेत्रों से देखे हैं, फिर संशय क्यों?

शब्द ज्ञान से दृश्य ज्ञान अधिक प्रभावशाली होता है, यह नैसर्गिक सिद्धान्त है। सुनी हुई, पढ़ी हुई, रटी हुई बात हम कालान्तर में भूल सकते हैं, किन्तु देखी हुई बात को भूल पाना आसान नहीं। मन के चित्रपट से उतारना सरल नहीं। दूरदर्शन क्योंकि दृश्य और ध्वनि का संगम है, इसलिए इसके माध्यम से दी गई शिक्षा अधिक प्रभावकर सिद्ध होगी। दिल्ली-दूरदर्शन से आधा-आधा घण्टे का नियमित शिक्षा कार्यक्रम इसका प्रमाण है।

व्यापार की समृद्धि प्रचार पर निर्भर है। वस्तु विशेष का जितना अधिक प्रचार होगा, उतनी ही अधिक उसकी माँग बढ़ेगी। दूरदर्शन प्रचार का श्रेष्ठ माध्यम है, वस्तु-विशेष की माँग पैदा करने का उत्तम उपाय है। दूरदर्शन के विज्ञापन दर्शक के हृदय पर अमिट छाप छोड़ जाते हैं, जो जरूरतमन्द को वस्तु-विशेष खरीदते समय प्रचारित वस्तु खरीदने के लिए प्रेरित करते हैं।

जैसे-जैसे मानव की व्यस्तता बढ़ेगी, मानसिक तनाव बढ़ेंगे, जीवन में मनोरंजन की अपेक्षाएँ बढ़ेंगी, वैसे-वैसे दूरदर्शन अपने में गुणात्मक सुधार उत्पन्न कर मनोरंजन का सशक्त साधन सिद्ध होता जाएगा।

□

टेलीविजन : लाभ और हानियाँ

(दिल्ली १६८१ : 'बी')

टेलीविजन मनोरजन का एक सशक्त साधन है। दिन-प्रतिदिन विश्व मे घटने वाली घटनाओं का दर्पण है। ज्ञानवर्धन का सार्थक माध्यम है। बच्चो को सचित्र शिक्षा देने वाला श्रेष्ठ शिक्षक है। विज्ञापन द्वारा वस्तुओं के प्रचार एव बिक्री-वृद्धि का प्रभावकारी ढंग है।

किन्तु दूरदर्शन नयनों को शीघ्र रोगग्रस्त करने वाला हानिकर उपकरण भी है, कर्त्तव्य-विमुखता का प्रेरक है। समय-दुरुपयोग का चिन्तनीय आविष्कार है, तकनीकी खराबी होने पर बहुत खर्चीला सौदा है।

दिनभर के परिश्रम के पश्चात् थका-हारा मानव घर पहुँच कर टेलीविजन का स्विच ऑन करता है, तो स्फूर्ति और उल्लास उसके मन-मस्तिष्क पर उतर आता है। मानो टेलीविजन के नाम को ही वह मनोरंजन की संज्ञा देने लगा हो। पिक्चर, नाटक, हास्य-व्यंग्य एकांकी देखने के लिए सिनेमाघर, नाटक-भवन या सांस्कृतिक केन्द्रों में जाने की जरूरत नही। वाहनों के धक्के खाने, टिकटघर की खिड़की की भीड-भाड मे पिसने और जेब खाली करने की आवश्यकता नही। समय पर पहुँच पाने का झझट नही, 'टिकट मिल भी सकेगा या नही' का मानसिक द्वन्द्व नहीं।

टेलीविजन सप्ताह के सातों दिन कोई न कोई मनोरजक कार्यक्रम प्रस्तुत करता है, जिसे देखकर चेहरे की उदासी काफूर हो जाती है, मन प्रसन्न होता है, खूब मनोरंजन होता है। मनोरंजन से आयु-वृद्धि होती है।

सप्ताह के मनोरंजक कार्यक्रमो पर निगाह डालिए। प्रतिदिन के नैटवर्क कार्यक्रमों ने दर्शकों का मन मोह लिया है। रात्रि ९ बजे का यह कार्यक्रम जीवन के हर पहलू को विभिन्न दृष्टिकोण से प्रस्तुत करता है। रविवार को तो नैटवर्क के पाँच कार्यक्रम सच्चे अर्थों में अवकाश दिवस, मौज-मस्ती का दिन बना

देते हैं। रविवार की 'रामायण' ने तो जनप्रियता के सारे रिकार्ड तोड़ दिए। इतना ही नहीं, बुधवार और शुक्रवार के 'चित्रहार' तथा सोमवार की 'चित्रमाला', शनिवार की साप्ताहिकी और रविवार की फीचर फिल्म भी दूर-दर्शन दर्शकों के चहते कार्यक्रम हैं। इनके अतिरिक्त सप्ताह में एक नाटक, सुगम तथा शास्त्रीय नृत्य-संगीत के कार्यक्रम, प्रांतीय तथा विदेशी फिल्मों और हास्य नाटिकाए सुरुचिपूर्ण मनोरंजन प्रदान करते हैं।

अब तो प्रात.कालीन कार्यक्रम में हास्य-व्यंग्य की झलकियाँ दिन भर प्रसन्न रहने का मूड बनाती हैं। चैनल २ तथा ७ के कार्यक्रम भी ज्ञानवर्धन और मनोरंजन में वृद्धि करते हैं।

विश्व मे कहीं भी कुछ हुआ, उसकी खबर तो आप अखबारों मे पढ लेते हैं, किन्तु टेलीविजन मे वहाँ घटित घटना को हू-ब-हू देखकर आपका मन भाव-विभोर हो जाता है। राजीव जी विदेश-यात्रा पर गए। वहाँ उनके शानदार स्वागत का आनन्द हम लेते हैं अपने टेलीविजन पर। विश्व के ओलम्पिक खेल हो या 'एशियन गेम्स' हों अथवा विश्व टूरनामेंट और मैचेस हों, ये सभी प्रतियोगिताएँ विश्व के किसी भी नगर मे हो रही हों, किन्तु इन सबका आनन्द ले रहे हैं घर के बन्द कमरे मे। इसी प्रकार २६ जनवरी की परेड, १५ अगस्त को लालकिले की प्राचीर से प्रधानमन्त्री का सन्देश, नेताओं की कान्फ्रेंस—सब कुछ आंखो मे भर रहे हैं टेलीविजन के माध्यम से।

टेलीविजन ज्ञानवर्धन का अतुलनीय साधन है। पढ़ने-सुनने से जो ज्ञान प्राप्त होता है, वह विस्मरण भी हो सकता है, किन्तु जो दृश्य देखा जाता है, वह शीघ्र भूल पाना सहज नहीं होता। टेलीविजन जीवन के हर क्षेत्र की प्रगति, सुधार और संवर्द्धन का अभिलाषी है। वह खेती-क्यारी से लेकर चूल्हा-चौके तक, पृथ्वी से लेकर नभमंडल तक का पूर्ण सचित्र ज्ञान मानव को प्रदान करने की चेष्टा करता है।

विकलांगो की साहसिकता, वेश्याओं की विवशता, त्यौहारों की बहुरूपता,

वैज्ञानिक आविष्कारो की उपयोगिता, पशु-पक्षियों का परिचय, विश्व के दर्शनीय स्थलों के सटीक विवरण आदि अनेक कार्य टेलीविजन पर दिखाए जाते है। दूसरे विश्व मे घटित घटनाएँ भी तो ज्ञानवर्धन करती है।

टेलीविजन शिक्षा का सर्वश्रेष्ठ माध्यम है। जो पाठ अध्यापक कक्षा में पढाता है, उसे दूरर्शन में विविध चित्रावलियों द्वारा समझाया जाता है। परिणामतः वह शीघ्र हृदयंगम हो जाता है। इसके लिए प्रत्यक्ष प्रमाण है दिल्ली के विद्यालय। दिल्ली-दूरदर्शन-केन्द्र प्रतिदिन भिन्न-भिन्न कक्षाओं के पाठ प्रसारित करता है। विकसित राष्ट्रों में तो यह शिक्षण-प्रणाली बहुत सफल सिद्ध हुई है।

टेलीविजन व्यापार-वृद्धि का माध्यम है। व्यावसायिक संस्थान अपनी चीजो का सचित्र विज्ञापन देकर नया व्यापारिक क्षेत्र उत्पन्न करते हैं, ग्राहक बढाते हैं।

जहाँ फूल हैं, वहाँ काँटे भी होते हैं। यही स्थिति दूर-दर्शन की भी है। इससे लाभ के साथ कुछ हानियाँ भी होती हैं।

दूर-दर्शन पर चार-पाँच घण्टों का पूरा कार्यक्रम देखने से आँखें प्रभावित होती हैं, रोगग्रस्त हो जाती हैं। आँखें शरीर का दीपक हैं। दीपक मन्द हुआ या बुझ गया, तो स्वर्णिम ससार अन्धकारपूर्ण हो जाएगा।

दूर-दर्शन कर्तव्य-विमुखता का प्रेरक है। टेलीविजन देखने की मस्ती में घर के काम-काज से जी चुराने का स्वभाव बन जाता है। उत्तरदायित्व और कर्तव्य की अवहेलना होने लगती है। परीक्षा के दिनों मे 'चित्रहार' तथा 'नाटक' देखने वाले विद्यार्थी अध्ययन की उपेक्षा करते हैं। कर्तव्यपालन और उत्तरदायित्व निभाने में विमुखता की यह प्रवृत्ति जीवन की प्रगति की अवरोधक है।

दूर-दर्शन समय की बरबादी का, लक्षण भी है। सारे कार्यक्रम न प्रत्येक व्यक्ति की समझ में आते हैं, न सबके लिए उपयोगी होते है, किन्तु कुछ लोग टेलीविजन कार्यक्रम शुरू होते ही धरना देकर बैठ जाते है और उद्घोषक जब हाथ जोड़कर विदाई माँगता है, तभी उठते हैं। कई घण्टों का मनोरंजन समय नष्ट करने का लक्षण है। याद रखिए, 'जो समय को नष्ट करते है, समय उन्हें नष्ट कर देता है।'

टेलीविजन जरा-सा खराब हो जाए, तो चालीस-पचास रुपये से कम का खर्च नहीं। वड़ी खराबी होने पर तो सैकड़ों का बिल बन जाता है। यह खर्चा मध्यम वर्ग की शक्ति के बाहर है। अतः दुःखदायक सिद्ध होता है।

टेलीफोन : सुविधा के साथ असुविधा भी

(दिल्ली १९८१ : 'ए')

टेलीफोन विज्ञान का अद्भुत आविष्कार है; ग्राहम बैल की विश्व को कल्याणकारी भेंट है। मानवीय जीवन के लिए उपयोगी वरदान है; संकट-मोचन का साधन है। मनचाहे दूरस्थ व्यक्ति से बातचीत का सरलतम सुविधाजनक माध्यम है। तुरन्त सन्देश देने तथा समाचार भेजने का सर्वश्रेष्ठ उपाय है। व्यापार और कार्यालय-संचालन का विश्वसनीय साथी है।

आज मानव मनचाही बात पर तुरन्त कार्यवाही चाहता है। उसके पास समयाभाव है। वह चाहता है कि उसका सन्देश कुछ ही क्षणों में सम्बन्धित व्यक्ति को मिल जाए। तुरन्त टेलीफोन का डायल घुमाएगा और दूर से दूर बैठे व्यक्ति से बातचीत कर लेगा। यह है विज्ञान का ईश्वरीय रूप, मानव के लिए कल्याणकारी वरदान।

टेलीफोन से समय की बचत हुई। संदेश या समाचार वायु-वेग से पहुँच गया। कुछ ही क्षणों में मनचाहे व्यक्ति से मुँह-दर-मुँह बातचीत हो गई। आत्मीयजन बीमार पड़ा है, घबराने की जरूरत नहीं। डाक्टर को फोन कीजिए। किसी अधिकारी से मिलना है, जाने पर मिलेगा या नहीं—यह संशय है। दूरभाष पर 'टाइम अप्वॉइन्ट' कर लीजिए। पड़ोस में आग लग गई। फायर ब्रिगेड को तत्काल फोन कीजिए। किसी की मृत्यु हो गई है। फोन करके कुछ ही क्षणों में सम्बन्धी इकट्ठे कर लीजिए। घर में चोर घुस आए हैं। फ्लाइंग स्क्वाड को दूरभाष पर सूचना दीजिए। आप मार्ग में गुण्डों या असामाजिक तत्त्वों से घिर गए हैं, निस्सहाय है—अचानक पुलिस दल को देखकर आप दंग रह जाते हैं, प्रभु की कृपा समझते हैं। नहीं साहब, दूर बैठे एक दुकानदार ने आपकी इस हालत को देखकर पुलिस को फोन कर दिया था। संकट-मोचन टेलीफोन का प्रभु-रूप।

भारत भर की मंडियों के भाव पता करने हैं—दूरभाष पर बात करके न

केवल भाव, अपितु गिरावट और चढ़ाव के रुख पर डिस्कस भी कर लीजिए। सट्टा बाजार तो चलता ही टेलीफोन के सहारे है। एक-एक व्यापारी दोनों कानों मे फोन लगाए है। इन्हे तो शौचालय में भी चैन नहीं। वहाँ भी एक्टेंशन लगा है। टेलीफोन व्यापार की जीवनमूल प्राणवायु है, जिसके अभाव में व्यापारी जल बिन मछली की भाँति तड़पता है।

कार्यालयों, सस्थाओं, प्रतिष्ठानो का जीवन फोन बिना दूभर है। अधिकारी को क्षण-क्षण में प्राइवेट सेक्रेटरी मे बातचीत करनी पड़ती है। बार-बार उठने में, बुलवाने में दोनो का समय बरबाद होता है। फोन पर बातचीत हो गई। समय की बचत, शारीरिक कष्ट से मुक्ति, तत्परता से कार्य की पूर्ति के अतिरिक्त कार्यालय की कार्य-शक्ति सुचारु रूप से सचरित हो रही है।

मायावी संसार मे रोटी, कपडा और मकान की भाँति फोन भी आजके जीवन का आवश्यक अग बन गया है। यह आवश्यक भाग कही-कही अनिवार्य भी बन गया है। इसके अभाव में संचार-व्यवस्था ठप्प हो जाएगी और जीवन दूभर हो जाएगा।

किन्तु टेलीफोन का देवत्व रूप जब राक्षसत्व में प्रकट होता है, तो फोन का स्वामी थरथर काँपने लगता है।

टेलीफोन मिलाया—२६६४१२। ट्रिल-ट्रिल घंटी बजी। दूसरी ओर से रिसीवर उठाया। हाँ जी।

—सूर्यकांत जी को दीजिए।

—यहाँ कोई सूर्यकांत नही है। रॉंग नम्बर।

भाग्यचक्र देखिए—तीन बार मिलाया, तीनों बार रॉंग नम्बर। पैसे के पैसे गए, बातचीत भी न हो सकी।

जरूरी काम से टेलीफोन का रिसीवर उठाया। वहाँ किसी की बातचीत चल रही है। आपकी लाइन पर किसी और का नम्बर मिल गया है। जब तक वह लाइन कटे नहीं—बातचीत समाप्त न हो, आप फोन कर ही नही सकते।

नम्बर घुमाया। ट्रिल-ट्रिल। किसी ने दूसरी ओर रिसीवर उठाया। बातचीत शुरू की—यह क्या? उसकी आवाज आप सुन रहे हैं। आपकी आवाज उधर नही सुनाई दे रही।

नम्बर घुमाया। टेलीफोन का डायल चुप—न एगेज, न घटी। नम्बर घुमा-घुमाकर परेशान। त्योरियां चढ़ गईं।

कई बार अनचाहे अपरिचित से अपमानजनक, अश्लील, अप्रासंगिक मवाद सुनने को मिल जाते है। जी चाहता है इन बदतमीज और अश्लील हरकतों पर खीचकर चप्पल मार दें। पर किसे ?

ट्रिल-ट्रिल की घटी उस समय ज्यादा परेशान करती है, जब आप विश्राम कर रहे हो, स्वप्नावस्था मे विचर रहे हों, मूड ऑफ हो। अनचाहे परिचित की कॉल हो। स्नानागर में स्नान कर रहे हों. शौचालय मे निवृत्त हो रहे हों, भजन-पूजन में ध्यानस्थ होने का प्रयास कर रहे हो, भोजन का आनन्द ले रहे हों, मित्रों से गपशप कर रहे हो, किसी गम्भीर मंत्रणा में लगे हो, उस समय ट्रिल-ट्रिल की घंटी अनचाहा अतिथि-सी लगने लगेगी। आपने गुस्से मे फोन का रिसीवर उठा कर अलग रख दिया। इस बीच सम्भव है आप किसी महत्त्वपूर्ण सदेश से वंचित रह गए हों, जो गाड़ी छूटने के बाद स्टेशन पहुँचने के समान पश्चात्तापकारी हो।

हमारे पड़ोसी हैं वर्मा जी। जब-तब फोन करने चले आते हैं। वे हमारे फोन को अपना ही समझते है। इसलिए न समय-असमय को देखते है, न हमारी प्राइवेसी का ध्यान रखते है। दूसरे, यह कि वे अन्य शहरों में रह रहे सम्बन्धियों से बातचीत का भी मजा लेते रहते है। उन्हे क्या पता कि अपनी बातचीत में वे सुविधा-प्रदाता की जेब को काट रहे हैं।

पड़ोसियो के लिए जब फोन आने लगें तो दूरभाष संकट-मोचन की बजाय पीड़ा-दायक बन जाता है। अपनी सब व्यस्तताएँ छोड उन्हें बुलवाइए, जब तक वे आकर फोन न सुन लें, आप अपना समय उनको समर्पित कर दीजिए। व्यक्तिगत जीवन के उन क्षणों को परहित पर न्यौछावर समझ लीजिए। उन्हें बुलाते-बुलाते तग आ जाएँ, तो झूठ बोलने का अभ्यास बना लीजिए।

टेलीफोन एक्सचेंज के १८०, १८१, १६७, १६६ नम्बर सदा इतने व्यस्त रहते हैं कि बार-बार डायल घुमाना पड़ता है। कभी-कभी तो घटी बजती रहती है, उठाता ही कोई नही।

इस प्रकार टेलीफोन वर्तमान सभ्य समाज के लिए संचार-सुविधा का अत्यन्त उपयोगी माध्यम है। साथ ही यह समय और धन को बरबाद करने वाला असुविधाप्रद यंत्र भी है। □

मनोरंजन के आधुनिक साधन

(दिल्ली १९८५ : ए)

(मनोरंजन से मन प्रसन्न होता है, मनोरंजन हास्य का कारण है, जिससे आयु बढ़ती है। मनोरंजन के क्षणों में शरीर के तन्तु ढीले पड़ जाते है। और अतिरिक्त शक्ति का संचय होने लगता है, जिससे नवस्फूर्ति आती है।)

(मनोरंजन के बिना मनुष्य का स्वास्थ्य बिगड़ जाता है। कार्य-क्षमता मन्द पड़ जाती है। इच्छा-शक्ति क्षीण हो जाती है। मानसिक चेतना की जागृति के अभाव में जीवन का सन्तुलन बिगड़ जाता है। स्वभाव में रुखाई एवं चिड़चिड़ापन आ जाता है। हास्यभाव समाप्त हो जाता है और जीवन नीरसता से भर जाता है। अतः मनोरंजन के लिए कुछ समय निकालना और उन आनन्दमय क्षणों में जीवन की वास्तविक अनुभूति प्राप्त करना आवश्यक है।

ग्लैडस्टन व्यस्त जीवन में भी लकड़ी की वस्तुएँ बनाने के मनोरंजन से कभी उदासीन नहीं हुए, चर्चिल जीवन की व्यस्तता का रूखापन 'चित्र-रचना' रूपी मनोरंजन द्वारा दूर करते थे। द्वितीय महायुद्ध जैसे भयंकर और कार्याधिक्य वाले समय में भी रूजवेल्ट काम की थकान को जासूसी कहानियाँ पढ़कर मिटाया करते थे। कवि वर्ड्स्वर्थ और कॉलरिज भ्रमण में ही मनोरंजन पाते थे।

(प्राचीन रोम में खान-पान, सरकस एवं नर-पशु युद्ध मनोरंजन के साधन थे। 'बुल फाइटिंग' स्पेन-वासियों के मनोरंजन का प्रमुख साधन था। भारत में नाटक और पुत्तलिका-नृत्य, काव्य-ग्रन्थों का अध्ययन, शतरंज और ताश, तीतर और बटेर की लड़ाई, शिकार आदि मनोरंजन के श्रेष्ठ साधन थे।

(वैज्ञानिक उन्नति के साथ-साथ मनोरंजन के साधनों का भी विकास होता गया। आज मनोरंजन के लिए सर्वसुलभ और अत्यन्त सस्ते साधन हैं—टेलीविजन और रेडियो। आज घर-घर में टेलीविजन और रेडियो है। टेलीविजन में फीचर फिल्में देखिए, चित्रहार और चित्रमाला देखिए, नाटक देखिए, प्रहसन देखिए,

अंग्रेजी हास्य फिल्में देखिए और देखिए नृत्य एवं संगीत के विविध मनोरंजक कार्यक्रम। २६ जनवरी का आनन्द लीजिए अथवा क्रिकेट मैच से मनोरंजन कीजिए। टेलीविजन प्रतिदिन स्वस्थ मनोरंजन करने वाला मुफ्त का सेवक।

ध्वनि कार्यक्रमों पर आधारित रेडियो मानव-मात्र को स्वस्थ मनोरंजन-प्रदाता है। विविधभारती के कार्यक्रम, मनोरंजक प्रायोजित कार्यक्रम, कर्णमधुर गाने, नाटक, प्रहसन, लोकरुचि के प्रोग्राम, कहानियाँ तथा कविताएँ, क्रिकेट कॉमेंट्री आदि कार्यक्रम मानव को स्वस्थ और चुस्त बना देते हैं। 10-15

मनोरंजन का तीसरा आधुनिक साधन है चित्रपट—सिनेमा। ३-४ रुपए में एयर कण्डीशड हॉल में बैठकर नाटक देखिए और तीन घन्टे तक स्वस्थ मनोरंजन प्राप्त कीजिए। कम पैसे में अधिक समय तक मनोरंजन प्रदान करने का श्रेय है वर्तमान चित्रपट को। इसमें पिक्चर देखने के साथ ही सुनिए चित्ताकर्षक गाने, जिन्हें सुनकर और गायक-गायिका के हाव-भाव पर्दे पर देखकर आप झूम उठते हैं। मनोरंजनका इससे अच्छा साधन क्या होगा?

मनोरंजन का चौथा आधुनिक साधन है—पॉकिट उपन्यास। हिन्दी में पॉकेट उपन्यासों ने भारतीय जनता में जहाँ पढ़ने की रुचि जागृत की, वहाँ स्वस्थ मनोरंजन भी प्रदान किया। आज सभ्य और पढ़ी-लिखी जनता पॉकेट उपन्यासों की शौकीन हो गई है।

मनोरंजन के अन्य आधुनिक साधन है—सरकस, रंगमंचीय नाटक, ध्वनि-प्रकाश कार्यक्रम तथा नृत्य संगीत नाटक। ये हर समय या हर रोज तो उपलब्ध नहीं हैं। हाँ, बड़े-बड़े शहरों में ये कार्यक्रम आते रहते हैं। सरकस का जोकर हँसा-हँसाकर, एवं जानवर और युवक-युवतियाँ साहसिक कृत्य दिखाकर जनता का स्वस्थ मनोरंजन करते हैं। इसी प्रकार नृत्य-संगीत नाटक में संगीत की धुन पर नृत्य और अभिनय का संगम बहुत चित्ताकर्षक कार्यक्रम होता है। रंगमंचीय नाटक और ध्वनि-प्रकाश कार्यक्रम मानव-मन को हर्षोल्लसित करते हैं। विजयदशमी के पर्व पर रामलीला का मंचन जन-जन को आह्लादित करता है।

ताश, कैरम, शतरंज, बैडमिंटन फुटबॉल, क्रिकेट, कबड्डी; मल्लयुद्ध, नौकाविहार आदि खेल भी आधुनिक युग में मनोरंजन के अच्छे साधन हैं। अपनी-अपनी रुचि के अनुकूल जन-मानस इनसे मनोरंजन प्राप्त करता है।

मनोरंजन के कुछ अन्य साधन हैं—पिकनिक और प्रातःकालीन सैर। अवकाश के दिन मित्रों की टोली जब पिकनिक पर जाती है, तो अनेक दिनों तक उसका आनन्द विस्मृत नहीं होता। सैर शौक पर निर्भर है। शौक से सैर करेंगे, तो आनन्द आएगा, मनोरंजन होगा।

कवि-सम्मेलन, काव्य-गोष्ठियाँ, सांस्कृतिक कार्यक्रम जीवन को आनन्द प्रदान करते हैं। काव्य-रुचि विद्वानों को रस-मग्न करती है। 'काव्य-शास्त्र विनोदेन कालो गच्छति धीमताम्, के अनुसार काव्य-शास्त्र के अध्ययन में विद्वान् आनन्द लेते है।

विज्ञान की प्रगति के साथ-साथ आज का मानवीय जीवन अत्यन्त व्यस्त होता जा रहा है। जीवन की आवश्यक वस्तुओं को जुटाने और दमतोड़ महँगाई के कारण आज का मानव घुटन का जीवन व्यतीत कर रहा है। चेहरे पर मुस्कान रहते भी वह अन्दर से घुटा-घुटा है। जीवन से जूझने में समयाभाव दीवार बनकर खड़ा है। समयाभाव के कारण मानवीय मनोरंजन के साधनों में भी उसी मात्रा में विकास हो रहा है। दिन-भर फाइलों से जूझता लिपिक, दिनभर की व्यापारिक ऊँच-नीच को झेलता दूकानदार और पसीने में तर-बतर कठोर श्रम करने वाला श्रमिक जब घर लौटता है, तो रेडियो या दूरदर्शन उसका हल्का-फुलका मनोरंजन करते है, उसका मन स्वस्थ करते है। जैसे-जैसे मानव समयाभाव का दर्द महसूस करेगा, वैसे ही 'आवश्यकता आविष्कार की जननी है' के सिद्धान्त के अनुसार और सरल तथा स्वस्थ मनोरंजन के उपाय उत्पन्न हो जाएँगे।

□

लोकतन्त्र और चुनाव

(आल इण्डिया १९७९ : 'ए')

लोकतन्त्र और चुनाव अन्योन्याश्रित हैं। बिना चुनाव के लोकतन्त्र राजतन्त्र बन जाता है। चुनाव लोकतन्त्र रूपी रथ की धुरी है; चुनाव लोक-निष्ठा का प्रतीक है; जनता का अपने द्वारा शासन का वचन है। पं० जवाहरलाल नेहरू ने इससे आगे एक कदम बढ़ाते हुए कहा था, 'लोकतन्त्र में चुनाव राजनीतिक शिक्षा देने का विश्वविद्यालय है।'

अमेरिका के विख्यात राष्ट्रपति श्री अब्राहम लिंकन ने लोकतन्त्र का अर्थ बताया है—'जनता के ही हेतु, जनता द्वारा जनता का शासन।' जनता का शासन तभी होगा, जब जनता शासन चलाने के लिए अपने प्रतिनिधि भेजेगी। प्रतिनिधि भेजने की क्रिया चुनाव पर अवलम्बित है। अतः लोकतन्त्र में चुनाव का महत्त्व सर्वोपरि है। लोकतन्त्र-शासन-प्रणाली की जितनी भी कमजोरियाँ हों, किन्तु वह लोकेच्छा और लोक-कल्याण का प्रतीक तो है ही।

लार्ड विवरेज ने लोकतन्त्र और तानाशाही का अन्तर स्पष्ट करते हुए लिखा है—'लोकतन्त्रीय और तानाशाही शासन में अन्तर नेताओं के अभाव में नहीं है, वरन् नेताओं को बिना हत्या किए हुए बदल देने में है। शान्तिपूर्वक सरकार बदल देने की शक्ति लोकतन्त्र की आवश्यक शर्त है।' यह शर्त पूरी होती है—चुनाव द्वारा। १९७७ में भारत में शान्तिपूर्वक शासन-बदल चुनाव की शक्ति का सबसे बड़ा प्रमाण है।

अमेरिका के विख्यात शहीद राष्ट्रपति कैनेडी ने लोकतन्त्र को ईश्वर की समानान्तर सृष्टि माना है। जेफर्सन ने भी इसी प्रकार की मिलती-जुलती बात कही है—'ईश्वर की जैसी शक्ति सृष्टि चलाने के प्रसंग में है, वैसी ही शक्ति जनता की है—लोकतन्त्र चलाने के सिलसिले में।'

लोकतन्त्र शासन की जहाँ विशेषताएँ हैं, वहाँ कमियाँ भी हैं। लोकतन्त्र

की सबसे बड़ी कमी है—प्रज्ञाचक्षुत्व। लोकतन्त्र की आँखें नहीं होती। लोकतन्त्र में मन्त्री उपमन्त्री की आँख से देखता है, उपमन्त्री सेक्रेटरी की आँख से, सेक्रेटरी डिप्टी सेक्रेटरी की आँख से, डिप्टी-सेक्रेटरी अण्डर-सेक्रेटरी की तथा अण्डर-सेक्रेटरी फाइल की आँख से देखता है। इसका परिणाम यह होता है कि प्राय: तथ्य और कथ्य में अन्तर पड जाता है। आपातकाल मे सन् १९७६ में दिल्ली-जेल में बड़ा सख्त लाठी-चार्ज हुआ। अनेक राजनीतिक बन्दी घायल हुए। समय ने लपटा खाया, १९७७ मे जनतापार्टी शासन मे आई। लोक-सभा में उक्त 'लाठी-चार्ज' पर प्रश्न पूछा गया। तत्कालीन गृहमन्त्री चौधरी चरणसिंह ने लाठी-चार्ज की बात अस्वीकार कर दी। जब एक सदस्य ने उनका ध्यान आकृष्ट किया कि आप भी उस समय जेल मे थे, तब उन्हे ध्यान आया। वस्तुत. वे फाइल की आँख से लाठी-चार्ज सम्बन्धी प्रश्न का उत्तर दे रहे थे।

लोकतन्त्र की दूसरी कमी है चुनाव मे विजयी प्रतिनिधियों के चरित्र की। बर्नार्ड शॉ और प्रोफेसर लास्की की दिलचस्प बातचीत इस तथ्य को स्पष्ट कर देगी।

बर्नार्ड शॉ—'जिसे आप लोकतन्त्र कहते है, वह असल मे धूर्ततन्त्र है।'

प्रोफेसर लास्की—'लोकतन्त्र को धूर्ततन्त्र मानना सत्य का अपमान है।'

इस पर शॉ ने शैतान की-सी मुस्कान से लास्की की ओर देखा और सफाई पेश की—'प्रोफेसर, क्या आपको प्लेटो का यह कथन याद है कि जहाँ मतदाता मूर्ख है, वहाँ प्रतिनिधि धूर्त होंगे।'

प्रसिद्ध विद्वान् बर्क को कहना पडा, 'लोकतन्त्र की मूल बीमारी यह है कि धूर्तता और मूर्खता रूपी दो पाटों की चक्की मे न्याय और ईमानदारी आटे की तरह पिस गए हैं।'

लोकतान्त्रिक सरकारों पर चोट की है लोकतन्त्र के प्रबल समर्थक राष्ट्र ब्रिटेन के विख्यात प्रधानमन्त्री डिजराइली ने। उनका कहना है, 'सरकार हृदयहीन होती है। इसका सबसे बड़ा सबूत क्या यह नही है कि मतदाताओं की आशा-अपेक्षाओं के साथ खिलवाड करने के लिए निष्ठुर कृत्य को मन्त्रियों का राजनैतिक कौशल माना जाता है।' भारत में १९७७ की जनक्रान्ति के कर्णधारों द्वारा १९७९ मे जो चित्र प्रस्तुत किया गया है, वह मतदाताओं की पीठ पर छुरा घोपने से कम नही।

राजनेता चुनाव को शरबत समझकर पीता, मगर वह होती है शराब।' उस शराब मे उसके मन, वचन एवं कर्म में खुशबू की जगह बदबू ही भरती जाती है। चुनाव के समय नेता मतदाताओं पर प्रपंच के इतने जाल फेंकते हैं कि जिन्दगी से वे तौबा करने लगते हैं और इस प्रकार अपने को भी इतना छलते हैं कि एक दिन अपनी परछाईं से भी डरने लगते हैं।

देश मे शहद और दूध की नदियाँ बहाने की कसमें खा-खाकर चुनाव का धर्मक्षेत्र या कुरुक्षेत्र जीतने वाले ये नेता स्वयं देश के लिए सबसे बड़ा बोझ बन जाते हैं। ऐसे लोकतन्त्र पर वज्र नही गिरेगा, तो कहाँ गिरेगा ?

चुनाव धन के बल पर लड़ा जाता है; जाति, धर्म और सम्प्रदाय के नाम पर जीता जाता है। भारत का ८५ प्रतिशत मतदाता अशिक्षित है। अशिक्षित मतदाता से सोच-समझकर मतदान की आशा की भी कैसे जा सकती है ? यही कारण है कि सच्चा देश-भक्त और त्यागी नेता चुनाव के रेगिस्तान मे निरर्थकता की फसल बोते-बोते दम तोड देता है तथा धूर्त एवं छली व्यक्ति मैदान मार जाते हैं।

आज की भारतीय राजनीति में, विशेषकर चुनाव के समय, प्रेम के तौर-तरीके खरगोश के सीग बन जाते है। क्यों न हों ? आखिर कितने वायदों को चेतना के ऊँट पर लादना पड़ता है ? कितनी मिथ्याओ पर धर्म का मुलम्मा चढाना पड़ता है। सच्चाई से कितनी बार ईमान निचोड देना पड़ता है ? अकबर इलाहाबादी का व्यंग्य साकार हो उठता है—

नयी तहजीब में दिक्कत, ज्यादा तो नहीं होती।
मजहब रहते हैं कायम, फकत ईमान जाता है।।

लोकतन्त्र तभी सफल रह सकता है जब चुनाव निष्पक्ष हों; धन, धमकी, जाति, कुल, सम्प्रदाय और धर्म के नाम पर वोट न डाले जाएँ। जन-प्रतिनिधि सचाई और ईमानदारी से अपने राष्ट्र की सेवा करने वाले हों। तब चुनाव युद्ध नहीं, तीर्थ-यात्रा बन जाएगा, पर्व बन जाएगा; पानीपत या कुरुक्षेत्र का मैदान नहीं, प्रयाग का पुनीत संगम बन जाएगा।

दिल्ली के दर्शनीय स्थान

(दिल्ली १९८२ : 'ए')

दिल्ली के दर्शनीय स्थान कला, संस्कृति, इतिहास तथा सभ्यताओं की जीवन्त कहानी हैं। पाण्डवों के इन्द्रप्रस्थीय स्मारक, शाहजहां के ख्वाबों का स्वर्ग शाहजहानाबाद, अंग्रेजों द्वारा बसाई गई नई दिल्ली तथा स्वतन्त्र भारत के कर्णधारों की स्वर्णिम योजनाएं—सबने मिलकर सारी दिल्ली को ही दर्शन के योग्य घोषित कर दिया। उर्दू के शायर मीर का हृदय गा उठा—

दिल्ली के न थे कूचे, आरा के मुसव्विर थे।
जो शक्ल नजर आयी, तस्वीर नजर आयी॥

अरे क्या थी दिल्ली की गलियाँ ! चित्रकार के तख्ते थे। वहाँ जो भी सूरत-शक्ल नजर आती थी, तस्वीर ही नजर आती थी।

और शायद इसलिए शेख इब्राहीम जौक अनेक उपाधियां हासिल करने पर भी दिल्ली छोड़ने को तैयार न हुए। वे चीत्कार कर उठे, **'कौन जाये ऐ जौक, दिल्ली की गलियां छोड़कर।'**

दिल्ली घिरी थी ६६६४ गज लम्बी, ४ गज चौड़ी और ६ गज ऊँची चारदीवारी (फसील) से। इस चारदीवारी में जगह-जगह पर ३० फुट ऊँची २७ बुर्जियाँ थीं। शहर में घुसने के लिए १४ फाटक और १४ खिड़कियाँ थीं। काल के थपेड़ों ने इस फसील को ध्वस्त कर दिया, तो अच्छा ही हुआ। दिल्ली की बढ़ती जनसंख्या फसील की सीमा में अब समा भी तो नहीं सकती थी।

चलिए, अब दिल्ली के कतिपय दर्शनीय स्थानों को देख लें।

पहले दिल्ली के ऐतिहासिक स्थान लीजिए। यमुना-तट पर चाँदनी चौक बाजार के अन्त में चारों ओर खाइयों से घिरा आधा मील के घेरे में फैला हुआ लाल-पत्थरों से निर्मित एक किला खड़ा है। यह 'लाल किला' है। शाहजहाँ द्वारा

निर्मित कहे जाने वाले इस किले का नौबत-खाना, रंगमहल, दीवाने-खास और दीवाने-आम देखिए।

नई दिल्ली में कनाट प्लेस के समीप राजपूत राजा सवाई मानसिंह द्वारा निर्मित जन्तर-मन्तर बड़े गजब की चीज है। प्राचीन काल में इससे दिन में समय का बोध और रात्रि में नक्षत्रों की गणना होती थी।

मुगल बादशाह कुतुबुद्दीन के बनवाए पुराना-किला, फिरोजशाह कोटला, तुगलकाबाद का किला और लोदी गार्डन्स देखिए। साथ ही हुमायूँ का मकबरा भी देखते जाइए।

पृथ्वीराज चौहान द्वारा निर्मित यमुना-स्तम्भ अर्थात् कुतुबमीनार पर (जिसे यवनों ने अपना बनाने के लिए उस पर कुरान की आयतें खुदा दी हैं) चढ़ने की कोशिश कीजिए और उतर कर 'लौह-स्तम्भ' पर आजानुबाहु होने का प्रमाण दीजिए।

ऐतिहासिक बाजार चाँदनी चौक का फव्वारा और जामा मस्जिद, दोनों ऐतिहासिक स्थान है। फव्वारे के स्थान पर गुरु तेगबहादुर तथा भाई मतिदास का वध हुआ था और जामा मस्जिद दिल्ली की सबसे बड़ी मस्जिद है, जिसे शाहजहाँ ने बनवाया था।

फव्वारे के सम्मुख स्थित सिक्खों का गुरुद्वारा शीशगंज देखिए और नई दिल्ली का शानदार बिड़ला मन्दिर देखिए। मूर्तियों की भव्यता के साथ इनकी दीवारों की चित्रकला देखते-देखते तथा प्राचीन एवं आधुनिक भारतीय साहित्य के उद्धरण एवं महापुरुषों के आप्तवाक्य पढ़ते-पढ़ते आपका मन नहीं भरेगा।

अंग्रेजों द्वारा निर्मित शाही शान-शौकत के 'रायसीना' अर्थात् नई दिल्ली की एक-एक चीज देखने योग्य है। कनाट-प्लेस की सजधज और चहल-पहल अवर्णनीय है। राष्ट्रपति-भवन, आकाशवाणी-भवन, कृषि-भवन, चक्राकार संसद्-भवन, उद्योग-भवन, राष्ट्रीय-संग्रहालय, इण्डिया गेट तथा केन्द्रीय सचिवालय के भवन, उनके समीपस्थ हरी-हरी मखमली घास के मध्य बने कृत्रिम सरोवर और झील आपके मन को मोह लेंगे।

फरवरी मास में देखिए मुगल उद्यान। ज्योमैट्री की रेखाओं की तरह खिंची हुई मेड़ों-रास्तों के आसपास हरी-हरी मखमली घास के मध्य और सजी हुई चौकोर

क्यारियों में न जाने कितने रंगों के फूलो खिले हुए हैं।

बच्चों के साथी अर्थात् पशुओ की विभिन्न जातियों को देखने के लिए पुराने किले के नीचे बहुत बड़े क्षेत्र मे बसाए गए 'चिड़ियाघर' मे जाइए, भारतीय तथा विदेशी जानवरों को देखकर ज्ञानवर्धन कीजिए।

पिकनिक स्थानों की सैर के बिना दिल्ली की सैर अधूरी रह जाएगी। ओखला में नहर के प्रवाह और बंध के दृश्य का आनन्द भी लूटिए। तैरना आता है, तो डुबकी भी लगाइए। हौजखास और बुद्धपार्क की भी सैर करते चलिए।

देखिए, स्वतन्त्रता के पश्चात् दिल्ली एक औद्योगिक नगर भी बन गया है। वस्त्र-निर्माण से लेकर विशालकाय मशीनो तक का उत्पादन दिल्ली मे हो रहा है। बिड़ला मिल, दिल्ली कलॉथ मिल, स्वतन्त्र भारत मिल, गणेश फ्लोर मिल आदि सैकड़ों औद्योगिक संस्थानों के दर्शन कीजिए।

दिल्ली भारत का हृदय है। भारत की आन-बान-शान को बनाए रखने का श्रेय इस हृदय को है। इसकी धमनियों मे सशक्त और स्वस्थ रक्त का सचार हो रहा है। किस-किस की तारीफ करें, किस-किस को छोड़ें। दिल्ली का कण-कण दर्शन के योग्य है, सुन्दरता की प्रतिमा है और है, उसमें मनोहर आकर्षण।

अन्त में आइए, देश के महापुरुषों की समाधियों पर पुष्पांजलि समर्पित कर चलें; श्रद्धा के सुमन चढ़ा चलें। ये हैं राष्ट्र-पिता महात्मा गांधी की समाधि 'राज-घाट'; स्वतन्त्रता-संग्राम के यशस्वी संचालक और भारत के प्रथम प्रधानमंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू की समाधि 'शान्तिवन' तथा समरागण में पाकिस्तान को पराजय का मुख दिखलाने वाले प्रधानमत्री श्री लालबहादुर शास्त्री की समाधि 'विजयघाट'।

दिल्ली का नक्शा बदल दिया 'एशियाड ८२' ने। इसके लिए नव-निर्मित जवाहरलाल नेहरू स्टेडियम और इन्द्रप्रस्थ स्टेडियम भी दिल्ली के दर्शनीय स्थान बन गए हैं, उच्चकोटि की कला के प्रतीक।

दिल्ली प्रतिदिन सज रही है, सँवर रही है। कला की श्रेष्ठतम कारीगरी की मानो यहाँ होड़ लगी है, जो पत्थर मे जान फूंक रही है, सीमेन्ट और लोहे मे आत्मा का संचार कर रही है। नवनिर्मित जवाहरलाल नेहरु स्टेडियम, इन्द्रप्रस्थ स्टेडियम इसके प्रमाण हैं।

▭

भारत प्यारा देश हमारा

भारत हमारी मातृभूमि है, पितृभूमि है, पुण्यभूमि है। हम इसकी कोख से उत्पन्न हुए। इसने हमारा पालन-पोषण किया। इसके तीर्थ हमारी आस्था और श्रद्धा के केन्द्र है। वैदिक संस्कृति ही भारतीय संस्कृति है। हिन्दू-सभ्यता ही भारतीय सभ्यता है। 'मानस' में प्रतिपादित धर्म भारतीय धर्म है।

प्राचीन काल मे यह देश 'जम्बू द्वीप' कहलाता था। पर्वतो से भरपूर होने के कारण यह 'पार्वती' कहलाया, सात महान् नदियों के कारण 'सप्तसिन्धु' कहा गया, श्रेष्ठ जन का वास होने के कारण इसका 'आर्यावर्त्त' नाम पड़ा, भरत के सम्बन्ध से 'भरतखंड' और बाद में 'भारत' बना।

प्रिय भारत की गाथा देवता भी गाते थे। विष्णु पुराण के अनुसार स्वर्ग में देवत्व भोगने के बाद देवता मोक्ष-प्राप्ति के लिए भारत में ही मनुष्य रूप में जन्म लेते थे।

'गायन्ति देवाः किल गीतिकानि, धन्यास्तु भारतभूमि-भागे।
स्वर्गापवर्गास्पदहेतुभूते भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात्॥

भारत को 'विश्वगुरु' कहलाने का गौरव प्राप्त है। न केवल यूरोप, अपितु फारस, अरब आदि राष्ट्रों में भारत को 'सोने की चिड़िया' 'या स्वर्णभूमि' कहकर इसकी स्तुति की जाती रही है। मनु ने भारत को मानवीय गुणों की प्रेरणा और शिक्षा का एकमात्र केन्द्र बताया है। कवीन्द्र रवीन्द्र ने इसे 'महा-मानव-समुद्र' कहा। जो आया, वह इसका हो गया।

हिमालय हमारा भाव-प्रतीक है। गगा हमारी माँ है। इन जैसा ससार में और कहाँ? हमारा देश सरिता-मय है। यहाँ प्रकृति का लावण्य और सौन्दर्य अलमा कर बिखर गया है। कालिदास ने हिमालय को पृथ्वी का मेरुदण्ड माना था। महाकवि रवीन्द्रनाथ उसे देवात्मा मानते है। निकोलस रोरिख का कथन है कि—

हे हिमगिरि, हे भारत के भूपण, हे ऋषियों की पावन तपोभूमि, हे वसुधा के यशोस्नात सौन्दर्य, हे रहस्यमय, तुम्हें नमस्कार है। तुम्हारे दर्शनमात्र से चित्त प्रफुल्ल और भव्य भावनाओ से परिपूर्ण हो जाता है। तुम अनन्य हो।'

जर्मन दार्शनिक भारत मे जन्म लेने की कामना करता था। जर्मन कवि गेटे कालिदास की शकुन्तला पर मुग्ध था। मैक्समूलर तो ब्राह्मण ही बन गया था। अमेरिका का सन्त थोरो भारत पर लट्टू था। शापेनहायर की तो बात ही मत पूछिए।

वैदिककालीन धर्मप्राण भारत पर सन् ७१२ ई० मे मुस्लिम आक्रमण हुआ। मुहम्मद बिन कासिम पहला आक्रामक था। देश उस समय दुर्बल हो चुका था; खंड-खंड मे बँट चुका था। परिणामतः मुसलमानों के अधीन हो गया। गुलाम-वंश, तुगलक-वंश, लोदी वश और अन्त मे मुगल वश ने यहाँ राज्य किया। मुसलमानों ने हिन्दुओ पर असीम अत्याचार किए। 'जजिया कर' तक लगाया। हिन्दुओ का बलात् धर्म-परिवर्तन किया। बहू-बेटियो की इज्जत लूटी। आस्था और श्रद्धा के मान-चिह्नों को नष्ट किया।

मुगल बादशाहो ने सुरा-सुन्दरी के चक्कर मे देश की वीरता को चौपट कर दिया। व्यापारी बनकर आए अंग्रेज देश के स्वामी बनने लगे। सन् १७७७ में प्लासी के युद्ध मे सिराजुद्दौला की पराजय का श्रेय लॉर्ड क्लाइव को था। वही भारत में ब्रिटिश राज्य का संस्थापक बना। १८५७ के प्रथम स्वातन्त्र्य-समर मे दिल्ली-पति सम्राट् बहादुरशाह जफ़र की पराजय के पश्चात् देश अंग्रेजों का गुलाम बन गया।

देश की स्वाधीनता के लिए जहाँ कांग्रेस के तत्त्वावधान में अहिंसात्मक आन्दोलन चल रहा था, वहाँ क्रांतिकारियो ने अंग्रेज शासकों के दिलो मे दहशत पैदा करने में कसर न छोडी। सुभाषचन्द्र बोस ने जापान और जर्मनी के सहयोग से भारत पर सशस्त्र आक्रमण ही कर दिया। इधर, द्वितीय महायुद्ध मे अंग्रेज कौम राजनीति के मोर्चे पर विजयी होते हुए भी आर्थिक मोर्चे पर हार गई। अर्थ-सकट ने ब्रिटेन की कमर तोड दी। अंग्रेज भारत छोडने के लिए विवश हो गए। १५ अगस्त, १९४७ को देश का विभाजन करके अंग्रेजी साम्राज्य की पताका भारत मे उतर गई। भारत-विभाजन का आधार था—द्विराष्ट्रवाद। मुस्लिम-बहुल प्रान्तों का स्वतन्त्र राष्ट्र 'पाकिस्तान' बना। हिन्दुओं के लिए शेष 'हिन्दुस्तान' रह गया।

भारतमाता का अंग-भंग करवाकर हम स्वतन्त्र हुए। इस खण्डित भारत को ही भारत माता की वास्तविक मूर्ति मानकर हमने इसकी पूजा-अर्चना आरम्भ की। देश के नेता भारत की समृद्धि में जुट गए। अपना संविधान-निर्माण कर २६ जनवरी, १९५० को भारत गणतन्त्र घोषित हुआ।

स्वतन्त्र भारत में जनता का जीवन-स्तर ऊँचा हुआ। जनसंख्या की दृष्टि से विश्व के द्वितीय महान् राष्ट्र भारत में जनतन्त्र सफल हुआ। यहाँ लोकतन्त्र की आधारभूत मान्यताओं का विकास हुआ।

किन्तु देश के कर्णधारों की भूल, अदूरदर्शिता और स्वार्थपरता ने सोने की चिड़िया को भस्म कर दिया। गत ३६ वर्षों में देश तबाही के कगार पर पहुँच गया है। १५ अगस्त, १९४७ को भारत साहूकार था। उसे २० लाख रुपया विदेशों से लेना था। आज वह लगभग २४ सहस्र करोड़ रुपए का ऋणी है। भारत की ५० प्रतिशत जनता जीवन-रेखा के नीचे जीवन बसर करती है, जिसके पास न खाने को रोटी है, न रहने को मकान और न पहनने को कपड़े।

आसाम, गुजरात, नागालैंड, और उड़ीसा असन्तोष की आग में झुलस रहे हैं, बंगाल, पंजाब और काश्मीर की स्थिति विस्फोटक बनी हुई है। कांग्रेसी नेता गद्दी के युद्ध में संलग्न हैं। मुसलमान देश के सन्तुलन को बिगाड़ कर नए 'होमलैंड' की तलाश में हैं। राष्ट्र की समृद्धि जनसंख्या-वृद्धि रूपी सुरसा के मुँह में पहुँचकर क्षीण हो रही है। 'लॉ ऐण्ड आर्डर' चौराहे पर औंधेमुँह पड़ा सिसक रहा है।

लोकतन्त्र के दावेदार राजतन्त्र के कृत्य करते हैं। अल्पमत की इच्छा को बहुमत पर थोपा जा रहा है। माँ-भारती राष्ट्रभाषा के आसन से वंचित कर दी गई है। जातिहित, वंशहित, धर्महित और पार्टीहित को सर्वोपरि रखा जाता है। संसद् में घूँसे चलते हैं; सम्पादकों के विरुद्ध षड्यन्त्र हो रहे हैं; न्यायपालिका को पंगु बनाने का प्रयास चल रहा है।

वस्तुतः आज हमारा प्यारा भारत न विश्व-गुरु है और न सोने की चिड़िया। न यहाँ सुख है, न शान्ति। हम भारत माता का झूठा जयघोष कर उसका अंग-भंग कर रहे हैं। सभ्यता की पराधीनता ओढ़ लेना चाहते हैं और भारतीय संस्कृति को विरूप करना चाहते हैं। संस्कृति और सभ्यता से विचलित होने पर सांस्कृतिक इतिहास के लेखक किसी दिन डॉ० इकबाल की पंक्ति को शुद्ध (?) कर देंगे—

'कुछ बात थी जो हस्ती, मिट गई हमारी।'

▭

भारत की राजधानी

(ऑल इण्डिया १९८३ : 'ए')

जिस नगर में राष्ट्र के मुख्य कार्यालय अवस्थित होते है, वह 'राजधानी' कहलाता है। मुख्य शासक या राजा का स्थायी निवास-नगर 'राजधानी' के नाम से पहचाना जाता है। भारत के शासन को चलाने का केन्द्रीय नगर 'भारत की राजधानी' कहलाएगा।

राजधानी बनाने के लिए प्रशासनिक सुविधाओं का ध्यान रखना पडता है, राजा की सुरक्षा का विचारणीय प्रश्न रहता है, राज्य-कार्य की विशालता की दृष्टि से नगर की क्षमता को परखा जाता है।

रामायण-काल में अयोध्या भारत की राजधानी रही, तो महाभारत काल में दिल्ली; बौद्धकाल में कपिलवस्तु, तो जैनकाल में कुण्डग्राम। सम्राट् अशोक ने पाटलीपुत्र को राजधानी का गौरव प्रदान किया, तो मुगल बादशाहो ने दिल्ली को बादशाहत बख्शी, किन्तु कुछ मुगल सम्राटों ने आगरे को भी सल्तनत का केन्द्र बनाया। अंग्रेजो ने शुरू मे कलकत्ता को भारत की राजधानी माना, किन्तु सन् १९११ से यह गौरव दिल्ली को प्रदान किया गया। आज स्वतन्त्र भारत की राजधानी दिल्ली ही है।

दिल्ली को 'राजधानी' बनने का गौरव सर्वप्रथम महाभारतकाल मे प्राप्त हुआ। राजा युधिष्ठिर ने इस इन्द्रप्रस्थ को शासनकेन्द्र का प्रमुख नगर बनाया। उसके बाद चौहान राजाओ मे पृथ्वीराज चौहान ने दिल्ली को अपनी राजधानी बनाया। चौहानो के हाथ से हकूमत निकलकर अफगानों के हाथ चली गई। पहले अफगान बादशाह शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरी ने दिल्ली को ही राजधानी माना।

गुलामवश का राज्य भारत में आया। कुतुबुद्दीन ऐबक, अल्तमश, रजिया सुल्ताना, बलबन आदि इस वंश के बादशाह रहे। सबको दिल्ली ही रास आई। सबने दिल्ली को ही राजधानी का गौरव प्रदान किया।

गुलामवंश के बाद खिलजीवंश आया। अल्लाउद्दीन खिलजी, फिरोजशाह खिलजी, कुतुबुद्दीन खिलजी ने राज्य किया, और शासन केन्द्र दिल्ली ही रखा।

खिलजीवंश का उत्तराधिकार छीना तुगलकवंश ने, जिसमे गयासुद्दीन तुगलक, मोहम्मदबिन तुगलक, फीरोजशाह तुगलक ने भारत पर राज्य किया। इन्होंने भी अपनी राजधानी बनाने का गौरव दिल्ली को प्रदान किया।

तुगलकवंश के बाद लोदीवंश और तत्पश्चात् आया सुप्रसिद्ध मुगलवंश। बाबर, हुमायूं, अकबर, जहांगीर, शाहजहाँ, औरंगजेब, मोहम्मदशाह रंगीला और नादिरशाह, अबूजफर से चलती हुई हुकूमत अंतिम मुगल बादशाह बहादुरशाह जफर तक पहुंची। इन सब बादशाहों ने दिल्ली को ही अपनी राजधानी माना।

मुगलों से भारत के शासन की बागडोर अंग्रेजों ने हथियाई। अंग्रेज व्यापारी के रूप मे यहाँ आए थे। उन्होंने व्यापार के लिए कलकत्ता मे ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना की थी। अत जब धीरे-धीरे इस कम्पनी ने शासन की बागडोर हथिया ली, तब कलकत्ता को ही राजधानी बना दिया। उसके बाद अंग्रेजी शासन में सन् १७७८ से १९१० तक जितने भी गवर्नर जनरल तथा वायसराय आए, सभी ने ही कलकत्ता को भारत की राजधानी के रूप में अलङ्कृत किया। लॉर्ड हार्डिंग ने दिल्ली को सर्वप्रथम राजधानी का पद प्रदान किया। सन् १९१४ मे विधिवत दिल्ली में हो उसका राज्याभिषेक हुआ।

पांडवों के इन्द्रप्रस्थ से लेकर शाहजहाँ के शाहेख्वाब का स्वर्ग शाहजहाँनाबाद के रंगारंग रूप से गुजरती दिल्ली अंग्रेजों के रायसीना पर आकर टिक गई। 'रायसीना' बदलकर 'नई दिल्ली' कहलाया। १८ अगस्त, १९४७ को भारत स्वतन्त्र हुआ। स्वतन्त्र भारत की राजधानी बनी दिल्ली।

पांडवों की राजधानी से लेकर १९४७ तक इस दिल्ली ने हजारों साल का सफर तय किया। कितने अत्याचार, अनाचार, रोमहर्षण जुल्म बरदाश्त किए, कितनी खुशियाँ लूटीं। इसके गली-मुहल्ले, दरो-दीवार, इमारत, गुम्बद और मीनार के सीनों पर आप पढ़ सकते हैं गुजरे जमाने के अफसाने, यादों के झरोखों में झांकती ये यादगारें दिल्ली के उजड़ने और बसने की पहचान करा देती है।

आज स्वतन्त्र भारत की राजधानी दिल्ली है। शासन के तीनों प्रमुख अंग विधि-निर्माण, न्यायपालिका तथा कार्य-पालिका दिल्ली मे ही है। विधि-निर्माण संसद का कार्य है। न्याय-पालिका सुप्रीमकोर्ट है। कार्य-पालिका के २४ प्रमुख मन्त्रालय हैं।

'राजधानी' नाम की सार्थकता पूरी करते हैं राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, प्रधान मन्त्री, मुख्यन्यायाधीश तथा लोकसभा अध्यक्ष के निवास स्थान। अपने कार्यकाल मे इन सबका स्थायी निवास दिल्ली ही होता है।

२४ प्रमुख मन्त्रालयो का उत्तरदायित्व जिन जनप्रतिनिधियो पर है वे हैं—केन्द्रीय मन्त्री, राज्य मन्त्री तथा उपमंत्री। शासन-व्यवस्था की दृष्टि से उत्तरदायी हैं निजी सचिव, सहायक सचिव, अपर सचिव, उप सचिव तथा तत् सम्बन्धी अधिकारी गण। ये सभी मंत्री तथा सचिव दिल्ली में ही स्थायी रूप से रहते हैं। अतः दिल्ली के भारत की राजधानी होने की सार्थकता सिद्ध करते हैं।

देश के शासन मे सत्तापक्ष का ही हाथ होता है, किन्तु राजनीति मे विपक्ष की *आवश्यकता होती है।* उसके बिना लोकतन्त्र लगड़ा है। भारत मे सभी अखिल भारतीय मान्यताप्राप्त राजनीतिक दलो के, चाहे वे सत्ता मे हो या विपक्ष में, केन्द्रीय कार्यालय दिल्ली में ही हैं, जो दिल्ली के राजधानीपन का परिचायक हैं।

वर्तमान युग मे किसी भी राष्ट्र की राजधानी विश्व की कूटनीति से सम्बद्ध होती है। दिल्ली भारत की राजधानी होने के कारण विश्व कूटनीति का एक केन्द्र है। ६५ राष्ट्रों के राजदूत तथा १८ राष्ट्रों के उच्चायुक्त दिल्ली मे रहकर अपने राष्ट्रो का राजनीतिक कार्य करके अपने देश का प्रतिनिधित्व करते हैं।

शासन-व्यवस्था के विस्तार के साथ दिल्ली का विस्तार अवश्यम्भावी था। दिल्ली ने अपनी सीमा मे बहुत तेजी से विविध रूपेण विस्तार किया; एक-एक इंच भूमि का उपयोग किया। गली, कूचे, मोहल्लो से निकलकर दिल्ली नगरो, 'विहारों' मे फैली; साधारण मकानो से हटकर आलीशान कोठियो और गगन-चुम्बी 'टावरों' एव भूमिगत बाजारो में प्रतिष्ठित हुई; ऊबड़-खाबड रास्तो को *छोड़कर यातानुकूल सड़कों, पुलो और फ्लाइ ओवरो मे बदली। कभी* मिट्टी के तेल के दीपक दिल्ली की अंधेरी रात को रोशन करने का दम भरते थे, अब वहाँ विद्युत् के तेज बल्ब और ट्यूब सूर्य के प्रकाश को भी नीचा दिखाते है। दिल्ली में खेल के मैदान और स्टेडियम अपनी सम्पन्नता पर गर्व करते है।

भारत की राजधानी है दिल्ली। राजधानी के कारण है यह एक महानगर। महानगर का 'महा-पन' बढ रहा है। दिल्ली अपनी सीमाओ मे समा नही पा रही। दिल्ली, उसका निखरता सौंदर्य, अंगडाई लेता यौवन तथा मस्तीभरी जवानी गर्व से राजधानी होने की उद्घोषणा करते हैं। ●

विद्यालयों में अनुशासन की आवश्यकता

(ऑल इण्डिया १६८०, ८३ तथा ८४ : 'ए')

विद्यालयों मे अनुशासन की उतनी ही आवश्यकता है, जितनी खेल और सेना में उसकी आवश्यकता है। सेना की थोड़ी-सी अनुशासनहीनता से राष्ट्र परतन्त्र हो सकता है और खिलाड़ी की अनुशासनहीनता से खेल में पराजय अवश्यम्भावी है, उसी प्रकार विद्यालयों की अनुशासनहीनता से छात्र अपने मानसिक असन्तोष को उच्छृंखल व्यवहार के द्वारा प्रदर्शित करेंगे। फलतः विद्यालय-भवन की तोड़-फोड़, सहपाठियों से अपशब्द, लड़ाई-झगड़ा एवं अध्यापकों में दुर्व्यवहार करेंगे। 'विद्यालय औपचारिक शिक्षा प्रदान करने का प्रमुख साधन है' की भावना समाप्त हो जाएगी।

विद्यालयों का सुचारु रूप से संचालन अनुशासन पर ही निर्भर करता है। 'सुचारु रूप से संचालन' का तात्पर्य विद्यालयों में ऐसी स्थिति बनाए रखना है, जिससे अनेकानेक कार्य-कलाप सुचारु रूप से चलते रहें। इसके लिए व्यवस्थापकों, अध्यापकों तथा विद्यार्थियों— सभी के सहयोग की आवश्यकता है। जेम्स रॉस ने लिखा है कि 'बहुत अच्छी व्यवस्था बुरा अनुशासन भी हो सकती है, परन्तु सच्चा अनुशासन सर्वदा अपने साथ व्यवस्था बनाए रखता है।'

प्रधानाध्यापक, जो कि प्रशासनिक दृष्टि से विद्यालय की व्यवस्था के लिए उत्तरदायी होता है, की प्रशासनिक क्षमता, योग्यता, कार्य-दक्षता तथा व्यवहार कुशलता पर ही विद्यालय के अनुशासन की प्राचीर खड़ी रह सकती है। वह आन्तरिक और बाह्य संघर्ष से विरत रहकर ही प्रशासनिक क्षमता और कुशलता उत्पन्न कर सकता है।

प्रशासनिक व्यवस्था सुन्दर होगी तो विद्यालय ठीक समय पर लगेगा, प्रार्थना में सभी विद्यार्थी और अध्यापक उपस्थित रहेंगे, पीरियड ठीक बजेंगे अध्यापक पीरियड मे कक्षाओं में अध्यापन करेंगे, इधर-उधर घूमता न विद्यार्थी मिलेगा, न कक्षाओं से बाहर अध्यापक। विद्यालय में 'पिन ड्राप साइलेंस' होगी।

पढ़ने और पढ़ाने वाले दोनों को आनन्द आएगा। यह आनन्द तभी प्राप्त होगा जब विद्यालय में अनुशासन होगा :

विद्यालय की व्यवस्था का दूसरा दायित्व है अध्यापकों पर। अध्यापक राष्ट्र की संस्कृति रूपी उद्यान का चतुर माली है। वह संस्कार की जड़ों में खाद देता है। अपने श्रम से सींच-सींचकर उन्हें महाप्राण बनाता है। इसके विपरीत यदि अध्यापक स्वयं संस्कार-रहित रहे, आचरण हीनता प्रदर्शित करे, लोभ-लालचवश विद्यार्थियों से व्यवहार करे, तो व्यवस्था के प्रति विद्रोह उत्पन्न होगा, विद्यालय अशान्त होगा, पढ़ाई-लिखाई-दिखावा मात्र होगी, ट्यूशनों की हुंडी भुनाई जाएगी, परीक्षा में पक्षपातपूर्ण अंक प्रदान किए जाएँगे।

विद्यालय में अनुशासन की तीसरी और मुख्य कड़ी है—विद्यार्थी। विद्यार्थी सहपाठियों की चुगली करके, उनकी वस्तुएँ चुराकर, उनसे अपशब्द कहकर, मारपीट करके, गुरुजनों की आज्ञा का उल्लंघन करके बिना कारण पीरियड मिस करके, गृहकार्य न करके, गुरुजनों के पीछे उनकी हँसी उड़ाकर, उनसे कुतर्क करके तथा परीक्षा मे नकल करके विद्यालय के अनुशासन को भंग कर सकता है। अनुशासन आचरण के आतरिक स्रोत को स्पर्श करता है, विद्यार्थी के आवेगों व शक्तियों को विधानों के आधीन रखकर उच्छृंखलता को व्यवस्थित करता है। आंतरिक दृढ़ता आ जाने पर विद्यार्थी का बाह्य आचरण भी स्वतः सुसंस्कृत हो जाएगा। विद्यार्थी अनुशासन-प्रेमी बन जाएगा।

दुर्भाग्य से, विद्यालयों की सुव्यवस्था को आज का राजनीतिज्ञ पसन्द ही नहीं करता। विपक्षी दल राजकीय पक्ष को नीचा दिखाने के लिए विद्यार्थी-वर्ग का उपयोग करता है। परिणामस्वरूप नारेबाजी, भवन-विध्वंस, गुरुजनों के प्रति अनास्था का जन्म होता है। विद्यालय पढ़ाई के केन्द्र न रहकर राजनीति के अड्डे बन जाते हैं, जहाँ हड़ताल और विध्वंस को प्रोत्साहन मिलता है।

विद्यालय की सुचारु व्यवस्था में माता-पिता का दायित्व भी कम नहीं। विद्यार्थी को नियमित और समय पर स्वच्छ गणवेश और स्वस्थ मन से विद्यालय भेजना माता-पिता का कर्तव्य है। विद्यार्थी के आचरण पर तीखी नजर रखना, विद्यार्थी में अनुशासन की भावना जाग्रत करेगा।

विद्यालयों में विद्यार्थी ठीक ढंग से अध्ययन कर पाएँ, एकाग्रचित हो शिक्षार्जन कर सकें, उनमें संस्कार और सुरुचि के अंकुर प्रस्फुटित हों

और पल्लवित हो सकें तथा शरीर और आत्मा का सौन्दर्य विकसित हो सके; इसके लिए विद्यालयों में अनुशासन की नितांत आवश्यकता है।

प्रकृति स्वयमपि अनुशासन-बद्ध है। सूर्य-चन्द्र का उदय और अस्त, षड्ऋतु-परिवर्तन नियमबद्ध है। प्रकृति का अनुशासन संसार को जीवन दे रहा है। यदि प्रकृति अनुशासनहीनता प्रदर्शित करे, तो प्रलय हो जाए। उसी प्रकार ज्ञान के ज्योति-पुंज, संस्कृति और सभ्यता के स्रोत ये विद्यालय अनुशासनहीन हो जाएँ, तो राष्ट्र का विकास अवरुद्ध हो जाएगा, भविष्य अन्धकारमय हो जाएगा और देश निराशा के गर्त में गिर पड़ेगा।



आधुनिक शिक्षा-प्रणाली के गुण-दोष

वर्तमान शिक्षा-प्रणाली का इतिहास एक सदी ही पुराना है। भारत परतन्त्र था। विदेशी शासकों ने अपने राष्ट्र की शिक्षा-पद्धति को भारत में प्रचलित कर दिया। इसके संस्थापक विदेशी शिक्षाविद् श्री मैकाले थे। यह शिक्षा-नीति भारतीय संस्कृति, परम्परा एवं राष्ट्रीय जीवन के विपरीत थी। फलतः इससे उत्पन्न शिक्षित भारतीय नकलची, दास-मनोवृत्ति के पोषक और स्वसंस्कृति के विरोधी थे, वे देशभक्ति की भावना से शून्य थे। परिणामतः भारत का शिक्षित वर्ग विदेशी शासन का जड़ों को और भी सुदृढ़ करने का साधन बना।

पराधीनता के युग में इस शिक्षा-प्रणाली के विरुद्ध बुनियादी तालीम, शांति-निकेतन, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय शिक्षा-प्रणाली तथा पाण्डिचेरी-आश्रम व्यवस्था ने राष्ट्र में देशभक्त उत्पन्न कर स्वातन्त्र्य की ज्योति प्रचण्ड करने का प्रयास किया, किन्तु आज स्वतन्त्रता-प्राप्ति के ३७ वर्ष पश्चात् भी वही शिक्षा-पद्धति व्यापक रूप से भारत में प्रचलित है।

वर्तमान शिक्षा-पद्धति की देन है—*कार्य से जी चुराना और परिश्रम से कतराना*। एक ओर राष्ट्र उत्पादन के अभाव, दुर्भिक्ष और अर्थ-संकट में फँसा है और दूसरी ओर कारखानों, खेतों, खलिहानों, कार्यालयों एवं विद्यालयों में पूरा लगन से कार्य करने की ओर ध्यान नहीं दिया जा रहा है। बिना परिश्रम के कुछ ही दिनों में धनवान बनने की बलवती इच्छा की दौड़ में शिक्षित अशिक्षितों से एक कदम आगे बढ़ रहे हैं।

वर्तमान शिक्षा ने भारतवासियों को कहीं का न छोड़ा। 'आए थे हरिभजन को, ओटन लगे कपास।' पिता अपने पुत्र को विद्यालय इसलिए भेजता है कि वह शिक्षित होकर सभ्य बने, किन्तु वह बनता है पढ़ा-लिखा बेकार। इतना ही नहीं, वह भ्रष्ट होकर चरित्र को दूषित करता है। किसान का पुत्र विद्यालय में किसानी से नाता तोड़ने जाता है। बढ़ई का पुत्र विश्वविद्यालय में बढ़ईगीरी

और पल्लवित हो सकें तथा शरीर और आत्मा का सौन्दर्य विकसित हो सकें; इसके लिए विद्यालयो मे अनुशासन की नितांत आवश्यकता है।

प्रकृति स्वयमपि अनुशासन-बद्ध है। सूर्य-चन्द्र का उदय और अस्त, षड्ऋतु-परिवर्तन नियमबद्ध है। प्रकृति का अनुशासन संसार को जीवन दे रहा है। यदि प्रकृति अनुशासनहीनता प्रदर्शित करे, तो प्रलय हो जाए। उसी प्रकार ज्ञान के ज्योति-पुंज, संस्कृति और सभ्यता के स्रोत ये विद्यालय अनुशासनहीन हो जाएँ, तो राष्ट्र का विकास अवरुद्ध हो जाएगा, भविष्य अन्धकारमय हो जाएगा और देश निराशा के गर्त मे गिर पड़ेगा।

आधुनिक शिक्षा-प्रणाली के गुण-दोष

वर्तमान शिक्षा-प्रणाली का इतिहास एक सदी ही पुराना है। भारत परतन्त्र था। विदेशी शासकों ने अपने राष्ट्र की शिक्षा-पद्धति को भारत में प्रचलित कर दिया। इसके सम्स्थापक विदेशी शिक्षाविद् श्री मैकाले थे। यह शिक्षा-नीति भारतीय संस्कृति, परम्परा एवं राष्ट्रीय जीवन के विपरीत थी। फलतः इससे उत्पन्न शिक्षित भारतीय नकलची, दास-मनोवृत्ति के पोषक और स्वसंस्कृति के विरोधी थे, वे देशभक्ति की भावना से शून्य थे। परिणामतः भारत का शिक्षित वर्ग विदेशी शासन का जडो को और भी सुदृढ करने का साधन बना।

परावीनता के युग में इस शिक्षा-प्रणाली के विरुद्ध बुनियादी तालाम, शांति-निकेतन, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय शिक्षा-प्रणाली तथा पाण्डिचेरी-आश्रम व्यवस्था ने राष्ट्र में देशभक्त उत्पन्न कर स्वातन्त्र्य की ज्योति प्रचण्ड करने का प्रयास किया, किन्तु आज स्वतन्त्रता-प्राप्ति के ३७ वर्ष पश्चात् भी वही शिक्षा-पद्धति व्यापक रूप से भारत में प्रचलित है।

वर्तमान शिक्षा-पद्धति की देन है—कार्य से जी चुराना और परिश्रम से कतराना। एक ओर राष्ट्र उत्पादन के अभाव, दुर्भिक्ष और अर्थ-संकट मे फँसा है और दूसरी ओर कारखानो, खेतो, खलिहानो, कार्यालयो एवं विद्यालयो मे पूरा लगन से कार्य करने की ओर ध्यान नही दिया जा रहा है। बिना परिश्रम के कुछ ही दिनो मे धनवान बनने की बलवती इच्छा की दौड मे शिक्षित अशिक्षितो से एक कदम आगे बढ रहे है।

वर्तमान शिक्षा ने भारतवासियो को कही का न छोडा। 'आए थे हरिभजन को, ओटन लगे कपास।' पिता अपने पुत्र को विद्यालय इसलिए भेजता है कि वह शिक्षित होकर सभ्य बने, किन्तु वह बनता है पढा-लिखा बेकार। इतना ही नही, वह भ्रष्ट होकर चरित्र को दूषित करता है। किसान का पुत्र विद्यालय में किसानी से नाता तोडने जाता है। बढई का पुत्र विश्वविद्यालय मे बढईगीरी

से रिश्ता तोड़ने जाता है। कर्मकांडी पण्डित अपने ही आत्मज से 'पाखण्डी' की उपाधि प्राप्त करने के लिए उसे विश्वविद्यालय में भेजता है। आज का शिक्षित युवक अपने वंश-परम्परागत कार्य को करने के लिए तैयार नहीं। परिणामतः शिक्षित बेरोजगारों की संख्या देश में सुरसा के मुख का भाँति फैल रही है। मानो नौकरी ही शिक्षण की एकमात्र परिणति है।

नैतिकता जीवन का मूल है। नैतिकता का सम्बन्ध व्यक्ति की आस्था व निष्ठा से है। सम्प्रति, भारत मे नैतिक शिक्षा की उपेक्षा की जा रही है। अतः नैतिक भावना विहीन शिक्षा विद्यार्थियों में आस्था एवं श्रद्धा उत्पन्न नहीं कर पाती। वर्तमान युग में छात्रों की उच्छृंखलता और अराजकता की स्थिति नैतिकता के अभाव रूपी बीज से उत्पन्न वृक्ष के कटु और शुष्क फल हैं।

पता नहीं क्यों? भारत के महान राष्ट्र-भक्त प्रधानमंत्रियों ने शिक्षा को सदा प्राथमिकता और अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थिति से वंचित ही रखा। परिणामस्वरूप शिक्षा के बजट को अनावश्यक और उसकी समस्याओं को बेकार समझा गया। परिणामतः ३७ वर्ष में तीन शिक्षा आयोगों की नियुक्तियाँ हुईं। पहला विश्वविद्यालय शिक्षा-आयोग, दूसरा माध्यमिक शिक्षा-आयोग और तीसरा सम्पूर्ण शिक्षा-आयोग। इन आयोगों की नियुक्ति ही अव्यावहारिक थी। कारण कि सुधार का कार्य प्राथमिक शिक्षा से होना चाहिए था, जबकि पहला आयोग *विश्वविद्यालय-शिक्षा पर विचार करने के लिए नियुक्त किया गया। भला जब तक* जड़ को नहीं सींचा जाएगा, तब तक पत्तों को सींचने से क्या लाभ होगा? फिर, इन आयोगों ने जो सुझाव दिए थे, उन्हें भी तो अर्थाभाव के कारण कार्यान्वित नहीं किया गया।

वर्तमान शिक्षा-प्रणाली जीवन के लिए घोर अभिशाप सिद्ध हो रही है। शिक्षा मनुष्य को सुसंस्कृत एवं स्वावलम्बी बनाने का साधन होना चाहिए, किन्तु वर्तमान शिक्षा मे यह गुण नहीं है। आज का सुशिक्षित युवक-वर्ग न केवल दूसरों के लिए, बल्कि स्वयं अपने लिए भी दुखदायी बन रहा है। देश में बेरोजगार इंजीनियरों, वकीलों, वैज्ञानिकों तथा डाक्टरों की विशाल संख्या देश के लिए अभिशाप बन गई है। शिक्षा ने उनमे 'सादा जीवन, उच्च विचार' और सेवावृत्ति उत्पन्न की ही नहीं, अन्यथा वे गाँवों को स्वर्ग बनाकर राष्ट्र-हित कर पाते। देश की सच्ची सेवा कर पाते।

वर्तमान शिक्षा-प्रणाली मे नगरोचित तत्त्वों की प्रधानता है, जबकि भारत माता ग्रामवासिनी है। ग्राम-विकास की योजनाओं को शहरी शिक्षण तत्त्व कैसे पूरा कर सकते है? उलटा इससे तो गाँव की ओर से विमुखता ही जागृत हुई है। आत्मघाती प्रवृत्ति ने धन-धान्यपूर्ण देश मे अन्न-संकट उत्पन्न कर दिया है।

भारत जनतन्त्र का उपासक है। यह जीवन-शैली भारत ने अपनाई है। जनता की शिक्षा का माध्यम जनता की भाषा होनी चाहिए। विदेशी भाषा के माध्यम से भारत का नागरिक विदेशी आचार-विचार, रहन-सहन, जावन-पद्धति, सभ्यता और संस्कृति ही ग्रहण करेगा। हम अपने दर्शन ग्रंथों को संस्कृत मे नही, अंग्रेजी के माध्यम मे पढकर गौरवान्वित होते है। परिणामतः अर्जुन को 'अर्जुना', कृष्ण को 'कृष्णा' और राम को 'रामा' कहकर अपने प्रकाड (?) ज्ञान का परिचय देते हैं।

३७ वर्ष के स्वतन्त्र-जीवन मे भारतीय शिक्षा-पद्धति में तरह-तरह के प्रयोग किए गए है। वे सभी अनुपयोगी और अनुपादेय सिद्ध हुए। अब कोठारी-आयोग के अनुसार नया प्रयोग प्रारम्भ किया गया है। इसकी दुर्दशा यह है कि दिल्ली केन्द्र शासित राज्यों और भारत-भर के केन्द्रीय विद्यालयो को छोडकर किसी भी प्रान्त ने इस शिक्षा-पद्धति को स्वीकार नही किया। जहाँ दिल्ली का विद्यार्थी १५ वर्ष मे बा० ए० की उपाधि लेगा, वहाँ निकटतम पड़ोसी राज्य हरियाणा तथा उत्तर प्रदेश का विद्यार्थी १४ वर्ष मे बी० ए० हो जाएगा। दूसरे, न इसे व्यावसायिक कार्यक्रम मे सफलता मिली और न सक्षिप्त-प्रश्नावली-सकलन मे ही। अब यह शिक्षा-पद्धति गतिहीन और असहाय पड़ी है। दुर्गन्ध-भरी इस नवीन शिक्षा-पद्धति रूपी शव को मूँछ का बाल बनाकर झूठी प्रतिष्ठा के चक्कर में राजनीतिज्ञ और शिक्षाविद् प्रयोग करने पर तुले है।

नवीन शिक्षा-पद्धति

शिक्षित बेरोजगारों की संख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ते हुए देखकर भारत का प्रत्येक राजनीतिज्ञ, सत्ताधारी एवं बुद्धिजीवी व्यक्ति शिक्षा-पद्धति में परिवर्तन की माँग गत ६-७ दशाब्दी से कर रहा है। नवीन शिक्षा-पद्धति शिक्षा-शास्त्रियों के इसी चिन्तन का परिणाम है।

६ दशाब्दी पूर्व सेडलर आयोग ने १० + २ + ३ की शिक्षा-योजना प्रस्तुत की थी। राधाकृष्णन् आयोग ने भी १० + २ + ३ प्रणाली प्रचलित करने का समर्थन किया। तत्पश्चात् मुदालियर आयोग ने ११ + ३ का प्रस्ताव रखा। यही प्रणाली भारत के अनेक राज्यों ने स्वीकार कर ली और प्रचलित की, किन्तु कोठारी आयोग ने पुनः १० + २ + ३ के समर्थन में अपना मत व्यक्त किया। वर्तमान शिक्षा-पद्धति कोठारी-आयोग द्वारा प्रस्तावित शिक्षा-नीति है।

नवीन शिक्षा-पद्धति के प्रस्तावकों ने इस शिक्षा-नीति के अनेक लाभ गिनवाए हैं। पहला है, दसवीं तक छात्रों को विशिष्टीकरण के चक्कर से बचाकर इतना ज्ञान प्रदान करना कि वे अर्जित ज्ञान की पृष्ठभूमि में व्यावसायिक अथवा सामान्य शिक्षा ग्रहण करने में सक्षम हो जाएँ। दूसरे, प्रकृति के मूलभूत नियमों की जानकारी देने के लिए विज्ञान और गणित को अनिवार्य करना। तीसरे, मानव की भौतिक, सामाजिक, ऐतिहासिक एवं आर्थिक परिस्थितियों की सामान्य जानकारी के लिए सामाजिक विषयों का अध्ययन अनिवार्य करना। चौथे, श्रम के प्रति निष्ठा उत्पन्न करने के लिए कार्यानुभव का प्रशिक्षण देना। पाँचवें, स्वस्थ नागरिक-निर्माण की दृष्टि से स्वास्थ्य-शिक्षा पर विशेष ध्यान देना। छठे, व्यावसायिक शिक्षा की अनिवार्यता।

इस प्रकार १० + २ का पाठ्यक्रम विषयों की भीड़ बन गई। कोमलमति किशोर-किशोरियों का बस्ता 'गधे का बोझ' बन गया। १६ विषयों के चक्रव्यूह में आज का छात्र-अभिमन्यु फँस गया है और बे-मौत मारा जा रहा है। नवीन

शिक्षा-पद्धति पर आधारित हाईस्कूल (दसवीं) का परीक्षा-परिणाम इसकी पुष्टि करता है।

दूसरे, पाठ्यक्रम में जो पुस्तकें निर्धारित की गई है, उनको देखने से लगता है कि हमारे शिक्षाविद् बच्चों के मस्तिष्क में अनेक विषयों का अधकचरा ज्ञान भरना चाहते हैं, किसी विषय का पूर्ण ज्ञान नहीं।

तीसरे, गणित और विज्ञान की पढाई अनिवार्य तो कर दी गई, किन्तु पाठ्यक्रम के अध्ययन के लिए सक्षम प्रयोगशालाओं का निर्माण नही हुआ। परिणामतः प्रायोगिक विषय भी 'तोता-रटन्त' बनकर रह गए। झख मारकर १९८४ से इसकी अनिवार्यता विकल्प मे बदल दी गई है।

चौथे, नवीन शिक्षा-पद्धति में प्रश्न-शैली की नवीनता के नाम पर मनमाने ढंग से प्रश्न पूछे गए। विद्यार्थियों मे लोकोक्ति और मुहावरे का प्रयोग एक ही वाक्य में पूछना और वह भी एक अंक के लिए, परीक्षक के मस्तिष्क का दिवालियापन प्रकट करता है। फलतः १९७९ से पुन: पुरानी प्रश्न-पद्धति अपना ली गई। लौट के 'अकलमन्द' घर को आए।

पांचवें, शिक्षा का व्यवसायीकरण पुरानी और नयी पद्धति की विभाजक रेखा है। प्रश्न यह है कि शिक्षा का व्यवसायीकरण किसलिए? क्या राष्ट्र मे स्थापित व्यवसायों में शिक्षित व्यक्तियों का अभाव है या व्यवसाओ में जिस कुशलता की आवश्यकता है, वह छात्रों को दे दी जाएगी, ताकि भविष्य मे उनके काम आए। राष्ट्र की वर्तमान-स्थिति मे न तो कोई व्यवसाय खाली ही पडे हैं और न दी जाने वाली व्यावसायिक शिक्षा इतनी पूर्ण ही है कि वह छात्रों के भविष्य में काम आ सके। अर्थाभाव के कारण स्कूलो में व्यावसायिक उपकरणों का अभाव कोढ मे खाज सिद्ध हो रहा है। भय है, व्यावसायिक शिक्षा के नाम पर शिक्षा का स्तर ही न गिर जाए; माध्यमिक शिक्षा प्राप्त कर किशोर-किशोरियाँ जीवन के चौराहे पर किंकर्तव्यविमूढ़ खडे पछता न रहे हों। न उनको शिक्षा-रूपी माया ही मिली और व्यावसायिक ज्ञान-रूपी राम भी उनकी पहुँच से बहुत दूर चले गए।

यहाँ एक प्रश्न व्यवसाय के चुनाव का भी उठता है। क्या शहरी और क्या ग्रामीण—कोई भी छात्र कृषि, बागवानी, बढईगीरी, मधुमक्खी-पालन आदि सीखना पसन्द करेगा? गाँव का विद्यार्थी शहरी बाबू बनने के लिए टाइपराइ-

टिंग, फोटोग्राफी, रेडियो-टेलीविजन-अभियान्त्रिकी सीखना ही पसन्द करेगा। और शहरी छात्र तो जन्मतः ही कृषि आदि कार्यों से नफरत करता है। दूसरे, बढई का बेटा बढ़ईगीरी, किसान का लड़का कृषि और कुम्हार का बेटा मिट्टी का कार्य ही सीखेगा। फिर, विषयों का विविधीकरण कहाँ हुआ ?

व्यावसायिक शिक्षा का सर्वाधिक निकृष्ट पहलू है कि प्रत्येक स्कूल को कुछ व्यवसाय दे दिए गए हैं। छात्रों को अपनी रुचि के विरुद्ध उन्हीं में से एक को चुनना पडता है। 'रुचि के विरुद्ध' विषय और व्यवसाय का विवशतावश चयन नवीन शिक्षा-पद्धति का दाह-संस्कार है।

इस शिक्षा-पद्धति का सर्वाधिक कमजोर पहलू है प्रशिक्षित अध्यापकों का अभाव। 'व्यावसायिक कार्य' के अधिकृत शिक्षकों के अभाव में भय है कि अनाड़ी वैद्य कहीं मरीज को यमलोक न पहुँचा दे और अर्धशिक्षित मल्लाह कहीं नाव को भँवर में न फँसा दे। इसलिए भूतपूर्व प्रधानमन्त्री श्री मोरारजी देसाई ने इस पद्धति को 'अव्यावहारिक' कहकर 'राष्ट्र के लिए अहितकर' बताया था। फिर भी शिक्षाविदों की बहुसंख्या आँख मीचकर इस पद्धति का समर्थन कर रही है। दूरगामी परिणाम क्या होंगे, यह तो भविष्य ही बताएगा।

कोठारी-आयोग का विचार था कि नवीन शिक्षा-पद्धति में ३० प्रतिशत छात्र ही उच्च शिक्षा की ओर उन्मुख होंगे। शेष छात्र व्यवसाय या व्यावसायिक शिक्षा की ओर मुड जाएँगे, किन्तु १६७८ से १६८४ तक +२ के अन्तर्गत ११वीं कक्षा में प्रविष्ट छात्रों की संख्या ने आयोग के अनुमान की धज्जियाँ उड़ा दी हैं।

११वीं और १२वीं कक्षाओं का तो बाबा आदम ही निराला है। दूरदर्शिता के अभाव में छात्र-जीवन से खिलवाड हो रहा है। ठोक-पीटकर वैद्यराज बनाने के नुस्खे प्रयुक्त हो रहे हैं। भ्रष्ट और अशुद्ध पुस्तकों का, प्रकाशन हो रहा है, क्योंकि राजनीति और भाई-भतीजावाद ने पावन लेखकीय कर्म को ग्रस लिया है।

टाँय-टाँय फिस करके वर्तमान शिक्षा-पद्धति गतिहीन और असहाय पड़ी है। दुर्गन्ध भरे इस नवीन शिक्षा-पद्धति रूपी शव को मूँछ का बाल बनाकर झूठी प्रतिष्ठा के चक्कर में राजनीतिज्ञ और शिक्षाविद् पुनः-पुनः प्रयोग कर रहे हैं। भय है कि अधिक प्रयोग से सारा राष्ट्रीय वातावरण विषाक्त न हो जाए।

शिक्षा और व्यवसाय

शिक्षा और व्यवसाय जीवन-रूपी रथ के दो पहिए हैं। शिक्षा के बिना जीविकोपार्जन सम्भव नही, व्यवसाय बिना शिक्षा व्यर्थ है। अतः शिक्षा और व्यवसाय एक-दूसरे के पूरक हैं; सहयोगी है; मानवीय प्रगति के सम्बल हैं; राष्ट्रीय विकास के उपकरण हैं, आर्थिक उन्नति के परिचायक हैं।

प्राचीन युग में शिक्षा ग्रहण करने का उद्देश्य ज्ञानार्जन करना था;'तमसो मा ज्योतिर्गमय' उसका उद्घोष था। इसलिए सिद्धान्त वाक्य बना—'ज्ञान तृतीयं मनुष्यस्य नेत्रम्' (ज्ञान मनुष्य का तृतीय नेत्र है)। उस समय शिक्षा धनोपार्जन का माध्यम नही थी।

समय ने करवट बदली। जनता को विधिवत् शिक्षित करने का अभियान चला। लार्ड मैकॉले-योजना की कार्यान्विति हुई। भारत मे शिक्षण-संस्थाओ का जाल फैला। भारतीय जनता शिक्षित होने लगी, किन्तु जीवनयापन की दृष्टि से अयोग्य। मैट्रिकुलेट और ग्रेजुएट नौकरी की तलाश मे आकाश-पाताल एक करने लगे। पढ़-लिखकर बाबू बनना मात्र शिक्षा का ध्येय बन गया। किसान का पुत्र बाबू बनकर किसानी से नाता तोडने लगा। कर्मकाडी पडित का पुत्र बाबू बनकर अपने ही पिता को 'पाखंडी' की उपाधि से विभूषित करने लगा। हाथ से काम करने में आत्महीनता का अनुभव होने लगा। परिणामत. वश-परम्परागत कार्य ठुकरा दिए गए। गाँव के भोले-भाले मैट्रिकुलेट युवक को बाबूगीरी में स्वर्ग दिखाई देने लगा; उसकी प्राप्ति के लिए वह तडपने लगा।

शिक्षित युवक स्वयं प्रगति-पथ पर अग्रसर होना नही चाहता और न देश के उत्पादन में अपना योगदान देना चाहता है। उसमे न परिस्थितियो से सघर्ष करने की क्षमता है और न अपने पैरो पर खडे रहने की योग्यता ही। अत्युत्तम प्राकृतिक साधनों के होते हुए भी कमजोर आर्थिक व्यवस्था का मूल कारण भी शिक्षित युवक वर्ग की उदासीनता ही है।

नौकरियाँ कम है, प्रमाण-पत्र और उपाधि-पत्र धारण करने वालों की संख्या सहस्रों गुणा अधिक है। अनार एक है, बीमार सौ। कैसे काम चले? दुष्परिणाम सामने आया। शिक्षित बेरोजगारों की संख्या सुरसा के मुँह की भांति फैलने लगी।

पिछले कुछ वर्षों से समाज की मान्यताओं, मूल्यों, विविध आवश्यकताओं, समस्याओं और विचारधाराओं में उल्लेखनीय परिवर्तन हुए हैं। इन परिवर्तनों के साथ समाज का सामंजस्य नितान्त आवश्यक है। यह काम है शिक्षा का। इन परिवर्तनों के अनुरूप शिक्षा के स्वरूप, प्रणाली और व्यवस्था में परिवर्तन अनिवार्य है। यह परिवर्तन है शिक्षा-व्यवस्था को अधिक उपयोगी, व्यावहारिक तथा जीवन से सम्बन्धित बनाने का प्रयास।

सन् १९१९ में सैडलर-आयोग ने, १९४८-४९ में राधाकृष्णन्-आयोग ने, १९५२ में मुदालियर-कमीशन ने तथा १९६४-६६ में कोठारी-आयोग ने शिक्षा का व्यवसायीकरण करने का सुझाव दिया।

'व्यावसायिक शिक्षा' अथवा 'शिक्षा का व्यवसायीकरण' का अर्थ क्या है? सामान्य शिक्षा के साथ-साथ सामाजिक-आर्थिक जीवन के लिए उपयोगी शिल्पों एवं व्यवसायों का ज्ञान प्राप्त करना 'शिक्षा का व्यवसायीकरण' है। इस शिक्षा का लक्ष्य कुशल शिल्पी तैयार करना नहीं, वरन् विद्यार्थी में उद्योग-धन्धों के प्रति प्रेम और उनकी ओर झुकाव उत्पन्न करके शारीरिक श्रम के महत्त्व की अनुभूति कराना है। यह शिक्षा जनतान्त्रिक भावना विकसित करने के साथ-साथ सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक विकास करेगी; व्यक्ति निहित शक्तियों का विकास करके उसे समाज का उपयोगी सदस्य बनाने में सफल होगी।

व्यावसायिक शिक्षा व्यक्ति को समाज की वास्तविकता से परिचित कराएगी। समाज के विकास में व्यक्ति की भूमिका का ज्ञान कराएगी। व्यावसायिक शिक्षा रोजगार पैदा नहीं करेगी, वह तो व्यक्ति को रोजगार प्राप्त करने अथवा स्वतन्त्र रूप से अपनी जीविका अर्जित करने में सहायक होगी। व्यावसायिक शिक्षा से व्यक्ति का दृष्टिकोण व्यापक होगा। फलस्वरूप वह स्वाध्याय एवं स्वानुभव द्वारा उच्चतम उपलब्धियाँ प्राप्त करने में समर्थ होगा।

यदि हम राष्ट्र की विकासशीलता में अभीष्ट परिणति चाहते हैं, तो सामान्य शिक्षा के साथ श्रम के महत्त्व को प्रमुख स्थान देना होगा। शारीरिक श्रम को

बौद्धिक श्रम के समकक्ष रखना होगा। सुयोग्य, सुशिक्षित नागरिक तैयार करने होंगे। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए हमें अपनी शिक्षा को व्यवसायपरक एवं जीवनोपयोगी, व्यावहारिक तथा वास्तविकता के अनुरूप बनाना होगा। 'अब बुद्धि-विलास की शिक्षा का वह युग बीत गया, जबकि शिक्षा मनोरंजन का साधन मानी जाती थी। अब शिक्षा ज्ञानार्जन के साथ-साथ मानव को मानवीय गुणों से युक्त बनाने वाली होनी चाहिए, जिससे वह सभी प्राणियों का समता की दृष्टि से विकास करने का प्रयास करे।'

अतः यह आवश्यक हो गया है कि हम भावी राष्ट्र-निर्माताओं को उनकी रुचि, अभिरुचि तथा योग्यता के अनुसार शिक्षा दें। स्थानीय उद्योग-धन्धों में शैक्षणिक क्रिया-कलापों का समन्वय स्थापित कर एक नये वातावरण की रचना करें, ताकि हमारे समस्त अभावों की पूर्ति हो सके और आर्थिक अवरोध तथा बेकारी की समस्या हल हो जाए।

कोठारी-आयोग के प्रतिवेदन के अनुसार भारत के लगभग १६०० उच्चतर तथा वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालयों में शिक्षा और व्यवसाय के अनुरूप पाठ्यक्रम स्वीकार कर लिया गया है। शिक्षित प्रशिक्षकों के अभाव, प्रयोगशालाओं की कमी और आर्थिक असुविधा के कारण गत पांच वर्षों में जो प्रगति होनी चाहिए थी, वह नगण्य सम है। दूसरी ओर है श्रेष्ठ पाठ्यक्रम के निर्धारण की उपेक्षा या असामर्थ्य। इसमें भय लगता है कि शिक्षा को व्यावसायिक रूप देने के प्रयत्न में हम गणेशजी की स्थापना करते-करते बन्दर की मूर्ति न बना दे।

आज संसार द्रुतगति में बढ़ रहा है, विकसित हो रहा है। रूस और अमेरिका पृथ्वी नक्षत्र को छोड़कर मंगल और बृहस्पति ग्रह तक पहुँचने का प्रयास कर रहे हैं। संसार की दौड़ में हम पीछे न रह जाएँ, इसके लिए यह अनिवार्य है कि हमारी शिक्षा का व्यवसाय के साथ सामंजस्य हो, सम्मिलन हो, सन्तुलन हो।

राष्ट्रीय साक्षरता का प्रश्न

भारत में अंग्रेजी-शासन की स्थापना से पूर्व भारत का प्राय: प्रत्येक नागरिक शिक्षित होता था। राष्ट्र में इसके लिए कुछ प्रथाएँ प्रचलित थी। गाँव-गाँव में स्थापित पाठशालाएँ, मदरसे आदि शिक्षा-संस्थाएँ बच्चों की उचित शिक्षा-दीक्षा का प्रबन्ध करती थी। एक अंग्रेज विद्वान् के मतानुसार भारत में साक्षरता का प्रतिशत विश्व में सबसे अधिक था।

अंग्रेजी-राज्य में पाठशालाओं का प्रारम्भिक स्वरूप नष्ट हुआ। अंग्रेजी-शिक्षा पद्धति प्रारम्भ हुई। भारत का निम्न मध्यवर्ग तथा ग्रामीण-जनता इससे वंचित रह गई या वंचित कर दी गई। फलत: निरक्षता बढ़ी। यह इस सीमा तक बढ़ी कि आज विश्व के निरक्षर वयस्कों की सम्पूर्ण संख्या का आधे से अधिक भाग भारत में निवास करता है।

भारत की बहुजन संख्या अनपढ़ या अशिक्षित रहे, इसमें अंग्रेजों का भला था। अशिक्षित वर्ग में अन्धविश्वास और कुप्रथाएँ मजबूती से जड़ जमाती हैं। इसलिए सबसे अधिक शोषण इसी वर्ग का हुआ। कायदे-कानून से यह अनभिज्ञ रहा। यह भोला-भाला वर्ग हर प्रकार से दलित, पीड़ित तथा शोषित रहा।

परतन्त्रता-काल में भारतीय नेताओं ने अनपढ़ जनता को साक्षरता प्रदान करने का अभियान चलाया। परिणामस्वरूप उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, पंजाब, बम्बई एवं बंगाल में प्रौढ़-शिक्षा का तीव्रता से प्रसार हुआ। प्रौढ़ों के लिए रात्रि-पाठशालाएँ खोली गईं। १९४८ ई० में देश स्वतन्त्र हुआ। संविधान-निर्माताओं ने घोषणा की कि ६ वर्ष से १४ वर्ष तक की आयु के सभी बच्चों की प्राथमिक शिक्षा का प्रबन्ध सरकार का कर्तव्य है। यह राष्ट्र को शिक्षित करने का श्रेष्ठ संकल्प था। यदि सरकार अपने इस संवैधानिक कर्त्तव्य की पूर्ति करती, तो संविधान-निर्माण के ३७ वर्ष पश्चात् देश में निरक्षर नागरिकों की संख्या शून्य होती, किन्तु सरकार अपने इस कर्तव्य की पूर्ति में असफल रही

और यह समस्या विकराल रूप धारण कर गई।

अंग्रेजी में एक शब्द है 'एडल्ट एजूकेशन'। भारतीय नेताओं ने इसका अनुवाद किया 'प्रौढ़ शिक्षा'। एडल्ट में १५ से लेकर ३५ वर्ष तक की आयु के नागरिक आते हैं। अतः प्रौढ़-शिक्षा में १५ वर्ष से कम तथा ३५ वर्ष से अधिक आयु के नागरिक शिक्षा से वंचित रह जाते हैं। विदेशी भाषा और पद्धति के अनुकरण का यही परिणाम होता है।

भारत में लोकतन्त्र है। लोकतन्त्र का प्रमुख साधन चुनाव है। चुनाव में २१ वर्ष या अधिक आयु का भारतीय मतदान कर सकता है। २१ वर्ष से अधिक आयु के अधिकांश मतदाता निरक्षर हैं, अशिक्षित हैं। सन् १९८१ की जन-गणना के अनुसार यह संख्या ७१ प्रतिशत है; अर्थात् भारत के बीस करोड़ प्रौढ़ नागरिक निरक्षर हैं। चालाक उम्मीदवार अपने प्रचार-साधनों के बल पर इस वर्ग को फुसला कर गुमराह कर लेता है। अतः मतदाता को शिक्षित करने के महान् उद्देश्य को लेकर 'प्रौढ़-शिक्षा-योजना' आरम्भ की गई।

प्रौढ़-शिक्षा का तात्पर्य है निरक्षर, अर्द्ध-साक्षर या विस्मृताक्षर प्रौढ़ों को पुनः साक्षरता का संस्कार देना। साथ ही जीवन-क्षेत्र में आवश्यक जानकारी को विशेष बल देना। इसलिए प्रौढ़-शिक्षा का वास्तविक अर्थ हुआ 'समाज-शिक्षा'; ऐसी शिक्षा जो व्यक्ति को एक सुयोग्य नागरिक बनाने में समर्थ हो, जो उसे सच्चे अर्थ में मानव बना दे। वह अपने अधिकार और कर्त्तव्य को पहचानने लगे।

किन्ही अन्य अर्थपूर्ण और जरूरी योजनाओं के लिए आवंटित कर दिया जाए। पश्चिम बंगाल भी इस ओर उदासीन रहा। उसने केन्द्र की कथित लाल फीताशाही तथा नौकरशाही के कारण इस योजना को लागू करने मे आना-कानी की। कुछ राज्यों मे धन का दुरुपयोग दलीय हितों मे होने की आशंका से केन्द्र ने सहायता न दी। मार्क्सवादी सरकारें उनमे से है।

सरकार ने कुछ स्वयंसेवी-सस्थाओ का सहयोग इस योजना के प्रचार और प्रसार मे लिया। १७ राज्यों मे ऐसे २८६६ केन्द्र प्रारम्भ हुए। इन संस्थाओं को लगभग पौने पाँच करोड रुपये अनुदान मे दिए गए।

प्रश्न है प्रौढो मे शिक्षा के प्रति उत्साह कैसे जाग्रत हो? सूर्योदय से सूर्यास्त तक जी-तोड काम करने वाला किसान; मजदूर या हरिजन जब शाम को थका-हारा घर लौटता है, तो उसमे इतनी शक्ति और मानसिक शान्ति कहाँ रह जाता है, जो वह शिक्षा के लिए लालायित हो सके। दूसरे, साक्षरता-अभियान को रोजगारोन्मुख नही बनाया गया। अधिक प्रचार तो 'काम के बदले अनाज' का रहा। परिणामतः पढने के इच्छुक प्रौढों ने पढने-लिखने की अपेक्षा दूसरी और ध्यान लगाया।

इस वर्ग को पढ़ाने वाले की मन.स्थिति स्वस्थ, उत्साहप्रद एवं स्वयंस्फूर्त होनी चाहिए। उनके वातावरण में घुल-मिलकर एकात्मक होने की चेष्टा होनी चाहिए। यह तभी सम्भव है, जब वेतन अच्छा हो। यहाँ वेतन मात्र ५० रुपये मासिक रखा गया, जो अत्यल्प है। दूसरी ओर, ५० प्रतिशत स्थान स्त्रियों के लिए सुरक्षित रखे गए। यह भी एक रुकावट बनी। कारण, शिक्षित महिलाएँ इतने थोड़े वेतन पर नही आईं।

तीसरे, नौकरशाहा और लालफीताशाही के अभेद्य जाल मे जकड़ी सरकार द्वारा छः सौ करोड की राशि इस कल्याणकारी योजना की कार्यान्विति में कितनी प्रयुक्त होगी, इसी पर योजना की सफलता निर्भर है।

यदि सरकारी-तन्त्र इस विशाल राशि का सदुपयोग प्रोढो को शिक्षित करने में नही कर सका, उनमें सामाजिक चेतना जागृत नही कर सका, तो देश की भावी सन्तति उसे कभी क्षमा नही करेगी।

जा रहा है, कहीं नाटक के लिए मंच बनाया जा रहा है, कहीं दरियां बिछायी जा रही हैं।

तीन बजे से ही निमन्त्रित व्यक्तियों का आगमन आरम्भ हो गया है। हर एक मेहमान के पास प्रवेश-पत्र है। वह अपने प्रवेश-पत्र के अनुसार अपने स्थान पर बैठ जाता है। पंडाल में अध्यक्ष महोदय के कुर्सी तक पहुंचने के लिए बीचों-बीच एक मार्ग छोड़ा हुआ है। एक ओर मान्य अतिथि बैठे हैं, दूसरी ओर उत्सव में भाग लेने वाले विद्यार्थी पंक्तिबद्ध स्कूल-गणवेश में खड़े हैं। मार्ग पर लाल बजरी बिछी हुई बड़ी सुन्दर लगती है। मार्ग के दोनों ओर माननीय अध्यक्ष के स्वागतार्थ एन० सी० सी० के छात्र खड़े हैं, जिनके हाथों में बन्दूकें हैं।

ठीक चार बजे वार्षिकोत्सव के मनोनीत अध्यक्ष दिल्ली के मुख्य कार्यकारी पार्षद महोदय पधारे। एन० सी० सी० बैंड की टीम ने उनका स्वागत किया। स्कूल के व्यवस्थापक और प्रधानाध्यापक महोदय ने अध्यक्ष की अगवानी की। अध्यक्ष की कुर्सी के साथ तीन और कुर्सियां बिछी हुई थीं—एक पर स्कूल के मैनेजर साहब बैठे तथा दूसरी पर प्रिंसीपल तथा तीसरी पर पी०टी०ए० अध्यक्ष। सर्वप्रथम मैनेजर साहब ने अध्यक्ष महोदय का परिचय कराते हुए स्कूल के विद्यार्थियों और अध्यापकों की ओर से पुष्पमाला से उनका स्वागत किया।

इसके बाद विद्यार्थियों ने शारीरिक व्यायाम का प्रदर्शन किया। कभी स्कूल के सौ विद्यार्थी बैंड के साथ शारीरिक व्यायाम करते हैं, तो कभी डम्बल, लेजियम और लाठी का प्रदर्शन होता है। कभी बैंड अपने मधुर स्वर से दर्शकों को मोहित करता है। लीजिए, ये स्थल-सेना के सैनिक (एन० सी० सी० के छात्र) आ गए हैं। इनका पथ-संचलन देखने ही बनता है। सबकी एक-सी चाल है। सबके हाथ एक साथ आगे-पीछे जाते हैं। जनता बड़ी तन्मयता से पथ-संचलन को देख रही है।

प्रदर्शन का अन्तिम कार्यक्रम है—नाटक और कवि-दरबार। यह लीजिए श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क' द्वारा लिखित 'स्वर्ग की झलक' नाटक का अभिनय आरम्भ हो गया है। पात्रों की वेष-भूषा और मंच की सजावट देखते ही बनती है। एक दृश्य की समाप्ति और दूसरे दृश्य के आरम्भ के मध्य कवि-दरबार का आयोजन किया गया है। कविता पढ़ने वाले छात्रों की वेश-भूषा बिलकुल उन्हीं कवियों जैसी है, जिनकी कविता वे पढ़ रहे हैं। सन्त कबीर मधुर वाणी में 'माया महा ठगनी

हम जानी' सुनाते हैं, तो कवि-शिरोमणि सूरदास आँखें बन्द किए तम्बूरा हाथ में लेकर बैठे हैं। उनके सामने एक बालक भगवान् कृष्ण बना बैठा है। यह क्या ? शेर की तरह दहाड़ने वाला यह कौन कवि आ गया ? उसके मुख से 'इन्द्र जिमि जम्भ पर' सुनते ही सब समझ गए कि ये वीररस के प्रतिनिधि कवि 'भूषण' हैं। इस प्रकार नाटक और कवि-दरबार का सम्मिलित कार्यक्रम तालियों की गड़गड़ाहट और हँसी के फव्वारों के साथ समाप्त हुआ।

कार्यक्रम समाप्त होने के बाद शारीरिक प्रदर्शनों में भाग लेने वाले सभी विद्यार्थी अतिथियों के सामने वाले मैदान में आकर शांतिपूर्वक बैठ गए। उसके बाद प्रधानाध्यापक स्कूल का पूर्ण इतिहास सुनाते हुए गत वर्ष की रिपोर्ट प्रस्तुत करते हैं। तत्पश्चात् पारितोषिक-वितरण आरम्भ होता है। प्रधानाध्यापक एक-एक विद्यार्थी का नाम लेते हैं। साथ ही बताते हैं कि उक्त विद्यार्थी को कौन-सा पुरस्कार क्यों दिया जा रहा है। व्यवस्थापक महोदय पुरस्कार उठाकर अध्यक्ष महोदय को देते हैं और अध्यक्ष विद्यार्थी को। मुझे भी गत वर्ष अपनी कक्षा में प्रथम आने के उपलक्ष्य में पुरस्कार मिला। मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। इस भाँति तालियों की गड़गड़ाहट के बीच पारितोषिक-वितरण समाप्त हो जाता है।

उसके बाद अध्यक्ष महोदय संक्षिप्त भाषण देते हैं, जिसमें वे विद्यार्थियों को खूब पढ़ने-लिखने और शारीरिक-शिक्षण वाले कार्यक्रमों में भाग लेने की सलाह देते हुए अनुशासन का महत्त्व समझाते हैं।

सबसे अन्त में प्रिंसीपल महोदय उपस्थित सज्जनवृन्द और अध्यक्ष महोदय का धन्यवाद करते हुए कार्यक्रम समाप्त होने की घोषणा करते हैं। ●

विद्यार्थी और अनुशासन

(ऑल इंडिया १९७६, ८० : 'ए'; ८१ : 'बी')

विद्यार्थी का अर्थ है 'विद्यायाः अर्थी' अर्थात् विद्या को माँगने वाला या चाहने वाला। अनुशासन का अर्थ है शासन को मानने वाला। प्रश्न यह है कि क्या विद्यार्थी को अनुशासन में रहना चाहिए?

पाँच वर्ष से पच्चीस वर्ष तक की आयु विद्या-अध्ययन का काल मानी जाती है। इसमें विद्यार्थी पर न घर-बार का बोझ होता है, न सामाजिक और आर्थिक चिन्ता। वह मानसिक रूप से स्वतन्त्र रहकर अपना शारीरिक, बौद्धिक व मानसिक विकास करता है। यह कार्य तभी सम्भव है, जब वह अनुशासन में रहे; यह शासन चाहे गुरुजनों का हो, चाहे माता-पिता का। इससे उसमें शील, संयम, ज्ञान-पिपासा तथा नम्रता की वृत्ति जागृत होती है।

आज स्थिति बदल गई है। दुर्भाग्य से हमारे राजनीतिक नेताओं ने इस निश्चिन्त विद्यार्थी-वर्ग को अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए राजनीति में घसीटकर अनुशासनहीनता का मार्ग दिखा दिया है। स्वतन्त्रता संग्राम में महात्मा गाँधी ने, १९७४ की समग्रक्रान्ति के प्रणेता श्री जयप्रकाश ने तथा आपातकाल के विरोधी आन्दोलन के डिक्टेटरों ने शासन के विरुद्ध विद्यार्थी-वर्ग का खुलकर प्रयोग किया। 'रोपे पेड़ बबूल का, आम कहाँ से होय।' स्वतन्त्रता के पश्चात् १९७५ के मध्य तक विद्यार्थी-वर्ग की अनुशासनहीनता बेकाबू हो गई। विरोधी आन्दोलनों के परिणामस्वरूप मई १९७७ के पश्चात् आज तक यह समस्या सुरसा के मुँह की भाँति फैलती जा रही है। लगता है यह अनुशासनहीनता न केवल अध्ययन-संस्थाओं को ही, अपितु सम्पूर्ण भारत को निगल जाएगी।

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् आपातकाल में केवल १९ मास का समय ऐसा है जब न तो स्कूल-कॉलिजों में उच्छृंखलता का वातावरण बना, न परीक्षाएँ लेट हुईं, न कोई बस फूंकी गई। इस अवधि में भयभीत छात्र अनुशासन में रह कर स्कूल-कॉलिज को विद्या का मन्दिर समझता रहा। गुरु को श्रद्धा की दृष्टि से

देखता रहा। नियमित रूप से कार्य करता रहा। उसकी चित्तवृत्ति एकाग्र थी। इस कालखण्ड के अतिरिक्त छात्रों द्वारा किसी-न-किसी प्रकार का उपद्रव खड़ा किया ही जा रहा है।

आज के विद्यार्थी और अनुशासन में ३ और ६ का सम्बन्ध है। वह कर्त्तव्यों को तिलांजलि देकर केवल अधिकारो की माँग करता है और येन-केन प्रकारेण अपनी आकांक्षाओ की तृप्ति तथा अधिकारो की प्राप्ति के लिए सघर्ष पर उतर आया है। जलसे करना, जुलूस निकालना, धुआँधार भाषण देना, बुत तोडना, पिटाई करना, हत्या करना, मकान व दूकान लूटना, सरकारी संस्थानो को क्षति पहुँचाना, बसों को जलाना ऐसे अशोभनीय कार्य है, जो विद्यार्थी-वर्ग के संघर्ष के मुख्य अंग है।

वस्तुतः आज का विद्यार्थी विद्या के अर्थ (के लिए) प्रयत्नशील नही, अपितु विद्या की अर्थी निकालने पर तुला है। उसमे रोष, उच्छृखलता, स्वार्थ और अनास्था घर कर गई है। पढने मे एकाग्रचित्तता के स्थान पर विध्वंसात्मकता उसके मन-मस्तिष्क को खोखला कर रही है। रही-सही कसर फैशन-परस्ती और नशाबाजी ने पूरी कर दी है।

अनुशासनहीनता के कारण विवेकहीन विद्यार्थी भस्मासुर की भाँति अपना ही सर्वस्व स्वाहा कर रहा है। मन की रोषपूर्ण और विनाशकारी प्रवृत्ति उसके अध्ययन मे बाधक है। परिणामतः पेपर अच्छे नही होगे, नम्बर अच्छे नही आएँगे। अगली कक्षाओं मे प्रवेश और जीवन की प्रगति मे बाधाएँ आएँगी। दूसरी ओर, विद्यार्थियो की अनुशासनहीनता के कारण परीक्षाएँ लेट होंगी। परिणाम लेट होगे। दूसरे स्थानो पर ठीक समय पर परीक्षाएँ होने के कारण नव वर्ष की पढाई आरम्भ हो गई होगी, लेट परिणाम वाले को प्रवेश नही मिल पाएगा। जीवन के पाँच छः मास त्रिशकु बनने में बीत जाएँगे और बहुमूल्य वर्ष दबे-पाँव खिसक जाएगा।

बुद्धिवादी युग मे आज का विद्यार्थी अहवादी बन गया है। अह पूर्णतः बुरी चीज नही कहा जा सकती। वह व्यक्तित्व का एक अंग है और एक सीमा तक आवश्यक भी है, किन्तु आज का विद्यार्थी अपना महत्त्व जतलाकर सम्मान प्राप्त करना चाहता है। जब महत्त्वाकाक्षी छात्र अपने गुरुजनो से स्नेह, प्रशंसा व सम्मान नही पाते, तब उनका हृदय विद्रोह कर उठता है। यही विद्रोह हडताल

विद्यार्थी और अनुशासन

(ऑल इंडिया १९७९, ८० : 'ए'; ८१ : 'बी')

विद्यार्थी का अर्थ है 'विद्यायाः अर्थी' अर्थात् विद्या को माँगने वाला या चाहने वाला। अनुशासन का अर्थ है शासन को मानने वाला। प्रश्न यह है कि क्या विद्यार्थी को अनुशासन मे रहना चाहिए?

पाँच वर्ष से पच्चीस वर्ष तक की आयु विद्या-अध्ययन का काल मानी जाती है। इसमे विद्यार्थी पर न घर-बार का बोझ होता है, न सामाजिक और आर्थिक चिन्ता। वह मानसिक रूप से स्वतन्त्र रहकर अपना शारीरिक, बौद्धिक व मानसिक विकास करता है। यह कार्य तभी सम्भव है, जब वह अनुशासन मे रहे; यह शासन चाहे गुरुजनो का हो, चाहे माता-पिता का। इससे उसमे शील, संयम, ज्ञान-पिपासा तथा नम्रता की वृत्ति जागृत होती है।

आज स्थिति बदल गई है। दुर्भाग्य से हमारे राजनीतिक नेताओ ने इस निश्चिन्त विद्यार्थी-वर्ग को अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए राजनीति मे घसीटकर अनुशासनहीनता का मार्ग दिखा दिया है। स्वतन्त्रता संग्राम में महात्मा गांधी ने, १९७४ की समग्रक्रान्ति के प्रणेता श्री जयप्रकाश ने तथा आपातकाल के विरोधी आन्दोलन के डिक्टेटरो ने शासन के विरुद्ध विद्यार्थी-वर्ग का खुलकर प्रयोग किया। 'रोपे पेड बबूल का, आम कहाँ से होय।' स्वतन्त्रता के पश्चात् १९७५ के मध्य तक विद्यार्थी-वर्ग की अनुशासनहीनता बेकाबू हो गई। विरोधी आन्दोलनो के परिणामस्वरूप मई १९७७ के पश्चात् आज तक यह समस्या सुरसा के मुँह की भाँति फैलती जा रही है। लगता है यह अनुशासनहीनता न केवल अध्ययन-संस्थाओं को ही, अपितु सम्पूर्ण भारत को निगल जाएगी।

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् आपातकाल के केवल १९ मास का समय ऐसा है जब न तो स्कूल-कॉलिजो मे उच्छृंखलता का वातावरण बना, न परीक्षाएँ लेट हुईं, न कोई बस फूंकी गई। इस अवधि में भयभीत छात्र अनुशासन मे रह कर स्कूल-कॉलेज को विद्या का मन्दिर समझता रहा। गुरु को श्रद्धा की दृष्टि से

देखता रहा। नियमित रूप से कार्य करता रहा। उसकी चित्तवृत्ति एकाग्र थी। इस कालखण्ड के अतिरिक्त छात्रों द्वारा किसी-न-किसी प्रकार का उपद्रव खड़ा किया ही जा रहा है।

आज के विद्यार्थी और अनुशासन में ३ और ६ का सम्बन्ध है। वह कर्तव्यों को तिलांजलि देकर केवल अधिकारों की माँग करता है और येन-केन प्रकारेण अपनी आकांक्षाओं की तृप्ति तथा अधिकारों की प्राप्ति के लिए संघर्ष पर उतर आया है। जलसे करना, जुलूस निकालना, धुआँधार भाषण देना, बुत तोड़ना, पिटाई करना, हत्या करना, मकान व दूकान लूटना, सरकारी संस्थानों को क्षति पहुँचाना, बसों को जलाना ऐसे अशोभनीय कार्य हैं, जो विद्यार्थी-वर्ग के संघर्ष के मुख्य अंग हैं।

वस्तुतः आज का विद्यार्थी विद्या के अर्थ (के लिए) प्रयत्नशील नहीं, अपितु विद्या की अर्थी निकालने पर तुला है। उसमें रोष, उच्छृंखलता, स्वार्थ और अनास्था घर कर गई है। पढ़ने में एकाग्रचित्तता के स्थान पर विध्वसात्मकता *उसके मन-मस्तिष्क को खोखला कर रही है। रही-सही कसर फैशन-परस्ती और* नशाबाजी ने पूरी कर दी है।

अनुशासनहीनता के कारण विवेकहीन विद्यार्थी भस्मासुर की भाँति अपना ही सर्वस्व स्वाहा कर रहा है। मन की रोषपूर्ण और विनाशकारी प्रवृत्ति उसके अध्ययन में बाधक है। परिणामतः पेपर अच्छे नहीं होंगे, नम्बर अच्छे नहीं आएँगे। अगली कक्षाओं में प्रवेश और जीवन की प्रगति में बाधाएँ आएँगी। दूसरी ओर, विद्यार्थियों की अनुशासनहीनता के कारण परीक्षाएँ लेट होंगी। परिणाम लेट होंगे। दूसरे स्थानों पर ठीक समय पर परीक्षाएँ होने के कारण नव वर्ष की पढ़ाई आरम्भ हो गई होगी, लेट परिणाम वाले को प्रवेश नहीं मिल पाएगा। जीवन के पाँच छः मास त्रिशंकु बनने में बीत जाएँगे और बहुमूल्य वर्ष दबे-पाँव खिसक जाएगा।

बुद्धिवादी युग में आज का विद्यार्थी अहंवादी बन गया है। अह पूर्णतः बुरी चीज नहीं कहा जा सकती। वह व्यक्तित्व का एक अंग है और एक सीमा तक आवश्यक भी है, किन्तु आज का विद्यार्थी अपना महत्त्व जतलाकर सम्मान प्राप्त करना चाहता है। जब महत्त्वाकांक्षी छात्र अपने गुरुजनों से स्नेह, प्रशंसा व *सम्मान नहीं पाते, तब उनका हृदय विद्रोह कर उठता है। यही विद्रोह हड़ताल*

और संघर्ष के रूप में प्रकट होता है। यही कारण है कि शास्त्रो ने सोलह वर्ष की आयु हो जाने पर सन्तान के साथ मित्रवत् व्यवहार का आदेश दिया है।

दूसरी ओर, माता-पिता के उचित सरक्षण व मार्ग-दर्शन के अभाव में बच्चे उत्तम सस्कार ग्रहण नही कर पाते। विद्यालय या महाविद्यालयों मे प्रवेश करके ये मर्यादाहीन और उच्छृंखल बन जाते हैं। उनकी प्रतिभा का विकास अवरूद्ध हो जाता है। विक्षोभ मन-मस्तिष्क पर छा जाता है।

तीसरे, राजनीतिज्ञो की रट 'वर्तमान शिक्षा दोषपूर्ण है' तथा नए-नए प्रयोगो ने विद्यार्थियो मे वर्तमान शिक्षा-प्रणाली के प्रति अरुचि उत्पन्न कर दी है। अगूठाटेक राजनीतिज्ञ जब विश्वविद्यालयो मे भाषण करता है या अल्पज्ञ और अर्द्धशिक्षित नेता शिक्षा के बारे मे परामर्श देता है, तो माँ सरस्वती का सिर लज्जा से झुक जाता है।

चौथे, आज शिक्षक आस्थाहीन हैं और शिक्षा-अधिकारी अहंकारी तथा स्वार्थी। परिणामस्वरूप शिक्षक और शिक्षा अधिकारी विद्यार्थी से व्यावसायिक रूप मे व्यवहार करते है। विद्यार्थी के हृदय से इसकी जो प्रतिध्वनि निकलती है, वह 'आचार्यदेवो भव' कदापि न होगी।

नि सन्देह यह बात माननी पड़ेगी कि आज के स्वार्थपूर्ण अस्वस्थ वातावरण में विद्यार्थी शान्त नही रह सकता। अस्वस्थ प्रवृत्ति के विरुद्ध विक्षोभ उसकी जागरूकता का परिचायक है। उनका गर्म रक्त उनको अन्याय के विरुद्ध ललकारता है। जिस प्रकार अग्नि, जल और अणुशक्ति का रचनात्मक तथा विध्वसात्मक, दोनो रूपों मे प्रयोग सम्भव है, उसी प्रकार विद्यार्थी के गर्म रक्त को रचनात्मक दिशा देने की आवश्यकता है, किन्तु यह तभी सम्भव है जब प्राचीन काल के गुरुकुलो का-सा शान्त वातावरण हो, चाणक्य जैसे स्वाभिमानी, स्वामी राम-कृष्ण परमहंस तथा स्वामी विरजानन्द सदृश तपस्वी गुरु हो। राजनीतिज्ञों और राजनीति को शिक्षा से दूर रखा जाए। माता-पिता बच्चे के विकास पर पूर्णतः ध्यान दें।

●

अपने विद्यालय का पुस्तकालय

(आॅल इंडिया १६८१ : 'ए'; दिल्ली १६८० : 'बी')

पुस्तकालय मानव-जीवन के विकास तथा प्रगति के महत्त्वपूर्ण साधन है। ये ज्ञान की किरणें प्रसारित करते हैं; मानसिक क्षुधा को शात करते है, विश्व-साहित्य की धरोहर के सरक्षक है। अत प्रत्येक वरिष्ठ तथा उच्चतम माध्यमिक विद्यालय मे पुस्तकालय की अनिवार्यता है।

हमारे विद्यालय का पुस्तकालय विद्यालय की पहली मजिल पर एक बडे हाल मे स्थित है। पुस्तकालय का अर्थ ही 'पुस्तको का घर' है। अत. यहाँ साठ-सत्तर आलमारियो मे पुस्तकें रखी हुई हैं। पुस्तकालय के बीचो-बीच एक विशाल मेज है, जिस पर दैनिक समाचार-पत्र, साप्ताहिक तथा मासिक पत्र-पत्रिकाएँ रखी हुई हैं। मेज के तीन ओर बैंच तथा कुर्सियां रखी हैं, जिन पर बैठकर विद्यार्थी तथा अध्यापक सरलता से पत्र-पत्रिकाएँ पढ सकते है।

पुस्तकालय की बडी मेज के समीप एक साधारण मेज रखी है। यह पुस्तकालयाध्यक्ष की मेज है। मेज के एक ओर एक कुर्सी रखी है। यह पुस्तकालयाध्यक्ष के बैठने का स्थान है। कुर्सी के समीप एक रैक रखा है, जिसमे कुछ रजिस्टर रखे है। मेज के तीनो ओर कुर्सियाँ रखी है, जहाँ अध्यापक बैठ सकते हैं।

विद्यालय की दीवारो पर आप्तवाक्य और सूक्तियां लिखी हुई है, जो अनजाने पाठक के हृदय को गुदगुदाती हैं, श्रेष्ठ आचरण की प्रेरणा देता हैं।

आलमारियो मे पुस्तकें विषय और विधा के अनुसार रखी हैं। प्राय. प्रत्येक विषय की पृथक् आलमारी है। आलमारियो के कपाट शीशे के हैं। उन पर विषय या विधा का नाम अंकित है। जैसे—हिन्दी और अंग्रेजी भाषा की पुस्तकें उपन्यास, कहानी, नाटक-एकांकी, कविता, निबध आदि विधाओं मे विभक्त हैं। इनके अतिरिक्त अन्य पुस्तकें भौतिकी, रसायन, जीव-विज्ञान, भूगर्भशास्त्र, अर्थशास्त्र, भारतीय अर्थशास्त्र, वाणिज्य-सिद्धांत, बुक-कीपिंग, ऐडवास एका-

उन्टेमी, नागरिक-शास्त्र, भारतीय नागरिक-शास्त्र, गणित, ज्योमैट्री टिग्नोमैट्री आदि विषयो मे विभक्त हैं।

प्रत्येक पुस्तक पर विषय, क्रम-संख्या तथा पुस्तकालय की पुस्तक-सख्या अकित हैं। प्रत्येक पुस्तक में एक कार्ड रखा है, जिसमे पुस्तक वापस लौटाने की तिथि लिखी जाती है। विलम्ब से लौटाने वाले को आर्थिक दण्ड देना पड़ता है।

एक विशिष्ट आलमारी मे हिन्दी-हिन्दी, संस्कृत-हिन्दी, अंग्रेजी-हिन्दी के शब्द-कोश रखे है। साथ ही रखे है अग्रेजी तथा हिन्दी मे प्रकाशित विश्व-ज्ञान-कोश।

तीन-चार आलमारियो के ऊपर रखी है दैनिक अखबारों की रद्दी तथा साप्ताहिक-मासिक पत्र -पत्रिकाओ के पिछले अक। । इन पर प्राय. धूल पडी रहती है।

पुस्तकालय का वातावरण बडा शान्त है। पुस्तकालय मे प्रवेश करने पर विद्यार्थी का हाथ तुरन्त किसी पत्र-पत्रिका अथवा पुस्तक पर उसी प्रकार जाता है, जैसे किसी मन्दिर मे प्रवेश करने पर श्रद्धा से विभोर मानव देव-प्रतिमा के सम्मुख नत-मस्तक हो जाता है।

सप्ताह मे एक बार हमारी कक्षा का पीरियड पुस्तकालय के लिए आता है। इस पीरियड मे हम पिछले सप्ताह ली हुई पुस्तक लौटाते है और कोई नई पुस्तक पुस्तकालयाध्यक्ष हमे देते है। हम इन पुस्तको को घर लाकर पढते हैं और अपना ज्ञान बढाते हैं। पुस्तकालय से हमे विभिन्न विषयो की पुस्तकें पढने का अवसर मिलता है।

मध्यावकाश के समय भी विद्यार्थीगण पुस्तकालय मे जाते है और दैनिक समाचार-पत्र तथा पत्र-पत्रिकाओ को पढकर ज्ञानवर्धन करते हैं। साप्ताहिक पत्रिकाएँ, जैसे—धर्मयुग; बच्चो की मासिक पत्रिकाएँ, जैसे—नन्दन, पराग, बाल-भारती, चदा-मामा आदि की काफी माँग रहती है। बच्चे इन्हे शौक से पढते हैं।

हिन्दी के दैनिक समाचार-पत्रों मे नवभारत टाइम्स, हिन्दुस्तान, जनसत्ता तथा दैनिक ट्रिब्यून आते है। अग्रेजी के डेलीज मे हिन्दुस्तान टाइम्स, टाइम्स ऑफ इडिया, इंडियन एक्सप्रेस तथा पेट्रियोएट आते हैं। हिन्दी साप्ताहिकों में धर्मयुग, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, पाचजन्य, दिनमान, रविवार और ब्लिट्ज आते हैं, तो अंग्रेजी साप्ताहिकों में इलस्ट्रेटिड वीकली ऑफ इण्डिया,

ब्लिट्ज, आर्गनाइजर का प्रमुख स्थान है। हिन्दी मासिको मे कादम्बिनी, नवनीत, सूर्या प्रमुख हैं। वच्चो की तो प्राय: सभी मासिक पत्रिकाएँ आती हैं।

हमारे विद्यालय का पुस्तकालय स्वच्छ और सुन्दर है, पुस्तकों से समृद्ध है, है, पत्र-पत्रिकाओ से भरपूर है, अध्ययनशील वातावरण से सुगन्धित है। यह ज्ञान-विज्ञान का प्रसारक है और है मानसिक क्षुधा-शान्ति का साधन।



पुस्तकालय

(दिल्ली १९७८ : 'ए'; ऑल इंडिया १९७८ : 'ए')

'पुस्तकालय' शब्द दो शब्दो से मिलकर बनता है—पुस्तक + आलय, अर्थात् पुस्तको का घर। अध्ययन के लिए जहाँ अनेक पुस्तको का संग्रह हो, उसे पुस्तकालय कहते है।

जिस प्रकार शरीर को स्वस्थ रखने के लिए उत्तम भोजन की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार ज्ञान-प्राप्ति के लिए पुस्तकों का अध्ययन अनिवार्य है। जीवन मे पुस्तको के महत्त्व को सभी विचारको ने स्वीकार किया है। इस सम्बन्ध मे कुछ उद्धरण प्रस्तुत करना अनुचित न होगा—

"पुस्तकें जीते-जागते देवता हैं, उनकी सेवा करके तुरन्त वरदान प्राप्त किया जा सकता है।"

"पुस्तके मन के लिए साबुन का काम करती हैं।" —**महात्मा गांधी**

"जहाँ पुस्तके है, वहाँ से लोभ, मोह, भ्रम और भय भगाना कठिन नही।"

"पुस्तकें वे विश्वस्त दर्पण हैं, जो सन्तों एवं शूरों के मस्तिष्क का परावर्तन हमारे मस्तिष्क पर करती हैं।" —**गिब्बन**

"अच्छी पुस्तको के पास होने मे हमे अपने भले मित्रों के साथ न रहने की कमी नही खटकती। जितना ही मैं पुस्तकों का अध्ययन करता गया, उतना ही अधिक मुझे उनकी विशेषताएँ (उपयोगिताएँ) मालूम होती गईं।"

—**महात्मा गांधी**

पुस्तकालय में पुस्तकों का संग्रह मिलता है। इस प्रकार पुस्तकालय मनुष्य का ज्ञान-वर्धन की पिपासा को शान्त करने का स्थान है। आज किसी भी व्यक्ति के लिए असम्भव है कि वह प्रत्येक पुस्तक को खरीदकर पढ़ सके। भारत एक गरीब देश है। यहाँ लोगों को दो वक्त खाना भी ठीक प्रकार नहीं मिलता, पुस्तक खरीदने की बात तो अलग रही। इसलिए भारत में पुस्तकालयों की बड़ी आवश्यकता है।

प्राचीनकाल में भारत में नालंदा और तक्षशिला के पुस्तकालय जगत्-विख्यात थे, किन्तु मुसलमान बादशाहों ने उन्हें जलवा दिया। जो कुछ ग्रन्थ बचे भी, वे अंग्रेजों के समय विदेशों में पहुँच गए। भारत के स्वतन्त्र होने के बाद राष्ट्रीय सरकार ने इस ओर ध्यान दिया है। अब भारत के नगर-नगर और ग्राम-ग्राम में पुस्तकालय खोले जा रहे हैं।

पुस्तकालय से सबसे बडा लाभ यह है कि मनुष्य को बहुत थोडे शुल्क के बदले बहुत सारा पुस्तकें पढने को मिल जाती है। वह चाहे तो एक ही विषय पर अनेक पुस्तकें पढ सकता है। दूसरे, उसे किसी भी विषय की नवीनतम पुस्तक वहाँ से प्राप्त हो सकती है। तीसरे, उसे किसी भी विषय पर तुलनात्मक अध्ययन करने का अवसर मिल जाता है। यही कारण है कि उच्च कक्षा तथा किसी विषय में विशेष योग्यता (Ph. D आदि की उपाधि) प्राप्त करने वाले विद्यार्थी अपना अधिकांश समय पुस्तकालय मे ही व्यतीत करते है।

पुस्तकालय मनुष्य मे पढने की रुचि उत्पन्न करता है। यदि आप एक बार किसी पुस्तकालय में चले जाएँ, तो वहाँ की पुस्तको को देखकर आप उन्हें पढने के लिए लालायित हो जाएँगे। इस प्रकार पुस्तकालय आपकी रुचि को ज्ञान-वर्द्धन की ओर बदलता है। दूसरे, अवकाश के समय वह हमारा सच्चा साथी है, जो हमें सदुपदेश भी देता है और हमारा मनोरंजन भी करता है। मनोरजन के अन्य साधनो में धन अधिक खर्च होता है, जबकि यह सबसे सुलभ और सस्ता मनोरंजन है।

पुस्तकालय तीन प्रकार के होते हैं—१. निजी, २. विद्यालयीय और ३. सार्वजनिक। उच्च कक्षाओं के समर्थ विद्यार्थी या पुस्तक-संग्रह-प्रेमी कुछ विषयो पर पुस्तकें खरीदकर अपना निजी पुस्तकालय बना लेते हैं, किन्तु उनका उपयोग अत्यन्त सीमित होता है। प्रायः सभी स्कूल, कॉलिज तथा विश्वविद्यालयों में पुस्तकालय होते हैं, पर इनसे भी केवल संस्था से सम्बन्धित विद्यार्थी ही लाभ उठा सकते हैं, परन्तु जो सार्वजनिक पुस्तकालय होते हैं, उनमे साधारण जनता लाभ उठा सकती है। ग्रामों के लिए भारत-सरकार ने कुछ चलते-फिरते सार्वजनिक पुस्तकालय भी खोले हुए हैं, ताकि छोटे-छोटे ग्रामों तक भी ज्ञान का प्रकाश पहुँच सके।

पुस्तकालयों मे जाकर या वहाँ से पुस्तकें घर ले जाकर पढ़ते हुए यह बात

विशेष रूप से ध्यान रखनी चाहिए कि पुस्तकों को किसी प्रकार की हानि न पहुँचे। पुस्तकालय की पुस्तकों पर निशान लगाना, पेज मोड़ना आदि उचित नहीं। ध्यान रखना चाहिए कि पुस्तकालय की पुस्तकें किसी एक व्यक्ति की व्यक्तिगत सम्पत्ति नहीं हैं। हमारे समान ही सैकड़ों व्यक्ति उनसे लाभ उठाएँगे। अतः उन पुस्तकों की स्वच्छता एवं सुरक्षा का ध्यान रखना प्रत्येक पाठक का कर्तव्य है। कभी-कभी देखा जाता है कि कुछ पाठक पुस्तकालय की पुस्तकों के पृष्ठ फाड़कर रख लेते हैं। यह एक भयंकर सामाजिक अपराध है। ऐसा करके वे केवल उस पुस्तक के मूल्य (दस-बीस रुपए) की ही हानि नहीं करते, बल्कि सैकड़ों पाठकों को उस पुस्तक के अध्ययन से वंचित रखते हैं और घोर पाप के भागी बनते हैं। कोई परीक्षार्थी बड़ी उत्सुकता से उस पुस्तक को पुस्तकालय से लेता है और उसी अंश को पढ़ना चाहता है, जो फाड़ दिया गया है। अब कल्पना कीजिए कि उसके हृदय में कितनी पीड़ा होगी, जब वह उस अंश को पुस्तक से गायब पाएगा। पुस्तकालय की पुस्तकों की सुरक्षा प्रत्येक पाठक का पुनीत कर्तव्य है।

पुस्तकालयों के सदस्य बनने के लिए कहीं वार्षिक अथवा मासिक शुल्क देने की पद्धति है, तो कहीं कुछ रुपया जमानत के रूप में जमा करना पड़ता है।

पुस्तकालय हमें अज्ञान से ज्ञान की ओर तथा अन्धकार से प्रकाश की ओर ले जाते हैं। अतः हमें पुस्तकालय में जाने की आदत डालनी चाहिए।

जब परीक्षार्थी को अपनी भूल पता लगती है, तब तक वह बाजी हार चुका होता है।

परीक्षार्थी की कठिनाई उस समय पूर्णतः अलंघ्य हो जाती है, जब वह गैस पेपर या टेस्ट पेपर मे कोई ऐसा प्रश्न देखता है, जिसे अध्यापक ने प्रमादवश या 'आॅउट आॅफ कोर्स' कहकर छुडवा दिया था, अब उसे वही प्रश्न सर्वाधिक सम्भाव्य लगने लगता है। तब वह किंकर्त्तव्यविमूढ हो अध्यापक को गाली देता है।

'डूबते' को तिनके का सहारा'। परीक्षा के कठिन दिनो मे कतिपय छात्र नकल का आश्रय लेना चाहते हैं, किन्तु नकल के लिए भी अकल की जरूरत है। नकल के लिए निरीक्षक की आँखो में धूल झोंकने की चतुराई चाहिए। निरीक्षक को लोभ-लालच देकर या धमकी मे सुविधा प्राप्त करने की शक्ति चाहिए। फिर नकल के लिए 'किन-किन प्रश्नों के हिंट लिखने हैं,' 'किन-किन प्रश्नो का पूरा उत्तर ही फाड़कर ले जाना है,' के निर्णय की योग्यता चाहिए। नकल की घबराहट मे पढा कुछ जाता है, लिखा कुछ जाता है। कंठस्थ उत्तर भी विस्मृत हो जाता है। आत्मविश्वास हिल जाता है। परीक्षा पिशाचिनी बन जाती है।

परीक्षा के इन कठिन दिनो मे परीक्षार्थी अहर्निश भयग्रस्त रहता है। परीक्षा मे क्या आएगा ? इस बात का भय उसे सताता है। भय दूर-दर्शिता की जननी है। वह अपनी और अध्यापक की दूर-दर्शिता से सम्भावित प्रश्नों को छाँट लेता है, किन्तु वह जानता है परीक्षा मात्र संयोग है, औसान है, चांस है। प्रश्न-पत्र लाटरी' है—अनिश्चित और अविश्वनीय। परीक्षक प्रश्न-पत्र के माध्यम से उसके भाग्य के साथ'क्रूर परिहास कर सकता है। भय का एक कारण प्रश्नों का प्रचलित परम्परागत शैली से हटना भी है। यदि परीक्षक 'समाचार-पत्र' पर निवन्ध न पूछकर 'जन-जागरण और समाचार-पत्र', मद्य-निषेध न पूछकर 'मद्य-निषेध की अनिवार्यता', परीक्षा न पूछकर 'परीक्षा के ये कठिन दिन' पूछ बैठे, तो कुशल और योग्य परीक्षार्थी का मस्तिष्क भी मूक हो जाता है, अक्ल का दिवाला पिट जाता है, मूर्छा आने लगती है। यदि पढ़ा हुआ, कंठस्थ किया हुआ आ गया, तो पौ-बारह हैं।

परीक्षा का समय ढाई या तीन घटे निश्चित होता है। इस अल्पावधि का एक-एक क्षण अमूल्य होता है। प्रश्न-पत्र समझकर हल करना परीक्षा के इन कठिन दिनो की परेशानियों की चरम सीमा है। किसी प्रश्न या प्रश्नों का उत्तर

लम्बा लिख दिया तो अन्य प्रश्न छूटने का भय है। उत्तर प्रश्नोचित न दिए तो अकों की न्यूनता का भय है। विचारों की अभिव्यक्ति में सुन्दरता न आई, तो पिछड़ने का भय है। विचारों को व्यक्त करने के लिए भाषा अनुरूप न बनी, तो गड़बड़ होने की आशंका है। सबसे बड़ी कठिनाई तो तब आती है, जब रटा हुआ उत्तर लिखते-लिखते दिमाग में द्वन्द्व मच जाए। उस समय सूझ-बूझ का दिवाला निकल जाता है। अतः रटे हुए उत्तर के स्मरणार्थ लिखे को दोहराने लगते हैं और समय दबे-पाँव खिसकता जाता है।

परीक्षा के इन कठिन भयप्रद दिनों को साहसपूर्वक पार करने का अर्थ है 'सफलता का वरण करना।' सफलता-प्राप्ति के लिए अनिवार्य है—घर-पर एकाग्रचित होकर नियमित अध्ययन। प्रमादवश या शिक्षा के प्रति उपेक्षा भाव के कारण वह समय निकल न पाए, अतः परीक्षा-तैयारी के अवकाश' में धैर्यपूर्वक और नियमित परिश्रम करो। बार-बार पढ़ने से, सहायक पुस्तकों तथा अध्यापको के सहयोग से माउट एवरेस्ट की चोटी भी हरा-भरा बुद्धा-पार्क लगने लगेगा। वृन्द ने ठीक ही कहा है, 'करत-करत अभ्यास के जडमति होत सुजान।' इस प्रकार परीक्षा में बैठने के लिए आत्मविश्वास जागृत होगा।

परीक्षा के दिनो में आत्म-विश्वास को बनाए रखो। जो कुछ पढा है, समझा है, कंठस्थ किया है, उस पर भरोसा करो। परीक्षा-भवन के लिए चलने से पूर्व मन को शांत रखो। कोई अध्ययन सामग्री साथ न लो, न कही से पढने-देखने की चेष्टा करो। परीक्षा-भवन में प्रश्न-पत्र को दो बार पढ़ो। उन प्रश्नो पर चिह्न लगा लो, जिन्हें कर सकते हो। जो प्रश्न सबसे बढिया लिख सकते हो, उसे पहले लिखो। लिखने से पूर्व 'तथ्य' सोच लो। तथ्यों का विस्तार करते चलो। उत्तर लिखने के बाद उस उत्तर का पुनः पाठ करो। उत्तर अंकों के अनुसार छोटा या बड़ा करना न भूलो। यदि कोई प्रश्न अत्यन्त कठिन है, तो उसे अन्त में कीजिए। उस पर कुछ क्षण विचार कीजिए। विचारोपरान्त जो समझ मे आता है, उसे लिख दीजिए। परीक्षा के कठिन दिनों के इन मर्मान्तिक क्षणों पर विजय पाइए।

कठिन को सरल करना या समझना मानवीय स्वभाव की दृढ़ता और विवेक पर अवलम्बित है। परीक्षा के ये कठिन दिन भय और आतंकपूर्ण होते हुए भी एकाग्रचित अध्ययन और सतत चेष्टा से आनन्दपूर्ण दिनों में परिणत किए जा सकते हैं।

स्कूल में मेरा अन्तिम वर्ष कैसा बीता

(दिल्ली १९८२ : 'ए')

स्कूल का अन्तिम वर्ष अर्थात् प्रमाण-पत्र प्राप्ति के लिए अध्ययन का आखिरी साल। वर्ष का अर्थ १२ मास या ३६५ दिन होते है, किन्तु स्कूल का अन्तिम वर्ष १५ जुलाई से १५ फरवरी तक की सप्त-मासिका अवधि मे सीमित होता है। सप्त-मासिका भी रक्षाबन्धन, दशहरा, दीपावली, ईद, बापू-जन्म-दिवस, बाल-दिवस, अध्यापक-दिवस, स्वतन्त्रता दिवस, गणतन्त्र-दिवस, मासान्त-दिवस, सुरक्षित अवकाश, रिस्ट्रिक्टेड अवकाश, रवीवासरीय अवकाश, शरत्का-लीन अवकाश एवं शीतकालीन अवकाश दिवसों को कम कर दें, तो इस अन्तिम वर्ष की अवधि पचमासिका ही रह जाती है।

दसवी का पढ़ाई, पाँच विषयो के विस्तृत पाठ्य-क्रम, गधे के बोझ के समान पुस्तकों के भार और परीक्षा रूपी भूत के अज्ञात भय से युक्त यह अन्तिम वर्ष कैसे कटा ? सच बताऊँ तो हँस पड़ेंगे—

दो लड़कपन में बीत गए,
दो अध्ययन के उन्माद में,
बचा एक मास बुढ़ापा
दिन को लगाते घोटे
रातों को जागते थे हम।

मैं पढ़ाई की दृष्टि से न फिसड्डी हूँ और न प्रथम श्रेणी का छात्र। दैनिक स्कूल-कार्य करना, पाठ कठस्थ करना, प्रश्नों को हल करना, मेरा स्वभाव है। 'लागी लगन छूटत नही, जीभ चोच जरि जाए'—मेरा यह स्वभाव इस अन्तिम वर्ष में भी यथावत् बना रहा।

किन्तु स्कूल-व्यवस्था ने मेरे इस क्रम में विघ्न डालने मे कोई कसर नही छोडी। १५ अगस्त की तैयारी मे लालकिले की दौड़, २६ जनवरी की तैयारी मे नेशनल स्टेडियम की परेड, स्कूल वार्षिकोत्सव में पथ-संचलन-पूर्वाभ्यास,

मेरी पढ़ाई को ऐसे बरबाद करते थे, मानों राक्षसगण ऋषियों के यज्ञ को विध्वंस कर रहे हो। मेरे लाख अनुनय-विनय, मिन्नत-समाजत पर भी मेरे अध्यापकों ने मुझ पर रहम नही किया।

न खाएँ रहम? प्लाट्स का कथन है, 'सकट के समय धीरज धारण करना ही मानो आधी लडाई जीत लेना है।' धैर्य और परिश्रम का संयोग सफलता को चेरी बना देता है। ब्रह्म-मुहूर्त में उठकर कंठस्थ करना शुरू कर दिया और होम-टास्क के लिए सायकालीन खेलों से विदाई ले ली। दिन का विश्राम कम नही किया, मन की शान्ति को भंग नही होने दिया।

प्रथम-सत्र बीता अक्तूबर में पढ़ाई का यौवन आया। हल्की-हल्की सुहावनी ठड मे पढने का आनन्द द्विगुणित हुआ। अध्यापकों का उत्साह ठंडा पड़ता चला गया। विद्यार्थी का हृदय पढ़ने को उत्सुक और अध्यापक अध्यापन से उदासीन। एक-एक पाठ को चींटी की चाल से पढ़ाते तो पाठ की प्रश्नावली को तूफान मेल की चाल से करवाते। कुछ भी पल्ले नही पड़ता। दिसम्बर आ गया, किन्तु पाठ्य-क्रम समाप्त ही नहीं हुआ। जो पढ़ाया, घास काट डाली। कई अध्यापक तो कहते, 'इस सवाल का जवाब कुजी में पढ़ लेना', 'इस प्रयोग की विधि गाइड में देख लेना।'

मैं हताश और निराश। जो पढाया, वह समझ में आया नहीं, जहाँ समझने की चेष्टा की, वहाँ अपवाद स्वरूप दो-चार बार को छोडकर मिली झिड़कियाँ। स्कूल विद्या का मन्दिर लगने की बजाए, विद्या की मदिरा लगने लगा। कहावत सही सिद्ध हुई, 'जहाँ शैतान, स्वय नही पहुँच सकता, वहाँ मदिरा को भेज देता है।'

परीक्षा के लिए आवेदन-पत्र भरने से पूर्व टेस्ट हुए। आधी क्लास फेल। अंग्रेजी में मैं भी लुढक गया था। प्रिंसिपल साहब ने आकर चेतावनी दे दी, 'जो बच्चे टेस्ट में फेल हो गए हैं, उनका फॉर्म नही भरा जाएगा।' मुझे दिन में तारे नजर आने लगे। एक वर्ष की बरबादी। मन सहम उठा, आँखों से अश्रु प्रकट हो गए। साथियों ने प्रिंसिपल साहब को मेरे रोने की बात बता दी। प्रिंसिपल साहब गजेटेड ऑफिसर के रौब में थे। बोले, 'फेल होने पर रोओगे नहीं, तो हँसोगे? सारे साल आवारागर्दी और अब रोना। तुम्हारी तो किस्मत में रोना ही लिखा है।'

दो-चार दिन बाद अंग्रेजी और हिसाब के अध्यापको ने आश्वासन दिया कि फॉर्म सबके भरे जाएँगे। एक्स्ट्रा क्लास लगाकर तुम्हारी कमजोरी पूरी की जाएगी। एक जनवरी से १५ फरवरी तक तुम्हे टोक-पाट कर वैद्यराज बनाया जाएगा। मैं खुश हुआ। एक वर्ष की बरबादी रुकी। ऊपर से गुरुजनो द्वारा वैद्यराज बनाने का आश्वासन।

दो-चार दिन बीते। कक्षा मे घोषणा हुई कि जो विद्यार्थी अंग्रेजी और हिसाब की एक्स्ट्रा क्लास अटेण्ड करना चाहते हैं, वे दो सौ रुपये शीघ्र जमा करवा दें। अध्यापको की दया, कृपा, करुणा, सहानुभूति का प्रसाद आर्थिक दण्ड। विवशता अभिशाप है; असहाय, दुर्बल, निर्बल का उपहास है। मरता क्या न करता। अतिरिक्त कक्षाओ का लाभ उठाया। यहाँ अध्यापक-गण जरा प्रेम से पढाते-समझाते थे। कठिनाई का स्नेहपूर्वक निवारण करते थे।

१५ फरवरी आई। अध्ययन-अवकाश मिला। स्कूल से विदाई ली। विदाई-समारोह हुआ। अध्यापकों ने चरित्र, देशभक्ति, राष्ट्रभक्ति और न जाने क्या-क्या उपदेश दिए। आश्वासन दिया कि कोई बच्चा जब चाहे स्कूल आकर अपने अध्यापक से समझ मे न आने वाला पाठ समझ सकता है। मुझे आश्वासन मे प्रवचना लक्षित हुई।

स्कूल का अन्तिम वर्ष बीत गया। वह पाठ्य-क्रम अधूरा छोड़कर चला गया। पाठ्यक्रमों का रिवीजन करवाए बिना निकल गया, कापी-चैक करने की छूत की बीमारी से बचकर भाग गया।

नारी-शिक्षा का महत्त्व

(ऑल इण्डिया १९८२ : 'बी')

मानवीय साधनों के पूर्ण विकास, परिवार तथा समाज के सुधार, बच्चों के चरित्र-निर्माण एवं देश के उत्थान के लिए नारी-शिक्षा का महत्त्व शाश्वत है, अपरिहार्य है, अनिवार्य है। दूसरे, एक पुरुष की शिक्षा का अर्थ एक व्यक्ति की शिक्षा है, जब कि एक नारी की शिक्षा का अर्थ सम्पूर्ण परिवार की शिक्षा है। अतः पारिवारिक सुख-शान्ति के लिए नारी की शिक्षा महत्त्वपूर्ण है।

नारी स्नेह और सौजन्य की देवी है। वह नर-पशु को मनुष्य बनाती है। मधुर वाणी से जीवन को अमृतमय बनाती है। उसके नेत्र में आनन्द का दर्शन होता है। वह श्रान्त हृदय के लिए शीतल छाया है। उसके हास्य में निराशा हरने की अपूर्व शक्ति है।

नारी-जीवन दो रूपों में विभक्त है—पत्नी और माता। शिक्षित पत्नी परिवार के लिए वरदान है। सुख शान्ति और श्री की वर्द्धक है। कलह की विरोधिनी है। समन्वय, सामंजस्य और समझौते की साक्षात् प्रतिमा है। शास्त्रों में श्रेष्ठ पत्नी के छः लक्षण बताए गए हैं—

कार्येषु मन्त्री, करणेषु दासी, भोज्येषु माता, रमणेषु रम्भा।
धर्मानुकूला, क्षमया धरित्री, भार्या च षाड्गुण्यवतीह दुर्लभा॥

'कार्येषु मंत्री' अर्थात् काम काज में मंत्री के समान सलाह देने वाली। मंत्री रूप में सलाह वही दे सकती है, जिसमें विवेक हो, बुद्धि का विकास हो। बुद्धि विकसित होती है शिक्षार्जन से। अशिक्षित नारी जीवन जगत् या व्यवसाय की समस्याओं में क्या सलाह देगी? वह तो विपत्ति आने पर और भी संकट को निमंत्रण देगी।

'करणेषु दासी' अर्थात् सेवादि में दासी के समान कार्य करने वाली। 'सेवा' करने के लिए सेवा के महत्त्व का ज्ञान तथा उसकी सीमा और विधि की जानकारी चाहिए। इसके अनन्तर चाहिए सेवा में निष्ठापूर्वक संलग्न होने की आकांक्षा।

शिक्षा के अभाव में नारी मे सेवा का अर्थ जानने की क्षमता कहाँ से आएगी ?

'भोज्येषु माता' अर्थात् माता के समान स्वादिष्ट, स्वास्थ्यवर्द्धक भोजन कराने वाली। शिक्षित नारी ही पति के स्वास्थ्यानुकूल भोजन की महत्ता को समझ सकती है। प्रसाद के नाम पर मधुमेह के रोगी पति से लड्डू खाने का आग्रह नही करेगी, रक्तचाप के रोगी पति को नमकीन खाद्य पदार्थों के सेवन के लिए विवश नही करेगी। समय पर, रुचि और मौसम के अनुकूल गरम-गरम भोजन देगी।

'रमणेषु रम्भा' का अर्थ है शयन के समय अप्सरा के समान सुख देने वाला। रमण-क्रीड़ा शिक्षा का अंग है। अपढ, अशिक्षित, अज्ञानी नारी शिक्षा के अभाव में सुख न पहुँचाकर दुःख, क्लेश, दर्द का कारण बन जाती है।

धर्म के अनुकूल काम करने वाली अर्थात् 'धर्मानुकूला'। धर्म और अधर्म को समझने के लिए ज्ञान चाहिए। ज्ञान का आधार है शिक्षा। अतः पत्नी रूप मे नारी-शिक्षा का अत्यन्त महत्त्व है। पत्नी-धर्म के पालन से रत्ना के तुलसी मानस के तुलसी बने और विद्योत्तमा के कालिदास संस्कृत वाङ्मय की विभूति बने।

'क्षमया धरित्री' अर्थात् क्षमादि गुण धारण करने मे पृथ्वी के समान स्थिर रहने वाली। कारण, गलती करना मानव का स्वाभाविक धर्म है। उस गलती पर क्रोध प्रकट करना कलह उत्पन्न करता है। कलह परिवार का नाशक है। 'क्षमा' आती है 'बुद्धि' से। बुद्धि की जननी है शिक्षा।

इस प्रकार पत्नी रूप में नारी-शिक्षा का महत्त्व आवश्यक ही नही, अनिवार्य भी है, ताकि वह सुन्दर, श्रेष्ठ, विकासशील परिवार की संरचना मे योग दे सके।

नारी-जीवन का दूसरा रूप है—माता का। मातृ-रूप मे नारी का दायित्व गुरुतर है, महान् है। कारण, माता का हृदय बच्चे की पाठशाला है। मनुष्य वही बनता है, जो उसकी माता उसे बनाना चाहती है। अभिमन्यु ने माँ के गर्भ में ही चक्रव्यूह तोड़ने की शिक्षा ली थी। शिवाजी को 'शिवा' बनाने मे माता जीजाबाई का हाथ था। यदि माता शिक्षित न होगी, तो देश की सतानो का कल्याण नही हो सकता। कोई भी राष्ट्र अपने नौनिहालों को सुशिक्षित माँ की शिक्षा से वंचित रखकर उन्नति के स्वप्न नही देख सकता।

'शिशु-शुश्रूषा' मातृत्व की दीर्घ तपस्या है। तप कार्य के प्रति समर्पित ध्यानस्थ समाधि है। शिशु के तन-मन को स्वस्थ रखकर विकास-पथ पर

अग्रसर करना माँ की तपस्या है। तप का ज्ञान प्रकाश का प्रदाता है। शिशु के शारीरिक एवं मानसिक विकास के ज्ञान की शिक्षा के अभाव मे मातृत्व का तप निष्फल है, दिग्भ्रम है। स्वस्थ, सुन्दर और ज्ञानवान शिशु शिक्षित नारी ही प्रदान कर सकती है।

नारी स्वभावतः दुर्बल है, परम्पराओं से ग्रस्त है, जादू, टोना-टोटके की विश्वासिनी है, भूत-प्रेत की उपासिका है। प्रगतिशील पग उठाने मे असमर्थ है। कुरीति और कुसंस्कारों की लक्ष्मण-रेखा पार करते हुए हिचकती है, झिझकती है। इसलिए नारी का जीवन अंधकार की कारा है। पुत्री रूप मे माता-पिता के लिए बोझ समझी जाती है। पत्नी रूप में दासी से अधिक उसका कोई मूल्य नही। पुत्र बड़े होने पर वृद्धा माता को अपने सिर पर बोझ समझते है। नारी शिक्षित होगी, तो उसमें आत्मविश्वास जागृत होगा। वह परम्पराओ, कुरीतियो और कुसस्कारों की लक्ष्मण-रेखा पार करेगी। जादू, टोना, टोटके की बजाए वैज्ञानिक सत्य को ग्रहण करेगी।

शिक्षा नारी मे जीवन की परिस्थितियो का सामना करने की योग्यता प्रदान करेगी। उसे श्रेष्ठ जीवन व्यतीत करने की प्रेरणा देगी। अपने बच्चो, परिवार, कुल, समाज तथा राष्ट्र में संस्कार और सुरुचि जागृत करेगी। श्रेष्ठतर चरित्र का निर्माण करेगी। शिक्षिता नारी नौकरी कर गृहस्थी की आय बढाएगी, अध्यापिका बनकर राष्ट्र को शिक्षित करेगी, नर्स बनकर आहत और पीड़ितो की वेदना हरेगी, लिपिक बनकर कार्यालय-कार्य-सचालन मे सहयोग देगी, विधि-वेत्ता बनकर समाज को न्याय प्रदान करेगी, नेता बनकर देश को कुशल नेतृत्व प्रदान करेगी।

●

सहशिक्षा

(दिल्ली १९८४ : 'ए')

विद्यालय के एक ही कक्ष मे बालक-बालिकाओं, युवक-युवतियों का साथ-साथ शिक्षा ग्रहण करना 'सहशिक्षा' है। पाठ्य-क्रम, अध्यापक तथा कक्ष की त्रिवेणी मे छात्र-छात्राओं का शिक्षार्थ-संगमन 'सहशिक्षा' है।

प्राचीन काल मे नारी विदुषी थी—प्रमाण तो मिलते हैं, पर उनका अध्ययन सहशिक्षा के रूप मे हुआ हो, ऐसा प्रमाण नहीं मिलता। उपनिषदों मे गार्गी का वर्णन आता है, जिसने विद्वत्ता में महर्षि याज्ञवल्क्य को पराजित कर दिया था। मंडन मिश्र की पत्नी भारती ने आद्य शंकराचार्य से शास्त्रार्थ किया था। कण्व के आश्रम मे शकुन्तला और उसकी सहेलियाँ थीं तो ऋषिकुमार भी अध्ययन करते थे, किन्तु ये सहशिक्षा रूप मे विद्या ग्रहण करते थे, इसका कोई प्रमाण नही मिलता।

हाँ, बौद्धकाल मे भिक्षु-भिक्षुणियाँ धार्मिक उपदेश साथ-साथ ग्रहण करते थे, जो भारत मे सहशिक्षा का सर्वप्रथम उदाहरण है। इसके पश्चात् अठारहवी शताब्दी के अन्त तक इसके प्रमाण नही मिलते। सह-शिक्षा भारत में हेय दृष्टि से देखी गई तथा जीवन के लिए घातक समझी गई।

आर्य समाज के प्रचार ने स्त्री-शिक्षा पर बल दिया, तो अंग्रेजी-प्रचार ने सह-शिक्षा को प्रश्रय दिया। ज्यों-ज्यों भारत में पाश्चात्य संस्कारों का विकास होता गया, सह-शिक्षा अग्रसर होती गई। परिणामतः आज का सभ्य-नागरिक प्राचीन रूढिगत विचारो से ग्रस्त होते हुए भी अपने बच्चों को सहशिक्षा दिलाने में कोई आपत्ति नही करता, उसे जीवन के विकास में बाधक नही मानता।

सहशिक्षा से लडकियों में नारी-स्वभाव सुलभ लज्जा, झिझक, पर-पुरुष से भय, कोमलता, अबलापन, हीनभावना किसी सीमा तक दूर हो जाती हैं। दूसरी ओर, युवक नारीत्व के गुणों को अपना लेता है। उसकी निर्लज्जता, अक्खड़पन, अनर्गलता पर अंकुश लग जाता है। मृदु भाषिता, संयमित संभाषण, शिष्ट आच-

रण तथा नारी स्वभाव की समझ के गुण विकसित होते हैं। युवक-युवतियों मे विकसित ये गुण भावी जीवन में सफलता के कारण बनेंगे।

सहशिक्षा सौन्दर्य को बढ़ाने मे सहायक है। इसमें अपने आपको सुन्दर रूप में प्रस्तुत करने की भावना स्थायी रूप मे प्रवेश करती है। सुन्दर,शिष्ट तथा स्वच्छ वस्त्र पहनकर, उचित ढंग से केश-विन्यास करके, जूतों पर पालिश करके कक्षा में आना युवक-युवतियों का स्वभाव बन जाता है, जो भावी जीवन के लिए श्रेष्ठ गुण है।

सहशिक्षा से शिक्षा-व्यवस्था में खर्च की बहुत बचत होती है। अलग-अलग कक्ष, अध्यापक तथा प्रबन्ध-व्यवस्था में जो दुगुना खर्च होता है, वह नहीं होता। दूसरे, इतिहास, भूगोल, गणित कॉमर्स, चार्टर्ड एकाउन्टेंसी, कास्ट एकाउन्टेंसी, बिजनेस मैनेजमेंट, एल-एल. बी आदि कक्षाओं में युवतियों की संख्या उँगली पर गिनने योग्य होती है। उनके लिए अलग व्यवस्था करना शिक्षा को इतना महंगा बनाना है कि व्यवस्थापक पृथक् व्यवस्था कर ही नहीं पायेंगे। दूसरे, इन विषयों की अध्यापिकाएँ भारत में है ही नगण्य सम।

प्राइमरी-शिक्षा में अध्यापिका की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। परिवार से निकलकर विद्यालय के नए वातावरण में प्रवेश करने वाले शिशु के लिए अध्यापिका माता और शिक्षक का कर्त्तव्य निभाती है। यदि शिशु का विभाजन लड़का-लड़की में करके पृथक्-पृथक् शिक्षा का आयोजन किया गया, तो पुरुष के अध्यापन में न वह सहृदयता होगी, न उसमे बालक की प्रवृत्ति-परिवर्तन के लिए सिद्धता होगी।

सहशिक्षा प्रतिस्पर्द्धा-स्थली है। युवक युवतियों मे तथा युवतियाँ युवकों से आगे बढ़ने की चेष्टा करती है। यह स्वस्थ प्रतिस्पर्द्धा उनके अध्ययन, चिंतन, मनन को बलवती बनाती है।

गुणमयी सृष्टि मे अवगुणों की कमी नहीं। फूल के साथ काँटे भी होते हैं। कल्याणकारी शिवत्व में संहार की नैसर्गिक शक्ति भी है। सहशिक्षा मे गुण हैं, तो वह दुर्गुणों की जननी भी है।

आज के विषाक्त वातावरण में सहशिक्षा का सहपाठी भाई-बहिन की भावना से कम, प्रेमी-प्रेमिका की भावना से अधिक ग्रस्त होता है। सहपाठी का लावण्य उसे आकर्षित करता है। आकर्षण स्पर्श के लिए प्रेरित करता है। स्पर्श आलिंगन

चुम्बन में अग्रसर होता है और अन्ततः वासना का शिकार होता है। प्रेम और वासना की क्षुधा कभी शांत नहीं हुई। उलटा यह टॉनिक भूखवर्द्धक है। ऐसी स्थिति में योगी ही अध्ययन कर पाते है, वरना तो 'मैं तुझसे मिलने आई, कॉलिज जाने के बहाने' की स्थिति रहती है। न अध्ययन, न जीवन-विकास, उलटा चरित्र पतन, विनाश की ओर अग्रसर।

सहशिक्षा में अध्ययन में चित्त अशांत रहता है। युवतियाँ युवकों से दबी-दबी रहती हैं। घुटन के वातावरण मे जीती है। अध्ययनशील और शर्मालु युवक युवतियों की छाया से भी कतराते हैं। ऐसी स्थिति में मन की एकाग्रचित्तता कहाँ? पढ़ाई की मनःस्थिति कहाँ? प्राध्यापक भाषण की ग्राह्यता कहाँ?

प्रकृति ने नर और नारी की रचना मे भिन्नता रखी है। जीवन में उनको भिन्न-भिन्न दायित्व सौंपे हैं। जीवन मे उनकी प्रकृति, प्रवृत्ति, परिस्थितियाँ भी पृथक्-पृथक् प्रदान की है। ऐसी स्थिति मे उनकी शिक्षा, पाठ्य-क्रम तथा पाठ्य-विषय मे अन्तर होना चाहिए। सहशिक्षा मे यह अन्तर है ही नहीं। एक ही पाठ्य-क्रम दोनो के लिए अनिवार्य है। इससे दोनों का विकास प्रकृति-विरुद्ध होता है। प्रकृति-विरुद्ध विकास जीवन और जगत् के मान्य सिद्धातो की अवहेलना है।

पाठ्य-क्रम तथा पाठ्य-पुस्तको में कभी-कभी कुछ प्रसंग अश्लील आ जाते हैं जो नैतिकता के मापदंडो के विपरीत होते है। सहशिक्षा में उन प्रसंगो को स्पष्ट कर पाना बहुत कठिन होता है। ऐसी परिस्थिति मे प्रायः शिक्षक 'ओवरलुक' कर जाता है या अस्पष्ट रहने देता है। इस प्रकार सहशिक्षा ज्ञानवर्धन में भी बाधक है।

रही बात भारतीय समाज की रूढ़िग्रस्तता की। आज का भारतीय, चाहे वह किसी भी आर्थिक स्तर पर जीवन-यापन कर रहा हो, पाश्चात्य संस्कृति को लपकने के लिए लालायित है। भारतीय संस्कृति मे उसी पिछड़ेपन की बू आने लगी है। पाश्चात्य-संस्कृति जहाँ जीवन मे चमक-दमक लाएगी, वहाँ विलास और वासना के मानदण्ड स्वतः बदल जाएँगे। तब सहशिक्षा किसी भी स्तर पर भारतीयता के विरुद्ध नहीं मानी जाएगी।

मानसिक कार्य करते-करते थक गए हैं, थोड़ा खेल-कूद लीजिए। फिर देखिए, आपकी घबराहट, सुस्ती दूर होती है या नहीं। खेल-कूद से पसीना आता है, जिससे शरीर के रोग-दोष दूर होते हैं; रक्त का संचार ठीक होता है। पाचन शक्ति बढ़ती है; शरीर बलवान, फुर्तीला और सुन्दर बनता है; अंग-अंग हृष्ट-पुष्ट होते है।

खेल दो प्रकार के होते हैं। एक वे जो घर बैठकर खेले जाते हैं। जैसे—शतरंज, ताश, चौपड, कैरमबोर्ड आदि। इनमें व्यायाम कम, किन्तु मनोरंजन अधिक होता है, जिसमे मानसिक थकावट दूर होकर नवस्फूर्ति आती है। दूसरे प्रकार के खेल मैदान मे ही खेले जा सकते है। जैसे क्रिकेट, हॉकी, टेनिस, फुटबाल, वॉलीबॉल, बॉस्केट-बॉल कबड्डी, बैडमिन्टन आदि। इन खेलों से मनोरंजन के साथ-साथ व्यायाम भी होता है, जिससे शारीरिक और मानसिक, दोनों शक्तियों का विकास होता है।

खेल मे भाग लेने मे व्यक्ति जीवन के संघर्ष और उनमें सफलता की शिक्षा भी प्राप्त करता है। खेल खेलते समय वह बौद्धिक युक्तियों और शारीरिक बल के द्वारा अपनी टीम की सफलता का मार्ग ढूँढ़ता है। संघर्ष करना उसका स्वभाव बन जाता है और विजय-प्राप्ति सहज सम्भाव्य हो जाती है। फिर जीवन में कितनी ही कठिनाइयाँ क्यों न आएं, वह हँसते-हँसते उन पर विजय प्राप्त करता है। नेपोलियन को हराने वाले अंग्रेज सेनाधिकारी नेल्सन ने कहा था—'The war of Waterloo was won in the fields of Eton' (मैंने वाटरलू के युद्ध मे जो सफलता पाई है, उसका प्रशिक्षण खेल के मैदान मे लिया था।) यह है खेलो के महत्त्व का श्रेष्ठ उदाहरण।

खेल-कूद से अपने दल के अनुशासन में रहकर साथियों के साथ पूर्ण सहयोग करते हुए खेलने की भावना का उदय होता है। अतः सहयोग और अनुशासन के बिना खेल चल नहीं सकता। हॉकी में हाफबैक खेलने वाला खिलाड़ी अनुशासन तोड़कर, साथियों से सहयोग न करते हुए क्या कभी फारवर्ड खेलने का प्रयास करेगा ? कदापि नहीं। अतः खेलकूद से अनुशासन मे रहने और सहयोग से कार्य करने की भावना जागृत होती है।

खेल-कूद से मनुष्य में पूरी तन्मयता से कार्य करने की लगन जागृत होती है। वह जब कोई भी खेल खेलता है, तो विजय पाने के लिए अपने अन्दर की

समस्त शक्तियों को केन्द्रीभूत कर लेता है। इसे 'Sportsman spirit' भी कहते
है। इससे जीवन के हर कार्य में खिलाड़ी-प्रवृत्ति से कार्य करने का स्वभाव
बनता है।

खेलने मे चोट लगने पर खिलाड़ी प्रतिशोध लेने की बजाय उसके कष्ट को
सहन करता है। इससे मानव मे सहनशीलता की भावना बढ़ती है।

वर्तमान काल में क्रिकेट, हॉकी, टेनिस आदि विभिन्न खेलों के अन्तर्राज्यीय
एवं अन्तर्राष्ट्रीय मैचो का आयोजन किया जाता है। ये मैच इस तथ्य के साक्षी
हैं कि सम्पूर्ण विश्व खेलो के महत्त्व को स्वीकार करता है। मैचो से विजय प्राप्त
करने वाले तथा श्रेष्ठ खिलाड़ियों को हजारों रुपए के पुरस्कार तथा भाँति-भाँति
के उपहार दिए जाते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय खेलो में सफलता को राष्ट्र की प्रगति का
चिह्न स्वीकार किया जाता है। इन व्यापक खेल-कूद प्रतियोगिताओं से एक
बहुत बड़ा लाभ यह हो रहा है कि संसार में तनाव कम होता जा रहा है और
परस्पर विरोधी विचारधारा के देश भी एक-दूसरे के समीप आते जा रहे है। इस
प्रकार खेल-कूद अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र मे एकता और प्रेम-भावना का प्रचार-प्रसार
कर रहे हैं।

खेलों से मानव में उत्साह, साहस, धैर्य, स्फूर्ति, अनुशासन की भावना एवं
जीवन-संघर्ष में हँसते-हँसते जूझने की शक्ति की वृद्धि होती है। अतः जीवन को
सुखी, हृष्ट-पुष्ट और शक्तिशाली बनाने के लिए खेल अनिवार्य है।

स्वास्थ्य-रक्षा

(दिल्ली १९८४ : बी, ऑल इण्डिया १९८२ : ए)

जीवन की सार्थकता स्वस्थ रहने मे है। स्वस्थ रहना स्वास्थ्य-रक्षा पर निर्भर है। स्वास्थ्य-रक्षा का आधार महर्षि चरक ने 'त्रय उपस्तम्भा आहारः स्वप्नो ब्रह्मचर्यमिति' बताया है, अर्थात् स्वास्थ्य रूपी घर को स्थिर रखने के लिए उसके तीनो पाए—आहार, स्वप्न (निद्रा) तथा ब्रह्मचर्य ठीक-ठीक रखने चाहिएँ। वेन्डेल फिलिप्स का कथन है कि '*स्वास्थ्य-रक्षा की पृष्ठभूमि है परिश्रम। इसके लिए परिश्रम के अतिरिक्त अन्य कोई विकल्प नही।*'

ईशोपनिषद् कर्म करते हुए सौ वर्ष तक जीने की इच्छा प्रकट करता है—'कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेत् शतं समा.।' दूसरी ओर महर्षि चरक ने धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का मूल आधार स्वास्थ्य-रक्षा अर्थात् नीरोग शरीर बताया है—'*धर्मार्थकाममोक्षाणाम् आरोग्यं मूलमुत्तमम्।*'

महाकवि कालिदास की एक सूक्ति है—'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्।' अर्थात् शरीर-रक्षा ही धर्म का पहला साधन है। यदि शरीर स्वस्थ नहीं, तो मन स्वस्थ नही रह सकता। मन स्वस्थ नही, तो विचार स्वस्थ नही होते। विचारों की अस्वस्थता मे धर्म की कल्पना कहाँ? साधना कहाँ? स्वास्थ्य के अभाव में सासारिक सुखो का भोग कहाँ? षड्-रस व्यंजनों का मजा कहाँ? शरीर-रक्षा एव सजावट के साधन वस्त्राभूषणों की चाह कहाँ? रोगी व्यक्ति हाथ मलमल कर पछताता है। अतः किसी ने ठीक ही कहा है—'*पहला सुख निरोगी काया*' अर्थात् सबसे बडा सुख स्वस्थ शरीर है। उर्दू मे एक सूक्ति है—'तन्दुरुस्ती हजार न्यामत' अर्थात् स्वास्थ्य हजारो अन्य अच्छे भोगों से बढकर है। अग्रेजी में भी कहावत है—'Health is Wealth' (स्वास्थ्य ही धन है)।

स्वास्थ्यहीन व्यक्ति अविवेकी, विचारशून्य, आलसी, अकर्मण्य, हठी, क्रोधी *झगड़ालू अर्थात् दुर्गुणो का भण्डार होता है।* इसके विपरीत शरीर की स्वस्थता से मुख-मंडल दमकता है; शरीर का गठन और अगो की चारुता चमकती है,

चाल मे चुस्ती और चंचलता प्रकट होती है।

शरीर मे आत्मा निवास करती है। आत्मा परमात्मा का स्वरूप है। एक प्रकार से शरीर परमात्मा का पुण्य मदिर है, जिसे स्वच्छ और शुद्ध रखना मनुष्य का धर्म है। इस धर्म-पालन के साधन है—व्यायाम, सतुलित एवं नियमित भोजन, शुद्ध जलवायु का सेवन, सयम-नियमपूर्ण जीवन तथा ब्रह्मचर्य पालन।

व्यायाम स्वास्थ्य-रक्षा का मूल मत्र है। विद्वानो का कथन भी है—'व्यायामात्पुष्टगात्राणि।' व्यायाम से पाचन शक्ति ठीक होती है, शरीर में रक्त-सचार होता है, पुट्ठे मजबूत होते हैं, सीना चौडा होता है, भुजाओं में बल आता है और इन्द्रियाँ शक्तिसम्पन्न होती है। इससे मन में साहस उत्साह, आत्म-विश्वास, निर्भीकता और स्वावलम्बन के भाव जाग्रत होते हैं। पेट की बीमारियाँ, शरीर की शिथिलता, मन की उदासी, हृदय की निराशा तथा मस्तिष्क की निष्क्रियता दूर होती है। इस प्रकार व्यायाम से शरीर सुन्दर बनता है, बुद्धि विकसित होती है और मन पर संयम रहता है।

स्वास्थ्य-रक्षा के लिए व्यायाम नित्य और नियमित रूप से करना चाहिए। उतना ही करना चाहिए, जिससे थकावट न जान पड़े। भोजन के पश्चात् व्यायाम नही करना चाहिए और न व्यायाम के तुरन्त पश्चात् भोजन करना चाहिए। ब्रह्ममुहूर्त या प्रातः शुद्ध और खुली हवा में व्यायाम करना हितकर है। व्यायाम के पश्चात् रगड़-रगड़ कर स्नान अनिवार्य है।

स्वास्थ्य-रक्षा का दूसरा मूलमंत्र है—नियमित और स्वास्थ्यकर भोजन। भोजन नियत समय पर और भूख लगने पर करना चाहिए। सादा, सुपाच्य और पौष्टिक भोजन अधिक लाभप्रद है। घी, मेवा, दूध, सब्जी के प्रयोग से भोजन में पौष्टिकता आती है। सड़े-गले बासी, अधपके भोजन से बचना चाहिए। खटाई-मिर्च से दूर रहना चाहिए। अपनी शारीरिक प्रकृति के और ऋतु के विरुद्ध भोजन नही करना चाहिए। जैसे—गर्म भोजन के साथ ठंडा जल, [illegible] खाकर जल पीना, दही के साथ मूली और दूध के साथ मछली अहितकर है। नशीली वस्तुओं से परहेज करना चाहिए, ये स्वास्थ्य-नाशक है।

पानी स्वच्छ पीना चाहिए। कई बार नदी से गन्दा पानी आता है। उसे उबालकर तथा फिटकरी डालकर स्वच्छ कर लेना चाहिए। कवि ने जल की विशेषता प्रकट करते हुए लिखा है, '[illegible]

पच जाने पर जल बल देता है। भोजन के समय जल अमृत के समान है और भोजन के अंत में विष का फल देता है।'

स्वास्थ्य-रक्षा का तीसरा मूलतंत्र है— निद्रा। गहरी और शांत निद्रा स्वास्थ्य की सहचरी है। जो सदाचारी हैं, निस्पृह है और संतोष से तृप्त है, उसको समय पर निद्रा आए बिना नहीं रहती। नींद से शरीर की थकावट दूर होती है, मस्तिष्क स्वस्थ होता है, चेतना आती है। इसीलिए आचार्य रजनीश ने नींद को परमात्मा का अद्भुत आशीर्वाद माना है और महाकवि प्रसाद निद्रा को अत्यन्त प्यारी वस्तु मानते हुए लिखते हैं, 'घोर दु:ख के समय भी मनुष्य को यही सुख देती है।' रहस्य की बात यह भी है कि स्वास्थ्य ठीक हो, तो मनुष्य को काँटों पर भी नींद आ जाती है, वर्ना फूलों की पंखुड़ियों पर रात करवटें बदलते गुजरती है।

स्वास्थ्य-रक्षा का चौथा मूल मंत्र है—ब्रह्मचर्य। ब्रह्मचर्य का अर्थ है— मन, बचन और काया से समस्त इन्द्रियों का संयम। इन्द्रियों का संयम स्वास्थ्य-रक्षा की कुंजी है। ब्रह्मचर्य की महिमा का गान करते हुए अथर्ववेद में कहा गया है— 'ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत।' अर्थात् ब्रह्मचर्य रूपी तपोबल से ही विद्वान् लोगों ने मृत्यु को जीता है।

स्वास्थ्य-रक्षा का पाँचवाँ नियम है—स्वच्छता। स्वच्छता स्वास्थ्य-रक्षा की कुंजी है। शुद्ध और स्वच्छ वायु का सेवन आयु-वृद्धि की औषधि है। शारीरिक स्वच्छता, वस्त्रादि परिधानों की स्वच्छता, घरेलू उपकरणों की स्वच्छता, वातावरण की श्रेष्ठता स्वच्छता के अंग हैं।

दैनिक जीवन में स्वास्थ्य-रक्षा के मूल-मंत्रों को अपनाकर हम मायावी संसार का उपभोग कर सकते हैं, जीवन में आनन्द की गंगा बहा सकते हैं; 'जीवेम शरद: शतम्' की कल्पना को साकार कर सकते हैं।

व्यायाम

कालिदास की एक सूक्ति है—'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्' अर्थात् सभी धर्म-शरीर ही सबसे पहला साधन है। वस्तुतः जीवन में स्वास्थ्य ही सब कर्मों के लिए कुछ है। अस्वस्थ व्यक्ति सांसारिक सुखों का भोग नहीं कर सकता। चाहे घर में षड्रस युक्त व्यंजन बने हों अथवा वस्त्राभूषण पहनने का प्रश्न हो और चाहे उत्सवों और सम्मेलनों में भाग लेना हो, अस्वस्थ व्यक्ति के लिए सब चीजें व्यर्थ हैं। उसे इन सबको देख कर ईर्ष्या होती है। वह जीवन भर इनके लिए हाथ मल-मलकर पछताता है। इसलिए किसी ने ठीक कहा है 'पहला सुख निरोगी काया' अर्थात् सबसे बड़ा सुख स्वस्थ शरीर है।

शरीर को स्वस्थ रखने के लिए व्यायाम की नितान्त आवश्यकता है। जो लोग कसरत नहीं करते, वे आलसी और निरुद्यमी बन जाते हैं। व्यायाम करने से हाथ-पैर और शरीर के पुट्ठे बलिष्ठ रहते हैं, चुस्ती और चालाकी आती है, पाचन-शक्ति ठीक रहती है, समय पर भूख लगती है, चित्त प्रसन्न रहता है और काम करने की इच्छा होती है। शरीर में रुधिर अधिक बनता है और काया सुडौल हो जाती है। बादी से फूला हुआ शरीर एवं मांस के नियमित व्यायाम से सुन्दर बन जाता है। जिस आदमी को व्यायाम का शौक है, वह कभी रोग का शिकार नहीं हो सकता। उसका शरीर वज्र के समान हो जाता है। उसके हृदय में उत्साह, आत्मविश्वास तथा निडरता रहती है।

व्यायाम वह जड़ है जो जीवन-रूपी वृक्ष को हरा-भरा रखने के लिए रस प्रदान करती है। जिस वृक्ष की जड़ मिट्टी में जितनी ही गहरी होगी, वह उतना ही दृढ़, दीर्घजीवी और हरा-भरा होगा। इसी प्रकार जो मनुष्य नियमित रूप से व्यायाम करने वाला होगा, उसका जीवन उतना ही सुखी और उल्लासपूर्ण होगा। व्यायाम से केवल शरीर ही पुष्ट नहीं होता, बल्कि मन और मस्तिष्क भी मजबूत होते हैं।

व्यायाम करने के अनेक ढंग हैं। दण्ड और बैठक लगाना, कुश्ती लड़ना, दौड़ लगाना, घोड़े की सवारी करना, पानी में तैरना, मुदगर घुमाना, गेंद खेलना, कबड्डी खेलना आदि व्यायाम भारत में प्राचीनकाल से प्रचलित है। आसन और प्राणायाम भी शरीर के लिए श्रेष्ठ व्यायाम हैं। प्रात: एवं सायं भ्रमण से भी शरीर का व्यायाम होता है। अवस्था के अनुरूप व्यायाम करना चाहिए। सभी व्यायाम सभी लोगों के लिए उपयोगी नहीं हो सकते। बच्चों के लिए दौड़-भाग वाले खेलकूद उपयोगी हैं, तो नवयुवक कुश्ती, घुड़सवारी, मुदगर घुमाना आदि के द्वारा अपने शरीर को पुष्ट कर सकते हैं। वृद्ध लोगों तथा दिमागी कार्य अधिक करने वालों के लिए प्रात: तथा सायं भ्रमण करना लाभदायक होता है।

अंग्रेजी खेलों में अच्छे और प्रसिद्ध खेल हैं—क्रिकेट, हॉकी, फुटबॉल, वॉली-बॉल, पोलो और टेनिस। ये भी व्यायाम के सुन्दर साधन हैं।

स्त्रियों का शरीर नाचने, रस्सी कूदने, चक्की चलाने या सरल आसन करने से स्वस्थ रहता है।

अंग्रेजी में कहावत है कि 'स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क रहता है।' स्वस्थ शरीर व्यायाम पर निर्भर करता है। अतः व्यायाम प्रतिदिन करना चाहिए।

भारत में कुछ लोग आजीविका के लिए प्रातः से लेकर सायं तक बड़ी सख्त मेहनत करते हैं। ऐसे लोगों का स्वास्थ्य स्वयमेव ठीक रहता है, किन्तु दफ्तरों में कुर्सी पर बैठकर काम करने वाले बाबुओं और सारा दिन तकिए के सहारे बैठने वाले व्यापारियों का स्वास्थ्य प्रायः बिगड़ जाता है। ऐसे लोगों के लिए व्यायाम की नितान्त आवश्यकता है।

प्रत्येक व्यक्ति को अपनी शक्ति-अनुसार व्यायाम करना चाहिए। आवश्यकता से अधिक व्यायाम करना भी शरीर के लिए हानिकारक होता है। व्यायाम कभी भरे पेट नहीं करना चाहिए। व्यायाम खुले मैदान और स्वच्छ वायु में करना चाहिए। व्यायाम करते समय मुँह बन्द रखना चाहिए और नाक से लम्बे साँस लेने चाहिएँ। शरीर पर तेल लगाकर मालिश करके स्नान करने से स्फूर्ति आती है। सादा और सात्त्विक भोजन तथा पवित्र विचार स्वास्थ्य-वृद्धि की कुंजी हैं।

व्यायाम करने की प्रवृत्ति बाल्यकाल से ही डालनी चाहिए। बहुत से लोगों

का विचार है कि बचपन में व्यायाम करने वाले बालक बीमार हो जाते हैं और उनका दिमाग मोटा हो जाता है। यह कपोलकल्पित और ना-समझी की बात है। जो बच्चे बचपन से ही व्यायाम करते रहते है, उनका शरीर सुडौल और दिमाग तेज होता है। बच्चों के लिए व्यायाम की अनिवार्यता को अनुभव करते हुए विद्यालयों में भी व्यायाम की व्यवस्था होती है। प्राय. सभी विद्यालयों में व्यायाम-शिक्षक होते हैं, जो बारी-बारी से सभी कक्षाओं को व्यायाम करवाते हैं। छात्रों का कर्तव्य है कि विद्यालय में सिखाए गए व्यायाम का प्रात अथवा सायंकाय अभ्यास अवश्य किया करें।

प्रत्येक मनुष्य की इच्छा होती है कि वह सुख एव सम्मान के साथ सौ वर्ष तक जी सके, किन्तु यह तभी सम्भव है, जबकि उसका शरीर स्वस्थ हो। शरीर तभी स्वस्थ रह सकता है, जब वह नियमित व्यायाम करे। अत. हमे नियमित रूप से व्यायाम करना चाहिए।

व्यायाम के लाभ

(ऑल इण्डिया १९८२ : 'ए'; दिल्ली १९८१ : 'बी')

महर्षि चरक ने 'या चेष्टा, स्थैर्यार्था बलवर्धिनी देहव्यायामः' कहकर देह को स्थिर करने एवं उसका बल बढाने वाली शारीरिक चेष्टा को व्यायाम की संज्ञा दी है। डॉ० सिद्धेश्वर वर्मा ने इसे स्पष्ट करते हुए लिखा है, 'व्यायाम का अर्थ पहलवानी नहीं है। व्यायाम किसी भी ऐसे कार्य को कह सकते हैं, जिसके द्वारा शरीर की स्थायी शक्ति सतेज, सक्रिय तथा सुदृढ हो।' डॉ० जॉनसन 'बिना थकावट के परिश्रम' को व्यायाम मानते हैं।

मानव-जीवन की तीन महत्त्वाकांक्षाएं हैं—प्राणैषणा, वित्तैषणा तथा परलोकैषणा। इन तीनों में प्राणैषणा उत्कृष्टतम है। कारण, शरीर के नष्ट होने पर धनैषणा और मोक्ष-कामना सम्भव ही नहीं हैं। प्राणैषणा निर्भर करती है व्यायाम पर।

व्यायाम से शरीर की पुष्टि, गात्रों की कांति, मांस-पेशियों के उभार का ठीक विभाजन, जठराग्नि की तीव्रता, आलस्यहीनता, स्थिरता, हलकापन और मन आदि की शुद्धि होती है।

व्यायाम से पाचन-शक्ति ठीक कार्य करती है। शरीर के विकार– मल, मूत्र, पसीना आदि नियमित रूप से बाहर आ जाते हैं। पाचक रस अधिक निकलते हैं, भूख बढती है। भोजन पचने के बाद ही वह रक्त, मज्जा, मांस आदि मे परिवर्तित होता है। रक्त-संचार सुचारु रहता है और हृदय मे तीव्रता आती है। शरीर सुडौल, सुगठित एवं सुदृढ बन जाता है। पुट्ठे मजबूत हो जाते हैं। सीना चौड़ा हो जाता है। गर्दन मोटी तथा गोल हो जाती है। सभी इंद्रियां ठीक तरह से कार्यरत रहती हैं। शरीर में स्फूर्ति आती है, उत्साहवर्द्धन होता है।

व्यायाम से शरीर सुन्दर बनता और दीखता है। चेहरे पर रौनक आती है। मस्तक चमकता है। मस्तिष्क की शक्ति उर्वरा होती है। मन मे स्फूर्ति रहती है। कार्य करने के लिए उत्साह होता है। गति में तीव्रता आती है।

वृद्धावस्था मे भी यौवन प्रकट होता है ।

बुढ़ापा जुल्मी है, जो मृत्यु का भय दिखाकर यौवन के समस्त उल्लासों का निषेध कर देता है, किन्तु व्यायाम करने वाले शरीर पर बुढ़ापा सहसा आक्रमण नहीं कर पाता। फलतः वह मनुष्य *'कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेत् : शतं समाः'* अर्थात् काम करते हुए सौ वर्ष जीने की इच्छा पूरी कर पाता है ।

व्यायाम से मनुष्य संयमी बनता है। संयमहीन जीवन विपत्तियों का आगार होता है, अतः विपत्तियाँ व्यायाम करने वाले से दूर रहती हैं। फिर, जो संयमी है, वही सर्वशक्तिमान् है ।

धैर्य उसकी चारित्रिक विशेषता बन जाती है । धैर्य वीरता का अति उत्तम, मूल्यवान और दुष्प्राप्य अंग है। धैर्य संतोष की कुंजी है और शान्ति का रहस्य है ।

क्षमा उसके स्वभाव का अंग बन जाती है, जो 'वीरस्य भूषणम्' है। क्षमा से बढकर किसी तत्त्व में पाप को पुण्य बनाने की शक्ति नही है ।

सन्तोष रूपी अमृत से वह आकंठ पूर्ण रहता है, जो सुख-शान्ति का वाहन है। चाणक्य-नीति के अनुसार सन्तोष देवराज इन्द्र का नन्दन वन है ।

व्यायाम से उत्पन्न आत्म-विश्वास और आत्म-निर्भरता जीवन की सफलता का रहस्य है, विपत्तियों पर विजय का प्रतीक है । सर्वांगीण उन्नति की आधार-शिला है। अतः ये दोनों व्यायाम की आत्मजा हैं ।

व्यायाम-शील व्यक्ति साहस और शक्ति का संचय करता है । साहस और शक्ति से संकट का प्रतिरोध करने में ही उसका साफल्य छिपा है। साहसी व्यक्ति विश्वासी भी होता है ।

जगती का ध्रुव सत्य है 'वीर भोग्या वसुन्धरा'। अर्थात् वीर पुरुष ही धरती का भोग करते हैं। भय पर आत्मा की शानदार विजय वीरता है, जो व्यायाम से ही सम्भव है। कारण, व्यायाम वीरता का लक्षण है ।

मनुष्य-शरीर में १५९ पेशियाँ हैं। ये पेशियाँ ही मानव को कार्य-करने, इधर-उधर मुड़ने, उठने-बैठने, फैलने-सिकुड़ने आदि में ही सहायता देती हैं। मांस-पेशियाँ जितनी लचीली और स्वस्थ होंगी, उतनी ही अंग-सचालन मे सुगमता आएगी। व्यायाम इन मांस-पेशियों को सुदृढ़ करता है, रक्त के दौरे को बढ़ाता है, शुद्ध करता है, जिससे रोग-नाशक शक्ति का विकास होता है। रोग भय-

भीत होकर उससे दूर भागता है। अथर्ववेद ने इसका समर्थन किया है—"सर्व-रक्षांसि व्यायामे सहामहे' सब रोग रूपी राक्षसो को हम व्यायाम करने से ही सहन अर्थात् नष्ट कर सकते हैं।

आयुर्वेद के प्रसिद्ध ग्रंथ भावप्रकाश मे व्यायाम के लाभ पर स्पष्ट शब्दों में लिखा है—

लाघव कर्म-सामर्थ्यं विभक्त-घन-गात्रता।
दोष-क्षयोऽग्नि-दीप्तिश्च, व्यायामादुपजायते ॥
व्यायाम-दृढ-गात्रस्य, व्याधिर्नास्ति कदाचन।
विरुद्ध वा विदग्ध वा भुक्तं शीघ्रं विपच्यते ॥

प्रतिदिन नियमपूर्वक व्यायाम करने से शरीर हल्का और फुर्तीला बन जाता है। शरीर मे कठिन से कठिन कार्य करने की शक्ति और सामर्थ्य पैदा होती है। शरीर के सब अगोपाग भरे हुए, सुन्दर, सुडौल तथा अलग-अलग दीखने लगते है। वात, पित्त, कफ दोषों का नाश होकर जठराग्नि प्रदीप्त होती है। व्यायामशील व्यक्ति को कभी भी किसी प्रकार की बीमारी नही सताती। वह जो कुछ खाता है, चाहे वह विदग्ध ही क्यो न हो, उसे शीघ्र पचा लेता है।

व्यायाम के अनगिनत लाभों को देखकर स्वामी सत्यदेव परिव्राजक ने ठीक ही कहा—

नेम से व्यायाम को नित कीजिए।
दीर्घ जीवन का सुधा रस पीजिए ॥

आँखों देखे किसी मैच का वर्णन

(ऑल इंडिया १९८१ : 'बी')

अथवा

हॉकी मैच का आँखों देखा हाल

खेल मनुष्य के लिए बहुत उपयोगी है। विशेषकर विद्यार्थी-जीवन में खेलों का बहुत महत्त्व है। खेलकूद से शरीर तो स्वस्थ रहता ही है, चरित्र-निर्माण भी होता है। खेल के मैदान में हमें अनेक अच्छी बातें सीखने को मिलती हैं। परस्पर सहयोग एवं सहनशीलता खेलों की सबसे बड़ी देन है। इसी को 'खेल भावना' (Sportsman Spirit) कहा जाता है। खेल-भावना के विकास के लिए भिन्न-भिन्न स्तरों पर मैच आयोजित किए जाते हैं। प्रायः सभी खेलों में अन्तर्विद्यालयीय मैचों से लेकर अन्तर्राष्ट्रीय मैच तक प्रचलित हैं। मैच (प्रतियोगिता) का दृश्य बड़ा ही आकर्षक और प्रसन्नताप्रद होता है। मैं यहाँ एक अन्तर्विद्यालयीय हॉकी-मैच का वर्णन कर रहा हूँ।

इस वर्ष 'सीनियर-सैकेन्डरी स्कूल हॉकी टूर्नामेंट' का फाइनल मैच गवर्नमेंट वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय और डी० ए० वी० वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय के बीच वसन्त पंचमी के दिन हुआ। स्थान मोरीगेट का मैदान निश्चित था। मैच सायंकाल ५ बजे से आरम्भ होना था। मैदान के एक ओर कुर्सियाँ लगी हुई थीं और दूसरी ओर दरियाँ बिछी थीं। कुर्सियों पर गण्यमान्य अतिथियों के लिए तथा दरियों पर विभिन्न स्कूलों के छात्रों के बैठने के लिए स्थान था।

चार बजते ही लोगों का आना शुरू हो गया था। पौने पाँच बजे दिल्ली के मुख्य कार्यकारी पार्षद महोदय पधारे। आज के मैच के विशेष अतिथि वही थे। उस समय तक मैदान भर चुका था। ठीक पाँच बजने से पाँच मिनट पूर्व दोनों स्कूलों के खिलाड़ी मैदान में उतरे। गवर्नमेंट स्कूल के खिलाड़ी सफेद कमीज और खाकी निकर पहने थे तथा डी० ए० वी० स्कूल के खिलाड़ियों का

गणवेश था लाल जर्सी और नीला निक्कर। पहले दोनों ओर के खिलाड़ियों ने पंक्तिबद्ध खड़े होकर माननीय मुख्य अतिथि को स्काउट-प्रणाम किया और उसके बाद वे खेल के मैदान में बिखर गए।

ठीक पाँच बजे निर्णायक (रेफ़री) की सीटी की आवाज पर दोनों ओर के कप्तान उपस्थित हो गए। निर्णायक ने दिशाओं का निर्णय करने के लिए टॉस किया, जिसमें डी० ए० वी० स्कूल जीता। दिशा-निर्णय होने पर दोनों ओर के खिलाड़ी यथास्थान खड़े हो गए। निर्णायक की दूसरी सीटी बजते ही दोनों स्कूलों के अग्रसरों ने परस्पर तीन बार हॉकी छुआकर खेल प्रारम्भ कर दिया।

खेल आरम्भ हुए पाँच मिनट भी व्यतीत नहीं हुए थे कि डी० ए० वी० स्कूल के खिलाड़ियों ने अकस्मात् गवर्नमेंट स्कूल पर एक गोल कर दिया। बस, विद्यार्थियों के क्षेत्र में हलचल मच गई। डी० ए० वी० स्कूल के विद्यार्थी लगे ताली बजाने। कुछ उछल-उछलकर अपने स्कूल की जय-जयकार कर रहे थे। गवर्नमेन्ट स्कूल वालों के चेहरे उदास हो गए, फिर भी वे खिलाड़ियों को प्रोत्साहित कर रहे थे।

गोल होने के बाद पुन: खेल शुरू हुआ तो गवर्नमेंट स्कूल के विद्यार्थी अधिक सतर्क और सक्रिय थे। उन्होंने गोल करने की बार-बार कोशिश की, किन्तु सफलता न मिली। इस भाग-दौड़ में निर्णायक की सीटी बज गई और मध्यावकाश हो गया।

मध्यावकाश का दृश्य दर्शनीय था। डी० ए० वी० स्कूल के विद्यार्थी अपने खिलाड़ियों को शाबाशी दे रहे थे और गवर्नमेंट स्कूल के विद्यार्थी अपने खिलाड़ियों को डाँट रहे थे, किन्तु उनके शिक्षक महोदय कह रहे थे—'घबराने की कोई बात नहीं। इस बार हिम्मत करोगे तो एक की क्या बात है, दो गोल कर दोगे।'

निर्णायक की सीटी के पश्चात् खेल पुनः आरम्भ हुआ। इस बार टीमों ने गोल की दिशा बदल ली थी। इस बार खेल में गवर्नमेंट स्कूल के खिलाड़ी गोल करने की जी तोड़ कोशिश कर रहे थे। सौभाग्य से एक बार गेंद डी० ए० वी० स्कूल के गोल की सीमा तक पहुँच भी गई। एक खिलाड़ी ने बड़ी शान से हिट जमा दी, किन्तु गोलकीपर की चतुराई से गेंद गोल के अन्दर न

खेलों में भारत के स्तर को उन्नत करने के उपाय

(दिल्ली १९७६ : 'ए')

खेलो की दृष्टि से विश्व मे अपनी स्थिति आंकने का मापदण्ड है 'ओलम्पिक खेल' एव एशिया-वासियो के लिए एशिया मे अपनी स्थिति जाँचने का अवसर प्रदान करते है 'एशियाड'। चार-चार वर्ष के अन्तराल में खेले जाने वाली ये विश्व एवं एशिया प्रतियोगिताएं किसी राष्ट्र के खेलो मे प्रगति और प्रतिगति के दर्पण हैं।

सन् १९८० के 'मास्को ओलम्पिक' मे भारत की स्थिति दयनीय रही। ४५० पदकों में से भारत केवल एक स्वर्ण पदक (हॉकी) जीत सका था। हॉकी की विजय को विश्व के पत्रकारों ने एक स्वर से तकदीर की विजय माना था, तकनीक की नहीं। क्योंकि विश्व प्रसिद्ध हॉकी टीमों ने तो इस ओलम्पिक में भाग ही नहीं लिया था।

सन् १९८२ के 'एशियाड खेल' भारत मे ही हुए थे। इसमे भारत ने १३ स्वर्ण, १९ रजत तथा २५ कास्य पदक बटोरे। तुलनात्मक दृष्टि से प्रथम एशियाड में भारत ने १५ स्वर्ण पदक जीते थे। नवम एशियाड तक पहुँचते-पहुँचते वे १३ रह गए। १९७८ के अष्टम एशियाड में भारत ने एथेलेटिक्स में ८ स्वर्ण पदक जीते थे, जो चार वर्ष पश्चात् घटकर चार रह गए। १९८० के विश्व हॉकी चैम्पियन भारत को १९८२ के एशियाड में 'रजत-मुकुट' धारण कर अपमानजनक तथा लज्जास्पद स्थिति का सामना करना पड़ा था।

सन् १९८३ में भारत ने क्रिकेट मे 'विश्वकप' जीता। भारत हर्ष से फूला न समाया। वस्तुत. गर्व की बात थी भी। इसी वर्ष वेस्टइंडीज की टीम भारत में टेस्ट मैच खेलने आई। उसने हर मैच मे भारत की वह पिटाई की कि विश्वकप-विजेता भारत का सिर अपमान और लज्जा से बुरी तरह झुक गया।

खेलो मे भारत के गिरते स्तर और अपमानजनक स्थिति का कारण भारत

की राजनीति है। भारत की राजनीति खेल और खिलाड़ी, दोनों पर हावी है। इसलिए न तो खेलो की टेकनीक में सुधार हो पाता है और न ही प्रतियोगिताओ के लिए उत्तम खिलाड़ियों का चयन हो पाता है। अतः सर्वप्रथम, खेल-कूद को राजनीति से दूर रखना होगा। राजनीतिज्ञो की छाया से भी बचाना होगा।

खेलों का स्तर सुधारने के लिए धन की आवश्यकता है। भारत सरकार जितना कम धन खेल-कूद पर व्यय करती है, उतना कम ससार का कोई राष्ट्र नही करता। इस धन का प्रबन्ध चाहे सरकारी कोष से किया जाए या विदेशो की भाँति इसके लिए उद्योगपतियों की सहायता ली जाए। धन की कमी के कारण भारतीय खिलाडी अशिक्षा तथा कुपोषण का शिकार होता है। इससे खेल-कूद योग्यता पर दुष्प्रभाव पडता है। अत विशिष्ट खिलाडियो पर विशेष धन खर्च कर उनके स्वास्थ्य और शिक्षा के स्तर को ऊँचा उठाया जाना चाहिए।

खेलों मे विकसित और अधिकाधिक पदक बटोरने वाले राष्ट्रो से खेल के कलात्मक पहलू सीखकर नयी टेकनीक का विकास करना चाहिए। १६८० के ओलम्पिक मे स्पेन के जुआन अमात ने पैनेल्टी कार्नर को गोल मे बदलने का जो करिश्मा दिखाया, उसके सामने भारतीय खिलाडी बहुत पीछे रहे। एशियाड-८२ मे तो पाकिस्तान के मुकाबले पूरी भारतीय हॉकी टीम 'नर्वस' थी।

प्रशिक्षण, अभ्यास और तालमेल खेलो की जान है। अत देश मे आधुनिक क्रीडा-शालाओ की बहुत आवश्यकता है। नागरिक-शिक्षा-सम्बन्धी महाविद्यालयों का जाल बिछाने की जरूरत है। खेल के मैदान, इनडोर व आउटडोर स्टेडियम, जिम्नेशिया व तरणतालो के अतिरिक्त हॉकी जैसे खेलों के कृतिम मैदान की बहुत आवश्यकता है। खेल की आधुनिकतम टेकनीक के लिए खेलो के सही उपकरण जुटाने होंगे। यद्यपि दिल्ली के स्टेडियम आधुनिक उपकरणो से सम्पन्न हैं, किन्तु ये अपर्याप्त है। बार-बार खिलाडियो को दिल्ली बुलाना खर्चीला तो है ही, अव्यावहारिक भी है। तीसरे, खेल निरन्तर अभ्यास चाहते हैं। कभी-कभी अभ्यास से यह कुशलता नही आ सकती।

खेलों का आधार प्रेरणा है। उत्साह और उमग खेलो के प्राण हैं। प्रेरणा, उत्साह और उमंग का वातावरण बनाए रखने के लिए बहुसख्या मे पुरस्कार-योजनाएँ रखनी चाहिएं। विश्व के अनेक राष्ट्र उत्साहवर्धन के लिए पुरस्कार, पदक और अलकरण प्रदान करते रहते है। भारत मे सर्वश्रेष्ठ खिलाडियो को

अर्जुन पुरस्कार दिया जाता है, पर कितने खिलाड़ियो को ? प्रतिवर्ष १५-२० खिलाड़ियो को। यह सख्या बहुत कम है, इसे बढ़ाकर शतक तक पहुँचा देना चाहिए। पुरस्कार की कल्पनामात्र से खिलाडी कड़े परिश्रम में जुट जाएँगे।

विकसित राष्ट्र कुछ विशेष खेलो पर अपना ध्यान केन्द्रित करते हैं, जबकि भारत मे प्रत्येक खेल को अपनाने की चेष्टा रहती है, भले ही भारतीय खिलाड़ियो मे उस खेल मे शामिल हो सकने की क्षमता-योग्यता हो या न हो। 'Knowledge of all games but master of none' की स्थिति समाप्त करके हमे कुछ चुने हुए खेलो मे कलात्मक प्रदर्शन की तैयारी करनी चाहिए। एथलेटिक्स और हॉकी पर अधिक ध्यान दे, तो इन दोनों खेलों मे भारत विश्व-चैम्पियन बन सकता है।

खेलो को शिक्षा का अनिवार्य विषय बनाया जाए। प्रारम्भिक स्तर पर खेल-कूद की दिलचस्पी आगे चलकर प्रतिभावान खिलाड़ी तैयार करने मे सहायक होगी।

इन सबके अतिरिक्त दुर्घटनाग्रस्त और वृद्ध खिलाड़ियों के लिए आर्थिक सहायता का प्रावधान होना चाहिए, ताकि प्रतिभावान खिलाड़ी साहस से जूझते और अपूर्व कौशल दिखाते समय जीवन की बाजी लगाने मे हिचकिचाएँ नहीं। भविष्य की दुश्चिता से मुक्त खिलाड़ी पूरी लगन से खेलों मे तल्लीन रह सकेगा।

अमरीका सहित यूरोप के लगभग सभी राष्ट्रो मे बड़ी-बड़ी खेल प्रतियोगिताओ का आयोजन सरकार नही करती। ये सभी आयोजन निजी औद्योगिक कम्पनियाँ करती है और तो और, टैस्ट मैचों की आयोजन-व्यवस्था तक निजी कम्पनियाँ सँभालती हैं। यदि भारत सरकार भी इस परिपाटी का प्रारम्भ कर दे, तो इससे तीन लाभ होंगे—(१) सरकारी अनुदान की राशि बच जाएगी, (२) खेलो मे राजनीतिक हस्तक्षेप बन्द हो जाएगा, (३) खेल-संस्थाओं और संघों की कलह और गुटबाजी समाप्त हो जाएगी। कारण, हर खेल-संघ का भविष्य उसके परिश्रम और सफलता पर निर्भर होगा—नेतागिरी के प्रभाव पर नही।

खेल-कूद शारीरिक एव मानसिक स्वास्थ्य को समृद्ध बनाने वाले साधन ही नहीं, अपितु अनुशासित जीवन एवं राष्ट्रीय उत्थान के महत्त्वपूर्ण अंग भी हैं। इसमे नागरिको में सयम, आत्मबल तथा टीम-स्पिरिट का विकास होता है। अत. खेल-कूद के लिए सुव्यवस्थित प्रशिक्षण, प्रगतिशील कलात्मक टेक्नीक तथा अद्यतन विकसित उपकरणों को जुटाने से ही विश्व के खेलों मे भारत का स्तर ऊँचा उठ सकेगा।

चाँदनी रात का वर्णन

वैज्ञानिक सिद्धान्तों के अनुसार पृथ्वी सूर्य के चहुँ ओर चक्कर लगाती है। संसार का जो भाग सूर्य के सम्मुख होगा, वहाँ दिन होगा, जिसकी पीठ सूर्य की ओर होगी, वहाँ रात होगी। यह निरन्तर चलने वाला चक्र पृथ्वी पर दिन और रात की सृष्टि करता है।

चन्द्रमा का उदय और अस्त भी नियमबद्ध है। वह पृथ्वी का एक मास में चक्कर पूर्ण करता है। उदय और अस्त भी शनैः शनैः होता है। न एकदम अमावस होती है, न एकदम पूर्णिमा।

चाँदनी रात—पूर्णिमा की रात्रि—कितनी सुहावनी होती है। चारों ओर चन्द्र-किरणों की उज्ज्वल और शीतल ज्योत्स्ना का साम्राज्य। जल-स्थल, अवनि-अम्बर सर्वत्र चन्द्र-किरणों की क्रीड़ा।

चारु चन्द्र की चंचल किरणें, खेल रही है जल-थल में।
स्वच्छ चाँदनी बिछी हुई है, अवनि और अम्बर-तल में।।

सम्पूर्ण जगत् रजत-कांति से आलोकित हो रहा है। गगन-मण्डल में भी शुभ्रता छाई हुई है। तारों की जगमगाहट उस शुभ्र ज्योत्स्ना में लुप्त-सी हो गई है। चाँदनी का यह विस्तार क्षीरसागर जैसा प्रतीत हो रहा है और उसके मध्य विराजमान चन्द्र एक खिले हुए श्वेत कमल के समान दिखाई दे रहा है। श्री जानकीवल्लभ शास्त्री के शब्दों में—

नयन-मन-उन्मादिनी
आज निकली चाँदनी
आज केवल शून्य नीचे शून्य ऊपर,
स्वर्ग की सम्पूर्ण सुषमा आज भू पर,
सब कहाँ, है आज दो-चार तारे,
हेर वसुधा के हृदय का हार, हारे।

उमडता ज्यों क्षीर-सागर फेन-निर्मल।
चाँद उसमें है खिला ज्यों शुभ्र शतदल॥

संस्कृत के महाकवि कालिदास चाँदनी-रात का वर्णन करते हुए लिखते हैं, चन्द्रमा ने अपनी किरणों से तिमिर का अन्त कर दिया है। रजनी जैसे तिमिर रूपी दैत्य के पंजों से छूट आई है। अब चन्द्रमा चुपचाप भली प्रकार अपनी अंगुलियों से रजनी के केश-कलाप को हटाकर उसे सहलाता-सँभालता हुआ चूम रहा है। केशों के नयनों पर से हट जाने पर दिशा का स्वच्छ मुँह उद्भासित हो गया है।

नद-नदियों, सर-सरोवरों, झरनों और समुद्र के जल में चाँदनी-रात का दृश्य अत्यन्त विलक्षण और आकर्षक होता है। जल की स्वच्छ नीलिमा से चन्द्रमा की परछाईं हिलोरें ले रही हैं। तट पर खड़े वृक्षों पर चन्द्रमा की चाँदनी की छटा अत्यन्त शोभायमान है। उपवन में विकसित फूल अपनी सुगन्धि से वातावरण को अत्यधिक मादक बना देते हैं।

जरा चाँदनी-रात का आनन्द ताजमहल के परिसर में भी लीजिए। शुभ्र संगमरमर से निर्मित यह भव्य-भवन उज्ज्वल चाँदनी में जगमग-जगमग करता हुआ बहुत ही सुन्दर लगता है। शरत्-पूर्णिमा की रात्रि में इस भवन की भव्यता को देखने के लिए देश-विदेश से सहस्रों व्यक्ति प्रतिवर्ष आगरा आते हैं।

चाँदनी-रात में नौका-विहार करना अत्यन्त आनन्दप्रद होता है। नदी-तट का शान्त और शीतल वातावरण मन में आह्लाद उत्पन्न करता है। रेतीले तटों के मध्य बहती हुई नदी की धारा तन्वंगी सुन्दरी जैसी प्रतीत होती है। जब नौका धारा के मध्य थिरकने लगती है, तब पानी में प्रतिबिम्बित तट दुगुने ऊँचे दिखाई देते हैं। जल में प्रतिबिम्बित होते हुए तारों को देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानो वे (तारे) पानी के अन्दर कुछ ढूँढ़ रहे हैं। हिन्दी के लोकप्रिय कवि श्री सुमित्रानन्दन पन्त ने अपनी 'नौका-विहार' कविता में इस दृश्य का सुन्दर चित्र प्रस्तुत करते हुए लिखा है—

शान्त, स्निग्ध ज्योत्स्ना उज्ज्वल !
अपलक अनन्त, नीरव भूतल !
× ×
सैकत-शय्या पर दुग्ध-धवल, तन्वंगी गंगा, ग्रीष्म-विरल

लेटी है श्रान्त क्लान्त, निश्चल !

×

निश्चल जल के शुचि दर्पण पर बिम्बित हो रजत-पुलिन निर्भर,
दुहरे ऊँचे लगते क्षण भर !

शरत्-पूर्णिमा की रात्रि को चन्द्र-किरणों में अमृत प्रवाह-मानकर ही खीर पकाकर चन्द्र-किरणों के लिए रखी जाती है तथा रोगों से मुक्ति प्राप्त करने के विचार से वह खीर खाई जाती है। इतना ही नहीं, इस दिन चन्द्र-किरणों के दर्शन-मात्र से संजीवनी शक्ति मानव को प्राप्त होती है, ऐसा विश्वास किया जाता है।

चाँदनी-रात सर्वत्र सुखद हो, सर्वप्रिय हो और प्राणी-मात्र के लिए मनभावन हो, ऐसी बात नहीं। चौर्य-कर्मी चाँदनी-रात को अपना शत्रु मानते हैं, जिसके अस्तित्व में वे अपने कर्म की सफलता में सन्देह अनुभव करते हैं। इसी प्रकार विरह-वेदना से पीड़ित नायिका को चाँदनी-रात और भी विह्वल और सन्तप्त करती है। अतः वह उपालम्भ भरे स्वर में चन्द्रमा से कहती है—

तू तो निसाकर सब ही कि निसा करै,
मेरी जो न निसा करै, तो तू निसाकर काहे को ?

ताप का हरण करने वाली, सहृदयों के हृदय को प्रफुल्लित करने वाली, शुभ्र ज्योत्स्ना से जगमगाती हुई रात्रि का वर्णन जितना भी किया जाए, कम है। चाँदनी को लक्ष्य करके कविवर पन्त ने ठीक ही कहा है—

वह है, वह नहीं अनिर्वच, जग उसमें, वह जग में लय।
साकार चेतना-सी वह, जिसमें अचेत जीवाशय ॥



चाँदनी-रात में नौका-विहार

(दिल्ली १६७६ : 'ए')

जो आनन्द प्रेमी-प्रेयसी की क्रीडा में आता है, जो मजा नवदम्पती की चुहुल-बाजियों मे प्राप्त होता है, जो प्रसन्नता रुचि-अनुकूल पिक्चर देखने मे होती है, जो गुदगुदाहट विवाह के सीटनों (उपालम्भपूर्ण गालियों) को सुनकर होती है, न्यूनाधिक रूप मे वही आनन्द, मजा या प्रसन्नता चाँदनी-रात मे नौका-विहार मे आता है।

चांदनी-रात हो, नदी का जल मथर गति मे बह रहा हो, समवयस्क हम-जोलियों की टोली हो, गीत-संगीत का मूड हो, तालियों की लयबद्ध ताल हो, तो किसका हृदय बल्लियों नही उछलेगा ? कौन-हृदय-हीन उन मस्ती के क्षणों मे आनन्दित नही होना चाहेगा ?

शरत् पूर्णिमा का पर्व । चन्द्र-किरणों में अमृत का प्रवाह मानकर खीर पका-कर चन्द्र-किरणो के स्पर्श हेतु रखने का दिन। रात्रि में नदी-तट पर आनन्दोत्सव का त्यौहार ।

मित्रो की टोली निकल चली यमुना-तट के लिए। ८-१० मित्र हम-उमर, हमखयाल, किन्तु कोई ताड की तरह आकाश को छूता हुआ, तो कोई भगवान् वामन का अवतार, कोई अंग्रेजों की गोरी चमडी को चुनौती दे रहा है, तो कोई भगवान राम-कृष्ण का रूप प्रदर्शित कर रहा है। मोटर-साइकिल और स्कूटरों का काफिला समगति, सम भाव से दिल्ली की चौड़ी सड़कों पर रात की नीरवता को चीन्ता हुआ चला जा रहा है।

यमुना के तट पर चांदनी रात्रि मे कार, स्कूटर, मोटरसाइकिल और टैम्पो का जमघट। लोग यमुना तट पर खडे यमुना मे पड़ती क्षपाकर-किरणों को देख रहे हैं। सुदूर पुल पर जलते हुए विद्युत् बल्बो के प्रतिबिम्ब से सुशोभित जल की छटा को निहार रहे है। हिलोरें लेती जल-राशि मे चन्द किरणों और बल्बों का बिम्ब अत्यन्त शोभायमान लग रहा है। थिरक-थिरक कर नृत्य करने वाली तरंग-

मालाओं से पवन अठखेलियाँ कर रहा है।

नाविक सीधे मुंह बात नही करते। 'डिमांड ऐन्ड सप्लाई' का युग है। नौकाएँ कम और सैलानी अधिक। पाँच के पचास माँग लें, तो कोई अनर्थ नही। बीस मे सौदा हो जाए, तो सस्ते छूटे। मित्रों की टोली चढ गई नाव पर। जब आनन्द लेना है तो ब्लैक के टिकट खरीदने में दोष, दुःख या क्रोध क्यो? फिर आनन्द ऐसा इत्र है, जिसे जितना अधिक दूसरो पर छिडकेंगे, उतना ही सुगन्ध अपने अन्दर समाएगी।

हमारी नौका का लंगर खुला। पक्षी पिंजरे से छूटा। नाविक ने जल पर चप्पू का प्रहार किया। नौका नृत्य की प्रथम भगिमा में आकर डगमगाने लगी, जल-राशि पर थिरकने लगी। यात्रियो ने जयकारा लगाया 'यमुना मैया की जय।'

तरणी बीच धारा में पहुँची, तो चारो ओर असीम अनन्त चन्द्रिका का विस्तार दिखाई देता था। जहाँ तक दृष्टि जाती थी, शुभ्र चन्द्रिका का ही प्रसार दिखाई देता था। नील गगन निष्पलक नेत्रों से धरती को निहार रहा था। नौका चप्पू के रूप मे अपने हाथ फैला-फैला कर, चमकीली फेन रूपी मोतियो के गुच्छे भर-भर कर लुटा रही थी।

इस मादक दृश्य ने सबके हृदय को आह्लादित कर दिया। एक गायक मित्र मचल उठा और उसके कोमल कंठ से मधुर गीत-ध्वनि वह निकली—'सत्यं शिवम् सुन्दरम्'। गीत की लय के चढाव-उतार के साथ-साथ मित्र ताली बजाकर रस उत्पन्न कर रहे थे। इसी बीच दूसरे मित्र ने खड़े होकर नशे का अभिनय करते हुए झूम कर चुनौती दी 'प्यार किया तो डरना क्या?' गाने के बीच में गायक मित्र की हिचकियाँ अनारकली को भी मात दे रही थी। तभी मीनाकुमारी की याद ताजा करते हुए कव्वाली मुखरित हो उठी, 'इन्ही लोगो ने छीना दुपट्टा मेरा।'

यमुना का दूसरा तट आ पहुँचा, नाव एक क्षण रुकी। नाविक ने पूछा उतरोगे? मित्र ने हाथ जोड़कर प्रार्थना की, 'चल मेरे भाई! तेरे हाथ जोड़ता हूँ। हाथ जोड़ता हूँ, तेरे पाँव पड़ता हूँ।' सभी ठहाका मार कर हँस पड़े।

नौका को वापिस लौटाने के लिए नाविक ने पतवारो को घुमाया। सरिता का प्रवाह कम था। जल-राशि का कोश थोड़ा था। चप्पू जल-तल को स्पर्श

कर रहे थे। नाविक जोर लगा रहा था।

तभी आवाज आई, 'खीर' ! खीर की बाल्टी सामने आई। विश्वास था कि सुधाकर अमृतवर्षा कर चुके होंगे। काल्पनिक आनन्द में खीर स्वादिष्ट लगी। थोड़ी छीना-झपटी, थोड़ी चोरा-चोरी और अपना चमचा दूसरे के मुख मे देना आदि से वातावरण अत्यन्त मधुर बन गया।

अकस्मात् जल-धारा का वेग थोड़ा तीव्र हो गया। लहरें थोड़ी उछलने लगीं। यमुना का कल-कल निनाद कुछ भयकर होने लगा।

नौका मध्य-धारा मे थिरकने लगी, तो पानी में प्रतिबिम्बित तट दुगुने ऊँचे लगने लगे। जल मे तारों का प्रतिबिम्ब देखकर लगा कि तारे अनन्त जल-राशि मे मुक्तामणि ढूँढ़ रहे हैं। यमुना के वक्ष पर हिलोरें लेती लहरें तथा उन पर पड़ता चन्द्र-प्रकाश ऐसा प्रतीत होता था, मानों यमुना को चन्द्रमा ने हीरों का हार पहना दिया हो। चप्पू से उठने वाले पानी के बबूले बनते और फूटते देख कर लगता था मानों होली के छोटे-छोटे गुब्बारे फूल और फट रहे हों।

मस्ती भरा, उल्लासमय, रंगीन नौका-विहार क्षण-क्षण मे समाप्ति की ओर दौड़ रहा था। थका माँदा किसान, दिन भर फाइलों से मल्लयुद्ध करता लिपिक और सवारी ढोता पशु अपने घर की ओर जब चलता है, तो गति में स्वाभाविक तेजी आ जाती है। निर्जीव तरणी भी तट की ओर वेग से चल रही थी। चप्पू की आवाज कर्कशता मे बदल रही थी। नौका-विहार की उमंगें यात्रा-समाप्ति पर हृदय को दबोच रही थीं।

तरणी से उतर कर यमुना माता को प्रमाण किया। माता के मधुर स्नेह को पाकर कौन पुत्र विछोह पसन्द करेगा ? पैर मोटर-साइकिल और स्कूटरों को किक मार रहे थे, किन्तु हृदय मे माता के स्नेह की उमंगें किक मार रही थीं। मित्र-कंठ गा उठा—

जिन्दगी भर नही भूलेगी यह नौका-विहार की चाँदनी-रात !

प्रकृति का कूट परिहास बाढ़ (जल-प्रलय)

बाढ़ अर्थात् जल-प्रलय, जल का विनाशकारी रूप। अतिवृष्टि के कारण पृथ्वी के जल सोखने की शक्ति जब समाप्त हो जाती है, तो उसकी परिणति बाढ़ में होती है। नदी-नाले, जलाशय, सरोवरों का जल अपने तट-बन्धनों को तोड़ बस्तियों की गलियों, कूचों, सड़कों, खेत-खलिहानों में पहुँचने लगता है। पानी की निकासी के अभाव में जल इकट्ठा होने लगता है।

बाढ़ भयकरता का सूचक है, बाढ़ का दृश्य वीभत्स होता है, कारुणिक होता है, भयप्रद होता है। विनाशकारी जल-प्रलय मनुष्य की चिरसंचित और अर्जित जीवनोपयोगी सामग्री को नष्ट कर देता है। खेती और खेत को बरबाद कर देता है। आवागमन को अवरुद्ध कर देता है। सड़कों को तोड़ देता है। विद्युत्, पेय जल और दूर-संचार व्यवस्था (टैलीफोन आदि) को नष्ट-भ्रष्ट कर देता है। अंधेरा तथा पीने के जल का अभाव मन-मस्तिष्क को झकझोर देता है। पशु-धन को बहा ले जाता है। मकान टूटकर गिर जाते हैं। बेसहारा प्राणी प्रभु का स्मरण करते हुए 'त्राहि-माम्' चिल्लाते हैं।

८-१० फुट तक घरों में घुसा पानी निकलने का नाम ही नहीं लेता। खाद्य-पदार्थों, बिछाने, ओढ़ने और पहनने के कपड़ों, अध्ययन की पुस्तकों, अलंकारों, आभूषणों को नष्ट कर देता है। निरीह मानव पेय-जल, भोजन, वस्त्र आदि के अभाव और अग्नि की असुविधा से पीड़ित सहायता की खोज करता है।

बच्चों के लिए दूध नहीं; आग के लिए ईंधन-दियासलाई नहीं। पीने के लिए स्वच्छ जल नहीं। ऊपर से भूख और प्यास और नीचे ८-८, १०-१० फुट पानी, हृदय-विदारक दृश्य कल्पनातीत है।

सुखी और शान्त जीवन प्रकृति के प्रकोप से शरणार्थी बन जाता है।

वे सब डूबे डूबा, उनका विभव,
बन गया पारावार।
उमड़ रहा है देव-सुखो पर दुःख-
जलधि का नाद अपार ।। (कामायनी)

दूर-दूर तक जल-ही-जल दिखाई देता है। मक्खी-मच्छरो का साम्राज्य जल पर क्रीडा कर रहा होता है। बिजली के स्तम्भ और सड़क के किनारे खड़े वृक्ष नत-मस्तक होकर जल-प्रलय के सम्मुख आत्म-समर्पण करते दिखाई देते हैं। यातायात के माध्यम कार, बस, ट्रक बाढ़ के सम्मुख आने मे भी कतराते हैं, टक्कर लेना तो दूर की बात है।

महाभारत के शान्ति पर्व मे वेदव्यास जी ने लिखा है—'विपत्ति आ पडने पर जीवन-रक्षा के लिए बलवान् व्यक्ति को अपने समीपवर्ती शत्रु से भी मेल कर लेना चाहिए।' बाढ की विपत्ति मे विचित्र मेल और सद्भावना दिखाई देती है। एक ही पेड पर जल से भयभीत साँप और मानव दोनों स्थित है। परस्पर शत्रु पडौसी बाढ की चपेट मे एक-दूसरे के सहयोग को आतुर हैं।

विपत्ति कभी अकेले नही आती। जल-प्रलय की हानि समष्टिगत विनाश ही नही, व्याधि की जड़ भी है। जल से मच्छर उत्पन्न होते हैं। मच्छर मलेरिया फैलाते है। दूषित जल पीने से हैजा आदि बीमारियां फैलती हैं।

ऐसे दयनीय समय मे भी समाज-विरोधी तत्त्व अपने कुकृत्य से बाज नही आते। ट्रकों की ट्यूब की नौका बनाकर ये लोगों को दूध और दियासलाई, रोटी और सब्जी तो पहुँचाते हैं, किन्तु अनाप-शनाप पैसे वसूल करते है। दूसरी ओर, बाढ-प्रभावित क्षेत्र आस-पास तथा जहाँ निराश्रित बाढ-पीडित लोग शिविर डाले होते हैं, वहाँ दैनन्दिन जीवनोपयोगी सामग्री महँगी कर देते है। तीसरी ओर, पानी मे डूबे मकानों मे घुसकर वे चोरी करते हैं। प्रकृति की मार पर उनका यह दुष्कृत्य कोढ में खाज का काम करता है।

भारतीय दर्शन के मतानुसार पृथ्वी पर पाप के भार को कम करने के लिए प्रकृति दण्ड देती है। जल-प्लावन भारतीय इतिहास मे एक ऐसी ही प्राचीन घटना है जिसने मनु को देवो से विलक्षण, मानव की एक भिन्न संस्कृति प्रतिष्ठित करने का अवसर दिया। ऐश्वर्य और विलास मे मदान्ध देवो को शापित करने के लिए जल-प्रलय हुआ था।

कहते हैं दिल्ली में १९७८ की बाढ़ ने १०० वर्ष पुराना रिकार्ड तोड़ दिया था। क्या १९४७ के भारत-विभाजन में भारतवर्ष की धन-जन हानि और अपार राष्ट्रीय क्षति से भारत-भू के पापों का प्रक्षालन नहीं हुआ था, जो १९७८ में भारत को इतने भयंकर प्रकृति-प्रकोप से ग्रस्त होना पड़ा ?



किसी प्राकृतिक दृश्य का वर्णन

(ऑल इंडिया १६८० : 'बी')

प्रकृति परमात्मा का अनुपम कृति है। प्रकृति का पल-पल परिवर्तित रूप उल्लासमय है, हृदयाकर्षक है। वह मुस्कराती रहती है, तो सर्वस्व लुटाकर भी हँसती है। सूर्योदय से पूर्व एवं सूर्योदय तथा सूर्यास्त के समय की छटा कितनी अनुपम होती है। इन मनोमुग्धमारी दृश्यो को देखकर कौन आत्मविभोर नही होगा ?

ऋतु-परिवर्तन प्रकृति की विभिन्न दृश्यावलियाँ हैं, एक-एक ऋतु का एक-एक दृश्य आनन्दमय होता है। एक-एक दृश्य का सजीव वर्णन कवियों और साहित्यकारों की आत्म-विस्मृति का परिचायक है।

प्रकृति का एक रूप नद-महानद है। जल की विपुल राशि समुद्र है। गंगा, यमुना, सरस्वती, कावेरी का वर्णन करते हुए कवि महाकवि बन गए, लेखक महालेखक बन गए। उनकी वाणी अवरुद्ध हो गई, कलम की शक्ति क्षीण हो गई, पर प्रकृति पुनः मुस्कराकर आह्वान कर उठी। पराजित महाकवि प्रसाद कह उठे, 'प्रकृति-सौन्दर्य ईश्वरीय रचना का एक समूह है अथवा उस बड़े शिल्पकार का एक छोटा-सा नमूना या उसको अद्भुत रस की जन्मदातृ कहना चाहिए। इसका सम्पूर्ण रूप से वर्णन करना तो मानो ईश्वर के गुण की समालोचना करना है।'

आइए, आपको दिखाएँ प्रकृति का एक करिश्मा, पल-पल रंग बदलती प्रवृत्ति-नटी का रूप। ऐसा प्राकृतिक दृश्य जिसे देखने विश्व के सुदूर देशों से लोग आकर अपने को धन्य समझते हैं। वह है कन्याकुमारी के सूर्यास्त का दृश्य।

भारत-भू के सुदूर दक्षिण छोर पर है कन्याकुमारी। अरब सागर, हिन्द महासागर और बंगाल की खाड़ी—इन तीनों के संगम-स्थल की उस चट्टान पर, जिस पर स्वामी विवेकानन्द ने समाधि लगाई थी, आज पवित्र मन्दिर अवस्थित

है और दूर-दूर तक फैली है काली चट्टानें। इन चट्टानों पर खड़ा होकर देखने पर सूर्यास्त के दृश्य का आनन्द बहुत ही अद्‌भुत और रोमांचकारी होता है। सामने अपार सागर लहराता दिखाई देता है और पीछे कन्याकुमारी के मन्दिर का दृश्य। चट्टानों की पंक्ति काफी दूर तक फैली हुई है। आखिरी चट्टान से सूर्यास्त का दृश्य खुले रूप में दिखाई देता है।

पश्चिमी क्षितिज पर धीरे-धीरे नीचे की ओर उतरता हुआ सूर्य स्पष्ट दिखाई देता है। दूर-दूर से आए हुए यात्रियों के झुंड-के-झुंड इस दृश्य को देखने के लिए चट्टानों पर चढ़ते हैं। आखिरी चट्टान तक कम ही लोग पहुँच पाते हैं। यात्रियों में तरह-तरह के लोग होते हैं। इनकी विविधता भी अपने-आप में कम रोचक नहीं होती।

आखिरी चट्टान तक पहुँचने पर पश्चिमी क्षितिज का खुला विस्तार दिखाई देता है। वहाँ से दूर तक रेत की एक लम्बी ढलान दिखाई देती है, जिसे देख कर ऐसा प्रतीत होता है मानो समुद्र तक उतरने के लिए मार्ग तैयार किया गया हो। पीछे दाँई ओर नारियलों के झुरमुट दिखाई देते हैं। उधर पश्चिमी तट के साथ सूखी पहाड़ियों की एक लम्बी शृंखला दिखाई देती है।

सूर्य के गोले ने पानी के स्तर को स्पर्श किया। स्पर्श मात्र से पानी का रंग पीला हो गया। दृश्य देखकर लगा कि जल पर स्वर्ण गिरकर बिखर गया है। गोले के डूबने की क्रिया प्रारम्भ होने और डूबने के क्षणों में जल का रंग प्रतिपल प्रतिक्षण इस प्रकार परिवर्तित होता है कि आँखें अपलक देख तो पाती हैं, परन्तु मस्तिष्क उतनी तेजी से उन रंगों को पकड़ नहीं पाता। सूर्य के गोले की समुद्र में पूर्ण जल-समाधि के समय जल रक्तवर्ण हो जाता है, मानो रक्त की धारा बह रही हो। रक्त की धारा भी चिरस्थायी न रही। कुछ क्षण बीते होंगे कि वह बैंजनी रंग में बदल गई और अन्त में जल काला हो गया।

समुद्र-जल में डूबते समय सूर्य की रंग बदलती रंगीनी दर्शकों को मन्त्रमुग्ध कर लेती है।

प्रकृति का एक रूप देखा। साथ ही समुद्र-तट की रेत को भी देख लीजिए। प्रसिद्ध कथाकार मोहन राकेश इस दृश्यावली का वर्णन करते हुए लिखते हैं—

"यूँ पहले भी समुद्र तट पर कई रंगों की रेत देखी थी। सुरमई, खाकी, पीली और लाल। मगर जैसे रंग उस रेत में थे, वैसे मैंने पहले कभी कहीं रेत

में नहीं देखे थे। कितने ही अनाम रंग थे वे, एक-एक इंच पर एक दूसरे से अलग—और एक-एक रंग कई-कई रंगों की झलक लिए हुए। काली घटा और घनी लाल आँधी को मिलाकर रेत के आकार में ढाल देने से रंगों के जितनी तरह के अलग-अलग सम्मिश्रण पाये जा सकते थे, वे सब वहाँ थे—और उनके अतिरिक्त भी बहुत-से रंग थे। मैंने कई अलग-अलग रंगो की रेत को हाथ में लेकर देखा और मसलकर नीचे गिर जाने दिया। जिन रंगों को हाथों से नही छू सका, उन्हे पैरों से मसल दिया। मन था कि किसी तरह हर रग की थोड़ी-थोड़ी रेत अपने पास रख लूं। पर उसका कोई उपाय नहीं था।'

कितनी विवशता है मानव की। 'प्राकृतिक सौन्दर्य को देख तो रहा है, किन्तु स्पर्श नही कर पा रहा।'

प्राकृतिक दृश्यों का सौन्दर्य अनन्त है, असीम है। फूलों की कोमलता और उनका सौरभ एक ही प्रकार का रहने से भी तो काम चल जाता है, फिर इतनी शिल्पकला, पंखुड़ियों की विभिन्नता, रंगों की सजावट क्यों? यह प्रकृति-नटी की विविधता और रंगीनी ही तो है।



प्रात:कालीन भ्रमण

'भ्रमण' शब्द का वाच्यार्थ है घूमना, इधर-उधर विचरण करना। देश-विदेश मे विचरण करना—भ्रमण करना— ज्ञान-वृद्धि का प्रमुख साधन है। इसके बिना जीवन में पूर्णता नही आ सकती। प्रसिद्ध विचारक आगस्टाइन के शब्दों में "विश्व एक बडी पुस्तक है, जिसमें वे लोग, जो घर से बाहर नही जाते, सिर्फ एक पृष्ठ ही पढ़ पाते हैं।"

देश-विदेश के भ्रमण का सुअवसर यदा-कदा ही एव कतिपय लोगो को ही मिल पाता है। भ्रमण का एक और बहुत उपयोगी रूप है—और वह है प्रातः अथवा सायंकाल सैर करना। भ्रमण का यह रूप व्यायाम का एक रूप है। प्रातः कालीन भ्रमण सबसे सरल किन्तु सबसे अधिक उपयोगी व्यायाम है।

गर्मियो मे लगभग साढे चार-पांच बजे और सर्दियो मे पांच-छ: बजे का समय प्रातःकालीन सैर के लिए उपयुक्त है। बिस्तर छोड़ने मे थोड़ा कष्ट अनुभव होगा। गर्मियों की प्रात.कालीन हवा और उसके कारण आ रही प्यारी-प्यारी नीद का त्याग कीजिए। सर्दियो में रजाई का मोह छोडिए और चलिए प्रात.कालीन सैर को।

सैर आप कही भी कीजिए, मनाही नहीं है। फिर भी अच्छा है कि किसी पहाड़ी की ओर जाइए, जहाँ रमणीक प्रकृति आपके चित्त को प्रसन्न कर देगी। किसी बाग-बगीचे या खेत में जाइए, जहाँ के सुन्दर विकसित फूल आपकी आँखों को प्रिय लगेंगे और उन्हे तोड़ने के लिए आपका मन ललचाएगा।

किसी नदी-तट पर जाइए, जहाँ आपके शरीर को नई स्फूर्ति मिलेगी। यदि इन स्थानो तक जा सकने का सौभाग्य आपको प्राप्त न हो, तो ऐसी चौड़ी सडक पर सैर कीजिए, जिसके दोनों ओर नीम, जामुन या कोई दूसरे वृक्ष हो।

सैर को जाने से पूर्व ध्यान रखिए कि आप शौच से निवृत्त हो चुके है न। बिना निवृत्त हुए मत जाइए। मुँह पर ठण्डे पानी के छपके मारिए। बालो मे थोड़ा कंघी कर लीजिए। ऋतु अनुसार चुस्त वस्त्र पहनिए, किन्तु कम-से-कम।

चलिए सैर कीजिए । मील, दो मील, चार मील, जितनी सामर्थ्य हो । हाँ, बाग-बगीचे में कभी जूते पहनकर मत घूमिए ।

प्रातःकालीन सैर पर निकलते समय का वातावरण बहुत सुन्दर होता है । पक्षी अपने-अपने घोंसलों में फड़फड़ा रहे होते हैं । मंद-मंद सुगन्धित पवन चल रही होती है । रात्रि के चन्द्रमा और तारागण की ज्योति समाप्त-प्राय होती है । भगवान् भास्कर उदय होने की तैयारी शुरू कर रहे होते हैं । आकाश बड़ा स्वच्छ होता है । गली में पाँच-सात ही व्यक्ति फिरते नजर आते हैं । इस शान्त वातावरण को श्वान अपने बेसुरे स्वर में कभी-कभी भंग कर देता है ।

सैर कीजिए, किन्तु चींटी की चाल से नहीं, तेजी से चलिए । लम्बे-लम्बे कदम हों और उनके साथ बारी-बारी से आगे पीछे पूरे वेग में हिल रहे हों आपके हाथ । मुँह को खोलने का कष्ट न कीजिए । नाक से साँस लीजिए । लम्बे-लम्बे साँस अधिक लाभप्रद रहते हैं । एक बात भूल गया; बूढ़ों की तरह कमर को झुकाकर नहीं, सीना तानकर चलिए ।

रजाई के मोह और प्यारी-प्यारी नींद का त्याग और वह भी प्रातःकालीन सैर के लिए, बड़ा लाभप्रद होता है । आलस्य आपसे पराजित हो जाता है । सारे दिन शरीर में स्फूर्ति बनी रहती है । तेज चलने से शरीर के प्रत्येक अंग की कसरत होती है । रक्तनालियाँ खुलती हैं । स्वास्थ्य सुन्दर बनता है । चेहरे पर रौनक आती है । हरी-भरी घास पर पड़ी ओस-बिन्दुओं पर नंगे पाँव घूमने से आँखों की ज्योति बढ़ती है ।

आप सैर को चल रहे हैं, कोई मित्र मिला, हँसकर एक-दो मिनट गपशप हुई । हँसने से फेफड़ों को बल मिला । पड़ोसी मिला; नमस्ते हुई । बड़े बुजुर्ग मिले, चरण-स्पर्श किया; क्रीडा करते बच्चों की टोलियाँ मिलीं, हृदय गुदगुदा गया । एक साथ इतने लोगों के दर्शन प्रातःकाल में ! चित्त प्रसन्न हो गया ।

सैर से आप वापस आ रहे हैं । सूर्य ने अपनी प्रथम किरण पृथ्वी पर डाल दी है । ओह ! कितना सुन्दर दृश्य है । नीले आकाश में उदित होते लाल सूर्य को नमस्कार करने को मन चाहता है । मनुष्यों के साथ प्रकृति भी जग गई है । चहल-पहल नजर आती है । पक्षीगण चहचहा रहे हैं और हमारी सैर का आनन्द खराब करने को मार्ग में भंगी झाड़ू देने के लिए आ गया है और दिल्ली-परिवहन निगम की बसें भी धुआँ छोड़ती हुई दौड़ने लगी हैं ।

जहाँ फूल होते हैं, वहाँ काँटे भी होते हैं। आपकी सैर के मजे को जो किरकिरा करे, उससे बचने का प्रयत्न कीजिए। झाड़ू देते भंगी को अपना कर्त्तव्य-पालन करने दीजिए, बसों को अपनी जलन निकालने दीजिए। आप नाक पर रुमाल रखकर इनसे बच जाइए, मन खराब न कीजिए। मन खराब हुआ और सारी सैर का आनन्द लुप्त हुआ।

प्रातःकालीन सैर स्वास्थ्य-निर्माण करने का सर्वोत्तम उपाय है। यह सस्ता भी है, मीठा भी। जिसके लिए न डाक्टर को पैसे देने पडते है और न उसकी कडवी दवाइयों का सेवन करना पड़ता है। स्वास्थ्य के लिए प्रातःकालीन भ्रमण की उपयोगिता पर सुप्रसिद्ध कवि श्री आरसीप्रसादसिंह 'आरसी' का निम्नलिखित पद्य उल्लेखनीय है—

घूम रहा था मैदान में एक दिवस मैं प्रातःकाल।
तब तक फैला था न तरणि की अरुण-करुण किरणों का जाल।
प्रकृति-परी बोली मुस्काकर मुझसे अरे पथिक नादान।
जाते हो इस ओर कहाँ तुम नगे पैर और मुख-म्लान।
मैंने कहा यही पर मेरा स्वास्थ्य खो गया है अनजान।
करता हूँ मैं उसी का इस पथ मे सखि ! अनुसन्धान॥

कवि ने कितने सुन्दर ढंग से इस तथ्य को प्रकट किया है कि प्रात.-कालीन भ्रमण से मनुष्य किसी भी कारण खोए हुए स्वास्थ्य को पुनः प्राप्त कर सकता है।

आइए ! आज से प्रण करे कि हम प्रात.कालीन सैर अवश्य करेंगे, अवश्य करेंगे।

✲

नदी-तट का भ्रमण

(दिल्ली १९९४ : 'बी')

नदी-तट के भ्रमण मे मन प्रसन्न होता है, शरीर चुस्ती अनुभव करता है, नेत्र हरियाली का आनन्द उठाते हैं, और जल-क्रीड़ा को देखते हुए अतृप्त ही रहते हैं। थकने पर पानी मे पैर लटका कर बैठने से थकान दूर हो जाती है और फिर मन कहता है नदी-तट के भ्रमण का और आनन्द लूटें।

नदी-तट के वृक्षों, पौधो, क्यारियों की हरियाली के मध्य भ्रमण मानव और प्रकृति का सुन्दर समागम है। नगे पैर घूमना स्वास्थ्य के लिए हितकर है। इससे मस्तिष्क सम्बन्धी विकार दूर हो जाते हैं, मस्तिष्क सबल बनता है। चाल जरा तेज रखिए, फिर लूटिए आक्सीजन का आनन्द। उधर हरियाली सूर्य का स्वागत करने के लिए पाणि-पल्लव पसार रही हो, उन पर बैठे विहगवृन्द किल्लोल कर रहे हों, तो लगता है भ्रमणके साथ-साथ माँ सरस्वती की वीणा की झकार सुनाई पड रही है।

एक ओर नदी, दूसरी ओर हरियाली, तीसरी ओर धीमे-धीमे बहती शीतल पवन। शीतल, सुगन्धित पवन कभी वृक्षों से अठखेलियाँ करती और कभी लाज भरी कलिकाओं का घूंघट उठाकर हठात् उनका मुख झाँक जाती है। कभी-कभी शिथिल पत्रांक मे सुप्त कलिकाओ को झकझोरती है। यह पवन जब भ्रमण करते शरीर से टकराती है, तो हृदय वल्लियो उछलता है, मन आत्मानन्द की अनुभूति अनुभव करता है। जी चाहता है चाल धीमी करके धीमे बहती वायु का धीमे-धीमे आलिगन किया जाए, ताकि इससे श्वासोच्छ्वास क्रिया से रक्त शुद्ध हो, फेफड़ों को बल मिले, शरीर नीरोग हो, अजीर्णता का शिकार न बनें।

सूर्य उदय हो रहा है। बाल-रवि के प्रतिबिम्ब को पानी में लोट-पोट कर नहाता देखकर भ्रमण करने वाले रुक जाते हैं। जल पर बिखरी लाल-पीली किरणें ऐसी प्रतीत होती हैं मानो पानी में सोना बह रहा हो। दृश्य देखते मन नही भरता, निरन्तर आगे बढने की लालसा बनी रहती है।

नदी-तट पर भ्रमण हो रहा है। धोती-कुर्ता पहने दिल्ली के व्यापारी जोर-जोर से बहस करते घूम रहे हैं। बुड्ढों की टोली हँसी-मजाक करती शनैः-शनैः बढ़ रही है। नवयुवक-नवयुवतियों के झुड तेजी मे नदी-तट को पार कर जाना चाहते हैं। कुछ दौड़ लगाकर व्यायाम मे भ्रमण का आनन्द ले रहे है, तो कुछ लोग इतनी तेजी से चल रहे हैं, मानो किसी प्रिय को पकड़ने के लिए दौड लगा रहे हो।

यह लीजिए, बालकों की बन्दर-टोली चली आ रही है भ्रमणार्थ। बालक और सीधे चलें तो बन्दर इन्हे कौन कहे ? मचलना, शरारत करना, शोर मचाना, मार्ग को पूर्ण रूपेण घेर कर चलना इनकी आदत में शुमार है। नदी मे पत्थर फेंक दें, बड़े बुजुर्गो की टोली को चीर दे, किसी की नकल उतार दें, यह सब इनके लिए क्षम्य है। ये भ्रमण मे व्यायाम का सही आनन्द लेते है।

जरा सैर का शौक देखिए। ये बूढे-बुढिया ८०-८२ के लगभग होगे, पर छड़ी टेक-टेक कर मस्तानी चाल का मजा लूट रहे है। दूसरी ओर अधरग का मारा अधेड चींटी की चाल चल रहा है, पर मन मे उत्साह है, तन मे स्फूर्ति है। लीजिए, गृहणियाँ भी परदे से बाहर निकल आईं ठडी हवा का झोका लेने। पल्लू सिर से उतर गया है, तो कोई बात नही, केश-विन्यास शिथिल पड़ गया है, तो कोई चिन्ता नही। चिन्ता तो ये घर पर छोडकर मौज-मस्ती लेने तो आई हैं नदी-तट पर।

नदी-तट के भ्रमण मे भ्रमण का ही आनन्द लीजिए। भ्रमण मे सँपेरे, कंजड़, भगवां वस्त्रधारी साधु हाथ पसारे मिलेंगे। जटा-जूटधारी विभूति-अलंकृत 'शंकर बम भोला' के उद्घोषी आशीर्वचन की झडी लगाते हुए मिलेंगे। भारत की दरिद्रता के प्रतीक भिखमगे झोली पसारे दिखाई देंगे। आप मुँह न बनाइए, नाक न सिकोडिए। चुपचाप अनदेखी करके निकल जाइए। जहाँ इनके चक्कर मे पड़े, वही भ्रमण का आनन्द समाप्त हुआ।

नदी-तट का एक लाभ स्वतः आपको मिल जाएगा। नदी-तट के मंदिरो में जगत्-नियन्ता को मत्था टेककर पुण्य कमा लीजिए। कही 'ओम् जय जगदीश हरे' की आरती हो रही है, चाहे तो रुक कर मन की शांति ले लीजिए, अन्यथा भ्रमण करते-करते श्रवणेन्द्रिय को खुला रखिए। वाणी से खुद व खुद आरती के बोल निकलने लगेंगे। भ्रमण में मन की शांति और प्रसन्नचित आनन्द का लाभ।

नदी-तट का भ्रमण न केवल तन में स्फूर्ति भरता है, स्वस्थ रखता है, अपितु मन-मस्तिष्क को शान्त रखकर मनोबल बढ़ाता है। नदी-जल का नर्तन और तट के पेड़-पौधे अपनी मस्ती से सुगन्धित पवन द्वारा हृदय को शुद्ध रक्त प्रदान कर बलवान बनाते हैं। नदी-तट के पूजा-स्थल भ्रमणार्थी को परमपिता परमेश्वर का स्मरण करवा कर पावन कर्मों को करने का संदेश सुना जाते हैं। भ्रमणान्तर शीतल जल से स्नान मानव को तन, मन से स्वच्छ करके दैनन्दिन जीवन में जुटने का साहस प्रदान करता है।



वृक्षारोपण : एक आवश्यकता

(ऑल इंडिया १९८१ : 'बी', दिल्ली १९८४ : 'बी')

पृथ्वी को शोभायमान रखने के लिए, स्वास्थ्य-वृद्धि के लिए, वर्षा के निमंत्रण के लिए, विविध प्रकार के पर्यावरण के नाश के लिए, प्राणिमात्र के पोषण के लिए, मरुस्थल का विस्तार रोकने के लिए, उद्योगों की वृद्धि के लिए, राष्ट्र को अकाल से बचाने के लिए फल, लकड़ी, जड़ी-बूटी आदि की प्राप्ति के लिए वृक्षारोपण एक आवश्यकता है।

वृक्ष पृथ्वी की शोभा है, हरियाली का उद्गम है, स्वास्थ्य वृद्धि की बूटी है, वर्षा का निमंत्रण है, प्रकृति का रक्षक है, पर्यावरण का नाशक है, प्राणिमात्र का पोषक है। वृक्ष अपने पत्तों, फूल, फल, छाया, मूल, वल्कल, काष्ठ, गन्ध, दूध, भस्म, गुठली और कोमल अंकुर से प्राणि-मात्र को सुख पहुँचाता है।

अधिक वृक्षों से अधिक वर्षा होगी। वर्षा से पृथ्वी की उर्वरा शक्ति बढ़ेगी। खेती फले-फूलेगी। पृथ्वी पर हरियाली छाएगी। मरुस्थल फैलने से रुकेंगे। सर-सरोवर जल से लहलहा उठेंगे। प्राणि-मात्र का पोषण होगा।

नील गगन के नीचे पत्तियों में छिपी हुई लाल-लाल नारंगियाँ, पके हुए रसमय आम, सुस्वादु केले, गुलाबी सेब, अनूठे अखरोट, लाल-लाल लीचियाँ, अमरूद, बेर, अनार, सन्तरे-मौसमी, खट्टे-मीठे नीबू, लुकाट, ककड़ी, खरबूजा, पपीता, खीरा, तरबूज न जाने कितने फल इन वृक्षों से प्राप्त होते हैं। फल स्वास्थ्य की प्राकृतिक औषधि है। मानव-मात्र के लिए कल्याण-प्रद फल वृक्ष ही तो देते हैं। अतः वृक्षारोपण अत्यन्त आवश्यक है।

बाँस की लकड़ी और घास से कागज बनता है। खैर के पेड़ की लकड़ी से कत्था और तेन्दू वृक्ष के पत्तों से बीड़ी बनती है। लाख और चमड़ा भी वृक्षों से मिलता है, जो खिलौने बनाने और रंग में मिलाने के काम आता है। वृक्षों की छाल और पत्तियों से अनेक जड़ी-बूटियाँ मिलती हैं, जिनसे दवाइयाँ बनती हैं। नीलगिरि के वृक्षों से रबड़ मिलता है। इनकी उत्पादन-वृद्धि के लिए अधिक

वृक्ष उगाने की होड चाहिए।

ईंधन के लिए लकडी चाहिए। दरवाजे, खिड़कियाँ, अलमारी, मेज-कुर्सी, सोफा-सैट आदि सामान बनाने के लिए लकड़ी चाहिए। गुल्ली-डंडा, वैट, हॉकी आदि खेल-साधनों के लिए लकडी चाहिए। लकड़ी की प्राप्ति का माध्यम है वृक्ष। वृक्ष होंगे, तो लकड़ी होगी।

सडक के किनारे छायादार वृक्ष तो यात्रियों के प्राण हैं। इनकी छाया में चलने मे कष्ट नही होता। लू, धूप, शीत और वर्षा से रक्षा तो होती ही है, थकावट भी कम लगती है। पक्षियों का तो प्राणधार ही पेड़ है। पक्षी पेड़ों पर नीड-निर्माण करते हैं। उनके फल-पत्तियो से उदर-पूर्ति करते हैं। उन पर बैठ कर कलरव करते हुए मनोविनोद करते हैं।

वृक्ष जलवायु की विषमता को दूर करते हैं। जहाँ वृक्षाधिक्य होता है, वहाँ गर्मियों मे गर्मी कम लगती है और शीत ऋतु का ठड भी कम असर करती है।

वृक्ष पर्यावरण का नाशक है। पेट्रोलियम पदार्थों के प्रयोग से, ईंधन के जलने से, मिल-फैक्टरियो के कचरे और चिमनी के धुएँ से जो प्राणनाशक गंदी वायु उत्पन्न होती है, उसे वृक्ष भक्षण करते है। बदले मे प्राणप्रद वायु छोडते हैं। औद्योगिक उन्नति ने महानगरों मे पर्यावरण-सकट उत्पन्न कर दिया है, जिससे शुद्ध वायु तथा शुद्ध भोजन का अभाव उत्पन्न हो गया है। महानगरो मे साँस लेना भी कठिन होता जा रहा है। इस सकट के निवारण का एकमात्र उपाय है वृक्षारोपण।

पेड-पौधो के प्रति प्रेम की भावना हमारे देश के लोगो मे बहुत प्राचीन-काल से है। भारतवासी इन पेड-पौधों को लकड़ी का साधारण ठूँठ ही नही, बल्कि उन्हे देवता मानते आए है। आज भी हम शनिवार को पीपल की पूजा करते है। बरगद के पेड़ के नीचे भगवान् बुद्ध को ज्ञान प्राप्त हुआ था, इसलिए अक्षय वट की पूजा आज भी होती है। आमलकी एकादशी को आँवला पूजा जाता है। तुलसी की पूजा तो घर-घर मे होती है।

मत्स्य पुराण के अनुसार एक वृक्ष का आरोपण दस पुत्रों के के जन्म बराबर है। वराह पुराण के अनुसार, 'पंचाम्रवापी नरकं न याति'—आम के पाँच पौधे लगाने वाला कभी नरक जाता ही नही। विष्णु-धर्म-सूत्र के अनुसार, 'एक व्यक्ति द्वारा पालित-पोषित वृक्ष एक पुत्र के समान या उससे भी कहीं अधिक महत्त्व

रखता है। देवगण इसके पुष्पों से, यात्री इसकी छाया में बैठकर, मनुष्य इसके फल-फूल पाकर इसके प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हैं।' पद्म पुराण का कहना है, 'जो मनुष्य सड़क के किनारे वृक्ष लगाता है, वह स्वर्ग में उतने ही वर्षों तक सुख भोगता है, जितने वर्ष वह वृक्ष फलता-फूलता है। पुराणों के ये कथन पुण्य-प्राप्ति के लिए वृक्षों से प्रेम करना सिखाते हैं। हमें सद्-उपदेश देते हैं कि राष्ट्र को सुखी और सुन्दर बनाने के लिए अधिक-से-अधिक वृक्षारोपण करना चाहिए।

हिन्दुओं ने वृक्ष लगाने का एक बड़ा सुन्दर उपाय खोज निकाला था। जिस स्थान पर शव को जलाया जाता है, वहाँ पर चौथे दिन फूल चुनने के बाद चिता के चारों कोनों पर चार वृक्ष लगाने का विधान है, जो अब केवल चार टहनियाँ गाड़कर पूरा कर दिया जाता है। ३६० दिन तक इन वृक्षों को दूध और पानी से सींचने का भी विधान था, जो आज पीपल की जड़ में इकट्ठे ३६० लोटे पानी लुढ़काकर पूरा कर दिया जाता है। क्या ही अच्छा हो कि यह प्रथा फिर से ज्यों-की-त्यों लागू हो जाए, जिससे प्रतिमास लाखों की संख्या में वृक्षों की वृद्धि होने लगे।

केन्द्रीय सरकार ने पर्यावरण से परिरक्षण के लिए 'प्रकृति की रक्षार्थ' राष्ट्रीय समिति गठित की है। छठी योजना में प्राकृतिक संतुलन बनाए रखने पर विशेष बल दिया गया है। प्रकृति की रक्षा और प्राकृतिक सतुलन के लिए प्रत्येक विकास-खंड में प्रशिक्षित कर्मचारी नियुक्त किए जाएंगे, जो ग्रामीणों को न केवल वृक्षा-रोपण का महत्त्व समझाएंगे, बल्कि उन्हें उपयोगी वृक्षों की पौध भी उपलब्ध कराएंगे।

वर्तमान भारत में जबकि पर्यावरण का संकट बढ़ता जा रहा है, ओलावृष्टि और असमय वर्षा से फसल नष्ट हो रही है; अकाल की वेदी पर प्राणी अपने जीवन की आहुति दे रहे हैं, जनसंख्या की अंध-वृद्धि के कारण ईंधन, इमारती लकड़ी और खेल-कूद के सामान की माँग सुरसा के मुँह की तरह बढ़ रही है; बीमारियों पर विज्ञान की विजय के लिए जड़ी-बूटी, वृक्ष-चर्म और पत्र-पुष्प-फल की अत्यधिक आवश्यकता है; ज्ञान-प्रसार की दृष्टि से कागज की अत्यधिक माँग है, तब तेजी से वृक्षारोपण के अतिरिक्त अन्य कोई विकल्प नहीं।

❋

पर्वतारोहण का शौक

(दिल्ली १९७९ : 'ए')

पर्वतारोहण का शौक अत्यन्त साहसपूर्ण अभिरुचि है, जान-बूझकर मृत्यु-देवता से टक्कर लेने की प्रबल इच्छा है, प्रकृति की चुनौती को स्वीकार करने का अदम्य उत्साह है, जीवन और जगत् की खाई को पार करने की अनोखी धुन है, भयंकर तूफान से जूझने का व्यसन है।

हमारा शौक हमारे जीवन की परख है, हमारे व्यक्तित्व की पहचान है। डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन् को अध्ययन का शौक था, पंडित जवाहरलाल नेहरू को अचकन में गुलाब का फूल लगाने में रुचि थी, मोरारजी भाई देसाई को योग-आसन करने का शौक है और राजनीतिज्ञों को हवाई किले बनाने तथा झूठे आश्वासन देने का शौक होता है।

शौक की विचित्रता देखिए। जर्मनी के महान् कवि गेटे प्रातः भ्रमण करते थे। प्रातः भ्रमण के लिए प्रायः सड़क पर घूमते थे। घूमते हुए सड़क के दोनों ओर के मकान गिना करते थे। उनका यह क्रम प्रतिदिन चलता था।

अंग्रेजी के प्रसिद्ध लेखक चेस्टाटन को यात्रा करने का बड़ा शौक था। यात्रा के बड़े-बड़े प्लान बनाकर वह हफ्तों मित्रों से बहस करता था और जब यात्रा पर निकलता, तो कुछ घंटे स्टेशन पर गुजार कर बोरिया-बिस्तरे के साथ वापिस आ जाता था।

ब्रिटेन के प्रधानमन्त्री बैंजामिन डिजरायली को विरोधियों पर तीक्ष्ण कटाक्ष करने का शौक था। इस शौक के कारण उसने सुप्रसिद्ध बुजुर्ग पार्लियामेंटेरियन सर डेनियल ओकोनेल को भी नहीं बख्शा। ब्रिटेन की संसद् में भूचाल आ गया, किन्तु डिजरायली अर्ध मुस्कान के साथ चोट करता रहा।

शौक कभी छूटता नहीं, जब तक कोई विशेष हादसा न हो जाए। 'लागी लगन छूटत नहीं जीभ चोंच जरि जाए'। पर्वतारोहण का शौक अत्यन्त दुस्साहस-पूर्ण, बहुत मँहगा और सामूहिक एकता पर निर्भर है। इसमें व्यक्तिगत इच्छा-पूर्ति बिना साथियों के एक पग भी नहीं बढ़ा सकती। आधुनिक यन्त्र, साज-सामान,

लाव-लश्कर के बिना शौक पूरा करना क्षितिज के पार पहुँचने की कल्पना है।

पर्वतारोहण का अर्थ शिमला, मंसूरी, दार्जिलिंग या काश्मीर की पक्की सड़कों की चढ़ाई नहीं। पर्वतारोहण का अर्थ ऐसे पर्वतों पर चढ़ाई है, जहाँ विधिवत् मार्ग न हो, ऊँचे-ऊँचे पहाड़ मार्ग रोके खड़े हों, बर्फीली चोटियाँ पर्वतारोहण के शौक को चुनौती देती हों। जैसे एवरेस्ट का आरोहण अथवा नीलकंठ की चढ़ाई।

पर्वतारोहण का शौक पूरा करने के लिए वैज्ञानिक चाहिएँ, जो मौसम का अनुमान लगा सकें। भूगोलवेत्ता चाहिएँ, जो पहाड़ पर चढ़ने का मार्ग-दर्शन कर सकें। पर्वत पर हवा का दबाव कम हो जाता है। इसके लिए ऑक्सिजन गैस के सिलैंडर चाहिएँ। हवा, पानी और बर्फ में सुरक्षा के लिए विशिष्ट वस्त्र और जूते चाहिएँ। संदेश-प्रेषण का यंत्र चाहिए। भोजन रखने के डिब्बे चाहिएँ। भोजन पकाने के लिए चूल्हा और अकस्मात् अहित होने पर दवाई चाहिए। बर्फ काटने की कुल्हाड़ी, फावड़े और ऊपर चढ़ने के लिए रस्सी तथा खूटियाँ चाहिएँ। निवास और विश्राम के लिए तम्बू तथा पहाड़ के नक्शे चाहिएँ। इस सारे सामान को ढोने के लिए प्रशिक्षित कुली चाहिएँ। कम महत्त्व की वस्तुओं में कैमरा या फोटो-ग्राफर चाहिएँ।

इस शौक की पूर्ति के लिए कितना मानव-श्रम, कितना सामान-सामग्री और कितने प्रशिक्षण की आवश्यकता है, इसका अनुमान तो उक्त विवरण से लग गया, किन्तु उस पर कितना खर्च आएगा, यह कल्पनातीत है। हिसाब जोड़ें तो लाखों में पड़ता है। है न भारी खर्चीला शौक।

१८ मई, १९२१ से अब तक पर्वतारोहण का शौक पूरा करने में कितनों ने हिम-समाधि ली, कितने हिम में मार्ग-भ्रष्ट होकर सदा-सदा के लिए वहीं के हो गए, कितनों को तूफानी-बर्फीली हवाएँ उड़ाकर पर्वतारोहण का मजा चखा गई। देवात्मा हिमालय पूछ बैठा, 'क्या तुम भी पाण्डवों की भाँति आत्मसमर्पण करने आए हो ?'

पर्वतों में मार्ग ढूँढ़ना, बर्फ काट-काटकर मार्ग बनाना, बर्फ में कील गाड़ना, रस्से के सहारे ऊपर चढ़ना, बर्फीली हवाओं का सामना करना, स्थान-स्थान पर पड़ाव डालना, तम्बू गाड़ना, भोजन तैयार करना, विश्राम करना, रात्रि के भयंकर अंधकार की चुनौती स्वीकार करना, अकस्मात् हिम खंड गिरने पर सर्वनाश की कल्पना से भी विचलित न होना, तेज वर्षा और बर्फीली आंधी आने पर अपना, अपने साथियों तथा सामान का बचाव कर पाना बहुत जीवट का

काम है, आत्म-विश्वास सजोये रखने का धर्म है और मृत्यु की चुनौती का वीरता से प्रतिकार। कारण, बर्फ पर चढाई अत्यन्त जोखिम की चढाई होती है। उसमे कीलें गाडना और रस्सी बाँधना मौत को निमन्त्रण देना है।

पर्वतारोहण का शौक १८५७ मे अल्पाइन क्लब की स्थापना से आरम्भ हुआ। सन् १९०७ में इस क्लब की ओर से मिस्टर मऊ पहले पर्वतारोही चुने गए, किन्तु भारत-सरकार की अनुमति के अभाव मे यह प्रस्ताव स्थगित कर दिया गया। २८ मई, १९२१ को जरनल सर चार्ल्स ब्रूस के नेतृत्व में पर्वतारोहियों की पहली टोली हिमालय पर एवरेस्ट आरोहण के लिए गई। इस टोली ने चार मास मे हिमालय के कुछ रहस्यो का पता लगाया। इसके बाद तो विभिन्न राष्ट्र अपने-अपने ढग से हिमालय को पराजित करने के लिए आरोहण करने लगे। दस बार आरोहण-योजनाएँ असफल हुई। अततः २९ मई, १९५३ के दिन कर्नल हंट के नेतृत्व मे कर्नल हट और शेरपा तेनसिंह ने मध्याह्न साढे ग्यारह बजे एवरेस्ट पर मानव-पग रख दिए। बीस मिनिट तक एवरेस्ट-शिखर पर रहने वाले ये प्रथम पर्वतारोही थे।

इसी प्रकार नीलकठ शिखर के आरोहण का प्रारम्भ सन् १९१३ मे ब्रिटिश पर्वतारोही श्री मीड ने किया। उसके पश्चात् १९३७, ४७, ५१ मे पर्वतारोही योद्धाओ ने भगवान् शंकर के मस्तक को स्पर्श करने का दुस्साहस किया, किन्तु वे असफल रहे। सन् १९५९ मे पहला भारतीय पर्वतारोहण दल एअर वायस मार्शल एस० एन० गोयल के नेतृत्व मे गया। दूसरा दल सन् १९६१ मे गया। इसे हिमालय-पर्वतारोहण प्रशिक्षण-विद्यालय दार्जिलिंग ने सत्ताईस वर्षीय कप्तान नरेन्द्रकुमार के नेतृत्व मे भेजा था। अकस्मात् हिम-वर्षा हो गई। दल का साहस टूट गया, किन्तु श्री ओ० पी० शर्मा विचलित नहीं हुए और दो शेरपाओ के साथ मौत से खेलते हुए शेष ४४० फुट की चढाई चढ गए। पाँच बज चुके थे, अंधकार छा गया था, फिर भी उन्होंने नीलकठ भगवान् की पूजा की। तीनों वीरो ने नीलकंठ की चोटी पर खडे-खडे रात बिताई।

पर्वतारोहण का शौक अत्यन्त साहस, शौर्य तथा सहनशीलता का परिचायक है। बिना प्रशिक्षण यह शौक पूरा नहीं हो सकता। प्रशिक्षण के बाद भी बिना टीम-टोली के, बिना टीम-स्प्रिट के तथा बिना उपकरण और साधनो के यह शौक स्वप्न बनकर रह जाता है।



भारत का किसान

(दिल्ली १९८२ : ए')

'किसान' कठोर परिश्रम, त्याग और तपस्वी-जीवन का दूसरा नाम है। किसान का जीवन कर्मयोगी की भांति मिट्टी से रत्न उत्पन्न करने की साधना में लीन रहता है। वीतराग संन्यासी की भांति उसका जीवन परम संतोषी है। तपती धूप, कड़कती सर्दी और घनघोर वर्षा में तपस्वी की भांति वह अपनी साधना में अडिग रहता है। सभी ऋतुएं उसके सामने हंसती-खेलती निकल जाती हैं और वह उनका आनन्द लूटता है। यह उसके जीवन की विशेषता है।

सृष्टि का पालन विष्णु भगवान का कर्तव्य है। मानव समाज का पालन किसान का धर्म है। अतः किसान में हम भगवान विष्णु के दर्शन कर सकते हैं। प्राणिमात्र के जीवन को पालने वाले किसान का तपस्या-पूर्ण त्याग, अभिमान-रहित उदारता, क्लान्ति रहित परिश्रम उसके जीवन के अंग हैं। उसमें सुख की लालसा नहीं होती। कारण, दुःख उसका साथी है। संसार के प्रति अनभिज्ञता और अज्ञानता से उसमें आत्म-ग्लानि नहीं होती, न दरिद्रता में दीनता का भावबोध होता है। ये उसके जीवन के गुण हैं।

अहर्निश वह कर्म-रत है। ब्रह्म-मुहूर्त में उठता है। पुत्रसम बैलों को भोजन परोसता है, स्वयं हाथ-मुंह धो, कलेवा कर कर्मभूमि 'खेत' में पहुंच जाता है। उषा की किरणें उसका स्वागत करती हैं। दिन भर कठोर परिश्रम करेगा। स्नान-ध्यान, भजन-भोजन, विश्राम—सब कुछ कर्मभूमि पर ही करेगा। गोधूलि के समय अपने बैलों के साथ हल सहित घर लौटेगा। धन्य है, ऐसा कर्मयोगी जीवन!

चिलचिलाती धूप, पसीने से तर शरीर, पैरों में छाले डाल देने वाली तपन। सामान्य जन छाया में विश्राम कर रहा है, किन्तु इस महाभाग को यह विचार ही नहीं आता कि धूप के अतिरिक्त कहीं छाया भी है।

मूसलाधार वर्षा हो रही है, बिजली कड़क रही है, भयभीत जन

ढूंढ रहा है, किन्तु यह देवता-पुरुष कर्मभूमि मे अपनी फसल की रक्षा में संलग्न है। वरुण देवता की ललकार का सामना कर रहा है। वाह रे साहसिक जीवन !

जाड़े की सनसनाती पवन शरीर को चीर रही है और जीर्ण-शीर्ण गाढे (मोटा खद्दर) के वस्त्रो में यह दीन पृथ्वी-पुत्र निस्संकोच कर्म-मोर्चे पर अटल है। बर्फीले पानी मे नंगे पैरो से खेतों मे विचरण करता किसान 'योगिराज' प्रतीत होता है।

प्रकृति के पवित्र वातावरण और शुद्ध वायुमंडल में रहते हुए भी वह दुर्बल है, किन्तु उसकी हड्डी वज्र के समान कठोर है। शरीर स्वस्थ है, व्याधि से कोसो दूर।

रात-दिन के कठोर जीवन मे मनोरंजन के लिए स्थान कहाँ ? रेडियो पर सरस गाने सुनकर, यदा-कदा गाँव में आई भजन-मंडली के गीत सुनकर या कचहरी की तारीख भुगतने अथवा आवश्यक वस्तुओ की खरीद के लिए शहर आने पर पिक्चर देखने में ही उसका मनोरजन सम्भाव्य है।

भारतीय कृषक-जीवन के भाष्यकार मुशी प्रेमचन्द का विचार है—"किसान पक्का स्वार्थी होता है, इसमें सन्देह नही। उसकी गाँठ से रिश्वत के पैसे बड़ी मुश्किल से निकलते हैं, भाव-ताव मे भी वह चौकस होता है। वह किसी के फुसलाने मे नही आता।' दूसरी ओर उसका सम्पूर्ण जीवन प्रकृति का प्रतिरूप है। वृक्षो मे फल लगते हैं—उन्हे जनता खाती है। खेती मे अनाज होता है—वह ससार के काम आता है। गाय के थन मे दूध होता है—वह खुद ही नही पीता, दूसरे ही उसे पीते हैं। इसी प्रकार किसान के परिश्रम की कमाई मे दूसरों का साझा है, अधिकार है। उसके स्वार्थ में परमार्थ है और उसकी सेवा निष्काम है।

एक ओर भारतीय कृषक कर्मयोगी है, दूसरी ओर धर्मभीरु भी है। गाँव का पडित उसके लिए भगवान का प्रतिनिधि है। उसकी नाराजगी उसके लिए अभिशाप है। इस शाप-भय ने इहलोक में उसे नरक भोगने को विवश कर रखा है। तीसरी ओर वह कायदे-कानून से अनभिज्ञ भी है, तो साहूकार अथवा बैंक का कर्जदार भी है। निम्न वर्ग का किसान कर्ज मे जन्म लेता है, साहूकारी प्रथा में जीवन भर पिसता है और कर्ज मे ही मर जाता है। उसकी कठिन कमाई पर ये नर-गिद्ध ऐसे टूटते हैं कि उसका सारा माँस नोच-नोचकर उसे ठठरी बना देते हैं। व्याज का एक-एक पैसा छुडाने के लिए वह घटो चिरौरी करता है।

इस तपस्वी के जीवन की कुछ कमजोरियाँ भी हैं । अशिक्षा के कारण बातों-बातों मे लड पडना, लट्ठ चलाना, सिर फोड़ना या फुडवा लेना, वशानुवश शत्रुता पालना, किसी के खेत जलवा देना, फसल कटवा देना, जनता के प्रहरी पुलिस से मिलकर षड्यन्त्र रचना, मुकदमेबाजी को कुल का गौरव मानकर उस पर बेतहाशा खर्च करना, ब्याह-शादी में चादर से बाहर पैर पसारकर झूठी शान दिखाना—इसके जीवन के अन्धकार-पक्ष को प्रकट करने वाले तत्त्व है।

आज भारतीय किसान का जीवन संक्रमणकाल से गुजर रहा है। एक ओर वह शिक्षित हो गया है, खेती के लिए नए उपकरणों और सघन खेती करने के साधनों का प्रयोग करता है, आर्थिक सम्पन्नता की ओर अग्रसर है, रहन-सहन मे नागरिकता की स्पष्ट छाप उसके जीवन पर प्रकट हो रही है, तो दूसरी ओर उसमे उच्छृंखलता व उद्दण्डता और बेईमानी, चालाकी और आधुनिक जीवन की विषमताएँ, कुसंस्कार और कुरीतियाँ घर कर रही हैं। अब उसके बेटे-पोते किसानी से नाता तोड़कर बाबू बनने लगे हैं । खेतों की सुगन्ध-सम्पन्न हवा मे उन्हे धूल अधिक दिखाई देने लगी है, जिससे वस्त्र खराब होने का भय है ।

इस कठोर परिश्रमी, धर्मभीरु और स्वाभिमानी भारतीय कृषक का जीवन भविष्य मे किन विचित्र धाराओं में प्रवाहित होगा, यह कहना कठिन है ।



भारतीय गाँव

(ऑल इण्डिया १६८५, ७८ : ए; ८४ बी; दिल्ली ७७ : ए)

भारत माता ग्रामवासिनी है। भारत की ८५ प्रतिशत जनता गाँवों मे रहती है, अतः भारत के गाँव भारत की आत्मा हैं, भारतीय जीवन के दर्पण हैं, भारत की संस्कृति और सभ्यता के प्रतीक हैं।

भारतीय गाँव प्रकृति का वरदान हैं। प्राकृतिक सौन्दर्य-सुषमा के घर हैं, भारत के निवासियों के लिए अन्न, फल-फूल, साग-सब्जी, दूध-घी के प्रदाता हैं। सेना को सैनिक, पुलिस को सिपाही और श्रमिक-प्रतिष्ठानों को मजदूर गाँवों से ही मिलते हैं।

दूसरी ओर, भारतीय गाँव भारत की सबसे पिछड़ी बस्ती हैं, दरिद्रता की साकार प्रतिमा हैं, अज्ञान और अशिक्षा की धरती हैं, रोग और अभावो के अड्डे है, ईर्ष्या और द्वेष के अग्नि-कुंड हैं, शिक्षालयों और औषधालयों की पहुँच के परे हैं, मुकदमेबाजी के अखाड़े है।

भारतीय गाँव सदियो से शोषित हैं, पीड़ित हैं। महाजन, सेठ-साहूकार, राजनेता, राज्य-कर्मचारी, पुलिस, धर्म के ठेकेदार, *संस्कृति के रक्षक तथा गाँवों* के लठैत उसको लूट रहे हैं। गाँव का किसान शहर में मजदूरी करने को विवश है। प्रकृति के चितेरे पंत ने ठीक ही कहा है—

विश्व-प्रगति से निपट अपरिचित, अर्ध सभ्य, जीवन रुचि संस्कृत।
रूढि रीतियो से गति कुंठित, राहु-ग्रसित शरदेन्दु हासिनी॥
भारत माता ग्रामवासिनी॥

गाँवों की दुर्दशा का मुख्य कारण है अशिक्षा। स्वतन्त्रता के पश्चात् गाँव मे प्राथमिक शिक्षा का प्रवन्ध हो गया है, किन्तु हाई स्कूल और कॉलिज तो अब भी कस्बों और नगरो मे हैं। ग्रामीण नारी तो अब तक 'काला अक्षर भैंस बरावर' की कहावत को चरितार्थ करती आ रही है।

अशिक्षा अज्ञान की जननी है। अज्ञान अन्धकार का पथ-प्रदर्शक है, ईर्ष्या

द्वेष का सहयोगी है। दूसरे के खेत का पानी अपने खेत में कर लेना, दूसरे की कटी फसल अपने खेत में डाल लेना, दूसरे के हरे-भरे खेतों में अपने पशु छोड देना किसान की अज्ञानता के प्रतीक हैं। दूसरी ओर जिससे अदावत हो उसके पशु हंकवा देना, खेत कटवा देना, खलिहान फूंक देना, घर में सेंध लगवा देना आम प्रवृत्ति है। बात-बात में झगड़ना, लट्ठ बरसाना, भाले-फरसे निकाल लेना ग्रामीण का स्वभाव बन गया है। पुश्तैनी तथा खानदानी लडाइयों का रक्त देकर जननी जनती है और घुट्टी में वैरभाव का रस पिलाती है। अज्ञान जब अन्धकार की ओर पग बढ़ाता है, तो मेहनत की कमाई को मुकदमेबाजी में बरबाद करता है।

अज्ञानता का दुष्परिणाम है कि सेठ-साहूकार ग्रामवासियों को लूटते हैं। पाँच देकर दस पर अँगूठा टिकवाते हैं। सूद में उनके कपड़े उतारते हैं और मूल में उनको बंधुवा मजदूर बना लेते हैं। जन्मोत्सव, शादी तथा अन्य धार्मिक और पारिवारिक उत्सवों में ग्रामीणजन झूठी शान में चादर से बाहर पैर पसारते हैं और अपने भविष्य का अंधकार को निमन्त्रण देते हैं। अपना भला-बुरा सोचने की ताकत उनमें नहीं है।

भारतीय गाँव सभ्यता और आधुनिक सुख-सुविधा से कोसों दूर हैं। अपवाद रूप में कुछ पक्के मकानों को छोडकर कच्चे मकान और झोपडियाँ वहाँ के निवास-स्थान हैं। पेय जल का वहाँ अभाव है। मल-मूत्र-विसर्जन की विधिवत् निकासी नहीं। गाँवों में गड्ढे सड़ते हैं, दुर्गंध पैदा करते हैं। बिजली के लाभ से वे वंचित हैं।

गाँव में चिकित्सालय नहीं। प्रशिक्षित डॉक्टर नहीं, क्वालिफाइड नर्स नहीं। नीम हकीम का राज्य है, जो खतरा-ए-जान है। जादू-टोना आज भी ग्रामवासियों में स्वस्थ रहने की औषध है। गंडा-ताबीज उनके स्वास्थ्य-प्रहरी है, भाग्यविधाता है। इसीलिए गाँव में बच्चे जन्म से रोगी होते हैं।

गाँव का पंडित गांव का देवता है। धर्मभीरु गाँववासियों के लिए वह परमात्मा का प्रतिनिधि है। कर्मकाण्ड के नाम पर वह खूब शोषण करता है। धर्मभीरु ग्रामवासी परम्पराओं और रूढ़ियों में उसी प्रकार बँधे हुए है, जिस प्रकार बन्दरिया मरे हुए बच्चे को छाती से चिपकाए रहती हैं।

गाँव गरीबी का अड्डा है। गरीबी जीवन का अभिशाप है। न तन ढकने के लिए मौसमानुकूल वस्त्र है, न खाने के लिए पौष्टिक भोजन और न रहने के लिए सुविधापूर्ण मकान। फटे चीथड़े कपड़े पहनकर ग्रामीण सर्दी-गर्मी झेलता है। रूखी-सूखी रोटी को अचार या नमक से खाकर उदर की ज्वाला शान्त करता है। कच्चे मकान या झोंपड़ी में रहकर मौसम के आक्रोश को बरदाश्त करता

है। उसके बच्चे उच्च शिक्षा के लिए शहर में जा नहीं सकते। बीमारी को पराजित करने के लिए वह रोग-विशेषज्ञ का लाभ उठा नहीं पाता। उसका पशु-धन पौष्टिक आहार के अभाव में कृशकाय होता जाता है।

भारतीय गाँव जहाँ शारीरिक तथा मानसिक दौर्बल्य के आगार हैं, वहाँ उनमें नई चेतना, नई ज्योति, नया जीवन भी आया है। आर्थिक शोषण से मुक्ति के लिए सहकारी बैंक स्थापित हुए। जमींदारों की जमीन छीनकर किसानों में बाँट दी गई। भूदान-यज्ञ ने किसान को भूमि का मालिक बनाया। भूमि-कानून लागू कर भूमि-सीमा निश्चित कर दी। छोटे खेतों की समस्या का समाधान चकबंदी तथा सहकारी खेती द्वारा किया गया। फसल को शहर तक पहुँचाने के लिए गाँव को पक्की सड़कों ने जोड़ा गया। ऋण देकर ट्रैक्टर दिए, कर्ज देकर सुन्दर बीज दिया, उर्वरक खाद दी। गाँव को शिक्षित करने के लिए रेडियो और दूरदर्शन से फसल उगाने की नसीहतें और ग्राम्य-जीवन-सुधार कार्यक्रम चल रहे हैं। ग्राम-सेवक-सेविकाएँ ग्रामवासियों के लिए देव-दूत हैं, जो हर सम्भव सहायता को तत्पर रहते हैं। कृषि-उन्नति के लिए कृषि विश्व-विद्यालय स्थापित हो गए हैं।

स्वतन्त्रता के पश्चात् ग्राम-पंचायतों का पुनर्गठन हुआ। पंचायती राज्य के तीन आधार बने ग्राम पंचायत, क्षेत्र-समिति तथा जिला-परिषद्। ये तीन संस्थाएँ ग्राम-विकास की उत्तरदायी बनीं, गाँवों की सामाजिक और आर्थिक उन्नति का माध्यम और प्रहरी बनीं।

अशिक्षा का अन्धकार दूर होता जा रहा है। गाँव-गाँव में प्राथमिक शिक्षा का जाल बिछा है। कस्बों में हाई स्कूल खुल गए हैं; नगरों में कॉलिज खुल गए हैं। विश्वविद्यालय की शिक्षा ग्रामवासी की पहुँच में आ गई है। बिजली ने गाँवों में प्रकाश फैलाया, रेडियो ने ज्ञानवर्धन किया, जगती से गाँव का सम्बन्ध स्थापित किया। बुद्धिमान, चतुर और समझदार ग्रामवासी इन योजनाओं से लाभान्वित हो सभ्यता की दौड़ के धावक बन गए हैं। पढ़-लिखकर उच्च पदों पर पहुँच गए हैं! बढ़ई, लुहार, चमार के बेटे क्लर्क और अधिकारी बन गए हैं। किसान का बेटा प्रान्त और राष्ट्र का भाग्यविधाता बनने लगा है।

सभ्यता की नई किरण से ग्राम की पलकें तो फड़फड़ाईं, किंतु वह खुली नहीं। आज भी गाँवों में पुश्तैनी लड़ाइयाँ, ईर्ष्या, द्वेष अशिक्षा, महाजनी वृत्ति, धार्मिक भीरुता विद्यमान है। इन बुराइयों के रहते ग्राम खुशहाल नहीं हो सकता, प्रकृति का आनन्द नहीं ले सकता तथा जीवनोपयोगी तत्त्वों का उपभोग नहीं कर सकता।



किसी रेल-यात्रा का वर्णन

(दिल्ली १९८० : 'ए')

मेरी चौदह वर्ष की अवस्था हो गई, किन्तु अब तक मुझे कभी दिल्ली से बाहर किसी और शहर में जाने का अवसर नही मिला। इसलिए मैं अब तक रेलयात्रा नहीं कर सका। कुछ दिन पहले मै अपने साथियो के साथ बालभवन देखने गया था। वहाँ छोटी-सी रेलगाडी को देखकर और उसमें बैठकर सैर करके मुझे बहुत आनन्द आया। मैं सोचने लगा कि असली रेलगाडी में यात्रा करते हुए और भी आनन्द आएगा। मेरे मन मे रेल-यात्रा की इच्छा बढती ही रही।

कुछ ही दिन बाद एक ऐसा अवसर आ गया, जिससे मुझेरे ल-यात्रा का अवसर मिल गया। मेरे पिताजी के घनिष्ठ मित्र श्री केशवानन्द ने अम्बाला छावनी से सूचना दी कि उनका विवाह है। इस अवसर पर मेरे पिताजी का वहाँ जाना अनिवार्य था। जब वे अम्बाला जाने का कार्यक्रम बनाने लगे, तो मेरी रेल-यात्रा की इच्छा जागृत हो उठी। मैंने कहा, "मैं भी जाऊँगा, चाचाजी की शादी मे।" पहले तो उन्होंने मुझे डाँटा, किन्तु मैं जाने की रट लगाता रहा। बाल-हठ के आगे भगवान् भी झुक जाते है। आखिर पिताजी भी मुझे साथ ले जाने के लिए तैयार हो गए।

नई दिल्ली रेलवे-स्टेशन से बारह बजकर पचास मिनट पर 'फ्लाइंग मेल' चलती है। हम साढ़े बारह बजे ही स्टेशन पहुँच गए थे। पिताजी ने टिकट-घर से टिकट लिए और गाड़ी की ओर चल दिए। गाडी मे भीड बहुत थी। हम किसी डिब्बे मे चढ़ने की कोशिश करते, तो अन्दर बैठे यात्री हमारे साथ सहानुभूति दिखाते हुए कहते, 'आगे डिब्बे खाली पडे है।' आगे गए तो वही हाल। तब मुझे पता लगा कि यह सहानुभूति नहीं, प्रवंचना थी।

आखिर हम एक डिब्बे मे घुस गए। अन्दर अजीब दृश्य था। पाँच-सात लोग खड़े थे और इधर-उधर झाँककर बैठने की जगह ढूँढ रहे थे, उधर दो-तीन लोग पैर पसारे खड़े थे। एक सज्जन ने सीट पर अपना बिस्तर रखा हुआ था।

जो भी उनसे पूछता, कहते—सवारी आने वाली है। इधर इंजन ने साटी बजाई और उधर गार्ड ने भी सीटी बजाकर तथा हरी झंडी दिखाकर गाड़ी को चलने की स्वीकृति दे दी।

गाडी चलने पर एक-दो लोगों ने सच्ची सहानुभूति दिखाई और मुझे अपने पास बैठने की जगह दे दी। मैं बच्चा जो था। पिताजी अभी खडे ही थे, उन्हें लेटे हुए आदमी पर क्रोध आया। उन्होंने जाकर उसे उठने के लिए कहा। थोड़ी देर आपस मे तू-तू मैं-मैं हुई। अन्त मे उसे उठकर बैठना पड़ा।

गाडी मन्द गति से चली जा रही थी। पाँच-सात मिनट पश्चात् सब्जीमण्डी का स्टेशन आया। गाडी थोडी देर रुकी और बीस-तीस यात्री चढे-उतरे। पुनः सीटी बजी और गाडी चल दी।

सब्जीमण्डी स्टेशन छोडने के पश्चात् गाड़ी ने जो रफ्तार पकड़ी, उसका अनुमान लगाना मेरे लिए मुश्किल है। हाँ, इतना जरूर पता है कि वह छोटे-बडे स्टेशन छोडती फकाफक चली जा रही थी। छोटे स्टेशन पर ठहरती नही, नरेला, समालखा जैसी मण्डियों की सुनती नही। अपनी धुन मे मस्त चली जा रही थी।

अरे! यह क्या हुआ! जो खड़े थे, बैठ चुके हैं। जो झगड रहे थे, वे परस्पर मित्र बन गए है। कोई अखबार पढ रहा है और कुछ राजनीति की चर्चा कर रहे है।

यात्रियो की चर्चा मे बाधा डालने वाले भी रेल मे आते रहते है। कोई आँखें अंधी होने का दुहाई देता है। तो कोई शरीर के अगहीन होने की दर्दनाक कहानी सुनाकर पैसा माँगता है। बैठे हुए यात्री भूख न महसूस करे, अतः विभिन्न प्रकार की खाने की चीजें बेचने वाले भी आते है। कोई दाल-सेवियाँ बेच रहा है, तो कोई मूँगफली। कई लोग अपने सुरमे तथा दंत-मजन को 'विश्वविख्यात' की उपाधि मे विभूषित कर जनता की आँखों मे धूल झोंकने की चेष्टा करते हैं।

पानीपत और करनाल के रास्ते मे इन सब माँगने और बेचने वालों से अलग सफेद कपड़े पहने और टोप ओढे एक आदमी को हमने अपने डिब्बे मे आते देखा। यह भी अजीब बात है। वह हर व्यक्ति से टिकट माँगता है। टिकट देख कर उसे अपनी मशीन से 'पंच' कर देता है। यह टिकट-चैकर है। बिना टिकट सफर करने वालो को पकड़ना और उनसे जुर्माना वसूल करना इसका काम है।

फ्लाइग मेल पानीपत, करनाल और कुरुक्षेत्र पर रुकी। शेष स्टेशन छोड

चली। करनाल जाकर पिताजी और मै प्लेटफार्म पर उतरे। बड़ा शोरगुल था। कोई 'गर्म चाय' की आवाज लगा रहा था, तो कोई रोटी-छोले की। गाड़ी को पाँच मिनट रुकना है, अतः यात्री भी चाय पीने, पूरी खाने और सिगरेट पीने में लगे हुए हैं। हमने भी जल्दी-जल्दी चाय पी और टोस्ट खाए। उधर गाडी ने सीटी दी और हम भागकर गाड़ी मे चढ गए।

भगवान् कृष्ण की उपदेश-भूमि कुरुक्षेत्र के बाहर से दर्शन कर अपने को कृतार्थ समझा। घण्टे भर की यात्रा के बाद अम्बाला छावनी का स्टेशन आ गया। गाडी की गति मन्द हुई। लोगो ने अपने बिस्तर सँभाले। हमने भी अपनी अटैची सँभाली। गाडी रुकी।

कुली गाडी की ओर झपट रहे थे। चाय, दूध, रोटी-छोले की वही आवाजे कानो मे गूँज रही थी और हम गाडी से उतरकर धीरे-धीरे प्लेटफार्म पर चल रहे थे। मार्ग में ही एक व्यक्ति पिताजी से गले मिला। दोनों बड़े प्रसन्न हो रहे थे। पिताजी उसे बधाइयाँ दे रहे थे। मै समझ गया कि यही मेरे पिताजी के मित्र केशवानन्द जी है। मैंने उनका चरण-स्पर्श किया। उन्होंने मुझे प्यार से थपथपाया।

यही है मेरी रोचक रेल-यात्रा।



रोचक बस-यात्रा

(बस-यात्रा का अनुभव)

(ऑल इंडिया १९८२, ८४ 'बी')

(एक रोचक यात्रा)

(दिल्ली १९७९ : 'बी')

केन्द्र-शासित प्रदेश चण्डीगढ में वाद-विवाद प्रतियोगिता का आयोजन था। दिल्ली से पाँच विद्यार्थी इस प्रतियोगिता मे भाग लेने के लिए चुने गए। मेरा सौभाग्य था कि निर्वाचित विद्यार्थियों में एक मैं भी था। विद्यार्थियों को चण्डीगढ ले जाने और लाने का दायित्व था शिक्षा-निदेशालय के एक अधिकारी पर। ये अधिकारी थे श्री सूर्यनारायण शर्मा।

२२ जनवरी को अपराह्न ४ बजे प्रतियोगिता थी। अत निश्चय हुआ कि प्रात ७ बजे की बस से चला जाए, ताकि हम बारह या सवा बारह बजे तक चण्डीगढ पहुँच जाएँ। भोजन तथा विश्राम का समय मिल जाएगा। तत्पश्चात् नव-उल्लास और नव-उत्साह से प्रतियोगिता मे भाग ले सकेंगे।

निश्चयानुसार पाँचो छात्र और श्री शर्मा जी प्रात. ६-३० बजे अन्तर्राज्यीय बस अड्डे पर पहुँच गए। श्री शर्मा जी ने दिल्ली-नंगल बस मे ६ टिकटें चण्डीगढ की ली। बस बिलकुल खाली थी। हम पैर फैलाकर बैठ गए। दस मिनट बाद बस चली। यात्री कुल १० थे। बस समय की पाबन्द है। वे समय पर चलती है, चाहे यात्री न भी हों।

पजाब रोडवेज की बसें चाल, ढाल और व्यवस्था मे अपना सानी नहीं रखती। आजादपुर से निकलकर बस ने रफ्तार पकडी। बस चल रही है, क्षिप्र गति से भागी जा रहा है, किन्तु कोई हिचकोले नही, धक्के नही, सुन्दर दृश्यावली और शीतल पवन द्वारा शरीर-स्पर्श से हृदय गुदगुदा जाता था। विद्यार्थी परस्पर बातचीत मे मस्त, किन्तु शर्मा जी के भय से कानों मे बात करते थे।

बीच-बीच में हँसी के फव्वारे भी छोड़ते जाते थे। फव्वारे छूटने पर वे कनखियों से शर्मा जी के हाव-भाव देख लेते।

विद्यार्थियों ने देखा, शर्मा जी इन बातों का बुरा नही मानते,, तो मद स्वर की बातचीत-हँसी-मजाक और तीव्र स्वर मे अग्रसर हुई। अचानक एक विद्यार्थी ने सिनेमा-स्टाइल से सिर को झुकाया और सत्य शिवं सुन्दरं का 'टाइटल सांग' (शीर्षक गान) शुरू कर दिया। उसकी लय, उच्चारण का ढग, ऐसा सुन्दर था, मानो लता मंगेशकर छात्र के कठ मे अवतरित हो गई हो। शेष-यात्री गाने को सुनकर उसके इर्द-गिर्द इकट्ठे हो गए। गाना समाप्त हुआ। लोगो ने तालियों की गड़गड़ाहट से उसको प्रोत्साहित किया।

बस-चालक अपनी गति से बस चला रहा था। उसकी दृष्टि आगे फैली हुई सडक पर थी, हाथ हैंडिल पर, पैर ब्रेक ओर स्पीडर पर तथा कान गाने पर थे। कन्डक्टर उठकर छात्र की पिछली सीट पर आ गया था।

यात्रा का वातावरण बदल चुका था। बस मुरथल और सम्भालका पार कर चुकी थी और बेरोक-टोक चली जा रही थी। कन्डक्टर ने छात्र को मुगलेआजम का गाना गाने को कहा। शर्मा जी के डर से छात्र ने मना कर दिया। मन्दार कण्डक्टर जिद पकड गया। उसने पानीपत चलकर सारी पार्टी को चाय पिलाने का वायदा किया। लडका जोश मे आ गया। मधुबाला की-सी हिचकी लेकर उसने जो गाने का स्वर साधा, साहब! कमाल हो गया। यात्रियो ने एक-एक दो-दो रुपये के नोट वारने शुरु कर दिए। गाने की एक-एक कडा पूरी होनी और वाह-वाह का स्वर तेज हो जाता। कण्डक्टर ने दस का नोट निकाला तीन बार छात्र पर वार कर उसको थमा दिया। मुड़कर छात्र ने देखा, शर्मा जी सबसे पीछे वाली सीट पर जा बैठे थे।

पानीपत गाडी रुकी। कण्डक्टर पाँचो छात्रो को अपने साथ ले गया। चाय पिलाई, मुह मीठा करवाया। वापिस आकर देखते क्या हैं, बस खचाखच भरी है। १५-२० लोग खड़े हुए हैं। यहाँ तक कि पाँचो छात्रो और शर्मा जी की सीटो पर भी कब्जा हो चुका था। पहले तो छात्रो ने सीट खाली करने की प्रार्थना की, पर कौन सुनता है? बात बढते-बढ़ते हाथा-पाई पर आ गई। कण्डक्टर और ड्राइवर को पता लगा तो वे भी पहुँच गए। उन्होंने कह-सुन करके ६ सीटें खाली करवा ही दी।

गाड़ी का वातावरण बदल चुका था। अब तो साँस लेने में भी कठिनाई हो रही थी। अन्दर का दृश्य और कोलाहल ही इतना था कि बाहर के प्राकृतिक

दृश्य में मन लगाने का अवकाश ही कहाँ था, लोग रूट की बस थी। तेज रफ्तार पर चल पड़ी। करनाल बाईं पास से निकल गई और डेढ़ घंटे के दमघोंटू वातावरण का अन्त हुआ अम्बाला जाकर।

अम्बाला छावनी का बस-अड्डा आया। बस को यहाँ १५-२० मिनट विश्राम करना था। फिर भी यात्री जल्दी-जल्दी उतर रहे थे। विद्यार्थी उतरे। शर्मा जी ने विद्यार्थी-गण के मुरझाए चेहरे देखे। उन्होंने हाथ-मुँह धोकर आने को कहा। फिर गरमागरम चाय के साथ पकोड़े खिलाए। सबके चेहरे पर मुस्कुराहट फैल गई। विद्यार्थी शर्मा जी की प्रशंसा करने लगे।

कण्डक्टर ने बस चलाने की सीटी बजाई। ड्राइवर ने गाड़ी स्टार्ट की। कण्डक्टर ने जोर से आवाज लगाई, 'शर्मा जी, बच्चे आ गए हैं न?' बस अम्बाला छावनी छोड़ चली। बस अब भी प्रायः भरी हुई थी। यात्रियों का स्तर बदल गया था। ग्रामीण उतर चुके थे। शहरी-समाज के यात्री चण्डीगढ़-नंगल जा रहे थे। गाड़ी की स्पीड अपेक्षाकृत कम थी।

ड्राइवर को जवानी आई। उसने अम्बाला शहर पार करके एक निर्जन स्थान पर गाड़ी रोक दी। सीट से उठकर बच्चों के पास आ गया। उसने कहा, 'जरा एक तान और छिड़ जाए—'जिन्दगी भर न भूलेगी यह सफर की बात'। बच्चों के लाख मना करने पर भी, वह जिद पकड़े रहा और गाड़ी न चलाने की सौगन्ध खा बैठा। यात्रियों ने ड्राइवर तथा बच्चों को मनाया, पर दोनों बजिद। आखिर शर्मा जी ने बच्चों को ड्राइवर साहब को खुश करने को कहा।

तालियों की सुमधुर ध्वनि में बच्चों ने 'दी बर्निंग ट्रेन' का गाना 'पल दो पल का साथ हमारा, पल दो पल के याराने' गाया। गीत समयानुकूल था, मस्ती के क्षणों में बच्चों ने इतना सुन्दर समाँ बाँधा कि यात्री भी ताली बजाकर साथ देने लगे। डेरावसी से गुजरती बस में तालियों की गड़गड़ाहट सुनकर स्टैण्ड पर खड़े यात्री भौचक्के से देखते रह गए और बस आँखों से ओझल हो गई।

ट्रिब्यून का दफ्तर आ गया। गाड़ी दो पल रुकी। गाना भी रुका। ८-१० यात्री उतरे। उतरने वाले यात्री बच्चों को शाबाशी देना न भूले। बस चण्डीगढ़ शहर की ओर मुड़ी और दस मिनट में १७ सेक्टर पहुँच गई। सत्रह सेक्टर में ही चण्डीगढ़ का बस-अड्डा है।

बच्चे उतरे। शर्मा जी उतरे। ड्राइवर और कण्डक्टर उतरे। स्कूल-बोर्ड, चण्डीगढ़ की स्टेशन-वैगन बच्चों को लेने आई हुई थी। हम सभी उस पर चढ़ गए, किन्तु ड्राइवर और कण्डक्टर निर्निमेष नेत्रों से बच्चों को देखते रहे, जब तक कि स्टेशन-वैगन ने अड्डा-क्षेत्र नहीं छोड़ दिया।

*

पर्वत-प्रदेश की यात्रा

(दिल्ली १९८० : बी; १९८४ : ए)

पर्वत प्रकृति की क्रीड़ास्थली है। प्रकृति परमेश्वर की सृष्टि है। प्रकृति की उन्नति और विकास मे ईश्वर अहर्निश लगा रहता है। अतः प्रकृति अपरिमित ज्ञानका भंडार है। इसके पत्ते-पत्ते में शिक्षाप्रद पाठ है। उससे लाभ उठाने के लिए अनुभव चाहिए, प्रकृति का बार-बार दर्शन चाहिए और चाहिए पर्वतीय-स्थलों की यात्रा।

गर्म प्रदेशो की गर्मी, सांय-सांय करती लू, ऊपर से भगवान भास्कर का प्रचंड प्रकोप, नीचे से भट्ठी के समान आग उगलती पृथ्वी माता, प्यास और पसीने से सराबोर शरीर, अपनी ही दुर्गन्ध से नाक-मुह सिकोड़ता अपना मन जब तंग आ जाता है, तो इच्छा होती है पर्वतीय-प्रदेश चलकर ग्रीष्म को नीचा दिखाने की। दूसरी ओर, २-३ मास के दीर्घावकाश में वातावरण के परिवर्तन की इच्छा से व्यक्ति कुछ समय प्रकृति की गोद में अवश्य बिताना चाहता है। तीसरी ओर, बुद्धिजीवी वर्ग—न्यायाधीश, वकील, प्राध्यापकगण, पत्रकार, लेखक, कविगण निरन्तर चिन्तनप्रधान कार्य करते हुए जब थक जाते हैं, तो वे प्रकृति की गोद में विश्राम कर अपने को तरोताजा महसूस करते हैं। पर्वतीय प्रदेश की यात्रा उनके लिए ऐय्याशी (Luxury) नही, अनिवार्य (Necessity) है।

पर्वतीय स्थान पर पहुँचना भी कोई बच्चो का खेल नहीं। बस या रेल मे चक्कर आएँगे। चक्कर उल्टी लाएंगे। खाया-पीया बाहर आ जाएगा। शरीर निढाल होकर विश्राम चाहेगा, पर लेटने की जगह न बस में है, न रेल में। शरीर की अकर्मण्यता पर मन क्षोभ से भर जाएगा, प्रकृति का आनन्द लूटने से मना करेगा। आप नीबू में नमक-कालीमिर्च डालकर चूस रहे हैं। कोई काबुली चना खाकर उलटी को सीधा करना चाहता है। कोई चूर्ण चाट रहा है। अकलमन्द प्राणी जानता है कि यदि चक्कर आते हैं, तो पहले ही दवा की एक डोज ले लो। रास्ता मस्ती मे कटेगा।

अशिक्षित नर-नारी उलटी के सम्बन्ध मे सोचकर नही चलते। परिणामतः

बस खराब हो जाती है, रेल में गदगी फैलती है। ठंडा-ठंडी पवन के झोके उलटी के कणो से *सहयात्रियों के वस्त्रों पर छिड़काव कर देते हैं, तो किसी के मुँह का* चुम्बन ले लेते हैं। अकस्मात् अनचाहे चुम्बन से मनुष्य क्रोधातुर हो उठता है। क्रोध यमराज है, जो मन के दीपक को बुझा देता है। पल-दो पल का सहयात्री, भयंकर शत्रु बन जाता है।

कालका से शिमला तक यात्रा कीजिए; मुरादाबाद से नैनीताल का सफर कीजिए; जम्मू से श्रीनगर पर चढाई कीजिए और लीजिए पर्वत-यात्रा का आनन्द। योजनाबद्ध पर्यटन-विकास ने सड़कों को चौडा कर दिया है, किन्तु साँप की गति के समान बलखाती सड़कें तो पर्वत-यात्रा की विशेषता है। आपकी बस आधा मील चली नही कि मोड़ आ गया। मोड़ भी इतना छोटा कि दो क्षण बाद पुनः बस मोड़ काटती नजर आती है। कई-कई घुमाव तो बड़े जालिम होते हैं। बस वाले ने जरा असावधानी बरती नही कि बस खड्ड मे और यात्री प्रकृति का गोद में चिरनिद्रा मे विलीन। कभी-कभी इन घुमावों पर विपरीत दिशा से आती हुई बसों का मिलन बड़ा भयावह होता है। दोनो ने ब्रेक न लगाए, तो बस-बॉडियाँ टकरा जाएंगी। 'एक्सिडेंन्ट' बड़ा भयंकर नाम है क्रूर काल का।

पूरे मार्ग में सड़क के एक ओर प्रायः खड्ड है। खड्ड में अनियमित पर्वत-शृंखलाओ का कटाव देखिए। मार्ग में पर्वतीय ग्राम देखिए, कच्चे मकानो का छोटा समूह। उनके सीढ़ीनुमा कम लम्बे, कम चौड़े खेत देखिए। सीढ़ीनुमा इसलिए कि *पर्वतीय भू समतल नही होती। ग्रामीणों की गरीबी देखिए।* कविवर पंत ने बहुत सुन्दर शब्दों में इस गरीबी का चित्र खीचा है—

दैन्य दुःख अपमान ग्लानि, चिर क्षुधित पिपासा, मृत अभिलाषा।
बिना आय की क्लांति बन रही, उसके जीवन की परिभाषा॥

मार्ग में बस-पड़ाव पर थोड़ा सुस्ता लीजिए। थकान मिटा लीजिए। पहाड़ का बस-स्टैंण्ड समतल स्थान के अभाव मे अत्यन्त सीमित स्थान पर होता है। अतः ५-६ बसों से अधिक बसें खड़ी हो गईं तो मार्ग अवरुद्ध हो जाता है। गाँव की अधकच्ची दूकानें देखिए। साथ ही देखिए शानदार ढग से बनाए वातानुकूलित होटल और रेस्टोरेंट भी। पक्की दूकानों पर साफ सुथरी खाने-पीने की चीजें प्राप्त हैं। एक ओर ग्रामीण बालाओं का सौन्दर्य और निष्कपट यौवन है, जिसे देख कर कवि हृदय चीत्कार उठा—

छोड़ द्रुमों की मृदु छाया, तोड़ प्रकृति से भी माया।
बाले ! तेरे बाल-जाल मे, कैसे उलझा दूं लोचन ॥

बस या रेल में बैठे प्रकृति की हरियाली का आनन्द न लूटा, तो यात्रा बेकार है। स्थान-स्थान पर प्रकृति-नटी का कलात्मक नृत्य देखिए। क्या कारीगरी है ? कही हरी-भरी झाडियां हैं, लताएं हैं, चीड़ और देवदार के गगन-चुम्बी पेड़ हैं, कही पर्वत के बीच से शीतल जलधार निकल रही है, तो कही चांदी-से झरझर बहते झरने हैं। पहाडों से गिरते जल का दृश्य चित्ताकर्षक है। नीले-सफेद जल में से उठते-फूटते बबूले मानो कोई मोतियों को स्वतः तोड़कर आनन्दित हो रहा हो। आकाश में उमड़ते-घुमड़ते बादल कभी पर्वत की चोटी को छूते और कभी उससे बचकर हवा में तैरते फिरते हैं। सफेद, नीले, काले, पीले, लाल बादलों से आकाश मे अनेक चित्र बनते हैं। कभी हवा की तेज चाल से पेड़ों से भांति-भांति की ध्वनि-प्रतिध्वनि निकलती है।

यदि आप रेल से यात्रा कर रहे हैं तो छोटी-छोटी गाड़ी, छोटे-छोटे कम्पार्टमेंट। छोटी की चाल चलती गाड़ी यात्रियों को जोर करती हैं। दूसरी ओर लम्बी-लम्बी सुरंगों से गुजरती गाड़ी भय उत्पन्न करती है। घोर अन्धकार मे क्षीण विद्युत्-प्रकाश। तीसरी ओर, चक्करदार पटरियों पर चलती हुई रेलगाड़ी में ऐसा भ्रम होता है कि इस स्थान से तो अभी-अभी गुजरे थे।

पहाड़ पर गरीबी और परिश्रम का विचित्र सगम देखिए। बस-स्टैंड समीप आता है। बस मद-मंद गति से चल रही है। पहाड़ी कुली अपना नम्बर आपको देने के लिए बस के साथ-साथ दौड़ रहा है। नम्बर आपने पकड़ लिया, समझो आप बुक हो गए। वह सामान उतारेगा। उतार कर अपने ऊपर लादेगा। लादकर उस खड़े पहाड़ी मार्ग या सीढ़ियों पर चढ़ेगा जिस पर आप बिना सामान के नही चढ़ पा रहे। गंतव्य पर पहुँचने पर आपकी सांस चढ़ रही है। आप हांफ रहे हैं और वह कुली समभाव से खड़ा आपके बटुए से निकलने वाली राशि की प्रतीक्षा कर रहा है।

पर्वतीय यात्रा मानव को प्रकृति के दर्शनों का, प्रकृति के रूप पर मोहित होने का, प्रकृति-नटी की नव-नव नृत्य मुद्राएँ देखने का, बदलते हास-परिहास और उल्लास का निमंत्रण देती है। धन खर्च कर तन और मन को प्राकृतिक रूप में स्वस्थ रखने का आमंत्रण भेजती है। प्रकृति के शस्य-श्यामल अंचल मे आहार-विहार का आनन्द लेने का बुलावा भेजती है।



दिल्ली की मुद्रिका बस से यात्रा

(दिल्ली १९८० : ’८१’)

दिल्ली की मुद्रिका-बस की यात्रा दिल्ली-नई दिल्ली की परिक्रमा का सुअवसर है। भौगोलिक ज्ञान-वृद्धि का साधन है; भीड़भरी सड़को से दूर खुली सड़कों पर क्षिप्र गति में बस की सवारी का आनन्द है; परिवहन समस्याओं और झंझटों से छुटकारा है।

मुद्रिका-बस का साधारणतः अर्थ होगा 'मुद्रिका जैसे वृत्ताकार मार्ग पर चलने वाली बस'। यह बस-सेवा जिस स्थान से प्रारम्भ होती है, वृत्ताकार मार्ग पर दिल्ली की परिक्रमा करती हुई उसी स्थान पर समाप्त होती है। इसका मार्ग मुद्रिका अर्थात् अंगूठी के समान गोल होता है। इसलिए इसे 'मुद्रिका-बस' कहा जाता है।

साधारणतया बसो के रूट के दो पड़ाव हैं। जैसे रूट नम्बर ११ की बस का एक पड़ाव जामा मस्जिद है, तो दूसरा राणा प्रताप बाग। वैसे ही रूट नंबर १० की बस का एक पड़ाव राणा प्रताप बाग है, तो दूसरा केन्द्रीय सचिवालय, किन्तु मुद्रिका-सेवा जहाँ से चलती है, ४८.५ किलोमीटर का दूरी तय करके पुनः उसी स्टॉप पर आकर रेस्ट करेगी, पड़ाव डालेगी।

दूसरे, दिल्ली-परिवहन की शेष बसों के रूट एक रेखा के समान सीधी या टेढ़ी-मेढ़ी लम्बाई लिए हुए हैं। जैसे स्टेशन से बीकानेर, लालकिले से महरौली विवेकविहार से आदर्शनगर, किन्तु मुद्रिका-बस का रूट अंगूठी के समान गोल है। जैसे देवालय की परिक्रमा, वैसे ही मुद्रिका-बस द्वारा दिल्ली-नई दिल्ली की परिक्रमा।

तीसरे, मुद्रिका-सेवा द्वारा दिल्ली-नई दिल्ली की प्रायः सभी बस्तियों एवं उपनगरों को एक मार्ग से जोड़ा गया है। यह है रिंग रोड। रिंग रोड दिल्ली-नई दिल्ली की अन्य सड़को से अपेक्षाकृत चौड़ी है। प्रायः सम्पूर्ण रिंग रोड दो भागों में विभक्त है। आने का मार्ग अलग और जाने का मार्ग पृथक्। विभाजक पट्टी को आकर्षक बनाने के लिए कहीं-कहीं उस पर क्यारियाँ उगाई हुई हैं, जो बस के

धुंए के प्रदूषण को कम तो करती ही हैं, साथ ही यात्रियों को हरियाली का आनन्द भी प्रदान करती हैं।

मुद्रिका-बस-सेवा अनेक बस-जंक्शनों से आरम्भ होती है। प्रत्येक मुद्रिका बस निश्चित जंक्शन से चलकर अपने जंक्शन पर ही आकर दम लेती है। मार्ग में जो और जंक्शन आएंगे, उन पर क्षण-दो-क्षण ठहरेगी तो सही, किन्तु पड़ाव नहीं डालेगी। आइए, आपको मुद्रिका-बस की सैर कराएं।

चलिए आजादपुर के जंक्शन से मुद्रिका में बैठते हैं। आजादपुर से बस चली और आजादपुर, नई सब्जामण्डी के पुल पर चढ़ती-उतरती अशोक विहार और शालीमार बाग के बीच रिंग रोड़ से गुजरकर परिवहन डिपो वजीरपुर को पार करती पंजाबी बाग के जंक्शन पर पहुंचती है। यहां से चलकर राजधानी कॉलिज, ई० एस० आई० अस्पताल के दर्शन करती, राजा गार्डन जंक्शन पर पहुंचती है। इधर राजा गार्डन और राजौरी गार्डन हैं, तो उधर रमेश नगर तथा बसई दारापुर अवस्थित हैं।

राजौरी गार्डन से होती हुए मुद्रिका नारायणा की विशाल औद्योगिक बस्ती की सवारियाँ लेती-उतारती मस्त चाल से चली जा रही है—दिल्ली छावनी में प्रवेश करने के लिए। दिल्ली छावनी से गुजरती धौला कुंआ के विशाल जंक्शन पर पहुँ-चती है। यहां आत्माराम सनातन धर्म कालिज तथा वेंकटेवर कालिज हैं, तो दूसरी ओर राजकीय कॉलोनियाँ हैं।

धौला कुंआ से सफदरजंग तक का सारा मार्ग सरकारी कॉलोनियां तथा कार्यालयों से घिरा है। सड़क के एक ओर मोतीबाग, नेताजी नगर, सरोजिनी नगर तथा लक्ष्मीबाई नगर हैं, तो दूसरी ओर विस्तृत रामाकृष्णापुरम्, नौरोजी नगर तथा सफदरजंग अस्पताल हैं। सफदरजंग अस्पताल के सम्मुख अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान सस्थान (All India Institute of medical sciences) है।

सफदरजंग जंक्शन से मुद्रिका बस किदवई नगर, साउथ एक्सटेंशन, डिफेंस कॉलोनी एंड्रयूजगंज लाजपतनगर, अमर कॉलोनी के विभिन्न सैक्टरों को स्पर्श करती लाजपतनगर जंक्शन पर पहुँचती है।

लाजपतनगर से निकलकर बस नेहरू नगर में पी० जी० डी० ए० वी० कॉलिज तथा श्रीनिवासपुरी को स्पर्श करती हुए जंगपुरा पुल पर चढ़ती और उत-रती हुई निजामुद्दीन स्टेशन को स्पर्श करके सुन्दर नगर की ओर मुड़ जाती है।

सुन्दर नगर से हाईकोर्ट, चिड़ियाघर, पुराना किला दिखाती हुई प्रगति मैदान के साथ-साथ पुनः रिंग रोड़ पकड़ती है।

रिंग रोड़ पर केन्द्रीय इन्द्रप्रस्थ परिवहन डिपो को सलामी देती हुई, राष्ट्र पिता महात्मा गांधी, शाँति दूत जवाहरलाल नेहरू तथा श्री लालबहादुर शास्त्री की समाधियों को श्रद्धांजलि अर्पित करती यमुना तट के साथ-साथ लालकिले के पार्श्व भाग को छूती हुई अन्तर्राज्यीय बस अड्डे से मुड़कर अलीपुर रोड़ पर आ जाती है और आइ० पी० कॉलिज से गुजरती हुई माल रोड़ पर पहुँचती है। माल रोड़ पर सरकारी बस्ती तिमारपुर और दिल्ली विश्वविद्यालय की सीमा के साथ-साथ चलकर किंग्सवे कैम्प के चौराहे पर आ धमकती है।

किंग्सवे कैम्प से सीधा मार्ग है गंतव्य स्थान आजादपुर तक। मार्ग में हैं—विशाल आधुनिक बस्ती मॉडल टाउन के तीन स्टॉप।

जहाँ से चले थे, वहीं पहुँच गए। देखा न आपने दिल्ली-दृश्य ? बढ़ा न आपका भौगोलिक ज्ञान ? हुई न आपको दिल्ली व नई दिल्ली की आधुनिक बस्तियों की जानकारी ? नए-नए पुलों को देखने तथा औद्योगिक संस्थानों के बोर्ड पढ़ने से हुआ न ज्ञानवर्धन ? दिल्ली के कॉलिजों, सरकारी कार्यालयों तथा अस्पतालों को देखकर भी तो ज्ञान-वृद्धि हुई।

शहरों की बसें २० से ४० किलोमीटर की गति से चलती हैं। लगता है किसी ताँगे की सवारी कर रहे हो। मिनट-मिनट में गेयर बदलने से गाड़ी की गति तेज-मध्यम होती रहती है। झटके ऐसे लगते हैं, जैसे बनारसी एक्के का घोड़ा नखरे करता है या बिजली की करेन्ट के झटके लगते हैं। बस में बैठी सवारियाँ झटके खाकर अगली सीट से टकराने को लालायित होती हैं, तो खड़ी सवारियाँ एक दूसरे पर गिरती-पड़ती हैं। परिवहन अधिकारियों का सूझ-बूझ कहिए, मुद्रिका बस में न झटके है, न टकराहट। बस चली और गति पकड़ी। समगति, समभाव से दौड़ी चली जा रहा है। आप भी आराम से सवारी का आनन्द ले रहे हैं और देख रहे हैं हरियाली तथा नए ढंग के भवनों, मकानों की एकरूपता को।

दिल्ली की मुद्रिका-बस दिल्ली-वासियों के लिए वरदान है। गरीब तथा मध्य-वर्गीय जनता के लिए सुदूर गन्तव्य पर पहुँचने के लिए सस्ती और शीघ्र पहुँचाने वाली आनन्दप्रद सवारी है।



प्लेटफार्म का दृश्य

(दिल्ली १९८०, ८२ : 'बी')

यातायात के साधनो मे रेल का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह सस्ती, सुलभ और सुरक्षित सवारी है। इसलिए इसे जनता की सवारी कहा जाता है। देश में रेलों का एक जाल-सा बिछा हुआ है। स्वराज्य-प्राप्ति के पश्चात् राष्ट्र के कर्णधारों ने इसे गाँव-गाँव तक पहुँचाने का प्रयास किया है और कर रहे हैं।

इस विशालकाय लौहपथ-गामिनी के ठहरने, विश्राम करने, दाना-पानी लेने तथा अपने भार को हलका करने और नया भार लेने के लिए निश्चित स्थान है स्टेशन। स्टेशन के अन्दर गाड़ी पर यात्रियों के चढने और उतरने के लिए एक चबूतरा या मंच होता है। इसे रेलवे की भाषा में 'प्लेटफार्म' कहते हैं।

यात्रियों की सुविधा के लिए प्लेटफार्म पर सार्वजनिक नल होता है, क्षुधा-शान्ति के लिए जलपान की रेहड़ियाँ होती हैं, ज्ञानवर्धन और मानसिक भूख मिटाने के लिए बुकस्टाल होते है। इनके अतिरिक्त एक-दो रेहड़ियाँ बच्चों के खेल-खिलौनो या स्थान-विशेष की प्रसिद्ध वस्तुओं की भी होती है।

प्लेटफार्म पर गाडी मे चढ़ने वालो तथा अपने सम्बन्धियों अथवा मित्रो के स्वागत-सत्कार के लिए आए प्रतीक्षार्थियो की भीड़ रहती है। अंग्रेजी भाषा में 'सी ऑफ' तथा 'रिसीव' करने वालो का जमघट होता है। इनके अतिरिक्त सामान उठाने, गाड़ी मे रखने तथा उतारने के लिए कुली होते हैं। इनकी पहचान है : लाल कुर्ता, पगडी, सफेद पाजामा, बाँह पर बँधा हुआ रेलवे का अधिकृत बिल्ला। दीन भारत की दरिद्र जनता का एक अंश हाथ में भिक्षा-पात्र लिए उदर-पूर्ति के लिए याचना करने वाले नर-नारी, बाल-वृद्ध भी प्लेटफार्म पर भारत का आर्थिक चित्र प्रस्तुत कर रहे होते हैं।

गाड़ी आने वाली है। स्टेशन-कर्मचारी ने गाड़ी आने की सूचना घण्टी बजाकर दे दी है। सबको सावधान कर दिया है। हलचल तेज हो गई है। भूमि पर चौकड़ी लगाए और बैंचों पर पैर लटकाए बैठे प्रतीक्षार्थी खडे हो गए हैं।

लोगों ने अपना सामान सँभालना शुरू कर दिया है। बच्चों को आवाजें लग रही हैं—'अज्जू-संजू, जल्दी आओ, गाड़ी आ रही है।' 'ओ अलका, ताश के पत्ते को फेंक, जल्दी कर, वरना यहीं रह जाएगी!'

कुलियों मे हलचल मच गई। जिन लोगों ने पहले ही अपने कुली निश्चित कर रखे हैं, वे उन्हे आवाज लगा रहे हैं। कुछ कुली स्वतः ही अपने सामान की ओर दौड़ रहे हैं। पानी पिलाने वाले कर्मचारी ने बाल्टी भर ली है। द्वार पर नियुक्त टिकट-चेकर, जो मटरगश्ती में मस्त था, द्वार पर पहुँच चुका है। पोर्टर और कुली डाक के थैले और आने वाली गाड़ी में चढ़ाने का सामान हाथ-रेहड़ी में लेकर प्लेटफार्म पर आ रहे हैं।

धुआँ उड़ाती, सीटी बजाती, छक्-छक् करती अपेक्षाकृत मन्द गति से चलती हुई रेलगाड़ी प्लेटफार्म में प्रवेश कर रही है। गाड़ी के प्लेटफार्म में प्रवेश करते ही जनता मे तेजी से हलचल मच गई। गाड़ी एक झटके के साथ रुकी। हलचल तीव्रतम हो उठी।

गाड़ी मे चढ़ने वाले और सामान लादे कुली गाड़ी मे चढ़ने के लिए उतावलापन दिखाकर धक्का-मुक्की कर रहे हैं। उतरने वाले उनसे अधिक जल्दी मे हैं। इस सारी आपा-धापी में नर-नारियो के तीव्र, कर्कश और घबराहट भरे स्वर सुनाई पड़ते हैं, 'पूनम तू चढ़ती क्यों नही?' 'अरे भाई साहब, जरा लड़की को तो चढ़ने दो।' आदि-आदि।

रेल से आए डाक के थैले और सामान उतारा जा रहा है तथा दूसरे थैले चढ़ाए जा रहे हैं। उधर मित्रों-सम्बन्धियों को 'रिसीव' करने आई जनता आगन्तुकों की तलाश मे आँख गड़ाए तेजी से प्लेटफार्म को नाप रही है। रेलवे विभाग सतर्क है। पानी पिलाने वाले बाल्टियाँ लिए यात्रियों की प्यास बुझा रहे हैं। द्वार पर खड़ा टिकट-चेकर अब पूर्णतः सतर्क है। कुली उतरने वाले यात्रियों के सामान को उतारने के लिए तीव्रता से भाग-दौड़ कर रहे हैं; पैसे तय कर रहे हैं।

उधर इस हल्के, मधुर, कर्णप्रिय शोर मे वातावरण को अशान्त कर रही हैं 'वेंडरों' की कर्कश आवाजें—'चाय गरम', 'गरम छोले-कुलचे', 'गरम दाल-रोटी लीजिए', 'गरम दूध', 'बीड़ी-सिगरेट'। इधर चाय के गिलास लिए हुए चाय-स्टॉल के लड़के डिब्बे की खिड़कियों के अन्दर की ओर मुँह करके आवाज लगा

रहे हैं, 'चाय गरम।'

पाँच-चार मिनट मे ही प्लेटफार्म का दृश्य बदल गया। उतरने वाले यात्री प्लेटफार्म छोड़ रहे हैं। प्लेटफार्म की भूमि और बैंचों पर के यात्री अब गाड़ी मे बैठे हैं। बैंच प्रायः खाली हैं। कुछ लोग चाय आदि अल्पाहार में संलग्न हैं। कुछ बीड़ी-सिगरेट का धुआँ उड़ाते सुस्ता रहे हैं। पानी-पिलाने वाले और चाय वेचने वालों की फुर्ती में थोड़ा अन्तर आ गया है। वेन्डरो के कर्कश स्वर मे धीमापन आ गया है। कुलियों की धका-पेल कम हो गई है। पुस्तकों का स्टॉल प्रायः सुनसान-सा पड़ा है।

इधर, गाडी ने चलने के लिए सावधान होने की पहली सीटी दी। उधर, एक दम्पति और दो बच्चे कुली से सामान उठवाए क्षीप्र गति से प्लेटफार्म पार कर गाड़ी में घुसने की कोशिश कर रहे हैं। कुली सिर का सामान उतार और मजूरी की प्रतीक्षा में 'बाबू पैसे दो, बाबू पैसे दो' के शोर में रत है। उधर बाबू जी हाँफते हुए जेब में हाथ डाल रहे हैं।

गाड़ी आई और चली गई। यात्री आए और चले गए। कर्मयोगी प्लेटफार्म निष्काम भाव से अवस्थित है। अर्द्ध-विश्राम कर रहा है। आने वाली लौहपथ-गामिनी की प्रतीक्षा में, जिसके आने से एक बार उसके हृदय में भी ज्वार-भाटा आता है, चेहरे पर रौनक आती है, कर्त्तव्य-पूर्ति की प्रसन्नता उत्पन्न होती है।



स्टेशन के प्रवेश-प्रांगण का दृश्य अपेक्षाकृत शान्त है, इस प्रांगण में या तो रॉकेट की-सी तेजी है या श्मशान की-सी शांति। चांदनी चौक की-सी सामान्य हलचल वहाँ नहीं मिलेगी। सैंकड़ों आदमी पंक्तिवद्ध टिकट की खिडकियों पर खड़े हैं। उतावले इतने हैं कि हर टिकट खरीदने वाले पर जल्दी करने की आवाज कसते हैं, पूछताछ-खिड़की पर हर यात्री अपनी बात का उत्तर पहले प्राप्त कर लेना चाहता है। गाड़ी पकड़ने की चिन्ता में प्रवेश-प्रांगण को यात्री तेजी से पार कर रहे हैं। दूसरी ओर वे यात्री जिनकी गाड़ी आने मे विलम्ब है, बिस्तर बिछा कर लेटे हैं। कोई बच्चों के साथ भोजन कर रहा है, कोई गपशप मे मस्त है, कही धूम्रपान का धुआँ उड़ रहा है, तो कही भंगी गीले टाट से प्रांगण के फर्श की सफाई कर रहा है। भीख माँगने वाले भी यदा-कदा यात्रियो को तंग करते रहते हैं। प्रवेश-प्रांगण मे कहीं सामान की बुकिंग हो रही है, तो कही डाक के थैलों को गाड़ी में चढाने की तैयारी हो रही है। प्रवेश द्वार का दृश्य और भी आकर्षक है। अन्दर जाने वाले यात्रियों की गति इस द्वार पर जहाँ मध्यम हो जाती है, वहाँ गाड़ी से उतरने वालों का इस द्वार पर जमघट जमा हो जाता है। टिकट-कलेक्टर फुर्ती से टिकट लेता रहता है। भीड़-भाड़ में कुछ यात्री बिना टिकट दिए निकल जाते हैं, तो कोई 'पीछे वाले के पास टिकट है' की वंचिका देकर निकल जाता है। आग लगने पर अग्नि-स्थल छोड़ने के लिए अथवा भीड़ पर अश्रुगैस या लाठी चार्ज होने पर भागने का जो दृश्य होता है, वही दृश्य गेट छोड़ने का है।

आइए, प्लेटफार्म के अन्दर चलें। है न कनाट-प्लेस का दृश्य। यात्रियों के विश्राम के लिए बैंच रखे हैं, चाय-लस्सी बिस्कुट की चबुतरेनुमा दुकानें हैं और हैं बुक-मेगजीन-स्टाल। इन दुकानो पर गाडी आने मे पन्द्रह मिनट पूर्व और पन्द्रह मिनट पश्चात्/ तक बड़ी भीड़ होती है। इन दुकानो के अतिरिक्त चाय, फल, रोटो, छोले कुलचे-मिठाई-नमकीन तथा खिलौनो की रेहड़ियाँ प्लेटफार्म के एक सिरे से दूसरे सिरे तक ग्राहक की तलाश मे घूमती रहती है। हाथों मे दैनिक पत्र-पत्रिकाएँ तथा पॉकिट-बुक्स लिए हॉकर चक्कर काटते हैं। प्यास बुझाने के लिए नल लगे हैं। एक प्लेटफार्म से दूसरे प्लेटफार्म पर जाने के लिए सीढियाँ और पुल बने हुए हैं।

कुछ यात्री अपने सामान के साथ गाड़ी आने की प्रतीक्षा मे हैं, कोई टहल कर अपना समय बिता रहा है, कोई बच्चों के लिए चीजें खरीदने में व्यस्त है,

तो कोई कुली की सहायता लेने मे सलग्न है। चाय वाला चाय बनाने में फुर्ती दिखाता है, तो मैगजीन या पॉकिट बुक्स खरीदने वाला उतनी ही सुस्ती प्रकट करता है।

दृश्य बदला। गाडी धीरे-धीरे प्लेटफार्म में प्रवेश कर रही है। गाड़ी की आवाज के साथ बिजली के स्विच खोलने के समान सारा प्लेटफार्म जीवन्त हो गया, सचेत हो उठा। यात्री सचेत हो गए हैं। 'बुक्ड' कुलियों ने सामान उठा लिया है। पानी पिलाने वाले कर्मचारी ने बाल्टी भर ली है। द्वार पर खड़ा टिकट-चेकर 'एलर्ट' हो गया है।

गाड़ी रुकी। प्लेटफार्म का दृश्य बदला। सरकस की तरह नया खेल शुरू हुआ। गाडी मे चढने और उतरने वालों की उतावली का दृश्य धक्का-मुक्की का आनन्द दे रहा है। कुली पहलवानी दिखा रहे हैं। वे जबरदस्ती सामान को चढाने में दक्षता प्रकट कर रहे हैं। सामान उतारने और चढ़ाने की तीव्र गति की प्रक्रिया मे जो कोलाहल मच रहा है, उसी के बीच वेंडरों की कर्कश आवाजें भी सुनाई पड़ती हैं— 'चाय गरम', 'गरम छोले-कुलचे', 'दाल रोटी गरम', 'पान-बीड़ी सिगरेट'। उतरे हुए यात्री प्लेटफार्म छोड़ने की जल्दी में हैं। कोई कुली से सौदा कर रहा है, तो कोई बिना सौदा किए ही सामान उठवा रहा है। कोई अपना सामान और बच्चे सम्भाल रहा है—उन्हे इकट्ठा कर रहा है।

गाड़ी आई और चली गई। प्लेटफार्म का दृश्य पूर्ववत् हो गया। नृत्यांगना नृत्य प्रस्तुत कर पुनः अपने नारी रूप मे आ गई।

रेलवे-स्टेशन का अन्तिम दृश्य है—रेल पटरी का। गाड़ी यदि प्लेटफार्म पर न खड़ी हो तो लोग इनका प्रयोग दूसरे प्लेटफार्म पर जाने के लिए करते हैं—कट शॉर्ट का युग जो हुआ। गाड़ी आने पर पटरी भी सक्रिय हो जाती है। रेल-कर्मचारी जल-नल के स्तम्भों से कैन्वस की नलिकाओं से पानी भरना शुरू कर देते हैं। दूसरी ओर, रेल के पहियों का निरीक्षण शुरू हो जाता है। ज्वाइंटस् को लोहे के हथौड़े से बजाकर परखा जाता है। वस्तुतः लोहपथ की अपनी कहानी है, अपना दृश्य है।

इस प्रकार रेलवे-स्टेशन का दृश्य चांदनी चौक जैसा, वातावरण पिक्चर हाउस जैसा और व्यस्तता समाचार-पत्र के कार्यालय जैसी होती है।



सड़क दुर्घटना की झांकी

(ऑल इंडिया १९७९ : 'ए')

जनसंख्या की बढ़ोत्तरी और यातायात के साधनों का प्रचार दुर्घटनाओं के मुख्य कारण हैं। दस वर्ष पूर्व जितनी दुर्घटनाएँ होती थी, आज उससे दुगुनी होती हैं। दुर्घटनाएँ कम हों, सरकार ने इसके लिए अनेक उपाय किए हैं, किन्तु जैसे-जैसे सरकार सुरक्षात्मक उपाय बरतती जाती है, वैसे-वैसे दुर्घटनाएँ भी बढ़ती जाती हैं। समाचार-पत्रों मे प्रतिदिन प्रकाशित होने वाले 'दुर्घटनाओं से मृत्यु' के समाचार इस बात के प्रमाण हैं।

सड़क पर चलता हुआ बच्चा कार की चपेट में आया और भगवान् ने उस अविकसित कली को अपने दरबार में पेश करने की आज्ञा दे दी, ताँगे मे बैठे यात्री बातचीत में मस्त चले जा रहे हैं, अकस्मात् दिल्ली-परिवहन की बस टकराई और बातचीत बदल गई 'हाय ! हाय !' में।

ये दुर्घटनाएं न मनुष्य की उपयोगिता और महत्ता को देखती हैं और न समय और कुसमय को। कोई व्यक्ति किसी आवश्यक कार्य से जा रहा है, कितने उत्साह के साथ किसी स्वागत-समारोह या विवाहोत्सव की तैयारियाँ हो रही हैं, इन बातों से दुर्घटना को कोई वास्ता नहीं। जरा झटका लगने की देर है और मानव की जीवन-लीला समाप्त ! दुर्घटना को तो बलिदान चाहिए—चाहे वह कोई भी हो, किसी का लिहाज नहीं, मोहब्बत नहीं। हिन्दी की प्रसिद्ध कवयित्री सुभद्राकुमारी चौहान और तत्कालीन अखिल भारतीय जनसंघ के अध्यक्ष डॉ० रघुवीर कार-दुर्घटनाओं में जीवन-लीला समाप्त कर बैठे।

आइए, आपको एक हृदय-विदारक सड़क-दुर्घटना का वर्णन सुनाएं। दिल्ली में एक स्थान है तीस हजारी। उसके आगे सीधे चलें तो मोरीगेट का पुल आता है। इस मार्ग के बीच में बाँएँ हाथ को एक सड़क मुड़ती है, जो 'टेलिफोन एक्सचेंज' और 'न्यू कोर्ट्स' के मध्य से होती हुई निकल्सन पार्क की ओर चली जाती है। तीस हजारी से न्यू कोर्ट्स को मुड़ने वाली सड़क पर बीच में

यायायात प्रहरी 'सिपाही' के खड़े होने का गोल चबूतरा है। इसके आगे मोरीगेट पुल तक 'एक तरफ मार्ग' है।

रात्रि के आठ बजे थे। मैं जामा मस्जिद से दिल्ली-परिवहन की रूट नम्बर ग्यारह की बस में बैठा कमलानगर की ओर आ रहा था। मेरे लिए बस के हिचकोले माता की गोदी की हिलोरो को बदल जाते हैं और मैं प्रायः सो जाता हूँ। उस दिन भी मुझे निद्रा देवी ने धर दबाया।

चलती हुई बस में यात्रियों के चढ़ने-उतरने या झटके के साथ बस रुकने से निद्रा मे विघ्न पड़ता था और मैं एक बार आँख खोलकर देख लेता था कि बस कहाँ तक पहुँच गई है। फ़तेहपुरी बस-स्टॉप से चलकर बस मोरीगेट पर रुकी। यहाँ भीड अधिक थी। सब-यात्री चढ़ जाना चाहते थे। इधर, बस ठसाठस भरी हुई थी। अत. कन्डक्टर सबको लेना नही चाहता था। उसने दो-चार सवारियाँ ली और दो बार घंटी की 'टन-टन' की आवाज से बस को चलाने का आदेश दे दिया। ड्राइवर ने गाड़ी पहले गेयर में डाली और तेजी से चला दी। अब वह तेजी के मूड मे आ गया था।

बीस के स्थान पर लगभग चालीस आदमी खड़े थे। अतः धक्कापेल स्वाभाविक थी। परिणामतः मेरी नीद भी रफूचक्कर हो गई। इधर 'न्यू कोर्ट्स' बस स्टॉप पर एक नवदम्पती ने बस को रोकने का इशारा किया, किन्तु ड्राइवर ने दस और तेज कर ली। बस यहाँ से मुडती हुई 'टेलीफोन-एक्स्चेन्ज के पास सिपाही के चबूतरे के पीछे बनी ईंटों की लगभग सात-आठ फुट लम्बी और एक फुट ऊँची चबूतरी के छोर पर एक सेकिण्ड रुकी। तेज बस के अकस्मात् रुकने पर थोड़ा झटका लगा। पलक झपकते ही बस पुनः तेज हो गई और चल पड़ी सड़क को दो भागों में बाँटने वाली पटरी के दाहिनी ओर मोड़ काटने के लिए। गलत दिशा में बढ़ती हुई बस को देखकर मेरा दिल दहल-सा गया।

आत्मा की आवाज हृदय से सुना जा सकती है। इधर मेरा दिल अशात दुर्घटना की आशंका से धड़का ही था कि एकदम बस के टकराने और लोगों के चीखने-चिल्लाने की आवाज कानों में पड़ी। बस लड़खड़ाती हुई-सी एकदम रुक गई। बस के एकदम रुकने से यात्री एक-दूसरे के ऊपर गिर पड़े।

यात्री शनैः-शनै बस से बाहर निकले। मैं भी बाहर आया। देखा, बस और ताँगे का टक्कर हुई थी। ताँगे का घोड़ा मर गया था और उसके नीचे पड़ा था

उसका चालक। वह भी अपने प्रिय घोड़े के मोह मे प्राण त्याग चुका था। ताँगे में बैठी सवारियों मे दो व्यक्ति उछलकर दूर जा पड़े थे, किन्तु अगली सीट पर बैठे दो व्यक्ति टूटे ताँगे के नीचे पड़े कराह रहे थे।

इधर, बस में भीड अधिक होने के कारण जो लोग पायदान पर लटक रहे थे, उनमें से दो बस के झटके से नीचे गिर पड़े और एक के ऊपर से बस निकल गई। उसका शरीर खून से लथपथ पड़ा था।

यह सब-कुछ पलक झपकते हो गया। ताँगा कैसे और किस ढंग से टकराया, बस वाले ने बाँई ओर से न जाकर दाँई ओर से बस को क्यों निकाला? बीस के स्थान पर चालीस 'स्टैंडिंग' क्यों ली? पायदान पर यात्रियों को क्यो खड़ा रहने दिया गया? आदि तथ्यो को अब झूठी-सच्ची गवाहियों से तोड़-मरोड़कर बदला जाएगा। ये सब बातें मेरे दिमाग मे घूम गईं।

पाँच मिनट में पुलिस का 'फ्लाइंग स्क्वॉड' पहुंच गया। उसने बस, बस ड्राइवर और कण्डक्टर को अपने 'कब्जे' मे ले लिया। जनता को घटनास्थल से २०-२० गज की दूरी तक पीछे हटा दिया। फिर ताँगे मे बैठे चारो व्यक्तियों और कुछ बस-यात्रियो को रोक लिया।

मार्ग-विभेदक निर्जीव पटरी ड्राइवर की मूर्खता पर हँस रही थी। प्राय. सड़कों पर लिखी आदर्श पंक्ति 'दो क्षण की बचत के लिए जीवन को खतरे में न डालिए' बस-चालक का उपहास कर रही थी।

मरने वालों की सख्या तीन थी। मामूली चोटो वाले अब कराह रहे थे। मैं दुःखी हृदय से तीस हजारी की ओर चल पड़ा। आँखो में अश्रु-बिंदु अनजाने ही आ गए थे। ●

जलते हुए भवन का दृश्य

अग्नि मानव के लिए परम उपयोगी तत्त्व है। इसी की सहायता से हम भोजन पकाते हैं। इसी के द्वारा शरीर को ताप प्रदान किया जाता है। सर्दियों में तो अग्नि बहुत ही प्रिय लगती है। उक्ति प्रसिद्ध है—'अमृतं शिशिरे वह्निः' अर्थात् शिशिर ऋतु (सर्दी के मौसम) में अग्नि अमृत के समान होती है। इसके अतिरिक्त अग्नि की सहायता से अनेक और कार्य भी होते हैं। भाप से चलने वाली गाड़ियों और मशीनों का जीवन अग्नि पर ही निर्भर रहता है। कूड़े-करकट को जलाकर अग्नि वातावरण को स्वच्छ रखने मे बड़ी सहायता करती है। बड़वानल के रूप मे समुद्र के अन्दर विद्यमान अग्नि उसे सदा मर्यादा में रखती है और जठरानल के रूप में प्राणियों के उदर में विद्यमान अग्नि भोजन को पचाने में सहायक होती है। इस प्रकार अग्नि हमारे लिए अत्यन्त उपकारी तत्त्व है।

प्रकृति का अटल नियम है कि जहाँ फूल होते हैं, वहाँ काँटे भी होते हैं। यह नियम अग्नि पर भी लागू होता है। अर्थात् जो अग्नि हमारे लिए अनेक उपकार करती है, उसी के द्वारा कभी-कभी भारी अहित भी हो जाता है। अग्नि द्वारा यह अहित तब होता है, जब वह मानव के लिए उपयोगी वस्तुओं को अपना ग्रास बना लेती है। प्रायः देखा जाता है कि अग्नि कभी-कभी किसी विशाल भवन को या किसी बाजार की कई दुकानों को भस्म कर देती है। जब अग्नि इस प्रकार अवांछित स्थानों पर भड़कती है, तब बड़ा ही वीभत्स दृश्य उपस्थित होता है। एक बार मुझे ऐसा ही वीभत्स दृश्य देखने को मिला। उसका वर्णन मैं यहाँ कर रहा हूँ।

मैं एक दिन स्कूल से घर आ रहा था कि रास्ते में घंटी बजने की आवाज आई। उस घंटी की आवाज को सुनकर लोग कह रहे थे—'हट जाओ, हट जाओ, सड़क खाली कर दो।' एक मिनट बाद सामने से लाल रंग की तीन-चार मोटरें गुजरीं। लोग मोटरों के साथ-साथ उसी दिशा मे भाग रहे थे। मैं

समझ गया कि अवश्य ही कहीं आग लगी है। मेरी इच्छा आग को देखने की हुई। मैं भी जिधर मोटरें गईं थी, उस ओर चल पड़ा।

आधा फर्लांग भी नही चला हूँगा कि दाहिनी ओर की गली से भयंकर शोर सुनाई दिया और आग की लपटें नजर आईं। आग देखकर तो मेरी आँखें फटी ही रह गई। ऐसी आग मैंने पहले कभी न देखी थी। आग एक तीनमंजिले मकान में लगी हुई थी।

आग तीसरी मंजिल पर लगी थी, किन्तु पहली मंजिल के लोग जल्दी-जल्दी अपना सामान निकाल रहे थे। दूसरी मंजिल पर कुछ सामान बाकी था, किन्तु उसे निकालना खतरे से खाली न था। तीसरी मंजिल में धुआँधार आग लगी हुई थी। मकान के चारो ओर २५-३० गज तक पुलिस ने घेरा डाला हुआ था।

उधर आग बुझाने वाले लोगों का बुरा हाल था। उन्होंने आग को तीन तरफ से घेर रखा था, किन्तु आग काबू में न आ रही थी। वे एक स्थान से आग बुझाते, उधर दूसरी खिड़की जल उठती। इस प्रकार वे निरन्तर आग से जूझ रहे थे। इसी बीच एक दर्दनाक घटना घटा। दूसरी मंजिल पर रहने वाली एक स्त्री को ध्यान आया कि उसका चार वर्षीय पुत्र अन्दर सोता हुआ रह गया है। फिर क्या था? उसने चिल्ला-चिल्लाकर आसमान सिर पर उठा लिया। उसके चीत्कार से पिघलकर आग बुझाने वाले इन्सपेक्टर ने उस स्त्री से वह कमरा, जिसमें उसका बालक सो रहा था, पूछा और ढाढस बँधाया, परन्तु स्त्री को तसल्ली कब होने वाली थी।

इन्सपेक्टर ने अपने लोगों को समझाया कि वे कमरे के ऊपर की आग को बुझाएँ और यह ध्यान रखें कि इस कमरे तक आग न पहुँचने पाए। आग बुझाने वाले आदमियों ने बड़ी हिम्मत और बहादुरी से उस सारी आग पर काबू पा लिया। काबू पाते ही उन्होंने अपनी सीढ़ी लगाई और ऊपर चढ़ गए।। बच्चा चारपाई पर पड़ा हुआ था, किंतु कमरे में धुआँ भरा होने के कारण कुछ नजर नही आ रहा था। फिर भी इन्सपैक्टर ने उसे ढूँढकर उठाया और कन्धे से लगा कर बाहर निकाल लाया। किस्मत का धनी इन्सपैक्टर बाल-बाल बच गया, जैसे ही वह बच्चे को लेकर नीचे उतरा, वैसे ही उस कमरे की छत नीचे गिर पड़ी। बच्चा बेहोश था, उसे तुरन्त अस्पताल भेज दिया गया।

जब आग बुझ गई-तो, आग बुझाने वाली मोटरें घंटा टनटनाती हुई वापस लौट चली। इधर आग का तमाशा देखने वाली भीड़ के ठट्ट-के-ठट्ट लगे हुए थे। अब पुलिस उस भीड़ को तितर-बितर करने में लगी थी। यह देखकर मैंने भी भारी मन से अपने घर की राह ली।



वर्षा ऋतु में उमड़ते-उफनते नदी-नाले

(ऑल इंडिया १९७९ : 'बी')

वर्षा ऋतु में उमड़ते-उफनते नदी-नाले मर्यादा-हीनता के प्रतीक हैं, प्राणि-मात्र के विनाशक हैं, मानव के लिए विपत्ति ढाने वाले हैं, खेतों-खलिहानों को बरबाद करने वाले हैं, यातायात को अवरुद्ध करने वाले हैं, जीवन और जगत् को संकट के प्रलय में धकेलने वाले हैं।

नदी-नाले-वर्षा के अभाव में जल-धन से विहीन होने से कंगाल हो गए थे। उनका जल सिकुड़ता-सिमटता जा रहा था, मानो नववधू ससुराल-आकर संकोच-वश अपने वस्त्रों को समेट रही हो। अपनी प्यास बुझाने के लिए आने वाले पशु-पक्षियों और स्नान तथा जल-क्रीड़ा निमित्त आए मानवों का नदी अब स्वागत नहीं कर पाती थी। वे इसी प्रकार दुःखी थी, जैसे धनवान निर्धन होने पर याचक को कुछ न दे पाने पर दुःखी होता है।

वर्षा हुई। 'सिमिट-सिमिट जल भरहिं तलावा'। नदी नालों मे जल बहने लगा। सूखा नदी-तल जल-मग्न हो गया। उसकी नग्नता जल रूपी वस्त्रों ने ढँक दी। नाले, जो जल के अभाव के कारण शान्त पड़े थे, वर्षा के आगमन पर बहने लगे। वर्षा का यौवन प्रकट होता गया। वर्षा बढ़ती गई। नदी-नालों का जल उफनने लगा। तट को स्पर्श करने लगा। नदी-नाले जल से उसी प्रकार भर गए, जैसे सज्जन के पास सद्गुण आते हैं अथवा वर्तमान बेकारी के युग में किसी विज्ञापन के उत्तर में बेकारों की अर्जियों से कार्यालय भर जाते हैं।

पूर्णयौवना वर्षा पर जवानी की चमक आई; मुख-मंडल मे उल्लास आया। नदी-नालों का जल उमड़ने लगा, उफनने लगा; इतराने-इठलाने लगा। उनका जल तट की मर्यादा को तोड़ चला। मर्यादा-भंग विपत्ति और विनाश का सूचक होता है। 'साकेत-संत' महाकाव्य के रचयिता श्री बलदेवप्रसाद ने चेता-वनी दी है—

मर्यादा मे ही सब अच्छे, पानी हो वह या कि हवा हो।
इधर मृत्यु है, उधर मृत्यु है, मध्य मार्ग का यदि न पता हो॥

उमड़ते-उफनते नदी-नाले तट के ऊपर से बहते हैं, तो पहले अपने समीपस्थ स्थान को तृप्त करते हैं। फिर सांप की भांति बल खाते हुए आगे ही आगे बढ़ते जाते हैं। बहाव ज्यो-ज्यो बढ़ता जाता है, पानी फैलता जाता है, खेत-खलिहानो, गली-कूंचो मे पहुंचने लगता है। निकासी के अभाव मे जल इकट्ठा होने लगता है। खेती और खेत बरबाद हो जाते हैं। कच्चे मकान टूटकर गिर पड़ते हैं। झुग्गी-झोपड़ी वालो का तो और भी बुरा हाल होता है। सड़कें जल-मग्न हो जाती हैं। मार्ग लुप्त हो जाता है। आवागमन मे बाधा पड़ती है। घरो से बाहर निकलना कठिन हो जाता है। बिजली फेल हो जाती है। अंधकार कोढ मे खाज का काम करता है। पीने के पानी की व्यवस्था गड़बड़ा जाती है। स्वच्छ जल का अभाव हो जाता है।

नदी और नाले वर्षा ऋतु के जल से शायद इतना न इठलाएं, इन्हें तो इधर-उधर के जल से जो 'ओवर फ्लडिंग' होती है, उसके कारण परेशानी अनुभव होती है। घरो, बाजारो का जल नालो में गिरता है। नालो का जल अन्ततः नदी मे पहुंचता है। अनेक बार सचयन-स्थान मे विस्फोटक स्थिति होने पर जल छोडा जाता है। वह जल नदी-नालो को उफनाता है, जल-प्लावन का दृश्य उपस्थित करता है। ताजेवाला हैडवर्क्स से छोड़ा गया जल यमुना नदी मे बाढ़ का कारण बनता है।

दिल्ली-वासियों को स्मरण होगा —नजफगढ नाले मे उफनने से अनेक गाँवो मे जो तबाही मची थी, बादली के समीप नाला नं० २ ने दिल्ली की मॉडर्न कॉलोनी 'मॉडल टाउन' मे जो बरबादी की थी, यमुना के यौवन ने उत्तर-प्रदेश तक जो हानि पहुँचाई थी वह सब नदी-नालो के उमड़ने-उफनने का ही परिणाम था।

वर्षा मे मक्खी, मच्छर, विषैले जीव-जन्तु वैसे ही पैदा हो जाते है, किन्तु नदी-नालो के उफनने से इनकी संख्या मे कई गुणा वृद्धि हो जाती है। परिणामतः मानव का जीना दूभर हो जाता है। मच्छरों के काटने से शरीर सूज जाता है, बिना बुलाए बुखार, टाइफाइड का आगमन हो जाता है। दिन का काम और रात की नीद हराम हो जाती है। मक्खियों की भिनभिनाहट खाने-

पीने की चीजों में रोग के कीटाणु फैला देती है। मक्खियां प्राणिमात्र को न चैन से बैठने देती हैं, न सोने देती है और न काम करने देती है।

उमड़ते-उफनते नदी नाले प्रकृति-प्रकोप के चिह्न है; जगती को दण्डित करने का साधन हैं; नियमित जीवन में परिवर्तन का माध्यम हैं; प्रकृति-प्रकोप मे प्रभु को स्मरण कराने का निमित्त बनते हैं।



दिल्ली के प्रगति-मैदान में आयोजित प्रदर्शनी

(दिल्ली १९८१ : 'ए')

किसी प्रदर्शनी का आँखों देखा वर्णन

(ऑल इंडिया १९८२ 'ए')

भारत के उच्चतम न्यायालय की बाईं ओर लालबहादुर शास्त्री मार्ग पर एक विशाल मैदान है, जिसे 'प्रगति-मैदान' के नाम से जाना जाता है। वस्तुतः यह मैदान प्रदर्शनी-स्थान है। राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर यहाँ प्रदर्शनियाँ लगती रहती हैं। प्रदर्शनी प्रगति की सूचक होती है। अतः इस मैदान का नाम 'प्रगति मैदान' रखा गया है।

फरवरी १९८४ का रविवार। पिताजी ने प्रातः ही घोषणा कर दी कि आज पुस्तक मेला देखने जाएँगे। अतः रविवार होते हुए भी भोजन अपेक्षा-कृत जल्दी बना। खा-पीकर, विश्राम करने के उपरान्त ग्यारह बजे के लगभग हम चल पड़े प्रदर्शनी देखने। पिताजी ने बड़ी बहन, माताजी और मुझे साथ लिया। टैक्सी की, और चल दिए प्रगति-मैदान के लिए। कुछ ही देर में हम प्रगति मैदान पहुँच गए।

प्रवेश टिकट द्वारा था। टिकट-घर की खिड़की से चार टिकट खरीदे। टिकट खरीदने में पन्द्रह मिनट लग गए। कारण, टिकट खरीदने वालों की 'क्यू' बहुत लम्बी थी। कमाल हो गया, भारत में पुस्तक-प्रदर्शनी देखने का इतना शौक! अनेक स्थलों पर मेले लगते हैं। वहाँ कोई प्रवेश-शुल्क भी नहीं, उल्टे सेल-तमाशे और खाने-पीने की चटपटी चीजें भी होती हैं। इस आकर्षण का विसर्जन और पुस्तक-मेले के प्रति आकर्षण!

पुस्तक-प्रदर्शनी के चार भाग थे। सर्वप्रथम हमने प्रदर्शनी का वह भाग देखा, जहाँ भारत में १९८२-८३ में प्रकाशित पुस्तकों को प्रदर्शित किया गया था। सभी भाषाओं तथा सभी विषयों की श्रेष्ठ पुस्तकों का विशाल प्रदर्शन। विषय-वैविध्य तथा कलात्मक-सौन्दर्य देखकर लगा कि भारत ज्ञान-वर्धन के माध्यम में

बड़े राष्ट्रों के समकक्ष खड़ा है। विज्ञान और तकनीकी की पुस्तकें प्रायः आंग्ल भाषा में थी।

दूसरा भाग था भारतीय भाषाओं का। इस मंडप मे सभी भारतीय भाषाओं के प्रकाशकों ने अपने प्रकाशनों की हैसियत के अनुसार स्टैंड अथवा स्टॉल पर प्रदर्शित किया हुआ था। पुस्तको के रंगीन तथा आकर्षक नाम देखकर हम लोग पुस्तक उठाते, उसे उलटते-पलटते और अच्छी लगती तो खरीद लेते। एक चीज बिना मांगे मिल रही थी—प्रकाशको के सूची-पत्र। इस मंडप से हमने २-३ हास्य रस की, २-३ निबन्धो की तथा २-३ सामाजिक विषयो की पुस्तकें खरीदी।

इस मंडप को देखने में समय लगा। पिताजी के मिलने वाले, माताजी की शिष्याएँ, बहिन के सहपाठी और मेरे मित्र मिले। मिलने पर चेहरे मुस्करा उठते। किसी से हाथ मिलाकर, कभी हाथ जोड़कर, कभी चरण-स्पर्श कर अभिनन्दन करते। एक-दो मिनट गपशप करते।

यह मडप भारतीय संस्कृति और सभ्यता का नमूना था। वेश-भूषा आचार-व्यवहार, बोल-चाल के सभी रूप और रंग इस मडप में देखने को मिलते थे। बंगाल, मद्रास, महाराष्ट्र, पंजाब तथा उत्तरी भारत की नारियो की धोती बाँधने और ओढने मे विविधता देखकर लगा सचमुच हम भारतीय है। विविधता मे भी एकरूपता के दर्शन हुए।

एक बात बताना मैं भूल गया। जिस-जिस स्टैंड या स्टॉल पर बच्चों की पुस्तकें प्रदर्शित थी, वहाँ भीड भी अधिक थी और बिक्री भी। सर्वाधिक भीड 'इण्डियन बुक हाउस' या 'चिल्ड्रन बुक ट्रस्ट' के स्टॉल पर थी। बच्चो के लिए बहुरंगी पुस्तकें, किन्तु बहुत सस्ते मूल्यों मे ये दो ही प्रकाशक बेच रहे थे।

सर्वाधिक निराश थे वे लोग, जो भारत की राष्ट्र-भाषा हिन्दी का मंडप द्वितीय विश्व-पुस्तक-मेले में देख चुके थे। इस चतुर्थ विश्व-पुस्तक-मेले मे हिन्दी-प्रेमी परस्पर मिलते, तो हिन्दी-मंडप के अभाव को महसूस करते। विश्व-पुस्तक मेले मे 'हिन्दी-मंडप' का नामोनिशां मिटाने के लिए भारत-सरकार के आयोजकों को दोष देते। मेरे पिताजी ने एक प्रकाशक से इस विषय मे बातचीत की। उसने बताया कि 'अखिल भारतीय हिन्दी-प्रकाशक-संघ', जो इस आयोजन का भागीदार है, अब प्रगतिशील हो गया है। 'हिन्दी-मंडप' निर्माण में उन्हे साम्प्रदायिकता

की बू आती है। इसलिए यहाँ का सभी कार्य 'भारतीय-भाषामंडप' के नाम पर होता है। पिताजी के मुँह से एक आह निकली, 'माँ-भारती के पैर मे कुल्हाडा मारने वाले ये हिन्दी के प्रकाशक।'

पिताजी उदास हो गए। अत: भारतीय भाषा-मडप को छोड चले। पहुँचे खाने-पीने के कम्पाउण्ड मे। गरम-गरम चाय ने उदासी समाप्त की। समोसे और गुलाबजामुन ने उत्साह प्रदान किया।

अब आए अंग्रेजी-मडप मे। अंग्रेजी-मडप मे सर्वत्र भीडभाड़ थी। कलात्मक दृष्टि से भारतीय प्रकाशनों से सहस्रों गुणा अधिक सौन्दर्य। बच्चों के लिए बहुरंगी और वढिया पुस्तके देखकर तो मन ही नही भरता था। माताजी बार-बार कहती थी, 'बेटा जल्दी करो।' पर बेटा जल्दी तो शरीर से कर सकता है, मन तो पुस्तको मे अटका है। यहाँ हमने १५-२० पुस्तकें खरीदी। पिताजी ने करेन्ट टॉपिक्स पर तथा माताजी ने शिक्षा-मनोविज्ञान पर दो चार पुस्तके ली।

अंग्रेजी-मडप मे अंग्रेजी भाषा के अतिरिक्त अन्य विषयो की बहुत पुस्तकें देखी। इस मडप की विशालता, साज-सज्जा, प्रकाशको के परिधान, बातचीत करने का ढग, खरीदी गई पुस्तके वढिया लिफाफो मे डालकर देने की प्रणाली, सूचीपत्रो की अपेक्षाकृत विशालता देखकर लगा कि कहाँ राजा भोज और कहाँ गंगू तेली। एक ओर भारतीय भाषा-मंडप की दरिद्रता और खरीददारो का अभाव तथा दूसरी ओर अंग्रेजी मडप की शान-शौकत, चहल-पहल और खरीदारी।

आगे बढे तो देखा विदेशी-मडप। संसार के विभिन्न भाषा-भाषियों का संगम-स्थल। रूस, अमरीका, ग्रेट-ब्रिटेन, फ्रास,-जर्मनी और जापान के रगीन स्टॉल। यहाँ भीड़-भाड़ बहुत कम थी, किन्तु बिक्री बहुत अधिक। लगता था ज्ञान के पिपासु और कॉलिज-पुस्तकालय विदेशी ज्ञान-विज्ञान की पुस्तकों के क्रय में होड-बढ हैं।

सायं ७.३० बज चुके थे। चल-चलकर पैर जवाब दे चुके थे, परन्तु मन देख-देखकर नही भर रहा था, उसकी तमन्ना थी, और देखा जाए। 'समरथ को नहिं दोष गुसाईं।' मन को झुकना पड़ा। हम बाहर निकल आए। भाई-बहन पुस्तको के पैकिट उठाए हुए थे, तो माताजी-पिताजी सूचीपत्रों का ढेर।



(क) आँखों देखे किसी मेले का वर्णन

(ऑल इंडिया १९८१ : 'बी')

(ख) वह मेला जो मैंने देखा

(ऑल इंडिया १९७९ : 'बी')

मेला मनोरंजन का साधन है। जीवन मे उल्लास और उत्साह का प्रदाता है। परिचितों, मित्रों तथा सम्बन्धियो का मिलन-स्थल है। ज्ञानवर्धन का माध्यम है। संस्कृति और सभ्यता का संगम है। व्यापारिक वस्तुओ के प्रचार-प्रसार और बिक्री-वृद्धि द्वारा आय का स्रोत है।

(इससे आगे 'दिल्ली के प्रगति मैदान मे आयोजित प्रदर्शनी' लेख की प्रथम ५ पंक्तियाँ छोडकर 'फरवरी १९८४ का रविवार ।' से पूरा निबन्ध लिख दीजिए। जहाँ 'प्रदर्शनी' शब्द आए, वहाँ 'मेला' कर दीजिए।)



किसी समारोह का आँखों देखा हाल

(ऑल इंडिया १६८० : 'ए')

१० जनवरी, १६८२ का रविवासरीय अवकाश-दिवस। दिल्ली के हिन्दी शिक्षा-जगत् मे एक महत्त्वपूर्ण दिन। माँ-भारती के अनन्य उपासक शिक्षकों को उनकी श्रेष्ठ सेवाओ के उपलक्ष्य मे सम्मान का दिन। सूर्य-प्रकाशन के संचालकों का हिन्दी-शिक्षको के ऋण से उऋण होने का दिन।

सूर्य-प्रकाशन ने प्रति वर्ष दिल्ली के इक्कीस श्रेष्ठ हिन्दी-अध्यापक-अध्यापिकाओं को सम्मानित करने का १६७६ मे व्रत लिया था। फलतः २५ जनवरी, १६८० को इसका प्रथम समारोह आयोजित किया गया। अध्यापक-अध्यापिकाओं ने इस आयोजन की हृदय से सराहना की।

१० जनवरी, १६८२ का कार्यक्रम सायं ३ बजे दिल्ली पब्लिक लायब्रेरी के हॉल मे आयोजित किया गया था। हॉल के मच पर माइक, कुर्सियो, पर्दों की व्यवस्था एक श्रेष्ठ मच का परिचय दे रहे थे। ढाई बजे से ही अध्यापक-अध्यापिकाओ का आगमन शुरू हो गया था। सूर्य-प्रकाशन की ओर से द्वार पर स्वागत कर रहे थे सर्वश्री तनसुखराम गुप्त, सूर्यकान्त गुप्त तथा अनिलकुमार गुप्त। अध्यापक-चयन समिति के अध्यक्ष श्री गणेश शर्मा शास्त्री सम्मान के लिए मनोनीत अध्यापक-अध्यापिकाओं को बधाई दे रहे थे। मंगल-मिलन, उत्साहपूर्ण स्वागत, स्निग्ध मुस्कान का आदान-प्रदान, कर-बद्ध नमस्कार, हाथ मिलाकर अभिनन्दन चल ही रहा था कि पौने तीन बजे समारोह के मुख्य स्वागतकर्ता मूर्धन्य साहित्यकार, हरिजन-उद्धारक श्री वियोगी हरि पहुँच गए। उनके साथ थे समारोह के अध्यक्ष आलोचक-प्रवर डॉ० नगेन्द्र। श्री तनसुख राम गुप्त ने आगे बढकर दोनो साहित्यकारो के चरण-स्पर्श कर उनका अभिनन्दन किया। बाद मे द्वार से हाल तक की सम्पूर्ण गैलरी मे अध्यापक-वर्ग ने हाथ जोडकर, शीश झुकाकर या चरण-स्पर्श कर उनको प्रणाम किया।

हॉल लगभग भर चुका था। घड़ी भी निश्चित समय की सूचना दे रही

थी। परिणामतः गुप्त जी और गणेश जी ने साहित्यकार-द्वय से मंच पर पधारने की प्रार्थना का। उनके मंच पर पहुँचते ही उपस्थित शिक्षको द्वारा तालियों की गड़गड़ाहट से उनका स्वागत किया गया। सर्वश्री सूर्यकान्त गुप्त तथा अनिलकुमार गुप्त ने श्री वियोगी हरि, डॉ० नगेन्द्र तथा श्री गणेश शर्मा शास्त्री को फूल-मालाएँ पहनाकर स्वागत किया।

मच-सचालन का भार वहन किया श्री गुप्त जी ने। सर्वप्रथम उन्होने अपना छपा हुआ वक्तव्य पढकर इस आयोजन के उद्देश्य और महत्त्व पर प्रकाश डाला।

तदनन्तर स्वागत-कार्यक्रम शुरू हुआ। पहला नाम था श्रीमती लज्जावती गुप्ता का। वे मच पर आई। कुमकुम, अक्षत तथा पुष्पहार के पश्चात् जब शॉल-नारियल भेट करने की प्रक्रिया शुरू हुई तो, 'विद्या ददाति विनयम्' का आदर्श स्वयमेव उपस्थित हो गया। डॉ० नगेन्द्र ने माइक पर आकर घोषणा की 'यद्यपि यह कार्य मुझे सम्पन्न करना था, किन्तु वियोगी जी के होते मैं इस कार्य को नही करना चाहूँगा। वे वरिष्ठ हैं, महान् हैं, उनके द्वारा ही यह कार्य सम्पन्न होना चाहिए।' शिक्षको ने डॉ० नगेन्द्र की इस महानता की करतल ध्वनि से प्रशसा की। वियोगीजी ने सहर्ष इस घोषणा का स्वागत किया और अपने पवित्र कर-कमलों से श्रीमती गुप्ता को शॉल तथा नारियल देकर सम्मानित किया।

गुप्त जी एक-एक करके शिक्षको का नाम ले रहे थे और मनोरजंक ढग से उनका परिचय दे रहे थे।

श्रीमती लज्जावती गुप्ता और श्रीमती दमयन्ती बाला का परिचय देते हुए उन्होने बताया कि दोनो गत वर्ष रिटायर हुईं। दोनो की पारिवारिक परिस्थिति प्रायः समान हैं। श्रीमती गुप्ता का एक मात्र पुत्र हवाई दुर्घटना मे काल-कवलित हुआ, तो श्रीमती बाला के पुत्र है ही नही। दोनो की एक-एक पुत्रियाँ हैं, जो विवाहित होकर अपने-अपने घर चली गईं।

आइए! आइए! कौशल्या जी धूपर। गत वर्ष समारोह के लिए घर से चलने लगी तो पैर फिसल गया, मास फट गया और ये तीन मास तक विस्तर पर पडी रही।

जव श्री भीष्मप्रताप शास्त्री मच पर आ रहे थे, तो गुप्त जी ने परिचय कराया 'देखिए निराला जी आ रहे है। फोटो स्टेट कॉपी ऑफ निराला।'

ये है श्रीमती चन्दा। धन्य है इनकी पारिवारिक परम्परा। इनकी मास

भी पी० जी० टी० हिन्दी थी, अब ये हैं —हिन्दी की वरिष्ठ अध्यापिका।

आइए सरदार जी —जैसे ही श्रीमती अवतारकौर मंच पर आई, तो दर्शकों को आश्चर्य हुआ। जिज्ञासा शान्त करते हुए श्री गुप्त ने बताया कि जब ये 'प्रभाकर' परीक्षा की तैयारी कर रही थी, तब इनके गुरु प्रेम से इन्हें 'सरदार जी' कहते थे। और उधर 'सरदार जी' के गुरु श्री गणेश शर्मा शास्त्री उन्हें हार पहना रहे थे।

हास्य-विनोद मय परिचय के साथ-साथ हर अध्यापक-अध्यापिका का कुमकुम, अक्षत तथा हार से स्वागत होता रहा, शॉल और नारियल से उन्हें सम्मानित किया जाता रहा।

हर अध्यापक-अध्यापिका के सम्मान में दर्शक-शिक्षणगण तालियों की गड़गड़ाहट से उनका स्वागत करते। उधर फोटोग्राफर इस दृश्यावली को अपने कैमरे में बंद कर रहा था। तीसरी ओर, उपस्थित शिक्षकों में मिठाई बाँटी जा रही थी।

इस बार के सम्माननीय अध्यापक थे —श्रीमती लज्जावती गुप्ता, श्रीमती दमयन्ती बाला, श्री ओमप्रकाश कौशिक, श्री गणपति शर्मा, सुश्री कौशल्या धूपर, डॉ० नेत्रपाल गौतम, श्री सालिगराम शर्मा, श्री सुन्दरलाल शर्मा डोभाल श्रीमती अवतारकौर गम्भीर, श्री ओप्रकाश शर्मा 'कवि' श्रीमती निर्मल अरोड़ा, श्री भीष्मप्रताप शास्त्री, श्रीमती दमयन्ती चन्द्रा, श्री राजेश भास्कर, श्रीमती प्रेमलता गोयल, श्री रामकिशन गुप्त, श्रीमती निर्मल सेठ, श्रीमती कौशल्या गुप्ता, श्रीमती सूरज बाला बत्तरा, श्री रतनलाल और श्री प्रकाश दीक्षित।

स्वागत-समारोह कार्य-क्रम के उपरान्त गुप्त जी ने श्री वियोगी हरि जी से आशीर्वाद देने की प्रार्थना की। वियोगी जी ने सूर्य-प्रकाशन के इस कार्य की प्रशंसा करते हुए हिन्दी-अध्यापको को अपना गुरुतर कर्त्तव्य सफलतापूर्वक निभाने और हिन्दी-हित के प्रति सदा सचेत रहने की चेतावनी दी।

अत मे डॉ० नगेन्द्र ने अध्यक्षीय भाषण दिया। उन्होंने इस आयोजन, इसके प्रबन्ध, इसकी विशालता, महानता पर सूर्य-प्रकाशन को आशीर्वाद दिया।

गुप्त जी ने श्री वियोगी हरि जी तथा डॉ० नगेन्द्र जी का आभार स्वीकार करते हुए कृतज्ञता प्रकट की और उपस्थित अध्यापक-अध्यापिकाओ को धन्यवाद दिया।

✲

स्वतन्त्र भारत में अंग्रेजी का मोह

(दिल्ली १९८३ : 'ए')

स्वतन्त्र भारत में अंग्रेजी का मोह आग्ल सभ्यता तथा संस्कृति के प्रति आकर्षण का परिचायक है, जीवन और जगत मे सफलता की कुजी है, व्यक्तित्व की महानता का द्योतक है, अहं का वर्धक है, गर्व का कारण है, गौरव का प्रतीक है। ज्ञान-विज्ञान के द्वार पर दस्तक है और है विश्व से सम्पर्क का एकमात्र विश्वसनीय माध्यम।

अंग्रेजी भाषा का ज्ञान विशाल क्षेत्र का वातायन है। अंग्रेजी साहित्य अत्यन्त समृद्ध है। अंग्रेजी लेखकों का चिन्तन बहुत प्रखर है। नये-नये विषयो मे अन्वेषण की प्रवृत्ति उनका स्वभाव है। फलतः उनके ज्ञान-विज्ञान के अपार कोश, साहित्य की अमूल्य कृतियाँ, कला की अनुपम उपलब्धियाँ विश्व-मानव के ज्ञान प्रदाता हैं। आज का मानव अंग्रेजी ज्ञान के बिना अधूरा है, अपग है। इसलिए अंग्रेजी के प्रति मोह स्वाभाविक है।

अंग्रेजी भाषा विश्व की बहुत बडी जनसख्या द्वारा बोली जाने वाली भाषा है। यहाँ तक कि संयुक्त-राष्ट्र-संघ की प्रमुख भाषा है। अत विश्व के देशो से सम्पर्क और सम्बन्ध का माध्यम है। आज कोई भी देश विश्व से सम्बन्ध विच्छेद कर जीवित नही रह सकता। अतः विश्व-सम्बन्धों के लिए अंग्रेजी के प्रति मोह स्वाभाविक है।

भारत स्वतन्त्र हुआ। सोचा था—स्वतन्त्र देश में अपनी भाषा, भूषा, संस्कृति का वर्चस्व होगा। आत्मीयता के दर्शन भारत मे होंगे, किन्तु आंग्ल सभ्यता और संस्कृति की चकाचौंध ने, अंग्रेजी के विचार-दर्शन, सोचने-समझने और सम्पर्क ने भारतीय आत्मा को कुचल दिया। परिणामतः भारतीयता लुप्त हो गई।

भारत में अंग्रेजी-मोह के चार प्रमुख कारण बने। एक, देश की राजकीय कार्य-प्रणाली अंग्रेजी में संचालित थी। अतः अंग्रेजी मानसिकता का वर्चस्व था। वे दैनिक व्यवहार में हिन्दी को अपनाने के लिए तैयार न थे। अभ्यस्त भाषा को

छोडने के लिए तत्पर न थे ।

दूसरे, देश-संचालन के विशेष पदों और पद्धतियों पर अहिन्दी भाषी अधिकारियों का अधिकार था। उन्हें हिन्दी तथा उत्तर भारतीय जीवन-पद्धति से घृणा थी। अत उन्होने छाती ठोककर हिन्दी से लोहा लिया, जिसमें वे सफल भी हो गए।

तीसरे, राजनीतिज्ञो को हिन्दी-संचालन में उत्तर-दक्षिण का बँटवारा दिखाई देने लगा। उन्होने 'हिन्दी-लादने' जैसी गालियाँ देना शुरू कर दिया। उन्हें हिन्दी मे साम्प्रदायिकता की बू आने लगी। इस मानसिकता ने हिन्दी के समर्थकों को अंग्रेजी के गुणगान गाने को बाध्य किया। अपने बच्चों को अर्थात् आगे आने वाली पीढी को कॉन्वेण्ट की दीक्षा देकर उनमें अंग्रेजी के प्रति मोह-जन्म से ही उत्पन्न कर दिया।

चौथे, रही-सही कसर पूरी कर दी लोकतन्त्र के देवता पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने। पण्डित नेहरू ने मृत्यु से पूर्व अंग्रेजी के सिंहासन की नीव सुदृढ़ कर दी। अंग्रेजी को यह 'पावर' दे दी है कि भारत का एक भी राज्य जब तक हिन्दी को नही चाहेगा, वह राज्यभाषा नही बन सकती। लोकतन्त्र में बहुमत के सिद्धान्त की सरेआम हत्या कर दी गई।

पापी पेट के लिए जीविका चाहिए। जीविका चाहिए, तो अंग्रेजी का ज्ञान अनिवार्य है। राज-काज की भाषा अंग्रेजी है। अतः नौकरी के लिए इसका ज्ञान अनिवार्य शर्त है। व्यापार-वर्धन करना है—अंग्रेजी जरूर चाहिए। नौकरी में तरक्की करनी है, अंग्रेजी चाहिए। अफसर से काम निकालना है, अंग्रेजी बोलिए-लिखिए। अतः अंग्रेजी भारत मे उदरपूर्ति का साधन बनी, उन्नति का माध्यम बनी। मोह का कारण बनी।

विवशतावश जीवन में अपनाई गई अंग्रेजी जीवन और संस्कारों पर छा गई। माता, पिता, चाचा का स्थान मम्मी, मामा, डैडी, अंकिल ने ले लिया। पाठशालाओं और स्कूलों के भारतीय वातावरण मे दमघोटू दुर्गन्ध आने लगी। एक क्लर्क का बच्चा भी कॉन्वेण्ट और पब्लिक स्कूल का द्वार खटखटाने लगा। मोमबत्तियाँ (चिराग) बुझाकर जन्म-दिन मनाया जाने लगा। धोती-कुर्ता-पाजामा नाइट ड्रेस बन गए।

अंग्रेजी का मोह नस-नस में व्याप्त हुआ, रग-रग में संचरित हुआ। अंग्रेजी शैली के नृत्य-सगीत तथा यौन-सम्बन्धों के पखों पर तैरते हुए आनन्द-लोक दिखाई

देने लगा, क्लब-सभ्यता में परमानन्द की प्राप्ति जान पड़ने लगी। फलतः अंग्रेजी का मोह सेक्स की असंतुष्टि का ज्वार-भाटा बनकर छा गया है, और देश की तरुणाई को अज्ञान, भ्रान्ति तथा दुःख के सागर मे डूबो रहा है।

राजकीय स्तर पर अंग्रेजी का प्रचार परोक्ष रूप मे जनता को मोहग्रस्त कर रहा है। अंग्रेजी सीखने, बोलचाल की भाषा बनाने तथा जीवन मे अपनाने के लिए प्रेरित कर रहा है। दूरदर्शन के महत्त्वपूर्ण कार्यक्रम, ज्ञान-विज्ञान की ज्ञानवर्धक वार्ताएँ विश्व की आश्चर्यजनक उपलब्धियो, नाटकों, प्रहसनों तथा खेलो का प्रसारण अंग्रेजी मे ही होता है।

अंग्रेजी बोलने वाले में अहम् का विकास होता है। उसके व्यक्तित्व मे प्रभावोत्पादकता आती है। गर्व उसके चेहरे से टपकता है। हीनता उसे छू नही पाती। वह 'इन्फ्योरिटी-कम्प्लेक्स' का शिकार नही होता। तब फिर अंग्रेजी-मोह स्वतन्त्र भारत मे पल्लवित-पुष्पित हो, यह सहज ही है, स्वाभाविक ही है।



हिन्दी की प्रगति में अवरोधक तत्त्व

आज माँ भारती का रथ कच्छप गति से आगे बढ रहा है । संविधान ने उसका लक्ष्य क्षितिज के उस पार पहुँचा दिया है, जहाँ तक वह कभी पहुँच ही नही पाएगी। प्रातीय भाषाओ ने उसे पगु बना दिया है। अंग्रेजी की मानसिकता ने हिन्दी-अभिरुचि का गला हा घोट दिया है। हिन्दी के पक्षपाती, उसके कर्णधार तथा उसके नाम पर व्यवसाय करने वाले इसे गंगा मे समाधिस्थ करने पर तुले हुए है।

कहने को हिन्दी राष्ट्रभाषा है, पर उसकी स्थिति दासी से भी निकृष्ट है। संवैधानिक दृष्टि से राजनीतिज्ञो ने इस सदर्भ मे तीन भूलें की हैं—

(१) यह निर्णय करना कि यदि भारत का एक भी प्रात हिन्दी को राष्ट्र-भाषा रूप मे प्रतिष्ठापित नही करना चाहेगा, तो वह राष्ट्रभाषा नही बन सकती।

(२) हिन्दी के साथ अग्रेजी की प्रतिष्ठा।

(३) १४ प्रांतीय भाषाओं को राष्ट्रभाषा-पद देना।

भाषावार प्रात-निर्माण के पश्चात् देश के अहिन्दीभाषी राज्यो में प्रातवाद का विष तीव्र गति से फैला। प्रातवाद की वाहिका बनी प्रांतीय भाषाएँ। इन प्रातो ने अपनी प्रांतीय भाषाओं को शासकीय भाषा का पद प्रदान कर उसका अभिषेक किया। ऐसी स्थिति मे हिन्दी उनकी आँखो मे शूल बन गई। वे खुल-कर हिन्दी-विरोधी हो गए। वे हिन्दी के वर्चस्व को ताल ठोककर नकारते हैं। प्रजातन्त्र राष्ट्र मे प्रांतीय वीटो ने हिन्दी को सदा-सर्वदा के लिए राष्ट्र-मुकुट से वंचित कर दिया। न नौ मन तेल होगा, न राधा नाचेगी। न सारे प्रांत हिन्दी का समर्थन करेंगे, और न हिन्दी राष्ट्रभाषा के पद पर आसीन हो सकेगी।

हिन्दी के साथ अग्रेजी का प्रयोग व्यावहारिक रूप मे घातक सिद्ध हुआ। न्यायिक, वैज्ञानिक, प्रशासनिक, औद्योगिक तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहार में अंग्रेजी का एकमात्र अधिकार हो गया। अहिन्दीभाषी प्रात—आंध्र, तमिल, कर्नाटक,

केरल, महाराष्ट्र, गुजरात, बंगाल, ओड़ीसा, असम, पंजाब, काश्मीर तथा नागालैंड प्रांतीय भाषाओं के साथ अंग्रेजी की ध्वजा फहराने लगे। हिन्दी की स्थिति दयनीय हो गई। इन क्षेत्रों में हिन्दी की प्रतिष्ठा को धूल में मिला दिया गया। इसलिए उन्हें 'आकाशवाणी' शब्द से घृणा और 'ऑल इण्डिया रेडियो' से प्रेम है। हिन्दी महारानी से दासी बन गई।

हिन्दी-भाषा में तकनीकी शब्दों का अभाव, विधि, वैज्ञानिक, औद्योगिक तथा प्रशासनिक अभिव्यक्ति की अक्षमता, शब्द-कोषों, पारिभाषिक कोषों, अन्तर्राष्ट्रीय-कोषों का अभाव तथा असमृद्ध साहित्य का रोना रोकर हिन्दी के रथ का मार्गावरोध किया जा रहा है। फलतः हिन्दी का रथ मार्ग के कटकों को हटाने में ही लगा रहेगा और अंग्रेजी तथा प्रांतीय भाषाएँ विकसित होकर अपने रथों को तीव्रगति से दौड़ा रही होंगी। विश्व-हिन्दी-सम्मेलन में परम विदुषा महादेवी वर्मा ने हिन्दी की इस तथाकथित अक्षमता तथा अव्यावहारिकता के लिए पूर्णतः सत्ता को उत्तरदायी ठहराते हुए सटीक टिप्पणी की थी—'घोड़े को गाड़ी के पीछे बाँध दिया है।'

सेन्ट्रल बोर्ड ऑफ सेकेण्डरी एजूकेशन की परीक्षा-पद्धति हिन्दी के अध्ययन-अध्यापन को हतोत्साहित करने का केन्द्रीय षड्यन्त्र है। ११वीं कक्षा में 'एक भाषा' की उत्तीर्णता की अनिवार्यता ने अंग्रेजी लेने को प्रोत्साहित किया और डॉक्टर, इंजीनियर, विधि-विशेषज्ञ, गणितज्ञ अथवा वैज्ञानिक बनने के इच्छुक छात्रों को हिन्दी त्यागने के लिए विवश कर दिया है। न होगा बांस, न बजेगी बाँसुरी। ज्ञानार्थी न हिन्दी में उच्च शिक्षा लेगा, न हिन्दी-प्रेमी बनेगा।

मनोरंजन का प्रमुख साधन दूरदर्शन है। दिल्ली-दूरदर्शन ज्ञानवर्धन तथा सशक्त मनोरंजन के प्रायः समस्त कार्यक्रम अंग्रेजी में देता है। 'चार्ली चैम्पियन', 'लूसी', 'फादर, डीयर फादर' जैसे रोचक कार्यक्रम, वार्ताएँ तथा विश्व-जानकारी सम्बन्धी दृश्यावली का आनन्द लेने में हिन्दी-प्रेमी असमर्थ हैं। इस प्रकार दूरदर्शन अंग्रेजी को प्रिय बनाकर हिन्दी-हित पर कुठाराघात कर रहा है।

राजकीय नीति के कारण हिन्दी की पाठ्य-पुस्तकों में उर्दू के कवि, कथाकार घुस गए हैं। हिन्दी-कवि-सम्मेलन सर्वभाषी बन गए हैं। विश्व पुस्तक मेले में 'हिन्दी मंडप' का स्थान 'भारतीय-भाषा-मंडप' ने ले लिया है। विश्व-हिन्दी-सम्मेलनों में प्रांतीय विद्वानों का सम्मान अनिवार्य बना दिया गया है। हिन्दी को

अपने पैरों पर खड़ा रहने ही नहीं दिया जाता। प्रांतीय बैसाखी का सहारा अनिवार्य कर दिया गया है। राजकीय सोपान पर चढने के लिए प्रांतीय भाषाओं के सहयोग की शर्त हिन्दी को अपमानित करने तथा पग-पग पर नीचा दिखाने एवं अक्षमता, असमर्थता का बोध कराने की चाल है।

हिन्दी-रथ के रथी भी माँ भारती की प्रतिमा में दोषारोपण करने लगे हैं। वे सरलता के नाम पर उर्दू-फारसी के शब्दों की बहुलता से माँ के आँचल को कलंकित कर रहे हैं, हिन्दी की जननी संस्कृत से उसका सम्बन्ध-विच्छेद कर उसके पीयूष-स्रोत को अवरुद्ध करने पर तुले हुए हैं। इतना ही नहीं, हिन्दी के नाम पर आजीविका चलाने वाले हिन्दी के ये ठेकेदार, साहित्यकार, कर्णधार अपने बच्चों को हिन्दी की छाया से भी दूर हटाते जा रहे हैं, कान्वेंट में शिक्षा दिला रहे हैं। हिन्दी की अगली पीढ़ी को अंग्रेजी-भक्त बना रहे हैं।

पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति ने हिन्दी-परिवारों को मोहित कर लिया है। अंग्रेजी का जादू सिर चढ़कर बोल रहा है। प्रातः, सांय तथा रात्रि का अभिवादन 'गुड मार्निंग, गुड ईवनिंग, गुड नाइट' से होता है। माता-पिता 'मम्मी'-'डैडी' बन गए हैं। बहन 'सिस्टर' और पत्नी 'वाइफ' बन गई है। अंकल-आंटी के दर्शन जहाँ चाहे, हो जाते हैं। बातचीत में बिना अंग्रेजी शब्दों के व्यक्तित्व नहीं निखरता। 'कौन-सी पिक्चर देखनी है?' 'लंच का टाइम हो गया।' 'संडे का शो देखना है।' कहे बिना बात समझ नहीं आती। कहाँ है हिन्दी-संस्कार।

हिन्दी के सृजनात्मक-साहित्य के नाम पर लाखों रुपए की राजकीय खरीद होती है। हिन्दी के ये महारथी कितना सृजनात्मक-साहित्य खरीदते हैं? हिन्दी-पुरस्कारों के नाम पर लाखों रुपए बाँटे जाते हैं। 'महापुरुष निराला' को किसने पूछा? महादेवीजी को पुरस्कार-पंक्ति में किस नम्बर पर रखा गया? तीसरे विश्व-हिन्दी-सम्मेलन में प्रथम कोटि के साहित्यकारों को किसने पहचाना?

हिन्दी के रथ को गति प्रदान करने के लिए चाणक्य चाहिए, जो हिन्दी के विरुद्ध किए जाने वाले शासकीय षड्यन्त्रों का पर्दाफाश करके, हिन्दी की पताका फहराने वालों को हिन्दी-विरोधी नीति को उजागर करके जन-मानस में हिन्दी-संस्कार का अमृत पहुँचा सके। लोभ, लालच, ममता, स्वार्थ के कंटकों को हटाकर मार्ग में पुष्प बिखेर दे, ताकि माँ भारती का रथ सरलता से चलकर भारत-भारती का भाल विश्व-प्रांगण में उन्नत हो सके।

*

हिन्दी मे साहित्यकार तो बहुत हैं, जो अपनी रचनाओं से हिन्दी की सेवा कर रहे है, किन्तु उसमे पद्मावत, मानस, कामायनी जैसे महाकाव्य कितने लिखे गए है? गोदान और कर्मभूमि की टक्कर के कितने उपन्यास हैं? सच्चाई तो यह है प्रेमचन्द की मृत्यु के बाद कोई युग-प्रवर्तक पैदा ही नही हुआ। हिन्दी का इतिहास-लेखक १६३६ के बाद के साहित्य को किसी युग-प्रवर्तक से जोड़ ही नही पाया। इसलिए हिन्दी को युग-प्रवर्तक साहित्य चाहिए; विश्व मे प्रतिष्ठा-योग्य रचनाएँ चाहिएँ।

हिन्दी के प्रचार-प्रसार का एक सशक्त साधन चित्रपट भी है। हिन्दी-चित्रों ने न केवल हिन्दी-भाषी क्षेत्रों मे, अपितु विश्व के प्रांगण मे जो प्रतिष्ठा पाई, उससे हिन्दी का गौरव बढा है। हिन्दी को जानने-पहचानने की उत्सुकता बढ़ी। चित्र-निर्माता सामाजिक दृष्टि से सार्थक, सांस्कृतिक दृष्टि से प्रामाणिक, कला की दृष्टि से सन्तोषजनक और शिल्प की दृष्टि से चमत्कारी हिन्दी-चित्र बनाकर हिन्दी के विकास मे योगदान दे सकते हैं।

भारत-सरकार हिन्दी-विकास में अपने धर्म का पालन करे, तो हिन्दी का विकास 'खुल सम-सम' की जादुई क्रिया से हो सकता है। राजनीति के दाँत खाने के और तथा दिखाने के और होते हैं। राजनीतिक नेता एक ओर हिन्दी थोपने की बात कहकर माँ भारती के मुंह पर चाँटा मारते है और दूसरी ओर प्रशासन मे अंग्रेजी के वर्चस्व को दिन-प्रति दिन अग्रसर कर रहे हैं। तीसरी ओर, उसने हिन्दी को राष्ट्रभाषा का मुकुट पहनाने के मामले में प्रत्येक प्रांत को वीटो प्रदान करके हिन्दी के लिए सिंहासन-प्राप्ति असम्भव बना दी है। सर्जनात्मक हिन्दी-पुस्तकों की खरीद मे लूट मची हुई है। हिन्दी-आयोजनों और सम्मेलनो मे हिन्दी वालों की पूछ नही होती।

हिन्दी-विकास के लिए सरकार को चाहिए कि सम्पूर्ण भारत मे हाई स्कूल तथा हायर-सैकेण्डरी तक हिन्दी का पटन-पाठन अनिवार्य कर दे। उच्चशिक्षा में शिक्षा का माध्यम हिन्दी तथा प्रांतीय भाषाएँ ही कर दे।

चपरासी से लेकर उच्च अधिकारी तक के लिए हिन्दी-ज्ञान अनिवार्य कर देना चाहिए। पदोन्नति के लिए हिन्दी की परीक्षा—रत्न, प्रभाकर, प्रथमा, मध्यमा, उत्तमा, विदुषी, बी० ए० या एम० ए० (हिन्दी) परीक्षाओं का प्रमाण-पत्र आवश्यक कर दिया जाए।

हिन्दी-भाषी राज्यों (उत्तर-प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार, राजस्थान, हरियाणा, हिमाचल-प्रदेश एवं दिल्ली) का समस्त राज-काज, उच्च न्यायालयों सहित, हिन्दी में ही होना चाहिए। अंग्रेजी को सहयोगी भाषा बनाना भी अहितकर होगा।

अहिन्दी-भाषी प्रांतों में पत्र-व्यवहार मात्र हिन्दी में हो। अंग्रेजी या प्रान्तीय भाषाओं की प्रति संलग्न करना हिन्दी-हित के लिए त्यागना होगा।

कार्यालयों तथा अधिकारियों के नामपट हिन्दी में होने चाहिएँ। विभाग, संस्थान तथा अभिकरणों (एजेन्सीज) के नाम हिन्दी में होने चाहिएँ। जैसे—'टैलिवीजन' नहीं, 'दूरदर्शन'; 'टेलीफून' नहीं, 'दूरभाष' तथा 'रेडियो' नहीं, 'आकाशवाणी' नामकरण तत्काल प्रभावी होने चाहिएँ।

अहिन्दी-भाषी प्रांतों तथा विश्व के राष्ट्रों में महत्त्वपूर्ण हिन्दी-पुस्तकें तथा पत्र-पत्रिकाएँ सैकड़ों की संख्या में निःशुल्क भेजनी चाहिएँ।

हिन्दी शोध-ग्रन्थों, सदर्भ-ग्रन्थों तथा विशिष्ट ज्ञानवर्धक पुस्तकों की एक-एक प्रति सरकारी अनुदान से विश्वविद्यालयों तथा शोध-संस्थाओं में पहुँचानी चाहिएँ। कविता, उपन्यास, कहानी, नाटक, एकांकी, जीवनी आदि की थोक खरीद बन्द करके उन लेखकों को ही अनुदान दे देना चाहिए, जिनके लिए ये खरीदी जाती हैं। इससे भ्रष्टाचार समाप्त होगा, हिन्दी-हित होगा।

विश्वकोश, पारिभाषिक कोष, संदर्भ-ग्रन्थ, औद्योगिक और वैज्ञानिक उच्च-कोटि के साहित्य का निर्माण सरकार स्वयं करे और सस्ते मूल्य में जनता को उपलब्ध कराए। केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, नेशनल बुक ट्रस्ट, प्रकाशन विभाग, साहित्य-अकादमी आदि राष्ट्रीय संस्थाओं को यह दायित्व सौंपा जाए।

सरकार विशिष्ट साहित्यिक कृतियों तथा साहित्यकारों को सम्मानित करे, पुरस्कृत करे तथा कृति-विशेष के प्रचार-प्रसार में योग दे।

हिन्दी-भाषी क्षेत्रों के 'दूरदर्शन' का हिन्दीकरण हो। ८० प्रतिशत कार्यक्रम हिन्दी में प्रस्तुत किए जाएँ। ज्ञानवर्धक कार्यक्रम हिन्दी में ही दिए [illegible] अन्य भाषाओं की विशिष्ट उत्कृष्ट कृतियों का हिन्दी-अनुवाद [illegible]

जनता और सत्ता, दोनों निरन्तर जब हिन्दी को सच्चे हृदय [illegible] राजनीति के छल-छद्म से दूर रहेंगे, तो निश्चय ही हिन्दी का [illegible] से होगा और माँ-भारती का सुन्दर शृंगार होगा।

सच्चरित्रता का महत्त्व

(दिल्ली १९७८ : 'ए')

चरित्र की श्रेष्ठता का नाम 'सच्चरित्रता' है। श्रेष्ठ और शुभाचरण का पर्याय सच्चरित्रता है। सत्यवादिता, दयालुता, निष्कपटता, ब्रह्मचर्य, अहिंसा, सदाचार, निर्भयता, शौच, सन्तोष, तप और दान सच्चरित्रता के लक्षण हैं। सदाचारी जीवन की व्याख्या, उपयोगिता तथा अनिवार्यता सिद्ध करना सच्चरित्रता का महत्त्व है।

सच्चरित्रता ही मानव की श्रेष्ठता की कसौटी है। जीवन की शान्ति के लिए अमूल्य वस्तु है, सत्पुरुषों का भूषण है; दीर्घ आयु, मनोवांछित सन्तान तथा अक्षय धन प्राप्ति का माध्यम है, व्यक्ति के अमंगल की नाशक है।

सच्चरित्रता मनुष्य के लिए सर्वश्रेष्ठ सम्पत्ति है। संसार के अन्य सद्गुणो मे सर्वोत्तम है, सर्वोच्च है। उसके सामने ऋद्धियाँ-सिद्धियाँ तुच्छ है।

सच्चरित्रता मनुष्य रूपी वृक्ष का सुन्दर सुगन्धित पुष्प है। सुन्दर सुगन्धित पुष्प के समान ही उदात्त चरित्र सबको अपनी ओर आकृष्ट करता है और सबको प्रसन्नता प्रदान करता है। मर्यादापुरुषोत्तम राम, महर्षि दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द के सुगन्धित जीवन-पुष्प सच्चरित्रता के प्रमाण हैं।

सच्चरित्रता मनुष्य की आत्मा को सुसंस्कृत करती है। विचारो, भावनाओ और सकल्प को दृढ एव मगलकारी बनाती है। सुख, सन्तोष और शान्ति प्रदान करती है। लोग सच्चरित्रता का अनुकरण करने के लिए लालायित होते है।

सच्चरित्रता से मानव मे शूरता, वीरता, धीरता, निर्भयता आदि गुण स्वतः आ जाते है। सुन्दर स्वास्थ्य और सुबुद्धि का विकास होता है। कठिन से कठिन कार्य को करने मे सरलता-सरसता का अनुभव होता है।

मनुस्मृति मे मानसिक, वाचिक तथा शारीरिक पापों से मुक्ति सच्चरित्रता के लक्षण बताए गए हैं। दस पाप ये हैं—(१) पराया धन अन्याय से लेने की चिन्ता, (२) मन से निषिद्ध कर्म करने का ध्यान, (३) 'परलोक नही है, यह शरीर ही आत्मा है', ऐसा मिथ्या आग्रह, (४) अप्रिय बोलना, (५) असत्य भाषण करना,

(६) पीठ पीछे किसी की बुराई करना, (७) सत्य होने पर भी बिना प्रयोजन बोलना, (८) बिना दिया हुआ धन लेना, (९) विधि रहित हिंसा, (१०) पर-स्त्री-संग। इन पापो से रहित सदाचारी के चरणों मे ससार की विभूति, बल, बुद्धि, वैभव लेटेंगे।

उत्तम चरित्र निर्धन का धन है। कठिनाइयों को जीतने, वासनाओ का दमन करने और दुःखो को सहन करने से ही चरित्र उच्च, सुदृढ और निर्मल होता है, अन्य गुणो का विकास एकान्त मे होता है, किन्तु सच्चरित्रता का निर्माण संसार के भीषण कोलाहल में होता है। चरित्र-शुद्धि ठोस शिक्षा की बुनियाद है। अतः वर्टन के शब्दो मे, 'चरित्र एक ऐसा हीरा है, जो हर किसी पत्थर को घिस सकता है।' बोर्डमैन सच्चरित्रता का फल वर्णित करते हुए लिखते हैं—'कर्म को बोओ और आदत की फसल को काटो, आदत को बोओ और चरित्र को काटो, चरित्र को बोओ और भाग्य को काटो।'

वर्जिल कहता है—'सद्गुण मे भी चार चाँद लग जाते हैं, जब वह किसी सुन्दर व्यक्ति मे होता है।' चिलो एक पग बढाते हुए सच्चरित्रता की महिमा का गुणगान इन शब्दों मे करते हैं—'सद्गुण पृथ्वी पर मनुष्य को प्रसिद्धि प्रदान करता है, कब्र मे प्रख्यात कर देता है और स्वर्ग में अमर बना देता है।'

सद्गुण और प्रसन्नता माँ-पुत्री हैं। सम्मान सद्गुण का पुरस्कार है। धम्मपद के अनुसार 'पुष्पो की सुगन्ध वायु के विपरीत नही जाती, किन्तु सद्गुणो की सुगन्ध सभी दिशाओं में व्याप्त हो जाती है।' अत. सद्गुण क्षणभर के लिए लज्जित किया जा सकता है, किन्तु मिटाया नही जा सकता।'

महर्षि वाल्मीकि का कथन है, 'श्रेष्ठ पुरुष दूसरे पापाचारी प्राणियों के पाप को ग्रहण नही करता। उन्हे अपराधी मानकर उनसे बदला नही लेना चाहता। इस उत्तम सदाचार की सदा रक्षा करनी चाहिए, क्योंकि सदाचार ही सत्पुरुषो का भूषण है।'

चरित्रवान महापुरुषो की गाथाएँ इतिहास के पन्नों मे स्वर्णाक्षरो मे अंकित है। चरित्र-बल के कारण प्रभु राम महाप्रतापी राक्षसराज रावण से लोहा लेने मे समर्थ हुए। वन-वन भटकते पाडव सुगठित कौरव-सेना को ललकार सके। भीष्म पितामह चरित्रबल के कारण भगवान् कृष्ण को चुनौती देते हैं। भगवान कृष्ण प्रतिज्ञा-भग कर रथ का चक्र धारण करते है, तो भीष्म हँस देते हैं। वीर बंदा

वैरागी के सामने उसके पुत्र का वध कर उसके कलेजे को उसके मुँह पर मारा जाता है, पर वह आह तक नहीं भरता। कर्ण रणक्षेत्र में घायल पड़ा है, उसके कवच और कुण्डल अजेय हैं, उन्हीं से वह अमर है। कृष्ण विप्र-वेष में कवच-कुण्डल की भीख माँगते हैं। छद्मवेश को पहचानते हुए भी कर्ण कवच-कुण्डल उतारकर चरित्र की मर्यादा रखते हैं। छत्रपति शिवाजी लूट के माल में प्राप्त यवन-रमणी को ससम्मान लौटा देते हैं। महाराणा प्रताप ने जीवन में कष्ट और विपत्तियाँ सहन की, किन्तु मुगलों की दासता स्वीकार नहीं की। बालक वीर हकीकत राय और गुरु गोविन्दसिंह के दो पुत्रों ने हँस-हँसकर जीवन अर्पित कर दिया, किन्तु इस्लाम-धर्म स्वीकार नहीं किया। स्वातन्त्र्य-संघर्ष और आपातकाल में लाखों लोगों ने इन्दिरा-शासन का कहर बर्दाश्त किया, किन्तु असत्य के सम्मुख नत-मस्तक नहीं हुए।

सत्संगति सच्चरित्रता के निर्माण की पृष्ठभूमि है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने कहा है—'सठ सुधरहिं सत्संगति पाई। पारस-परस कुधातु सुहाई।' पारस के स्पर्श से लोहा स्वर्ण बन जाता है। सत्संगति से दुष्ट मनुष्य भी सुधर जाता है। साधारण कीड़ा भी फूलों की संगति से बड़े-बड़े देवताओं और महापुरुषों के मस्तक पर चढ़ जाता है। महात्मा बुद्ध का सम्पर्क पाकर वैशाली की नगरवधू आम्रपाली का जीवन बदल गया, सुधर गया। महात्मा गाँधी के सम्पर्क से नेहरू-परिवार बदल गया, युवा शक्ति बदली, राजनीति की दिशा बदली और बदला पराधीन भारत का भाग्य।

'आचारः परमो धर्मः' अर्थात् आचार ही सबसे बड़ा धर्म है। 'आचारहीनं न पुनन्ति वेदाः'—आचारहीन मनुष्य को वेद भी पवित्र नहीं कर सकते। अंग्रेजों की कहावत है, 'अगर मनुष्य का धन नष्ट हो गया तो उसका कुछ भी नष्ट नहीं हुआ और यदि चरित्र नष्ट हो गया तो उसका सब कुछ नष्ट हो गया।' चरित्रहीन साधु, सन्त, महात्मा तथा राजनीतिज्ञ के उपदेशों का सुफल नहीं होता। जैसे चमकहीन मोती का कोई मूल्य नहीं, उसी प्रकार सच्चरित्रता के अभाव में मानव किसी काम का नहीं। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के शब्दों में—

'खलों को कहीं भी नहीं स्वर्ग है।
भलों के लिए तो यहीं स्वर्ग है।
सुनो स्वर्ग क्या है? सदाचार है।
सदाचार ही गौरवागार है॥'

✲

समय ही सबसे बड़ा धन है

(ऑल इण्डिया १९८३ : 'बी')

महर्षि वेदव्यास पुत्र-धन को सर्वश्रेष्ठ धन मानते हैं, तुलसी सन्तोष को सर्वाधिक मूल्यवान धन मानते हुए शेष धनों को धूल के समान मानते हैं— 'जब आवै सन्तोष धन सब धन धूरि समान।' किसी महापुरुष ने चरित्र को सर्वोत्तम धन माना है, किन्तु अंग्रेजी कहावत ने 'Time is Money' कहकर समय की महत्ता सर्वश्रेष्ठ धनों के शिखर पर स्थापित की है। 'का हानि.' (संसार में सबसे बड़ी हानि क्या है?) इस प्रश्न का उत्तर 'समयच्युति.' (समय को व्यर्थ नष्ट करना जीवन की सबसे बड़ी हानि है) इन शब्दों में इसी प्रकारान्तर से समय का ही महत्त्व प्रतिपादित किया गया है। सच है, पुत्र न होने पर दत्तक-पुत्र से भी काम चलाया जा सकता है, संतोष की रज्जु एक बार हाथ से छूट पर पुन प्राप्त की जा सकती है। चरित्र पतित होकर पुन. निर्मित हो सकता है, किन्तु समय? 'गया वक्त फिर हाथ आता नहीं।' अब पछताए होत क्या जब चिड़ियाँ चुग गई खेत।'

क्या समय धन है? धन का अर्थ है—रुपया-पैसा, पूँजी, सम्पत्ति। धन की क्षति की पूर्ति सम्भव है। धन की हानि लाभ में परिवर्तित की जा सकती है, किन्तु समय की स्थिति इसके विपरीत है।

समय लौट कर नहीं आता। मुँह पीछे करके देखता भी नहीं। इसलिए तुलसी ने कहा—'का वर्षा जब कृषी सुखाने। समय चूकि पुनि का पछिताने।' फिर भी समय को धन कहा गया है? कितना बड़ा विरोधाभास है?

धन का लाक्षणिक अर्थ है— 'मूल्यवान वस्तु',' बहुमूल्य तत्त्व'। अत सूक्ति का अर्थ होगा—समय बहुमूल्य एव मूल्यवान तत्त्व है। समय ऐसा मूल्यवान तत्त्व है, जो कहे हुए शब्दों के समान कभी वापिस नहीं लौटता।

इस दृष्टि से समय जगती-नियन्ता से भी शक्तिशाली है। रूठे हुए प्रभु को आराधना, तप, भक्ति से पुन मनाया जा सकता है। गीता में श्रीकृष्ण इसका समर्थन करते हैं, 'स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धि विन्दति मानव.'। अपने-अपने कर्मों

के द्वारा ईश्वर की पूजा करने से मनुष्य सिद्धि को प्राप्त होता है। दूसरी ओर रूठा हुआ कल अर्थात् बीता हुआ समय कोटि उपाय करने पर भी नहीं बुलाया जा सकता, उसे प्रसन्न नहीं किया जा सकता।

डिकेन्स का कथन है, 'कोई ऐसी घड़ी नहीं बना सकता, जो मेरे बीते हुए घंटों को फिर से बजा दे।' समय की कीमत कौन आंक सकता है? हाँ, समय पर काम न करने की क्षति का अनुभव सबको कभी न कभी अवश्य होता है?

समय मानव की बहुमूल्य निधि है। समय हृदय पर लगी चोट को सहलाता है, मानव के आँसू पोंछता है, दिल पर लगे घावों को भरता है—'Time is the best healer'. युद्ध की विभीषिकाएँ समय के साथ समाप्त हो जाती हैं। ईर्ष्या, राग, द्वेष, घृणा, विद्रोह रूपी मनोविकार समय के साथ शान्त हो जाते हैं। समय की यह महानता चुनौती-रहित कार्य है, जो 'समय ही सबसे बड़ा धन है', इस अटल सत्य को स्वीकार कराता है।

मानवीय तृष्णाएँ समाप्त नहीं होती, मानव समाप्त हो जाता है। मानव के पास इतना समय है कि वह बीतता नहीं, मानव ही बीत जाता है। कैसी विडम्बना है? समय को नष्ट करने वालों को समय ही नष्ट कर देता है।

इहलोक का हर प्राणी किसी न किसी कारण चिन्तित है, किन्तु समय को किसी की चिन्ता नहीं। उसे किसी की प्रतीक्षा नहीं। वह तो तीव्र गति से अबाध बह रहा है। समय की गति को पहचान कर कार्य करने वाला भाग्यशाली है, धनी है, सिद्ध पुरुष है। समय जब द्वार पर दस्तक देता है, उसकी आवाज को सुनने के लिए सतर्क रहने वाले लाभ उठा गए, जो दैव-दैव पुकारते रहे, वे जीवन में पिछड़ गए। समय रूपी अश्व की दुलत्तियों ने उन्हें धूल चटा दी। समय की दस्तक को सुनने वाला भारत का विपक्ष १९७७ में सत्तारूढ़ हुआ, किन्तु वह जब समय की चाल को भूल गया, तो १९८० में उसे घोर निराशामयी पराजय का सामना करना पड़ा।

समय की अवहेलना करने वाला समय की मार से कब बचा है? 'सूच्यग्रं नैव दास्यामि' कहने वाले दुर्योधन को सम्पूर्ण राज्यसत्ता और जीवन से हाथ धोना पड़ा। १८५७ के स्वातन्त्र्य-समर में पंजाब के असहयोग के कारण भारत को आंग्ल-दासता स्वीकार करनी पड़ी। स्वतन्त्रता-पूर्व हिन्दू-दौर्बल्य ने भारत माता का विभाजन करवा दिया। समय की अवहेलना के कारण ही आज साम्प्रदायिकता

परिश्रम का महत्त्व
(ऑल इण्डिया १६८५ : बी; १६८३ : ए)

परिश्रम जीवन है। परिश्रम मे स्वास्थ्य बनता है और स्वास्थ्य से सन्तोष उत्पन्न होता है। अत 'परिश्रम एव जयते', परिश्रम की सदा विजय होती है। परिश्रम उज्ज्वल भविष्य का जनक है, परिश्रम देवता है।

ऋग्वेद का कथन है, न ऋते श्रान्तस्य सख्याय देवा.' बिना स्वय परिश्रम किए देवो की मैत्री नही मिलती। सेफोक्लीज का कहना है कि बिना परिश्रम के उन्नति नही होती। कहावत प्रसिद्ध है--'बिना परिश्रम के सुख नहीं मिलता।'

परिश्रम चुम्बक है। सब प्रकार की सुख-समृद्धि उसके आकर्षण मे स्वयमेव खिचती चली आती है। 'न हि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः।' (हितोपदेश) सोते हुए सिंह के मुँह मे पशुगण स्वयमेव प्रवेश नही करते। इसीलिए त्रिकाल सत्य घोषित हुआ, कि 'परिश्रमी के घर के द्वार को भूख दूर से ताकती है, पर भीतर प्रवेश नही कर पाती। परिश्रम की पूजा करने वाला कदापि निराश नहीं होता।'

सृष्टि के आदि से अद्यतन रूप तक विकसित सभ्यता मानव के परिश्रम का ही परिणाम तो है। पाषाण युग से वर्तमान युग तक की वैभव-सम्पन्नता की लम्बी यात्रा परिश्रम की सार्थकता की एक ऐसी गाथा है, जो विश्व को पग-पग पर श्रम-प्रेरणा की प्रसादी बाँट रही है।

अमरीका, रूस, चीन, जापान, इजरायल, फ्रास, स्विटजरलैण्ड आदि देशों की उन्नति की नीव परिश्रम के स्वेद-बिन्दुओं से सिंचित है। वहाँ के निवासियों के सतत एव निष्ठापूर्ण परिश्रम ने ही उनके राष्ट्र को विश्व के शीर्षस्थ राष्ट्रों मे ला बिठाया है।

द्वितीय महायुद्ध मे क्षतिग्रस्त रूस, ग्रेटब्रिटेन तथा जापान; आर्थिक और मानसिक रूप से जर्जर कल का चीन एवं स्थान-भ्रष्ट इजरायल पलक झपकते विश्व की महान शक्ति कैसे बन गए ? एक ही उत्तर है—परिश्रम की कृपा से; 'परिश्रम

ही पूजा है—परिश्रम ही परमेश्वर है' इस सिद्धान्त को अपनाने से।

विश्व के सात महान आश्चर्य परिश्रम की महत्ता के द्योतक हैं। हजारो-लाखो श्रमिकों की निरन्तर सेवा, त्याग, बलिदान की अकथनीय अलुप्त कहानी है, जो महान आश्चर्यों के सौन्दर्य-दर्शण मे अन्तःचक्षुओ से देखी जा सकती है, अन्तरात्मा से सुनी जा सकती है।

तप श्रम का पर्याप्त है। किसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए किए गए श्रम को 'तप' कहते है। तप से नहुष इन्द्रासन का अधिकारी बना; रावण लकेश्वर बना; हर बार हारने वाला अब्राहिमलिंकन अन्ततः अमेरिका का राष्ट्रपति बना; एक बार पदच्युत होने के बाद तीन वर्ष के अल्पकाल मे ही इन्दिरा जी पुन. प्रधान-मंत्रीव नी।

तपबल'सोइ प्रपचु विधाता। तपबल विष्णु सकल जग त्राता॥
तपबल संभु करहिं सघारा। तपबल सेषु धरहिं महि भारा॥

—तुलसी

परिश्रम से लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। परिश्रमहीन, आलसी, भाग्यवादी, निराश व्यक्ति से लक्ष्मी ऐसे ही दूर भागती है, जैसे युवा पत्नी वृद्ध पति से। और लक्ष्मी के बिना जगती का सुख दुर्लभ है। यदि जगती मे ही स्वर्गसम आनन्द लेना है, तो परिश्रम का आलिंगन अनिवार्य है।

जीवन की दौड़ मे श्रम करने वाला विजयी रहा है। पढाई में परिश्रम करने वाला छात्र परीक्षा मे पास होता है। सीढी-दर-सीढी माँ शारदा के मन्दिर की ओर अग्रसर होता है। नौकरी करने वाला कर्मचारी और व्यापार करने वाले व्यापारी की उन्नति का मूल उसके परिश्रम मे निहित है। सफलता का रहस्य परिश्रम के रूप मे है। ध्येय की दृढता मे है। बिड़ला, टाटा का महान् उद्योग-ससार उनके परिश्रम की मुंहबोलती मूर्ति है।

परिश्रम से शारीरिक तथा मानसिक शक्तियों का विकास होता है, कार्य में दक्षता आती है; जीवन में आत्म-विश्वास जागृत होता है, जो सफलता का मुख्य रहस्य है, पराक्रम का सार है, भावी उन्नति का प्रथम सोपान है।

परिश्रम से जी चुराना अर्थात् अकर्मण्यता विनाश की पगडंडी है, मृत्यु का द्वार है। महाभारत में वेदव्यास जी ने लिखा है, 'अकर्मण्य व्यक्ति सम्मान से भ्रष्ट

होकर घाव पर नमक छिड़कने के समान असह्य दुःख भोगता है।' गांधी जी ने अकर्मण्य को चोर बताया है, 'जो कर्म किए बिना भोजन करते हैं, वे चोर हैं।'

परिश्रम का महत्त्व सतत कर्मशीलता मे है, ध्येय के प्रति निष्ठापूर्ण साधना मे है, मन-मस्तिष्क को एकाग्रचित्त करने मे है। जीवन को पूर्णतः ध्येय के प्रति समर्पित करने मे है।



स्वावलम्बन

(ऑल इण्डिया १९८५ : ए; १९८३ : बी)

स्वावलम्बन का अर्थ है आत्म-निर्भरता। आत्म-निर्भरता का अर्थ यह कदापि ी कि प्रत्येक कार्य स्वयमेव करो—झाड़ू-बुहारी से लेकर, रोटी पकाने तक, धोने से लेकर, दफ्तर की ड्यूटी भुगताने तक एक ही व्यक्ति मरे-पचे। न ावलम्बन का अर्थ पर-बुद्धि, योग, ज्ञान, बल शक्ति की उपेक्षा है। यह तो त्म-विश्वास का खंडन है, आत्मबल का दुरुपयोग है, आत्मनिर्भरता की अशुद्ध याख्या है। आत्म-विश्वास के बल पर कार्य को निरन्तर गति देना स्वावलम्बन है। निज, समाज तथा राष्ट्र की आवश्यकताओं की पूर्ति की क्षमता उत्पन्न करना स्वावलम्बन है। व्यक्ति, समाज तथा राष्ट्र मे आत्मविश्वास की भावना स्वावलम्बन की प्रतीक है।

स्वावलम्बन व्यक्ति, समाज, राष्ट्र के जीवन मे सर्वांगीण सफलता-प्राप्ति का महामन्त्र है। जीवन का आभूषण है। कर्त्तव्यश्रृंखला की प्रथम कड़ी है। वीरो तथा कर्मयोगियों का इष्टदेव है। सर्वांगीण उन्नति का आधार है।

जीवन के प्रारम्भिक काल में शिशु हाथों का उपयोग नही जानता। माँ पर आश्रित होता है। ज्यों ही उसे हाथ की उपयोगिता पता लगी, वह कोई भी वस्तु उठाकर मुँह मे डालने लगता है। इस प्रयोग-क्रिया मे उसे परम आनन्द प्राप्त होता है। अबोध शिशु की यह *प्रसन्नता स्वावलम्बन का आनन्द है*।

मुँह और हाथ देने का प्रभु का तात्पर्य यह है—स्वावलम्बी बनो। अपना काम अपने हाथ से करो। अपने हाथ की कमाई खाओ। आत्म-निर्भर बनकर हार्दिक आनन्द की प्राप्ति करो।

पेड़-पौधे, पशु-पक्षी स्वावलम्बन के श्रेष्ठ उदाहरण हैं। सूर्य से प्रकाश, चन्द्रमा से रस, आकाश मे जल प्राप्त कर पेड़-पौधे स्वतः बढ़ते जाते हैं। वे प्रकाश, रस तथा जल के लिए सूर्य, चन्द्रमा तथा मेघ की खुशामद नही करते। उनके सामने दाँत नहीं निपोरते, बगलें नही झाँकते, गण्डा या तावीज नही बाँधते।

पशु तथा पक्षी-शावक जरा से बड़े हुए नहीं कि निकल पड़े अपना चारा स्वयं खोजने। चीटी-जैसा-नन्हा-सा जीव का बच्चा भी स्वावलम्बन का महत्त्व समझता है। इसी से प्रेरित होकर एक शायर का हृदय परमुखापेक्षी मानव-समाज तथा राष्ट्र की मूर्खता पर रो उठा—

जो हुआ मोहताज गैरों का, वो कब इन्सान है।
वो है हैवानों से बदतर, चूंकि वो नादान है।।

राजस्थानी में एक कहावत है—"काम सुधारो तो अंगे पधारो।" अर्थात् यदि अपना काम सुधारना है, तो किसी के अधीन न रहकर उसे स्वयं करो। दूसरे शब्दों में—'स्वावलम्बी बनो।' भगवान कृष्ण ने गीता में कहा है—'स्वे-स्वे कर्मण्यभिरत: संसिद्धि लभते नर:'। जो स्वावलम्बी व्यक्ति अपने कर्म के पालन में निमग्न रहता है, उसे ही सिद्धि (सफलता) प्राप्त होती है। कहावत प्रसिद्ध है—*'आप काज महाकाज'। एकलव्य स्वयं के प्रयास से धनुर्विद्या का पारखी बना,* निपट दरिद्र बालक लालबहादुर भारत का प्रधानमन्त्री बना, दीन-हीन जैलसिंह स्वावलम्बन के सहारे ही भारत का राष्ट्रपति बन गया।

अलंकार काव्य की शोभा बढ़ाते हैं, सूक्ति भाषा को चमत्कृत करती है, गहने नारी के सौन्दर्य को द्विगुणित करते हैं। इसी प्रकार स्वावलम्बन मानव में अनेक गुणों की प्रतिष्ठा करता है, उन्हें चमकाता है। आत्म-सम्मान, आत्मविश्वास, आत्मबल, आत्मनिर्भयता, आत्मरक्षा, साहस, सन्तोष, धैर्य आदि गुण स्वावलम्बन के सहोदर हैं। महात्मा गांधी स्वावलम्बन के जीवन्त उदाहरण हैं। आवश्यकता पड़ने पर वे किसी भी काम से झिझके नहीं, हिचके नहीं। अपने हाथों से खाना बनाया, तो कपड़े भी धो लिए। बीमार का शौच भी साफ कर दिया, तो वमन-पात्र भी बदल दिए।

स्वावलम्बन के महत्त्व से अपरिचित, अत: दूसरों का मुँह ताकने वाले अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं कर पाते। ऐसे लोग मोह को बढ़ाकर, तृष्णा को उत्पन्न कर अपनी दयनीय कृपण स्थिति बना लेते हैं। कार्पण्य दोष से जिसका स्वभाव उपहृत हो जाता है, उनकी दृष्टि म्लान हो जाती है। इस म्लान, अंधकारपूर्ण दृष्टि से भगवान को भी भय लगता है। प्रभु तो उन्हीं की सहायता करते हैं, जो अपनी सहायता स्वयं करते हैं। स्वावलम्बी को ही प्रभु का वरदान प्राप्त होना है।

आत्म-निर्भरता स्वावलम्बियों की आराध्य देवी है। देवी की उपासना में

उनका आलस्य अन्तर्धान हो जाता है, भय भयभीत होकर भाग जाता है, कायरता नष्ट हो जाती है, संकोच समाप्त हो जाता है, आत्मविश्वास उत्पन्न होता है, है, आत्मगौरव जागृत होता है। स्वावलम्बी व्यक्ति कष्टों और बाधाओं को रौंदता हुआ कंटकाकीर्ण पथ पर निर्भीकतापूर्वक आगे बढ़ता है—

पर्वतों को काटकर सड़कें बना देते हैं वह,
सैकड़ों मरुभूमि में नदियाँ बहा देते हैं वह।
आज जो करना है कर देते हैं उसको आज ही,
सोचते, कहते हैं जो कुछ कर दिखाते हैं वही।

—हरिऔध

टाटा, बिड़ला, सिंघानियाँ, डालमियाँ, सेठान, मोदी—न जाने कितने स्वावलम्बियों ने न केवल स्वयं को समृद्ध किया, अपितु राष्ट्र को औद्योगिक सम्पन्नता प्रदान कर विश्व-प्रांगण में भारत का भाल ऊँचा किया। महान वैज्ञानिकों ने अन्तरिक्ष प्रौद्योगिकी (टैक्नोलॉजी) के रूप में भारत को विश्व के महान राष्ट्रों की पंक्ति में लाकर खड़ा कर दिया। रूस और अमेरिका तो अन्य ग्रहों की खोज में निकल पड़े हैं। चन्द्रलोक, मंगललोक उनकी चरण-रज से पवित्र हो चुके हैं। ऐसे दुस्साहसी स्वावलम्बियों से विधाता भी भयभीत हो जाता है और उनकी भाग्यलिपि लिखने से पूर्व पूछ लेता है—'बता तेरी रजा क्या है?' डॉ० इकबाल ने इसी तथ्य को प्रस्तुत करते हुए कहा है—

खुदी को कर बुलन्द इतना कि हर तकदीर से पहले।
खुदा बन्दे से यह पूछे, बता तेरी राजा क्या है?

ऐसे महान प्रचण्ड शक्तिसम्पन्न स्वावलम्बी मनुष्य समाज तथा राष्ट्र का जीवन है। 'वे प्राण डाल देते हैं जिन्दगी में, मन ढाल देते हैं जीवन रस के उपकरणों में। कठोर भूतल को भेदकर, पाताल की छाती चीरकर अपना भोग्य संग्रह करते हैं; वायुमण्डल को चूसकर, झंझा-तूफान को झेलकर अपना प्राप्य वसूल करते हैं। आकाश को चूमकर, अवकाश की लहरों में झूमकर उल्लास खींचते हैं।' ऐसे स्वावलम्बियों की एक झलक पाने को कवि का व्यथित हृदय लालायित हो उठा—'स्वावलम्बन की एक झलक पर न्योछावर कुबेर का कोष।'

स्वावलम्बन व्यक्ति, समाज तथा राष्ट्र के लिए बल, गौरव एवं उन्नति का द्वार है। सुख, शान्ति तथा सफलता का प्रदाता है, आत्म-निर्भरता का परिचायक है; शौर्य, शक्ति तथा समृद्धि का साधन है।



मित्रता

(दिल्ली १९८४ : 'धो')

प्रसिद्ध विचारक बेकन ने मित्रता की परिभाषा इस प्रकार की है, 'जिसकी उपस्थिति में दुःख आधा हो जाए और सुख दुगुना हो जाए'। मित्र होने के भाव को 'मित्रता' कहते है। मित्रता मित्र का धर्म है।

मित्रता ससार की सबसे बड़ी नियामत है। संसार के अन्य सभी सम्बन्धी भाव—मातृत्व, पितृत्व, बन्धुत्व आदि जन्म से ही मिलते हैं, किन्तु मित्रता सदा प्रयत्नपूर्वक बनाई जाती है। श्री डिजरायली मित्रता को दैवी देन स्वीकार करते हुए लिखते है—'मित्रता दैवी देन है और मनुष्य के लिए अत्यन्त बहुमूल्य वरदान'। श्रीकृष्ण और सुदामा तथा श्रीराम और सुग्रीव की मित्रता इतिहास-प्रसिद्ध है।

मित्रता को आँखो को ज्योतित करने वाला रसायन और हृदय के आह्लाद का जनक कहा गया है। उसमें शिवि के समान आत्म-त्याग तथा बोधिसत्त्व-सदृश सर्वस्व समर्पण की भावना निहित है। 'राजद्वारे श्मशाने च' वह स्थिर है, साथ है।

मित्रता के बिना ससार शून्य है। यह मायावी ससार को प्रेमपूर्वक सहज भोगने का एक माध्यम है। घर म धन-धान्य और समस्त ऐश्वर्य विद्यमान हो, पर पति-पत्नी में मित्रता न हो तो वह ऐश्वर्य भी कष्टदायक बन जाता है। घोर गोपनीय बात, अत्यन्त कठिन संकटपूर्ण परिस्थिति और अपार प्रसन्नता में मनुष्य सगे-सम्बन्धियों का साथ छोड़ सकता है, किन्तु मित्र का नही।

आचार्य शुक्ल मानते हैं, 'सच्ची मित्रता में उत्तम से उत्तम वैद्य की-सी निपुणता और परख होती है। अच्छी से अच्छी माता का-सा धैर्य और कोमलता होती है।'

दोस्ती, सहृदयत्व, बन्धुत्व, सख्य, फ्रेंडशिप, पार्टनरशिप, कामरेडशिप सभी मित्रता के पर्याय हैं। न्यूनाधिक सभी एक ही भाव को व्यक्त करते हैं।

कृत्रिम, धोखेबाज, स्वार्थी, अल्पकालिक मित्रता परिचित की कोटि में आती

है, मित्रता की नहीं। अंग्रेजी में एक सूक्ति है, 'मित्र वही है जो आवश्यकता के समय काम आए।'

प्रकारान्तर से कविकर रहीम मित्र की पहचान इन शब्दों में करते हैं— 'विपति कसौटी जे कसे, तेई साँचे मीत।' तुलसीदास जी इससे भी एक पग आगे बढ़कर कहते हैं, 'जे न मित्र दुख होहिं दुखारी, तिन्हहिं बिलोकत पातक भारी।' इसलिए उन्होंने मित्र बनाने के लिए चेतावनी दी—

निज दुख गिरि सम रज करि जाना। मित्रक दुख रज मेरु समाना।
जिन्ह के असि मति सहज न आई। ते सठ कत हठ करत मिताई।।
कुपथ निवारि सुपंथ चलावा। गुन प्रगटै अवगुनहिं दुरावा।
देत लेत मन संक न धरई। बल अनुमान सदा हित करई।।
विपति काल कर सत गुन नेहा। श्रुति कह संत मित्र गुन एहा।
आगे कह मृदु वचन बनाई। पीछे अनहित मन कुटिलाई।।
जाकर चित अहि गति सम भाई। अस कुमित्र परिहरेहिं भलाई।

जो लोग मित्र के दुःख से दुःखी नहीं होते, उन्हें देखने से ही बड़ा पाप लगता है। अपने पर्वत के समान दुःख को धूलि-कण के समान और मित्र के धूलि-कण के समान दुःख को सुमेरु पर्वत के समान जाने, जिन्हें स्वभाव से ही ऐसी बुद्धि प्राप्त नहीं है, वे मूर्ख हठ करके क्यों किसी से मित्रता करते है। मित्र का धर्म है कि वह मित्र को बुरे मार्ग से रोक कर अच्छे मार्ग पर चलावे। उनके गुण प्रकट करे और अवगुणों को छिपाए। लेन-देन में मन में शंका न रखे। अपनी शक्ति के अनुसार सदा हित ही करता रहे। विपत्ति के समय में सदा सौ गुना स्नेह करे। वेद कहते हैं कि श्रेष्ठ मित्र के लक्षण ये ही हैं, किन्तु दूसरी ओर जो सामने तो बना-बनाकर कोमल वचन कहता है और पीठ पीछे बुराई करता है तथा मन में कुटिलता रखता है, हे भाई! जिसका मन साँप की चाल के समान टेढ़ा है, ऐसे कुमित्र को त्यागने में ही भलाई है।

अंग्रेजों ने इसीलिए 'श्वान' को मानव का घनिष्ठ मित्र माना है। वे मानव की मित्रता के विश्वासी नहीं। फ्रैंकलिन का कहना है कि जीवन में तीन मित्र ही सच्चे होते हैं—वृद्धावस्था में पत्नी, पुराना कुत्ता और हाथ का धन। गिरधर कविराय 'पैसा रहा न पास, यार मुख से नहीं बोले', कहकर स्वार्थी मित्र की भर्त्सना करते हैं।

भर्तृहरि सज्जन और दुर्जन की मित्रता का अन्तर स्पष्ट करते हुए लिखते हैं—जैसे दिन के पूर्वार्द्ध में पहले छाया खूब घनी होती है और पीछे धीरे-धीरे क्षीण होती जाती है (चारों तरफ धूप का साम्राज्य हो जाता है), वैसे ही दुर्जनों की मैत्री होती है। परन्तु सज्जनों की मैत्री दिन के उत्तरार्द्ध की छाया के समान होती है— पहले हल्की और विरल तथा पीछे बढते-बढते सघन। इतनी कि धूप का कहीं नाम भी दिखाई नहीं देता।

वस्तुत: मित्रता वह बेल है जो स्नेह, सहिष्णुता, सहायता और सहानुभूति का जल पाकर बढती है और जिसमें स्वर्गीय उल्लास के फूल लगते हैं। दीन-दु:खी-दरिद्र-दुर्बल विप्र सुदामा की मैत्री द्वारिकाधीश भगवान् श्रीकृष्ण के स्नेह, सहिष्णुता, सहृदयता एवं सहानुभूति के कारण कितनी पल्लवित हुई इसका वर्णन अवर्णनीय ही है।

'निज समान सो कीजिए, व्याह, बैर और प्रीति' कहकर किसी पंडित ने किसी समय में उपदेश दिया होगा, किन्तु वर्तमान काल में यह अव्यवहार्य है, असंगत है। राजनीति में तो यह सर्वथा असम्भव है। यहाँ दो परस्पर विरोधी विचारधारा के राष्ट्र रूस और अमेरिका मित्रता का हाथ बढा सकते हैं, तो साम्राज्यवाद के कट्टर शत्रु चीन के शासक 'निक्सन की जय' के गगनभेदी नारों से अपनी मित्रता प्रकट कर सकते हैं। वस्तुत: इस मैत्रों के लिए तुलसादास ने बहुत सुन्दर कहा है—'स्वारथ लागि करैं सब प्रीती'।

सच्चाई यह है कि 'पीनी पीजे छानकर, मित्र कीजे जान कर'। पहले परिचय, फिर घनिष्ठता, तत्पश्चात् मित्रता। जीवन में परिचय सहस्रों से हो सकता है, घनिष्ठता सैंकडों से हो सकती है, किन्तु मित्रता दो-चार से ही सम्भव है। मित्रता का सम्बन्ध स्थापित करने से पूर्व हम मानव का परिचय और घनिष्ठता की स्टेज पर परख चुके होते हैं। उसके गुणावगुण की परख कर चुके होते हैं। अत: मित्रता गाँठने में शीघ्रता नहीं करनी चाहिए। बल्कि स्टेज बाई स्टेज चलने में ही कल्याण है। राजनीति के प्रकाण्ड पंडित चाणक्य ने मित्रता की सुदृढता के लिए चेतावनी देते हुए कहा है 'यदि दृढ़ मित्रता चाहते हो तो मित्र से बहस करना, उधार लेना-देना और उसकी स्त्री से बातचीत करना छोड दो। यही तीन बातें बिगाड पैदा करती हैं।' इसके विपरीत ड्यूमाज का कथन है कि मनुष्य जो स्वयं करे उसे भूल जाये और जो दूसरे से ले उसे सर्वदा याद रखे, मित्रता की यही जड़ है।'

परोपकार

(ऑल इंडिया १८६४ ...)

स्वार्थ-निरपेक्ष, किन्तु दूसरों के हितार्थ कार्य परोपकार है; पर-पीड़ाहरण परोपकार है, पारस्परिक विरोध की भावना घटाना, प्रेमभाव बढ़ाना परोपकार है; दीन, दुःखी, दुर्बल की सहायता परोपकार है, आवश्यकता पड़ने पर निस्वार्थ भाव से दूसरों को सहयोग देना, परोपकार है; मन वचन, कर्म से पर-मंगल साधन परोपकार है।

परोपकार में प्रवृत्त रहना जीवन की सफलता का लक्षण है। (जीवित सफल तस्य यः परार्थोद्यत सदा) व्यास जी के कथनानुसार 'परोपकारः पुण्याय' अर्थात् परोपकार से पुण्य होता है। पर-उपकार करने का पुण्य सौ यज्ञों से बढ़कर है।' चाणक्य यह मानते हैं, 'जिनके हृदय में सदा परोपकार करने की भावना रहती है, उनकी विपत्तियां नष्ट हो जाती हैं और पग-पग पर सम्पत्ति प्राप्त होती है। हरबर्ट का विचार है कि 'परोपकार करने की एक खुशी से दुनिया की सारी खुशियां छोटी हैं।' एच डब्ल्यू बीचर एक पग और बढ़ते हुए कहते हैं, 'परोपकार का प्रत्येक कार्य स्वर्ग की ओर एक कदम है।'

सूर्य की किरणें जगती को जीवन प्रदान करती हैं, चन्द्रमा अमृत की वर्षा करता है; वृक्ष मानव-मात्र के लिए फल प्रदान करते हैं; खेती अनाज देती है, सरिताएं जल अर्पित करती हैं, वायु निरन्तर बहकर जीवन देती है, समुद्र अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति वर्षा रूप में जन-कल्याण के लिए समर्पित करता है। प्रकृति के सभी तत्त्व पर-हित के लिए समर्पित है, इनका निजी स्वार्थ कुछ नहीं।

भगवान् शंकर ने देव-दानव कल्याणार्थ विष-पान किया। महर्षि दधीचि ने देवगण की रक्षार्थ अपनी हड्डियां दान कर दीं। राजा कर्ण ने अपने कवच-कुंडल विप्र रूप कृष्ण को दान दे दिए; राजा शिवि ने कबूतर की प्राण-रक्षा के लिए अपना अंग-अंग काट दिया; ईसामसीह सूली पर चढ़े; सुकरात ने जहर पी लिया; डॉ. मुकर्जी काश्मीर में जाकर बलि चढ़े; महात्मा गांधी जनहित के लिए स्वयं

करते रहे; आचार्य विनोबा भावे दरिद्र-नारायण के लिए भूदान माँगते रहे। मदर टेरेसा ने दीन-दुःखी की सेवा में अपने यौवन की बलि चढा दी और बुढापे को गला रही है। कहाँ तक गिनाएँ परोपकारियों के प्रातःस्मरणीय नामों को।

तुलसी की आत्मा चीत्कार उठी, 'परहित सरिस धर्म नहिं भाई।' उन्होंने हिन्दू जाति, धर्म और संस्कृति के लिए सर्वस्व-न्योछावर कर अपना धर्म निबाहा। उनका धर्म हिन्दू संस्कृति की व्याख्या बन गया। उनका मानस हिन्दू जाति का रक्षक कवच बन गया, धर्म-प्रेरक बन गया, मोक्ष-मार्ग का पथ-प्रदर्शक बन गया।

भगवान् राम परहित के लिए वन में रहकर, 'असुर विनाशाय' धर्म निबाहते रहे। योगेश्वर कृष्ण 'परित्राणाय साधूनां' तथा 'विनाशाय च दुष्कृताम्' के लिए जीवन भर लडते रहे। चाणक्य ने परहित कूटनीति प्रयोग कर चन्द्रगुप्त को सम्राट् बनाया। सिख गुरुओं ने परहित धर्मार्थ जीवन की आहुति दी। महाराणा प्रताप जीवन भर जंगल की खाक छानते रहे। 'हिन्दुअन की लाज' रखने के लिए शिवाजी जीवन भर मुगलों से टक्कर लेते रहे। क्रांतिकारी पर-हित शहीद हुए। धर्म समझ कर परहित करने वालों की शृंखला अटूट है।

परोपकार में कष्ट होता है, दुःख मिलता है बहुधा पीड़ा होती है, किन्तु यह दुःख, कष्ट, पीड़ा कल्याणमयी होती है। किरातार्जुनीय में कहा गया है, 'परोपकार में लगे हुए सज्जनों की प्रवृत्ति पीड़ा के समय भी कल्याणमयी होती है।' माँ कष्ट न उठाए, तो शिशु का कल्याण नहीं होगा। वृक्ष पुराने पत्तों का मोह त्यागे नहीं, तो नव पल्लव के दर्शन असम्भव हैं। पिता यदि दिन भर कष्ट सहकर धन-अर्जित न करे तो परिवार का पोषण कैसे होगा। पक्षी कष्ट सहकर भी अपने शिशुओं के लिए आहार इकट्ठा न करें, तो उनके बच्चे बचेंगे कैसे ? माता-पिता, वृक्ष, पक्षियों का कष्ट, कष्ट नहीं। कारण, वे तो पर-हित के लिए पीड़ित हैं। अतः पीड़ा में भी आनन्दमग्न हैं।

परोपकार करने पर आत्मा प्रसन्न होती है। परोपकारी दूसरों की सहानुभूति का पात्र बनता है; समाज के दीन-हीन पीड़ित वर्ग को जीवन का अवसर देकर समाज में सम्मान प्राप्त करता है; समाज के विभिन्न वर्गों में शत्रुता, कटुता और वैमनस्य दूर कर शांति दूत बनता है। धर्म के पथ पर समाज को प्रवृत्त कर 'मुक्तिदाता' कहलाता है; राष्ट्र-हित जनता में देशभक्ति की चिंगारी फूंकने वाला 'देश-रत्न' की उपाधि से अलंकृत होता है।

दहेज-प्रथा

(दिल्ली १९८३ : 'ए' तथा 'बी', ऑल इंडिया १९८४ : 'बी')

दहेज-प्रथा एक सामाजिक अभिशाप है। दो प्राणियों के नहीं, अपितु दो परिवारों के रोने, कराह-कराह कर बिसूरने तथा वंशानुवंश शत्रुता की जड़ है; मानवीय विपत्ति तथा अनिष्ट के लिए निमन्त्रण है; वंशवर्द्धिनी गृह-लक्ष्मी का अनादर है, अपमान है; अग्नि के सम्मुख शपथ लेकर पाणिग्रहण करते समय की गई प्रतिज्ञा का भंग है, विवाह को संस्कार न मानकर, 'लौकिक इकरारनामा-मात्र' मानने की दुर्भावना है।

दूसरी ओर, हिन्दू-संस्कार-विधि में विवाह की पाँच प्रक्रियाएँ हैं– वाग्दान, प्रदान (कन्यादान), वरण, पाणिपीडन (पाणिग्रहण) और सप्तपदी। वहाँ कहीं भी दहेज का उल्लेख नहीं है। वस्तुतः दहेज एक सात्त्विक प्रथा थी। कन्या अपने घर में श्रीसमृद्धि की वृद्धि करने वाली सिद्ध हो, इस भावना से उसका खाली हाथ पतिगृह में प्रवेश अपशकुन माना जाता है। फलतः वह अपने साथ वस्त्राभूषण, बर्तन, अलंकरण आदि पदार्थ ले जाती है।

सामर्थ्यानुसार स्वेच्छा से दिया गया दहेज कालान्तर में समाज के लिए अभिशाप बन गया। अब न सामर्थ्य का प्रश्न रहा, न स्वेच्छा की पवित्र भावना। समाज में ज्यों-ज्यों विकृति आती गई, विवाह-सम्बन्धों पर उसका प्रभाव बढ़ता गया।

ऐसी स्थिति में पिता कन्या के हाथ पीले करने के लिए वर की तलाश में निकल पड़ा—अपने दुर्भाग्य को दूसरे के मत्थे मढ़ने के लिए। परिणामतः पति लूला लंगड़ा हो, काना-कुरूप हो, अधिक आयु का हो, पैर कब्र में जा रहे हों, अत्याचारी या व्यभिचारी हो, पिता ने कन्या के विवाह का दायित्व उसके हाथ में थमा दिया। पण्डित और नाई विवाह-सम्बन्धों के माध्यम बने। महान उत्तरदायित्वपूर्ण संस्कार में अनुत्तरदायी माध्यम।

अंग्रेजी शासन में भारत अर्थ-प्रधान देश बन गया। सामाजिक, धार्मिक तथा

राजनीतिक भावनाएँ अर्थ को सौंप दी गई। अर्थ-प्रधान युग मे विवाह भी अर्थ की कसौटी पर कसा जाने लगा। कन्या की श्रेष्ठता शील और सौन्दर्य से नही, बल्कि दहेज से आँकी जाने लगी। कन्या की कुरूपता और कुसंस्कार दहेज के आवरण मे आच्छादित हो गए। खुलेआम वर की बोली बुलने लगी। दहेज मे प्राप्य राशि से परिवारों का मूल्यांकन होने लगा।

निराश माता-पिता दहेज के अभाव मे कन्या का विवाह, अयोग्य, अपग, अशिक्षित, अर्द्धशिक्षित, अल्पआयु, ऋणी, दुश्चरित्र, दुहेजू, तिहेजू से करने लगे। विदुषी कन्या मैट्रिकुलेट की भेंट होने लगी। अध्यापिकाएँ-प्राध्यापिकाएँ क्लर्कों को समर्पित होने लगी। स्वस्थ और सुन्दर कन्याएँ कुरूप और कुसंगी को सौंपी जाने लगी। आयु-वैषम्य ने तो उस अभिशाप की सामाजिक कोढ मे खाज ही उत्पन्न कर दी, जहाँ कन्या को शारीरिक अतृप्ति और मानसिक असन्तोष के अतिरिक्त अन्य कुछ प्राप्य नही है। इस प्रकार के विवाह मे कन्या जीवन भर दहेज या कोसती हुई अन्धकारपूर्ण जीवन व्यतीत करती है। कारण, यहाँ पति प्रेम की वस्तु नहीं, सम्माननीय पदार्थ होता है।

दूसरी ओर, योग्य वर-प्राप्ति के लिए मुँह-माँगे दहेज का प्रश्न है। ऋण लेकर चल-अचल सम्पत्ति गिरवी रखकर वर खरीदे जाने लगे। उसमे ऋणी नित्-कुल जीवनभर के लिए राहु-केतु की छाया मे ग्रस्त हो गया। वह तिल-तिलकर अन्तर्दाह मे फुँकने लगा।

कठोपनिषद् के अनुसार 'न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्य' (धन से मनुष्य कभी तृप्त होने वाला नही है) और धन से धन की भूख बढती है, तृप्ति नहीं होती। अतः दहेज के लोभी ये असुर पहले तो विवाह मे ही छोटी-मोटी बातों को लेकर कन्यापक्ष को नीचा दिखाने की कोशिश करते हैं। कोई-कोई अन्यायी तो विवाह की प्रसन्नता को विषाद मे परिणत कर देते हैं। फल यह होता है कि कन्यापक्ष के सभी सम्बन्धी और मित्रगण के चेहरे अकल्पित भय से मुरझा जाते हैं।

मानसिक वेदना दहेजी-अभिशाप का दूसरा अनिवार्य पहलू है। दहेज न लाने पर वधू के साथ छोटी-छोटी बातों मे गृह-कलह उत्पन्न किया जाता है। उन पर व्यंग्य-बाण मारे जाते हैं, कटूक्तियों का प्रहार किया जाता है, उसे भूखा मारा जाता है, तरसाया जाता है। पति से बोलने तक नहीं दिया जाता। मारा और पीटा जाता है। अदृश्य शारीरिक चोट पहुँचाई जाती है। अन्त में उसको मायके

भेज दिया जाता है। वह पितृकुल से अपने जीवन और वंश के विकास एवं समृद्धि के लिए जहाँ गई थी, वहाँ से अन्धकारमय भविष्य को लेकर लौटती है। मानसिक चिन्ता से उस नव-यौवना का रूप, बल और ज्ञान शनैः शनैः नष्ट हो जाता है। कारण, चिन्ता ऐसा ज्वर है, जो शीघ्र मृत्यु की घोषणा कर देता है।

शारीरिक कष्ट देना दहेजी-अभिशाप का अत्यन्त क्रूर पहलू है। माँग पूरी न होने पर वधू को बेतहाशा मारना-पीटना, उसका अंग-भंग कर देना आज भी अर्द्ध-शिक्षित या असभ्य समाज में बेरहमी से चलता है। इस मार-पीट से तंग आकर या तो विवाहिता आत्महत्या का श्रेष्ठ मार्ग ढूंढती है अथवा घर की चारदीवारी की लक्ष्मणरेखा लाँघ कर समाज की ठोकरें खाने को निकल पड़ती है।

आज की शिक्षिता नारी दहेज की वेदी पर बलि चढ़ जाती है, किन्तु पिसना पसन्द नहीं करती। उसमें धैर्य है, साहस है, तेजस्विता है, अर्थोपार्जन की क्षमता है, स्वावलम्बी जीवन-संचालन की योग्यता है। अतः वह दहेज के लोभी पति को छोड़कर मातृगृह में चला आना पसन्द करती है। सम्बन्ध-विच्छेद (डाइवोर्स) लेना उपयुक्त समझती है, स्वतन्त्र और स्वावलम्बी जीवन जीना चाहती है।

दूसरी ओर, आज शिक्षित कन्याओं को अनमान या अनिच्छित पुरुष को सौंपना सरल नहीं रहा। नारी के स्वाभिमान ने उसमें आत्मविश्वास जागृत कर दिया है। अर्थोपार्जन की दृष्टि से स्वावलम्बी नारियाँ आजीवन कुँवारी रहना पसन्द करती है, अपेक्षा अनचाहे व्यक्ति को जीवन-संगी बनाने के।

तीसरी ओर, विवाह पूर्व प्रेम की मान्यता ने दहेजी-अभिशाप के दानव को दमित किया है। वहाँ जीवन का समर्पण दान है और भावनाओं का समर्पण दहेज।

दहेज-विरोधी लेख लिखने, समाज-सुधारकों द्वारा सभाएँ करने, मंच तैयार करने तथा भाषण-बाजी से कुछ नहीं होगा। आज अधिकांश समाज-सुधारक और राजनीतिज्ञ दुर्मुंहे है। उनकी कथनी और करनी में ३६ का सम्बन्ध है। वह पुत्र के विवाह में स्काटलैंड की भाँति सम्बन्धी का 'एक किलो मांस' उतारने को उद्यत रहते हैं, किन्तु पुत्री के विवाह में आदर्शवादी बन जाते हैं।

युवक-युवतियों में दहेज-विरोधी मनःस्थिति तैयार करने पर ही दहेज के अभिशाप से मुक्ति होगी। इस अभिशाप की ज्वाला से उनके अन्तःकरण को प्रकाशित करना होगा। दहेजी प्रथाओं की कीचड़ से आत्मज्ञान रूपी कमल खिलाना होगा।

*

महंगाई

मूल्यों में निरंतर वृद्धि उत्पादन की कमी और मांग की वृद्धि में असमर्थता की परिचायक है। जीवन-यापन के लिए अनिवार्य वस्तुओं (कपड़ा, रोटी, मकान) की बढ़ती हुई मँहगाई गरीब जनता के पेट पर ईंट बांधती है, मध्यवर्ग की आवश्यकताओं में कटौती करती है, तो धनिक वर्ग के लिए आय के स्रोत उत्पन्न करती है।

देसी घी तो आंख आंजने को भी मिल जाए तो गनीमत है। वनस्पति देवता का आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए भी घंटों लाइन में खड़ा होना पड़ता है। पेट्रोल, डीजल, मिट्टी के तेल की मूल्य-वृद्धि ने दैनिक जीवन पर तेल छिड़क कर उसे भस्म करने का प्रयास किया है। तन ढकने के लिए कपड़ा मँहगाई के गज पर सिकुड़ रहा है। सब्जी और फल, दालें और अचार गृहणियों को पुकार-पुकार कर कह रही है—'रूखी-सूखी खाय के ठंडा पानी पी।' रही मकानों की बात—अगर मँहगाई की यही स्थिति रही तो लोग जंगल में वास करने लगेंगे। दिल्ली की हालत यह है कि दो कमरे-रसोई का सैट छः-सात सौ रुपये किराए पर मिलता है। कैसे गुजारा होगा मध्यम वर्ग का ?

बढ़ती हुई मँहगाई भारत-सरकार की आर्थिक नीतियों की विफलता है। प्रकृति के रोष और प्रकोप का फल नहीं, शासकों की बदनीयती और बदइंतजामी की मुंह बोलती तस्वीर है। मगरमच्छ के आंसू बहाकर गरीब और दलित वर्ग के उद्धार करने की माला जपने वाली सरकार द्वारा गरीब और दलित जनता को पिसने और तड़फ-तड़फ कर घुटने-मरने की स्वतन्त्रता प्रदान करना है।

काला धन, तस्कर और जमाखोरी मँहगाई-वृद्धि के परम मित्र हैं। तीनों से सरकार और पार्टियां खूब चन्दा लेती हैं। सरकार खुलेआम व्यापार करता है। काला धन जीवन का अनिवार्य अंग बन चुका है, उसके बिना दफ्तर की फाइल नहीं सरकती, पुलिस हरकत में नहीं आती, लाइसेंस नहीं मिलता, कोई

की तारीख नही भुगतती। जमाखोरी पुलिस और अधिकारी की मिलीभगत का कुफल है। बिना मिली-भगत भारत में जमाखोरी करना सुई के छिद्र मे से मानव का निकल जाना है। जो पकड़े भी जाते हैं—वे अनाड़ी हैं।

कर रहा साजिश अँधेरा, सीढ़ियो में बैठकर।
रोशनी के चेहरे पर, क्यों कही हरकत नही॥

महाराष्ट्र के भूतपूर्व मुख्यमन्त्री श्री अतुले ने स्वीकार किया कि चैक मे ऊपरी राशि लेकर सीमेंट मँहगा बिकवाया। मुख्यमन्त्री मँहगाई का हिमायती!!! गजब हो गया। जहाँ बाड़ ही खेत को खाने लगे, वहाँ कौन रक्षा कर सकता है?

विदेशी कर्ज और उसके सेवा-शुल्क ने भारत की आर्थिक नीति को चौपट कर रखा है। ३१ मार्च, १९८१ को भारत पर ४०, ३२४ करोड़ ८४ लाख रुपये विदेशी ऋण था, जो बढकर ३१ मार्च, १९८२ तक ६७५ अरब १७ करोड रुपये हो गए है। इसमें ५ हजार करोड़ रुपये का अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष से सम्भावित ऋण सम्मलित नही हैं। अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं की चेतावनी के बावजूद हमारा तो मिर्जा गालिब के शब्दों मे एक ही कथन है—

कर्ज की पीते थे वो, और कहते थे कि हाँ।
रग लाएगी हमारी, फाकामस्ती एक दिन॥

एक ओर विदेशी कर्ज बढ रहा है, तो दूसरी ओर व्यापारिक संतुलन बिगड़ रहा है। आयात-निर्यात का अन्तर १९७९-८० मे २२३३ करोड़ रुपये था, जो १९८०-८१ मे बढकर ५२०५ करोड़ रुपये तक जा पहुँचा। दूसरी ओर १२०० करोड़ रुपये देश की बीमार मिलें और ३०० करोड़ रुपये बीस हजार लघु उद्योग नष्ट कर रहे हैं। तीसरी ओर राष्ट्रीयकृत उद्योग निरन्तर घाटे में जा रहे है। इनमे प्रतिवर्ष करोड़ों रुपये का घाटा भ्रष्ट राजनेताओ, नौकरशाही और बेईमान ठेकेदारो के घर मे पहुंच कर जन-सामान्य को मँहगाई की ओर धकेल रहा है।

जहाँ उत्पादकता और उत्पादन न बढ़ने के लिए अयोग्य अधिकारी दोषी हैं, वहाँ कर्मचारी-आन्दोलन, हड़ताल एव वेतनवृद्धि के कारण घाटा बढता है, मँहगाई बढ़ती है। बंगलौर के सार्वजनिक उद्योगो मे एक लाख श्रमिकों की ७७ दिन की हड़ताल ने लगभग डेढ अरब रुपये की क्षति पहुँचाई। कार्यकुशलता गिरी, अर्थ-संकट गहराया और मँहगाई ने सुरसा-सा मुँह फैलाया।

गरीब देश की बादशाही-सरकारों के अनाप-शनाप बढते खर्च देश की आर्थिक

रीढ़ को तोड़ने की कसम खाए हुए हैं। मंत्रियों की पलटन आयोगों की भरमार, शाही दौरे, योजनाओं की विकृति मद मिलकर गरीब करदाता का खून चूस रही है। देश में खपत होने वाले पेट्रोलियम-पदार्थों के कुल खर्च का लगभग ८५ प्रतिशत राजकीय कार्यों में खर्च होता है। शेष १५ प्रतिशत भारत की ६५ करोड़ जनता उपयोग करती है। १५ प्रतिशत के लिए प्रचार माध्यमों से बचत की शिक्षा दी जाती है—'तेल की एक-एक बूंद की बचत कीजिए।' और स्वयं—'पर उपदेश कुशल बहुतेरे'।

महँगाई बढ़ने का एक कारण युद्ध और प्राकृतिक प्रकोप भी होता है। सन् १९७१ में भारत-पाक युद्ध हुआ था—महँगाई बढ़ रही है ८०-८१ में। सूखा और बाढ़ प्रतिवर्ष भारत के कुछ प्रांतों को राहु-केतु बन ग्रसते हैं, फिर भी देश में खाद्यान्न की कमी नहीं। इनका प्रभाव स्थानीय और क्षणिक तो हो सकता है--शाश्वत नहीं।

भारत का उद्योगपति जीवनोपयोगी वस्तु बनाने में दिलचस्पी नहीं लेता। कारण स्पष्ट है—आय की कमी। दूसरी ओर, फैशन सामग्री का बाजार भरपूर है—उसमें लाभ कई गुणा अधिक है। अतः जीवनोपयोगी चीजें माँग के अनुसार बाजार में नहीं पहुँच पाती। फलतः बाजार महँगा हो जाता है।

अरबों रुपया लगाकर हम उपग्रह बना रहे हैं, वैज्ञानिक प्रगति में विश्व के महान् राष्ट्रों की गिनती में आना चाहते हैं, किन्तु गरीब भारत का जन भूखा और नंगा है। आर्यभट्ट और रोहिणी उसकी भूख नहीं मिटा पाएंगे, न ही 'इन्सेट' उसकी नग्नता को ढक पाएगा। यदि यह रुपया ईमानदारी से गरीबी दूर करने में लगता, तो निश्चित ही देश की कायापलट होती।

अधिक नोट छापने का गुर एवं विदेशी और स्वदेशी ऋण घाटे की खाई को पार करने के सेतु हैं, खाई भरने की विधि नहीं। जब घाटे की खाई भरी नहीं जाएगी, तो मुद्रास्फीति बढ़ती रहेगी। ज्यों-ज्यों मुद्रास्फीति बढ़ेगी, महँगाई छलांग मार-मारकर आगे कूदेगी। जनता महँगाई की चक्की में और पिसती जाएगी। खाई भरने के तीन ही उपाय हैं—(१) कर-चोरी को रोकने का ईमानदारी से प्रयास। (२) राष्ट्रीयकृत उद्योगों के प्रबन्ध तथा संचालन में तीव्र कुशलता। (३) सरकारी खर्चों में योजनाबद्ध रूप में कमी का आह्वान।

वेकारी की समस्या

(ऑल इंडिया १६८४ : बी : ८०, ८२ : ए)

वेकारी राष्ट्र के भाल पर कलङ्क का टीका है; देश की गिरती आर्थिक स्थिति का सूचक है; सामाजिक अवनति का प्रतीक है; उद्योग-धंधों की राष्ट्र-व्यापी कमी का द्योतक है; भारत की दिवालिया अर्थव्यवस्था का परिचायक है; बढ़ती अराजकता का चिह्न है, देश, समाज, जाति तथा व्यक्ति के लिए घातक है।

बेकारी निठल्लेपन को जन्म देती है। निठल्लापन आलस्य का जनक है, आवारा-गर्दी का सहोदर है और है शैतानी की जननी। इससे चारित्रिक पतन होता है। सामाजिक अपराध बढ़ते हैं। मानसिक शिथिलता आती है और बढ़ती है शारीरिक क्षीणता।

जब काम की कमी और काम करने वालों की अधिकता हो, तब बेकारी की समस्या होती है। एक पद की पूर्ति के लिए सैकड़ों प्रार्थी 'क्यू' लगाकर खड़े हो जाते हैं क्यों ? क्योंकि वे वेकार हैं। अनार एक है, बीमार सौ हैं। किसको दें ?

वेकारी का सर्वप्रथम कारण देश की बढ़ती जनसंख्या है। देश में प्रतिवर्ष एक करोड शिशु जन्म लेते है। सन् १६७१ की जनगणना के अनुसार भारत की जनसंख्या ५५ करोड ८० लाख थी। सन् १६८१ तक यह साढ़े ६५ करोड पहुँच गई है। जिस अनुपात मे जनसख्या बढ़ रही है, उस अनुपात में रोजगार के साधन नही वढ रहे। फलतः बेकारी प्रतिपल-प्रतिक्षण बढ़ती जा रही है।

वेकारी का दूसरा बडा कारण है—नौकरी के लिए होड़। हायर-सेकेण्डरी तक की थोड़ी-सी शिक्षा पाकर हर नवयुवक नौकरी की ओर भागता है, बाबूगीरी मे ही जीवन का स्वर्ग देखता है। किसान का वेटा किसानी से मुँह मोड़ता है। चमार का वेटा चमारी से घृणा करता है तथा कर्मकाण्डी पण्डित का बेटा कर्म-कांड को पाखण्ड मानता है। श्रम मे पलायन की प्रवृत्ति के कारण बेकारी दूध के उबाल की भाँति उफन रही है। इसका मूल कारण वर्तमान शिक्षा-प्रणाली है।

बेकारी का तीसरा कारण है, देश की गलत औद्योगिक-योजना। देश ने पहली

पचवर्षीय योजना से ही विशाल, विशालतर और विशालतम उद्योगो को बढावा दिया, किन्तु छोटे उद्योग सिसकियाँ लेते रहे। 'बाटा' ने चमारो का धधा छीना, 'टाटा' ने लुहारो को चौपट किया, बिड़ला-भरतराम ने बुनकरो की रोजी पर लात मारी और तेल-मिलो ने तेलियो का रोजगार ठप्प किया, साबुन की बड़ी कम्पनियो ने लघुउद्योगों का गला घोटा। फलत. कारीगर बेकार हुआ और लघु उद्योग हतोत्साहित हुए।

बेकारी का चौथा कारण है, सरकार की ओर से घरेलू उद्योग-धन्धो को प्रोत्साहन का अभाव। बडी मिल लगाने के लिए बैंक लाखो रुपए कर्ज दे देते है, किन्तु लघु उद्योगों के लिए वे तड़पा-तडपाकर कर्ज देते है, तग करके कर्ज देते है। परिणामतः लघु उद्योग-धन्धे विकसित नही हो पा रहे। दूसरे, उनका बिक्री की मार्किट नही, उनके पास खपत का सुनियोजित माध्यम नही।

भारत में बेकारी के विविध रूप है—(१) ग्रामीण बेकारी—कृषक वर्ष मे ६-७ मास बेकार रहता है। (२) शिक्षित बेकारी—उपाधिधारी डॉक्टर, इजीनियर, टेकनीशियन, कृषि-पडित, कला-विशेषज्ञ बेकार पड़े है। (३) अशिक्षित तथा अल्पशिक्षित बेकारी अर्थात् श्रमिक वर्ग की बेकारी। देश की सख्या का बहुत बड़ा भाग गरीबी की सीमा के स्तर से नीचे का जीवन जी रहा है, जिसे एक समय भरपेट रोटी खाने को नही मिलती।

भारत की सरकार 'गरीबी हटाओ' का नारा लगती है, गरीबो के लिए मगरमच्छ के आँसू बहाती है, उद्योगपतियों को दोष देती है, किन्तु आचरण इसके विपरीत करती है। वह बोती बबूल के पेड है और आकाक्षा आमों की करती है।

दरिद्रनारायण की सेवा का व्रत लेने वाली इन्दिरा-सरकार ने गरीबों की सहायता के लिए आपातकाल घोषित किया था, मोरारजी देसाई-सरकार ने अन्त्योदय तथा काम के बदले अनाज-योजना की घोषणा की थी और कामचलाऊ-सरकार तो थी ही कामचलाऊ, उत्तर-दायित्व विहीन। पुन. सत्तारूढ इन्दिरा-सरकार को बहुत दिन तक जनता-सरकार को कोसने से फुरसत नही मिली। मधुर, आकर्षक नारों के सम्बल पर सभी अपनी गद्दी की रक्षा करने मे लगे रहे। वे गद्दी बचाते रहे—देश की अर्थव्यवस्था बिगड़ती रही, बेरोजगारी बढ़ती रही। अमीर अमीरतर होते गए, गरीब पाताल की ओर फिसलते रहे।

देश की बेकारी दूर करने के लिए दूरदर्शिता से काम लेना होगा। आग

लगने पर आग बुझाने वाले पहले आग को बढने से रोकते हैं। इसी प्रकार बेकारी के विकास को अवरुद्ध करना होगा। उसके लिए सर्वप्रथम परिवार-नियोजन करना होगा। जो पालन-पोषण नही कर सकता, उसमे प्रजनन का अधिकार छीनना होगा। आपातकाल की भांति कठोर हृदय होकर इस कार्यक्रम को सफल बनाना होगा।

दूसरे, प्रत्येक तहसील मे लघु उद्योग-धन्धे खोलने होंगे। लघु-उद्योगो के कुछ उत्पादन निश्चित करने होंगे, ताकि वे बडे उद्योगों की स्पर्धा मे हीन न हों।

तीसरे, शिक्षित युवको को शारीरिक श्रम का महत्त्व समझना होगा। श्रम के प्रति उनके मन मे रुचि उत्पन्न करनी होगी, ताकि वे घरेलू उद्योग-धन्धो को अपनाएँ।

चौथे, शिक्षा का व्यवसायीकरण करना होगा, जिससे युवको को किसी विशेष कार्य मे दक्षता मिले। *नवीन शिक्षा-प्रणाली* मे ऐसे अनेक काम निर्धारित है, परन्तु अनुभवी अध्यापको की. कमी और धनाभाव ने यह योजना चौपट कर दी। पेट पर शिकन न पडने देने वाले अध्यापक और छात्र लघु-उद्योगो में रुचि क्यों लेगे? वे प्रयोगात्मक से बढकर पारिभाषिक पढ़ाई पर बल देते है।

पाँचवें, उद्योग राष्ट्र की प्रगति के प्रतीक होते है। आज राष्ट्र का उत्पादन गिर रहा है। इसे बढाना होगा, नए-नए कारखाने खोलने होंगे। । नए उद्योगो से राष्ट्र को आवश्यक चीजो की प्राप्ति होगी और रोजगार के साधन बढेंगे।

छठे, भारत की अस्सी प्रतिशत जनता गाँवों में जीवनयापन करती है, और कृषि पर निर्भर रहती है। कृषकों का बहुत-सा समय बेकार जाता है। उन्हे खाली समय के लिए कुटीर-उद्योगों तथा घरेलु धन्धों द्वारा व्यस्त किया जाए। कुटीर-उद्योगो का जाल देश की बेरोजगारी दूर करेगा और सुख-समृद्धि लाएगा।

अतः उद्योग के नए अवसर प्रदान करते हुए, कुटीर-उद्योगो की स्थापना करते हुए, लघु-उद्योगो को प्रोत्साहन देते हुए लाल फीताशाही से बचा जाए और औद्योगिक घरानो को सम्पत्ति-वृद्धि से वंचित रखा जाए तथा बेकारों को मुक्त हस्त से आर्थिक एव शैक्षणिक सहयोग दिया जाए, तो निश्चय ही बेकारी की समस्या मे कमी होगी और वह आगे नही बढने पाएगी।

*

भारत के निर्माण मे अपूर्व योग दिया।

धर्म और सस्कृति के प्रचार और प्रसार का श्रेय देशाटन को ही है। प्राचीन धर्म भिक्षु तो 'कर तल भिक्षा, तरु तल वासः' का आदर्श सामने रखते थे। कबीर, बुद्ध, महावीर जीवन मे घुमक्कड रहे। शकराचार्य तो भारत के चारो कोनो की खाक छानते रहे और दे गये चार मठ। वास्कोडिगामा के भारत पहुँचने से बहुत पहले शकर के शिष्य मास्को तथा यूरोप मे पहुँचे। नानक ने ईरान और अरब तक धावा बोला। स्वामी विवेकानन्द और उनके शिष्यों ने विश्व में वेदान्त का झंडा गाडा एवं महर्षि दयानन्द और उनके शिष्यो ने विश्व मे वेदो की ध्वजा फहराई। राष्ट्रीय स्वयसेवक सघ के प्रचारको ने 'भारतीय स्वयसेवक संघ' तथा 'विश्व हिन्दू परिषद्' के माध्यम से विश्व मे हिन्दुत्व को बल दिया। ईसाई धर्म प्रचारक तो विश्व में सेवा-भाव का मूर्तरूप लेकर अवतरित हुए। हिप्पियों ने विश्व के युवकों मे Eat, Drink and be Marry (खाओ, पीओ और मौज मनाओ) का संदेश फूँका।

मनुष्य स्थावर वृक्ष नही, जंगम प्राणी है। चलना उसका धर्म है। 'चरैवेति-चरैवेति' उसका नारा है। 'सैर कर दुनिया की गाफिल जिन्दगानी फिर कहाँ ?' इस्माइल मेरठी के ये शब्द देशाटन के प्रेरणा-स्रोत हैं। विभिन्न देशवासियों की प्रकृति-प्रवृत्ति के परिणाम; विशिष्ट विषय के अध्ययन; ऐतिहासिक, भौगोलिक, साहित्यिक तथा वैज्ञानिक गवेषण; प्राकृतिक दृश्यों के अवलोकन; धर्म तथा सस्कृति के प्रचार; राष्ट्रीय मेलों और सम्मेलनों में सम्मिलन; तीर्थाटन; व्यापार-वृद्धि, राजकार्य; पत्र-मार्गी कूटनीतिक तथा गुप्तचर कार्य; सर्वेक्षण; आयोग तथा शिष्ट मडल; जीवको-पार्जन; आखेट; मनोरंजन; स्वास्थ्य सुधार; पर-राज्य मे आश्रय आज के देशाटन के प्रयोजन हैं।

घर से बाहर कदम रखते ही कष्टों का श्रीगणेश होता है, फिर देशाटन तो महाकष्टप्रद है। थका देने वाली यात्रा, प्रतिकूल आहार-व्यवहार; विश्राम की विकृत व्यवस्था; भाषा समझने की विवशता; परम्परा और सभ्यता के मानदण्ड की अनभिज्ञता, ठग और गिरहकटों का भय, विपरीत प्रकृति-प्रवृति वाले अथवा दुष्ट लोगों का साथ तथा अत्यधिक आर्थिक बोझ देशाटन मे बाधक हैं। डॉ. राहुल सांकृत्यायन की दलील है; 'घुमक्कड़ी मे कष्ट भी होते हैं, लेकिन उसे उसी तरह समझिए, जैसे भोजन में मिर्च। मिर्च में यदि कड़वाहट न हो तो क्या कोई मिर्च-

प्रेमी उसे हाथ भी लगाएगा ? वस्तुतः घुमक्कड़ी में कभी-कभी होने वाले कड़वे अनुभव उसके रस को बढ़ा देते हैं। उसी तरह जैसे काली पृष्ठभूमि मे चित्र अधिक खिल उठता है।'

देशाटन से अनुभव का विकास होता है। विभिन्न राष्ट्रों स्थानों की भौगोलिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक स्थिति का ज्ञान होता है। व्यापारिक स्पर्द्धा और उन्नत होने के भाव बलवान होते हैं। सहिष्णुता की शक्ति बढ़ती है। विभिन्न प्रकृति के मनुष्यों से सम्पर्क पड़ने के कारण मानव-मनोविज्ञान के ज्ञान में वृद्धि होती है। मेल-मिलाप मित्रता की सीमा फैलती है। प्रकृति से साहचर्य बढ़ता है। बातचीत करने का ढंग पता लगता है, व्यवहार कुशलता मे वर्द्धन होता है। कष्ट-सहिष्णुता का स्वभाव बनता है। मन में रंजन होता है। आनन्द का स्रोत फूटता है। जीवन मे सफलता का मार्ग प्रशस्त होता है। डॉ. जॉनसन के शब्दों में, 'देशाटन का लाभ कल्पना की वास्तविकता मे व्यवस्था करना है।'

देशाटन ज्ञानार्जन द्वारा आत्मा का विकास है। सद्, चित्त और आनन्द की प्राप्ति का अजस्र स्रोत है। 'स्व' से 'पर' तक पहुँचने का पुण्य पथ है। इस भूतल मे ही स्वर्ग की कल्पना का साकार रूप है। काल की कठोर शिला पर अपने पद-चिह्न छोड़ने का दुस्साहसी कर्म है।

देशाटन विश्व-बंधुत्व की भावना का उद्गम है। 'सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः' की मंगलमयी भावना है। विश्व मे शांति, सुख, सौन्दर्य और श्री वृद्धि का जनक है। कष्टों, विपत्तियों, प्राकृतिक विपदाओं, दुर्भावी युद्धों और विनाश-प्रवृत्तियों पर अंकुश है। विश्व को अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाने वाला प्रकाश पुंज है।



बढ़ती हुई आबादी की समस्या

(ऑल इंडिया १६८४ : '८)

बढ़ती हुई आबादी की समस्या मानव की न्यूनतम आवश्यकताएँ—रोटी, कपड़ा और मकान—की कमी उत्पन्न करेगी; जीवन-स्तर को गिराएगी; देश में हो रहे विकास-कार्यों का लाभ जन-जन तक पहुँचने में रोड़ा अटकाएगी; राष्ट्र की प्रगति पर प्रश्नचिह्न लगाएगी तथा असामाजिक तत्त्वों का निर्माण कर मर्यादित जीवन-मूल्यों को मलबे में दबा देगी।

वेदों में दस पुत्रों की कामना की गई है। सावित्री ने यमराज से अपने लिए शतक भाई और शतक पुत्रों का वरदान माँगा था। राजा सगर के साठ हजार पुत्र थे। कौरव सौ भाई थे। ये उन दिनों की बातें हैं, जब जनसंख्या इतनी कम थी कि समाज की समृद्धि, सुरक्षा और सभ्यता के विकास के लिए जनसंख्या-वृद्धि की परम आवश्यकता थी। आज स्थिति विपरीत है। १९७१ की जनगणना के अनुसार भारत की आबादी लगभग ५५ करोड़ ८० लाख थी। १९८१ के आरम्भ में यह साढ़े ६५ करोड़ तक पहुँच गई। भारत की जनसंख्या हर मास दस लाख बढ़ती है। इस दृष्टि से सन् २००० ई० में भारत की जनसंख्या सौ करोड़ हो जाएगी। अतः वर्तमान युग में बढ़ती हुई आबादी की समस्या चिन्तनीय है।

भारत में बढ़ती जनसंख्या का परिणाम है कि आज भारत में गरीबी की रेखा से नीचे जीने वालों की संख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ रही है। पापी पेट की आग बुझाने के लिए भोजन नहीं, गर्मी की लू और सर्दी की हड्डियां चीर देने वाली शीत हवाओं से बचने के लिए वस्त्र नहीं। खुले नील गगन के नीचे फैली हुई भूमि ही उनका आवासस्थल है।

'बुभुक्षितः किं न करोति पापम्' के अनुसार समाज में असामाजिक तत्त्वों का विकास होगा। चोरी, डाके, अपहरण, बलात्कार, धींगामस्ती का प्रभुत्व व्यापेगा।

जीवन-मूल्यों का ह्रास होगा। नैतिकता का पतन होगा। सभ्यता के विकास को बढ़ती जनसंख्या अपने मजबूत जबाड़ों में दबोच लेगी। सभ्यता दहाड़ें मार-मार कर रोएगी, 'त्राहियाम्' चिल्लाएगी।

बढ़ती आबादी की समस्या महँगाई और नकली चीजों को प्रोत्साहित करेगी। कारण, माँग अधिक और सप्लाई कम होगी, तो महँगाई बढ़ेगी। माँग बढ़ती है गुणन-प्रणाली के अनुसार—२×२=४, ४×४=१६, १६×१६=२५६, जबकि सप्लाई १+१, ४+४, १६+१६ के अनुपात में बढ़ती है। महँगाई का बोझ नकली चीजों को प्रस्तुत कर दूर किया जाएगा। खाद्य पदार्थों में मिलावट, वस्त्र-निर्माण में हेरीफेरी एवं जीवनरक्षक औषधियों में मिलावट के कारण जन-स्वास्थ्य चौपट हो रहा है। सप्लाई की कमी महँगाई के साथ-साथ 'चोर-बाजारी' को बढ़ावा देती है, जो राष्ट्र की अर्थव्यवस्था को चौपट करता है।

बढ़ती आबादी की समस्या ने रिश्वत को जन्म देकर काला बाजार को प्रेरणा दी, जिससे राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की नींव को हिला दिया। बच्चे का स्कूल-प्रवेश, नौकरी की प्राप्ति, प्रमाण-पत्र, लाइसेंस, कचहरी की तारीखें, राजकीय कार्यालयों के काम बिना रिश्वत नहीं चलते।

अधिक प्रजनन से जननी का स्वास्थ्य बिगड़ता है। अस्वस्थ जननी के बच्चों में स्वस्थता कैसे सम्भव है? रोगी काया जीवन के सुखों के भोग मे बाधक है। रोगी को जीते जी नरक भोगना पड़ता है।

आबादी बढ़ने का अर्थ है परिवार का विस्तार। परिवार में कमाने वाला प्राय: एक होता है और खाने वाले ५-६। अत. एक मध्यवित्तीय परिवार का जीवन-स्तर उठ नहीं पाता, आर्थिक प्रश्नों पर चिन्ता, क्लेश, क्षोभ, ग्लानि उत्पन्न होती हैं। घर में अशांति रहती है, जो पतन का कारण है।

बढ़ती आबादी का सर्वाधिक हानिकर पक्ष है—विकास कार्यों पर प्रभाव। सरकार वर्तमान जनगणना के आधार पर जो भी विकास कार्य करती है, वह अपनी सम्पन्नता तक बढ़ती आबादी में खो जाता है। उदाहरणत: दिल्ली में हर साल १०-१२ वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय नए खुलते हैं, फिर भी दिल्ली के स्कूल सम्पूर्ण शिक्षार्थियों को प्रवेश नहीं दे पाते। दूसरी ओर एक-एक कक्षा में ५०-५० बच्चे बैठे होते हैं। क्या पढ़ाएगा अध्यापक, क्या ध्यान देगा विद्यार्थी की प्रगति पर। कमोबेश यही हाल रोजगार उपलब्ध कराने के लिए रोजगार के

नए साधन निर्माण का है, चिकित्सा सुविधाएँ प्रदान करने का है, यातायात एवं संचार साधनों का है। सरकार कितना भी विकास-योजनाओं को सम्पन्न करे, वे सब ऊँट के मुंह में जीरा साबित हो रही हैं। देश की खुशहाली, प्रगति, औद्योगिक विकास, आर्थिक प्रगति को बढ़ती हुई आबादी रूपी सुरसा का मुख निगल जाता है, जुगाली तक नहीं करता।

बढ़ती हुई आबादी की समस्या के समाधान का सरल उपाय है—जन्म-दर गिराना और मृत्यु की दर बढ़ाना, जो अमानवीय है। इसके लिए हमें कुछ मानवीय उपाय अपनाने होंगे। जैसे—

सर्वप्रथम विवाह की आयु २१-१८ से बढ़ाकर २५ (लड़का)-२१ (लड़की) कर देनी चाहिए। इससे कम आयु में विवाह दण्डनीय अपराध माना जाए।

सरकारी सुविधाएँ—पदोन्नति, ऋण, रजिस्ट्रेशन, लाइसेंस, कोटा, परमिट, आदि की प्राप्ति के लिए नसबन्दी का प्रमाण-पत्र अनिवार्य कर देना चाहिए।

जीवन-स्तर की रेखा से नीचे जिनकी आय है, ऐसे अभावग्रस्त जीवन-यापन करने वाले (झुग्गी-झोंपड़ी, सड़क, पटरी पर रहने वाले) लोगों को प्रजनन-अधिकार से वंचित कर देना चाहिए।

पूरे भारत में 'एक पुरुष : एक पत्नी' का नियम लागू करना चाहिए। धर्म-विशेष के आधार पर एक से अधिक पत्नी रखने के अधिकार को समाप्त कर देना चाहिए।

प्रजनन के समय दो बच्चों की जननी की नसबन्दी डॉक्टर का कर्तव्य समझा जाए, ताकि 'न होगा बाँस, न बजेगी बाँसुरी'।

विषय-वासना के सुखोपभोग के परमानन्द में कमी न लाते हुए भी प्रजनन-शक्ति की रोक (नसबन्दी, लूप-निवेशन, निरोध-प्रयोग, गर्भनिरोधक गोली-सेवन आदि) के उपायों को बढ़ावा दिया जाए, जन-जन को शिक्षित किया जाए।

दुखमय नारकीय जीवन से भारतवासियों को मुक्ति दिलानी होगी। उनके जीवन को विकसित देशों के जीवन-समान उन्नत करना होगा। स्वर्ग के सुख को भूतल पर लाना होगा। बढ़ती आबादी को रोकना होगा। जनसंख्या वृद्धि की दर आपातकाल स्तर पर नियन्त्रित करनी होगी।

महानगर की समस्याएं

(दिल्ली १९८४ : 'बी')

महानगर जटिल समस्याओं के संगम हैं। कभी न समाप्त होने वाली उलझनों की प्रवाहिणी हैं। विकट प्रसंगो के ज्वालामुखी हैं, जिनका निराकरण सहज सम्भव नहीं। बरसात में उफनती हुई नदी के प्रवाह के समान नवीन कठिनाइयों की उग्रतर बाढ़ है, जो महानगरों को ही आत्मसात् कर लेना चाहती है।

महानगर रोजगार प्रदान करने के महान् केन्द्र हैं। नगर-निगम तथा राजकीय कार्यालय, औद्योगिक प्रतिष्ठान, व्यापारिक केन्द्र, कल-कारखाने रोजगार प्रदान करने का आह्वान करते हैं। अतः ग्रामीण जनता इन महानगरों की ओर खिंची चली आती है। इनकी जनसंख्या सुरसा के मुख की तरह प्रतिवर्ष फैलती जाती है। महानगरों की बढ़ती आबादी महानगरों की प्रमुख समस्या है।

प्रदूषण महानगरों की विकट समस्या है। यहाँ के कल-कारखाने, मिलें तथा सड़क पर अहर्निश दौड़ती बसें, ट्रक, कार, मोटर-साइकिल, स्कूटर, टैम्पों आदि पैट्रोल तथा डीजल से चलाने वाले वाहन जो प्रदूषण उत्पन्न करते हैं, उससे वहाँ की वायु विषाक्त हो चुकी है। सांस लेने में भी दम घुटता है। रूसी प्रतिनिधि-मंडल ने कलकत्ता के प्रदूषण के सम्बन्ध में यही राय व्यक्त की थी।

महानगरों की विभक्त शासन-प्रणाली में एकसूत्रता का अभाव इनकी जटिल उलझन है। दिल्ली को ही लीजिए—कानून, व्यवस्था और शिक्षा केन्द्र के हाथ में, विकास का दायित्व दिल्ली विकास प्राधिकरण पर, और बिजली, पानी, सफाई, स्वास्थ्य-रक्षा की जिम्मेवारी निभाते हैं नगर-निगम तथा नई दिल्ली नगरपालिका। यातायात व्यवस्था के लिए अलग 'दिल्ली परिवहन निगम' है। मजे की बात यह है कि इनमें परस्पर कोई ताल-मेल नहीं। एक द्रौपदी—पाँच पाडव। पाँचों का क्षेत्र अलग। अंग्रेजी में कहावत है, 'प्रत्येक का दायित्व, दायित्व को नकारना है' (Every body's responsibility is no responsibility)।

पिसता है बेचारा महानगरवासी।

बढ़ती आबादी को आश्रय देने के लिए विकास प्राधिकरण जितनी व्यवस्था करता है, वह कम पड़ जाती है। मकान की कमी, मकानों के किरायों में वृद्धि का कारण बनती है। आवास की कमी को पूरा करती हैं राजनीतिज्ञों और भू-स्वामियों की अपावन साँठ-गाँठ से निर्मित अनधिकृत बस्तियाँ तथा झुग्गी-झोंपड़ियाँ। झुग्गी-झोंपड़ियाँ महानगर के सुन्दर शरीर पर कोढ़ हैं, तो अनधिकृत बस्तियाँ स्वस्थ-विकास में बाधक।

महानगरों का अमर्यादित, अनियमित, अमर्यादित विकास तथा प्राचीन नगर की तंगदिली, कल-कारखानों तथा औद्योगिक संस्थानों का कचरा नगर की शोभा के मुख पर कालिख फेर देता है। गंदी बस्तियाँ, तंग कटरे, भूमिगत मल-मूत्र निकासी के प्रबन्ध का अभाव, शहर के बीच से गुजरते विशालकाय खुले मुँह नाले आस-पास के निवासियों को अपनी स्वच्छ (?) समीर से तृप्त रखते हैं।

महानगरों के स्वास्थ्य को चौपट करने का ठेका शुद्ध जल प्रणाली ने ले रखा है। सभी महानगरों का मल-मूत्र उनकी समीपस्थ नदियों में मिलता है, जो नदियों के जल को दूषित कर देता है। इस दूषित जल को रासायनिक प्रक्रिया से स्वच्छ करके महानगरवासियों को पीने के लिए उपलब्ध कराया जाता है। महानगरों में महारोगों के जानलेवा प्रकोप में बहुधा यही दूषित जल अपराधी होता है।

महानगरों की यातायात व्यवस्था नगर-वासियों के लिए अपर्याप्त रहती है। बसें ही यातायात का मुख्य साधन हैं। बम्बई, दिल्ली जैसे महानगरों में लोकल ट्रेन की व्यवस्था भी है। बसों और ट्रेनों की अपार भीड़, धक्कम-धक्का अनि-यंत्रित स्टैरिंग, बस चालकों की मनमानी, तकरार सब मिलकर महानगरवासियों के लिए अभिशाप सिद्ध होते हैं। रहे टैक्सी और स्कूटर—ये तो यात्रियों के कपड़े उतारने के लिए तैयार रहते हैं।

महानगरों में विद्युत्-सप्लाई की कमी के कारण औद्योगिक संस्थान उत्पादन की कमी से परेशान हैं, तो कार्यालय के बाबू प्रकाश के अभाव में काम करने से इन्कार कर बैठे हैं। जनता गर्मी में पंखे और कूलर के बन्द होने से तथा सर्दी में हीटर की हीट समाप्त होने से विद्युत् प्राधिकरण को गालियाँ देती रहती है। फिर, महानगरों की बिजलीरानी कब और कितने समय के लिए रूठ जाए, कुछ कहा

नहीं जा सकता।

महानगरों में शिक्षा-संस्थाएँ बहुत हैं, पर श्रेष्ठ संस्थाएँ बहुत कम हैं। भारत का भावी नागरिक स्कूलों के गंदे स्थान, अपर्याप्त सुविधा तथा विषाक्त वातावरण में अपनी शिक्षा ग्रहण करता है। विद्यालयों में फटे-पुराने तम्बुओं से बना विद्यालय-कक्ष विद्यार्थियों पर किस शिष्टता, सभ्यता की छाप छोड़ेगा ? इतने पर भी मनचाहे विषयों में प्रवेश न मिल पाना कोढ़ में खाज सिद्ध होता है। अच्छे विद्यालयों में (काला) प्रवेश-शुल्क इतना अधिक है कि लगता है ये विद्या के घर नहीं, व्यापारिक संस्थान हैं।

महानगरों की संचार-व्यवस्था का प्रमुख साधन है दूरभाष। दूरभाष व्यवस्था महानगरवासियों को जितना परेशान करती है तथा पीड़ा पहुँचाती है, वह अकथनीय है। 'रांग नम्बर' महानगर दूरभाष का स्वभाव है। लाइनों का अनचाहा मेल कराकर बात न करने तथा दूसरों की बात सुनने का अवसर प्रदान करना उसकी नीति है। 'डेड' हो जाना उसका बहाना है। कम्पलेंट दर्ज करके टिकट नम्बर देकर महानिद्रा में खो जाना उसकी 'रूटीन' है। आप शिकायत पर शिकायत दर्ज कराते रहिए, कर्मचारी की महानिद्रा भंग होगी, तो आ जाएगा, अन्यथा झेलिए महानगर में रहने का अभिशाप।

जिस प्रकार क्षेत्र की दृष्टि से, जनसंख्या की दृष्टि से, रोजगार की दृष्टि से महानगर की महानता को कोई अस्वीकार कर नहीं सकता, उसी प्रकार महानगरों में चोरी, डाके, बलात्कार, अपहरण, गुण्डागर्दी, छीना-झपटी, हेरा-फेरी, धोखा-धड़ी की अधिकता को भी झुठला नहीं सकता। महानगरों में लॉ एण्ड ऑर्डर की समस्या सतत है, चिरन्तन है, अतः चिन्तनीय है। कारण, सम्पन्न महानगरों में ही *असामाजिक तत्त्वों का शान से निर्वाह सम्भव है।*

महानगर समस्याओं के मूल-भूत कारण नगर-पिताओं की नगर के विकास कार्यों के प्रति उदासीनता, अधिकारियों का भ्रष्ट आचरण, उच्च अधिकारियों का कर्त्तव्य के प्रति राजनीतिक दृष्टिकोण, कर्मचारियों की कर्म के प्रति उपेक्षा तथा अपर्याप्त राजकीय अनुदान हैं। जब तक ये कमियाँ रहेंगी, महानगर की समस्याएँ कम नहीं होंगी।

सती-प्रथा

अपने पति के शव के साथ चिता में जल मरने को 'सती' होना कहते हैं। जाति या समाज द्वारा विधवा नारी के देह-दाह की प्रथा समाज की मान्यता प्राप्त होने पर 'सती-प्रथा' बन गई, एक आदर्श आचरण बन गया।

सती-प्रथा के पीछे नारी के सतीत्व की सुरक्षा की भावना रही होगी, उसके जीवन-यापन की समस्या रही होगी, उसकी छोटी-सी भूल में परिवार के तानों से दुःखी हृदय की कल्पना रही होगी। इसीलिए सती का देह-दाह पवित्र कर्म बन गया।

सुरपुर तक निभ जावसी, या जोड़ी या प्रीत।
सखी पिऊ रे देसड़ै, संग बलवा री रीत॥

हे सखि ! मेरी और प्रीतम की यह जोड़ी और प्रेम स्वर्ग तक निभ जाएगा, क्योंकि मेरे पति के देश में साथ जलने (सती होने) की प्रथा है।

पति के रण में जाने के बाद वह मैके जाना पसन्द नहीं करती, पतिगृह में सतीत्व वरण को फूल चढाती है।

वैदिक-युग में सती-प्रथा के उदाहरण नगण्य है। हिन्दू नरेशों के युग में भी इस प्रकार की प्रथा नही थी। रामायण-काल मे मेघनाथ की पत्नी सुलोचना के सती होने का उल्लेख है। इसके विपरीत इसी काल मे वानर और दानव संस्कृति में बालि-पत्नी तारा और रावण-पत्नी मन्दोदरी अपने पति की मृत्यु के उपरात अपनी देह को अग्नि-समर्पित नही करती, बल्कि अपने-अपने देवरो—सुग्रीव तथा विभीषण—से पुनर्विवाह कर लेती हैं।

सती-प्रथा मुस्लिम-काल की उपज है। परकीय, परदेशी, आततायी, विधर्मी, कामुक शत्रु के हाथो में जाकर नारियाँ जीवन के भोग भोगने की बजाए जौहर वरण करती थी। दूसरी ओर पति की मृत्यु के पश्चात् कामुक पुरुषो के साथ विलासी, किन्तु दासी जीवन बिताने मे अच्छा वे पति के साथ ही जीवन-त्याग को

महत्त्व देती थीं। वे अपने पति-शीश को अपनी गोद में लेकर उसके साथ ही अग्नि को समर्पित हो जाती थीं। यह युग-विशेष की परिस्थितियाँ थीं, विवशता थी।

मानव-मन कुसंस्कारों को शीघ्र ग्रहण करता है। विधवा देह-दहन निर्विवाद रूप से एक जघन्य कृत्य है, अमानुषिक कर्म है, घोर पाप है। इस पापमय दाह में समाज-मन ने प्रसन्नता प्रकट की और पुरुष-प्रधान समाज ने इसे स्वीकार कर लिया। विधवा देह-दहन 'सती-प्रथा' बन गई।

भारतीय मानस प्रथाओं-परम्पराओं के गुण-दोष विवेचन में विश्वास नहीं करता, उसके पालन में अन्ध श्रद्धा व्यक्त करने में अपने जीवन की महत्ता समझता है। प्रथाओं की विमुखता में, अपालन में उसे काल्पनिक भय सताता है। वह डरता है कि कहीं उस पर या उसके परिवार पर विपत्ति का पहाड़ न ढह जाए। इसलिए सती-प्रथा भी अन्ध श्रद्धा का केन्द्र बन गई। विधवा को भय से, दण्ड से, शक्ति से, पति-शव के साथ दग्ध होने को बाध्य किया गया। उसकी चीख-पुकार, उसका रुदन-विलाप ढोल-नगाड़ों या भक्ति गीतों के उच्च स्वर में नक्कारखाने में तूती की आवाज बनकर रह गया। देखते-देखते पवित्र तीर्थ रूपी देह राख में बदल गई।

स्वेच्छा से किया गया कर्म मन की संकल्प शक्ति का प्रतीक है; ध्येय के प्रति जीवन के समर्पण का द्योतक है। इसके विपरीत विवशता-वश किया गया कर्म पाशविक अत्याचार है, अमानवीय आचरण है। विधवा-देह-दहन संस्कार विवशता की सीढ़ियों से आत्मदाह की वेदी पर चढ़ने लगा, तो मानव-हृदय चीत्कार उठा। आग की लपटों में 'त्राहि माम्' की पुकार ने इस कुप्रथा को नंगा कर दिया और पत्थर-हृदय मानव का दिल भी पसीज उठा। राजा राममोहन राय जैसे समाज-सुधारक ने इस प्रथा के विरुद्ध जन-मानस को जागृत किया, विलियम बैंटिंग की सरकार ने सन् १८२९ में कानून बनाकर सती-प्रथा पर रोक लगाई।

कानून विधान की स्याही का वह बिन्दु था, जिसने गिरकर विधवा-देह-दहन की भाग्यलिपि पर कालिमा चढ़ा दी। विधवा-देह-दहन रुक गया। प्रथा का अन्त हो गया। जिस प्रकार कानून को तोड़ने वाले समाजद्रोही तत्त्व समाज में ही फलते-फूलते हैं, उसी प्रकार सती-प्रथा को मान्यता प्रदान करने वाले शूरवीर, दानवीर समाज के नेता बने हुए हैं। सती-मन्दिरों का निर्माण, उसमें पूजा अर्चना

परोक्ष रूप में सती-महत्त्व का वर्णन है। इसलिए भारत में प्रतिवर्ष दो-चार नारियाँ सती-प्रथा की लीक को पीटती रहती हैं।

२०वीं शताब्दी के अन्त में, जबकि विश्व २१वीं शताब्दी में प्रवेश करने को सन्नद्ध है, दिवराला जैसे कांड होना, रूपकँवर का सती होना निश्चित ही समाज के भाल पर कलंक है और समाज के पतन का परिचायक, किन्तु यह अवश्य होते रहेंगे, जब तक समाज में इस प्रथा के विरुद्ध घृणा उत्पन्न नहीं की जाएगी।

२०वीं सदी के वैज्ञानिक युग में अपने सच्चे प्रेम की खातिर प्रेमी-प्रेमिका विष-पान कर एक साथ परलोक गमन करते हैं। पति के प्रेम में प्रवत्त विधवा पत्नी अन्य उपायों से देह-त्याग कर देती है, किन्तु पति-शव के साथ देह-दहन नहीं करती। पति की मृत्यु के उपरांत आर्थिक दृष्टि से परावलम्बित नारी दर-दर की ठोकरें खाती हुई एक दिन आत्म-हत्या तो कर लेती है, किन्तु अपने कोमल शरीर को अग्नि-समर्पित नहीं करती। कारण, वह जानती है कि अग्नि के मामूली से ताप को बरदाश्त करना भी मानव-देह के लिए पीड़ा-प्रद है। जब शरीर-त्याग के अत्यन्त-सुलभ साधन हैं, तो फिर पीड़ामय जीवन का वरण क्यों ?

विधवा-स्त्री ही देह-दहन का पालन करें, क्यों ? पत्नी की मृत्यु पर कितने पतियों ने स्त्री के शव को अपनी गोद में लेकर आत्म-दाह किया है ? वैदिक-युग से अद्यतन काल तक शायद ऐसा कोई उदाहरण नहीं मिलेगा। इसका अर्थ है कि पत्नी की मृत्यु के उपरांत पति दूसरा विवाह कर इहलोक के भोग-भोगे और पति के मरने पर पत्नी को आग की लपटों में धकेल दिया जाए। यह कहाँ का न्याय है। वस्तुतः पुरुष-प्रधान समाज में 'सती-प्रथा' का समर्थन अपनी प्रधानता को बनाए रखने का षड्यन्त्र है।

पुरुष भूल गया कि नारी उसकी जननी है, पालन-पोषण करने वाली माता है, संस्कार देकर संस्कृत करने वाली शिक्षिका है, अपने प्रेम से उसके जीवन में मधुरता उड़ेलने वाली प्रेमिका है। वंश देकर उसका पितृ-ऋण चुकाने वाली स्वामिनी है। ऐसी नारी का देह-दहन पुरुष को मानव बनाने वाली नारी के प्रति कृतघ्नता है, जघन्य अत्याचार है, और है गुरु-द्रोह।

जवाहरलाल नेहरू

"अगर मेरे बाद कुछ लोग मेरे बारे मे सोचें तो मैं चाहूँगा कि वे कहे—यह एक ऐसा आदमी था, जो अपने पूरे दिल व दिमाग से हिन्दुस्तानियों से मुहब्बत करता था और हिन्दुस्तानी भी उसकी खामियों को भुलाकर उससे बेहद, अजहद मुहब्बत करते थे।" —जवाहरलाल नेहरू

पंडित जी के शब्दों को थोड़ा-सा बदलकर यदि यह कहे कि वे मानवमात्र से मुहब्बत करते थे, तो अतिशयोक्ति न होगी। उनके निधन पर विश्व के समस्त राष्ट्रों द्वारा राष्ट्रीय स्तर पर शोक मनाया जाना, हमारे इस कथन का परिचायक है।

भारत के कर्णधार, नवीन भारत के निर्माता, देश के प्रहरी, राजनीति के चाणक्य तथा बच्चों के चाचा एव भारत के प्रथम प्रधानमन्त्री जवाहरलाल का नाम भारत के इतिहास में स्वर्णाक्षरो मे अंकित रहेगा।

१४ नवम्बर, १८८९ को प्रयाग में जवाहरलाल जी का जन्म हुआ था। आपके पिता का नाम श्री मोतीलाल नेहरू था। मोतीलाल नेहरू एक सुप्रसिद्ध एवं धनाढ्य वकील थे। कांग्रेस के एक नेता के रूप मे भी आप प्रसिद्ध हुए।

जवाहरलाल जी की प्रारम्भिक शिक्षा घर पर हुई। घर पर ही पढ़ाने के लिए एक अंग्रेज विद्वान् नियुक्त था। देश के शिक्षित वर्ग पर पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव होने के कारण पंडित मोतीलाल ने आपको १५ वर्ष की अल्पायु में शिक्षणार्थ इंग्लैंड भेज दिया। वहाँ इन्हें हैरो स्कूल में प्रविष्ट करा दिया गया। तत्पश्चात् आपने कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय मे प्रवेश किया। यहाँ आप इंग्लैंड के धनी परिवार के बच्चों के साथ शिक्षा पाते थे। सम्राट् एडवर्ड अष्टम आपके सहपाठी थे। कालेज में 'विज्ञान' मे आपकी विशेष रुचि थी, परन्तु पिता की इच्छानुसार आप सन् १९१२ मे बैरिस्ट्री की परीक्षा उत्तीर्ण कर भारत लौटे। १९१५ में आपका विवाह कमला जी के साथ हुआ।

स्वदेश लौटने पर पंडित जी ने वकालत आरम्भ की, परन्तु उसमें उनका मन नही लगा। लगता भी कैसे ? इंग्लैंड जैसे स्वतन्त्र देश में भ्रमण किया हुआ जवाहर अपने देश को परतन्त्र कैसे देख सकता था ? इधर देश मे १६१६ से रौलेट एक्ट तथा पंजाब के मार्शल लॉ एवं जलियांवाला बाग के अमानुषिक अत्याचारों ने देश में जागृति उत्पन्न कर दी थी। इसी बीच प्रथम महायुद्ध छिड़ गया। जवाहरलाल जी, लोकमान्य तिलक और श्रीमती एनीबेसेण्ट की दो होमरूलों के सक्रिय सदस्य बन गए। जब श्रीमती एनीबेसेन्ट गिरफ्तार हुई, तो जवाहरलाल जी ने अपने पिता मोतीलाल नेहरू, डाक्टर तेजबहादुर सप्रू और सर चिन्तामणि को उत्तरप्रदेशीय डिफेंस फोर्स का कार्य बन्द करने के लिए विवश कर अहिंसात्मक आंदोलन का सूत्रपात कर दिया। देश के नेता महात्मा गांधी के सन्देशानुसार आपने असहयोग आन्दोलन मे भाग लिया। राजसी ठाट-बाट छोड़ दिए और मोटा खद्दर का कुर्त्ता पहनकर एक सत्याग्रही सैनिक बन गए। इसके बाद उन्होने अपना सारा जीवन देश के लिए राजनीति में घुला दिया। १६२० से लेकर १६४४ तक अनेक बार सत्याग्रह किया और कारावास गए। इस दीर्घकाल मे उन्हें अनेक कष्ट तथा दुःख सहने पड़े। सत्याग्रह के दिनों में पत्नी तथा माता-पिता की मृत्यु से इन पर दुःखों को पहाड़ टूट पड़ा, परन्तु यह वीर सेनानी सब-कुछ हँसते-हँसते सह गया।

सन् १६२८ में मोतीलाल नेहरू कांग्रेस के अध्यक्ष चुने गए, परन्तु अगले वर्ष लाहौर में जवाहरलाल जी काग्रेस के अध्यक्ष बने। यह जवाहरलाल जी के लिए गौरव की बात थी। एक ही वर्ष मे उन्होंने पिता का स्थान प्राप्त कर लिया। इसी वर्ष नेहरू जी ने घोषणा की कि यदि हमें शीघ्र ही औपनिवेशिक स्वराज्य नही दिया गया, तो हम पूर्ण स्वराज्य के लिए आन्दोलन करेंगे। अपनी महान् कार्य-क्षमता एव नेतृत्व के कारण ही आप कई बार कांग्रेस के अध्यक्ष बने।

पण्डित जी ने अपनी अन्तिम जेल-यात्रा सन् १६४२ मे 'भारत छोड़ो' आन्दोलन के अन्तर्गत की। इस बार आप तीन वर्ष तक कारावास मे रहे। इसी बीच सन् १६४५ मे द्वितीय विश्व युद्ध समाप्त हो गया था। ब्रिटेन में चर्चिल के स्थान पर एटली (मजदूर नेता) की सरकार सत्तारूढ़ हो गई। उसने यह देखा कि भारत के स्वतन्त्रता-संघर्ष को दबाना कठिन ही नहीं, असम्भव भी है।

दूसरे, ब्रिटेन की अपनी आर्थिक स्थिति डाँवाडोल हो चुकी थी। ऐसी स्थिति में बाध्य होकर सन् १९४६ में अंग्रेजी-सरकार ने भारत को स्वतन्त्र करने का निर्णय किया। इसके अनुसार एक अन्तरिम सरकार बनाई गई, जिसके प्रधान-मन्त्री जवाहरलाल जी बने। सन् १९४७ में भारत विभाजन होने के साथ-साथ ब्रिटेन द्वारा भारत को एक औपनिवेशिक राज्य घोषित कर दिया गया। इस समय भी आप औपनिवेशिक राज्य के प्रधानमन्त्री बने। सन् १९५२ में प्रथम निर्वाचन हुआ। उसमें आप विजयी हुए और पुनः प्रधानमन्त्री बने। १९५७ के द्वितीय तथा १९६२ के तृतीय महानिर्वाचनों में भी आप विजयी हुए और प्रधानमन्त्री पद को मृत्यु-पर्यन्त सुशोभित करते रहे।

आपने अपने इस प्रधानमंत्रित्व-काल में अनेक प्रशंसनीय कार्य किए। नव-जात स्वातन्त्र्य-शिशु की रक्षा, विभाजन से उत्पन्न अनेक कठिनाइयाँ, काश्मीर पर पाकिस्तानियों का आक्रमण, राज्यों की पुनर्गठन-समस्या, चीन की ओर से होने वाले आक्रमण और विदेशों में भारतीयों की सुरक्षा आदि अनेक समस्याओं को आपने सुचारू रूप से हल कर देश को गौरवान्वित किया।

पण्डित जी ने व्यस्त राजनीतिक जीवन में जो साहित्य-सेवा की, वह भी कभी भुलाई नहीं जा सकती। 'मेरी कहानी' आपका सर्वोत्तम तथा सर्वप्रिय ग्रन्थ है। इसके अतिरिक्त 'भारत की कहानी', 'पिता के पत्र पुत्री को' तथा 'विश्व-इतिहास की झलक' आपकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। ये सारे ग्रन्थ आपने कारावास की कोठरियों में बैठकर लिखे थे। इस कारण इनका महत्त्व और भी बढ़ जाता है।

पण्डित नेहरू एक महान् दार्शनिक थे; जनता की आकांक्षाओं का निरन्तर गतिमान मानचित्र प्रस्तुत करने वाले इतिहासज्ञ थे, और थे विज्ञान के प्रेमी। उनमें राष्ट्र-प्रेम का बल था, संकल्प की शक्ति थी और साथ-ही-साथ कूट-नीतिज्ञता का सहारा था।

श्री मोरार जी देसाई के शब्दों में, "वह केवल गाँधीजी के राजनैतिक उत्तराधिकारी अथवा स्वाधीन भारत के प्रथम प्रधानमन्त्री ही नहीं थे, बल्कि इससे भी बढ़कर मानवीय गुणों से सम्पन्न इतिहास पुरुष थे। स्वाधीन भारत में एकता तथा जनतंत्र के पोषक के रूप में उन्हें हमेशा याद रखा जाएगा।"

२७ मई, १९६४ को हृदय-रोग से आपकी मृत्यु हो गई।

हमारे प्रधानमंत्री : राजीव गांधी

राजीव गांधी विश्व के सर्वाधिक कम आयु के प्रधानमंत्री हैं। गुटनिरपेक्ष राष्ट्रों की अध्यक्षता उन्हें विरासत में मिली थी। प्रधान-मंत्रित्व उन्हें 'भाग्यं फलति सर्वत्र, न विद्या न च-पौरुषम्' के आधार पर प्राप्त हुआ था।

३१ अक्तूबर, १९८४ को इन्दिरा गांधी की मृत्यु के कुछ ही घंटों के पश्चात् वे प्रधानमंत्री मनोनीत हुए। सातवें महाचुनाव के महासमुद्र में राजनीतिक क्षमता का अहसास कराते हुए वे सांसद निर्वाचित हुए और नववर्ष के प्रथम दिन से वे निर्वाचित प्रधानमंत्री बने।

३१ अक्तूबर, १९८४ को जब वे प्रधानमंत्री मनोनीत किए गए, तब वे 'राजनीति के छात्र थे। कूटनीति और प्रशासनिक अनुभव से शून्य थे। मंत्री और मंत्रालय के गलियारों से अनभिज्ञ थे। अफसरशाही, नौकरशाही और लालफीताशाही की कूटनीतिज्ञो, षड्यंत्रों से बेखबर थे।

सुप्रसिद्ध पत्रकार उदयन शर्मा का कहना है कि 'राजीव गांधी चूंकि राजनीति में एकदम नौसिखिए हैं, अतः हीनता की भावना से इतना त्रस्त रहते हैं कि पार्टी के नेताओं और मंत्रियों से महीनों-महीनों नहीं मिलते। उनकी राजदार सिर्फ सोनिया गांधी हैं।'

राजीव प्रधानमंत्री बने। उनके कुछ घंटों पश्चात् ही सिख-संहार का ताण्डव शुरू हो गया। इन्हीं दिनों रेल-दुर्घटनाओं का तांता लग गया। ३ दिसम्बर, १९८४ को भोपाल की गैस त्रासदी के रूप में इतिहास की सबसे बड़ी विनाशलीला घटित हुई जिसमें दो सहस्र से अधिक लोग मारे गए और सहस्रों प्रभावित हुए।

दिसम्बर, १९८४ में महा-चुनाव हुआ। राजीव ने जमकर विरोधियों पर प्रहार किए। पंजाब प्रश्न को खूब उछाला। जनता को गुमराह किया। करोड़ों रुपया पानी की तरह बहाया। परिणामतः न केवल राजीव जीते, उनके साथ

उनकी पार्टी ने अत्यधिक बहुमत प्राप्त किया। राजनीति के रण में राजीव गांधी की यह पहली विजय थी।

शरीर से स्वस्थ, रूप से सुन्दर, प्रकृति से शान्त श्री राजीव का जन्म २० अगस्त, १९४४ को बम्बई में हुआ था। माता थीं भारत की सशक्त प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी और पिता थे श्री फिरोज गांधी।

राजीव की प्रारम्भिक शिक्षा जर्मन-महिला श्रीमती उषा भगत की देख-रेख में हुई। १९५४ में उन्होंने दून विद्यालय में प्रवेश किया। १९६० में यहां से सीनियर कैम्ब्रिज की परीक्षा द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण की।

इसके बाद वे एक वर्ष तक लन्दन के इम्पीरियल कॉलेज में पढ़े और तदन्तर कैम्ब्रिज के ट्रिनीटी कॉलेज में दाखिल हो गए। वहां उन्होंने मैकेनिकल इंजीनियरिंग का कोर्स आरम्भ किया।

सौन्दर्य-प्रेम राजीव को अपने नाना, पिता तथा माता से वंशानुगत रक्त में प्राप्त हुआ था। एक पार्टी में इटेलियन युवती सोनिया से उनकी मुलाकात हो गई। राजीव हृदय हार गए और उससे विवाह-सूत्र में बंध गए।

दिल्ली आने पर राजीव फ्लाइंग क्लब के सदस्य बने। प्रशिक्षण पूरा करने पर १९७० में एअर इण्डिया में विमान चालक बने। छोटे भाई संजय की मृत्यु के पश्चात् राजनीति से गुरेज करने वाले राजीव को राजनीतिक जीवन में प्रवेश करना पड़ा। १९८० में गांधी-जन्म दिवस (२ अक्तूबर) को उन्होंने विधिवत राजनीति का चोगा पहना।

१७ अगस्त, १९८१ को अमेठी की सीट से अनुज संजय की मृत्यु के कारण हुए उपचुनाव में जीतकर राजीव लोकसभा के सदस्य बने। २९ दिसम्बर, १९८१ को युवा कांग्रेस के बंगलौर अधिवेशन में उन्हें युवा कांग्रेस का नेता स्वीकार किया गया। १९८३ में अखिल भारतीय कांग्रेस के महा-सचिव नियुक्त हुए।

एक ओर वे कांग्रेस के सुगठन, विधिवत् कार्यसंचालन और युवा वर्ग को प्रोत्साहन देने के लिए प्रयत्नशील थे, तो दूसरी ओर भारत की राजनीति में निरन्तर प्रभावी होने का प्रयास कर रहे थे, तीसरी ओर भारत के प्रधानमन्त्री के व्यापक दायित्वों के अध्ययन और प्रशिक्षण प्राप्त करने में भी रत थे।

इन्दिराजी चाहती थी कि उनके बाद उनका पुत्र प्रधानमन्त्री-पद संभाले। अपने छोटे पुत्र संजय को उन्होंने इस रूप में तैयार भी किया, किन्तु विधि की

विडम्बना ने संजय को इस दुनिया से उठाकर इन्दिराजी की इच्छाओं पर पानी फेर दिया। इन्दिराजी निराश नहीं हुईं; अब उनकी दृष्टि राजीव पर टिकी। वे राजीव को योजनाबद्ध रूप से राजनीति के अखाड़े के दाँव-पेंच सिखाने लगीं, किन्तु कुछ ही समय के बाद काल ने इन्दिरा जी को अपना ग्रास बना लिया। तत्पश्चात् भारतीय संसद ने राजीव को प्रधानमन्त्री पद प्रदान कर इन्दिराजी की आत्मा को गद्-गद् कर दिया।

राजीव गाँधी विशाल भारत के संचालन में कोई करिश्मा नहीं दिखा पाए। उल्टा उनके युग में साम्प्रदायिकता का विष बढ़ा है। पंजाब की समस्या बेकाबू हो रही है। आतंकवाद रूपी सर्प-भारत को डसने पर उतारू है। त्रिपुरा नेशनल वालियन्टर्स (TNV) पश्चिमी बंगाल में गोरखा राष्ट्रीय मुक्ति-मोर्चा (GNLF), नक्सलवादी संगठन—पीपल्स वार ग्रुप बिहार और आंध्र में नक्सलवादी प्रभाव दिन-प्रतिदिन देश के वातावरण को विषाक्त कर रहे हैं। लॉ एण्ड आर्डर आहें भर रहा है।

राजीव-काल में देश का आर्थिक ढाँचा चरमरा रहा है। बढ़ती हुई कमर-तोड़ मँहगाई, विदेशों की ऋण अदायगी की अपेक्षा तेजी से विदेशी मुद्रा-कोष में कमी, विकास दर में गिरावट, निर्यात की अपेक्षा आयात में लाखों का अन्तर देश की अर्थव्यवस्था को कहाँ ले डूबेगा, यह भविष्य ही बताएगा।

राजीव-काल में भारत-भाल का भयंकर कलंक बना कमीशन। हर सैनिक-खरीद में करोड़ों का कमीशन, विदेशी बैंकों में करोड़ों रुपयों के कमीशन-खाते, विश्व प्रांगण में भारत की प्रतिष्ठा को गिरा रहे हैं।

राजीव गाँधी के शासन में पार्टी-अधिकारियों की बदल, मुख्य-मन्त्रियों का परिवर्तन और ४५ मास के स्वल्प काल में २४ बार केन्द्रीय मन्त्रिमंडल में भारी फेरबदल से मन्त्री-पद की महत्ता का भारी अवमूल्यन हुआ है।

प्रभु से प्रार्थना है कि हमारे प्रधानमन्त्री को देश की समस्याओं से गम्भीरता-पूर्वक जूझने की शक्ति प्रदान करें ताकि वे भारत को आर्थिक, राजनैतिक तथा धार्मिक दल-दल से निकालने में समर्थ हों।

मेरा प्रिय खेल : कबड्डी

(ऑल इंडिया १९८८)

जीवन मे, विशेषकर विद्यार्थी-जीवन में, खेलों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। सबसे पहले तो स्वास्थ्य की दृष्टि से खेलों की आवश्यकता है। शरीर को स्वस्थ रखने के लिए व्यायाम करना अनिवार्य है और खेल व्यायाम का एक लोकप्रिय अंग है। नियमित रूप से खेलों मे भाग लेने वाले विद्यार्थी स्वस्थ, फुर्तीले और सदा प्रसन्न रहते हैं। खेल के मैदान में पहुंचते ही आलस्य छूमन्तर हो जाता है एवं शरीर मे स्फूर्ति भर आती है।

खेल मनोरंजन का भी साधन है। जब बहुत से साथी एकत्र होकर कोई खेल खेलते है, तब खूब मनोरंजन होता है। खेलने वालों के अतिरिक्त देखने वाले साथी भी आनन्द उठाते हैं। खेल के मैदान मे सारा वातावरण हँसी-खुशी से भरा होता है।

खेलों से हमारे जीवन मे अनुशासन में रहने की प्रवृत्ति बढ़ती है। प्रत्येक खेल के कुछ नियम होते हैं। उन्ही नियमों का पालन करते हुए खिलाड़ी खेलते है। नियमों का उल्लंघन होने पर खिलाड़ी को दोषी घोषित कर दिया जाता है और प्रतिद्वन्द्वी दल को उसका लाभ मिलता है। इस प्रकार नियमो के अधीन खेलने का अभ्यास होने पर हम सदा के लिए अनुशासनप्रिय हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त खेल मे हम अपनी विजय और पराजय को हँसकर स्वीकार करते हैं। खिलाड़ी न तो विजय की मस्ती में दूसरो का अपमान करते हैं और न पराजय से क्षुब्ध होकर लड़ने पर उतारू होते है। खेल-भावना (Sportsman spirit) वाली उक्ति इसी भाव के लिए प्रसिद्ध है। जीवन में सफलता एवं शान्ति प्राप्त करने के लिए खेलों की यह देन बहुत ही मूल्यवान है। यदि सभी लोग 'खेल-भावना' को अपना लें, तो वर्तमान जीवन की अनेक विषमताएँ स्वतः दूर हो सकती हैं।

जीवन के लिए, विशेषकर विद्यार्थी-जीवन के लिए, खेलों के महत्त्व को स्वी-

कार करते हुए सेण्ट्रल बोर्ड ऑफ सेकेण्डरी एजूकेशन ने शारीरिक शिक्षा को स्कूलों में अनिवार्य विषय घोषित कर दिया है। सभी विद्यालयों मे व्यायाम-शिक्षक नियुक्त हैं, जो बच्चों को अनेक खेलों और विभिन्न प्रकार के व्यायाम का प्रशिक्षण देते हैं। हमारे विद्यालय में क्रिकेट, हॉकी और कबड्डी का प्रशिक्षण विशेष रूप से दिया जाता है।

मुझे क्रिकेट, हॉकी, वॉलीबाल, फुटबाल आदि खेलों की अपेक्षा कबड्डी एक सुन्दर, सस्ता और स्वास्थ्यप्रद खेल लगता है। क्रिकेट, हॉकी, वॉलीबाल तथा फुटबाल बड़े महँगे खेल हैं। दूसरे, उनमें शरीर पर कही भी चोट लग सकती है, जिससे आदमी निकम्मा हो सकता है। तीसरे, जब तक खिलाड़ियों की सख्या पर्याप्त मात्रा मे न हो, ये खेल खेले नहीं जा सकते। चौथे, ये सारे खेल विदेशी हैं। कबड्डी मे ऐसी बात नही। यह पूर्णतः भारतीय खेल है। अतः मैं कबड्डी का शौकीन भी हूँ और खिलाड़ी भी।

कबड्डी के लिए किसी स्थान-विशेष की आवश्यकता नही। यह कही भी और कभी भी खेली जा सकती है। अच्छा हो, यदि यह स्थान कंकरीला और पथरीला न हो। फिर उसमें चोट लगने का भय नही रहता। दूसरे, इसके लिए आठ-दस भी खिलाड़ी हों, तो खेल अच्छा जम जाता है। तीसरे, इसके सभी सदस्य सदा सक्रिय रहते हैं।

कबड्डी खेलने के स्थान के बीचों-बीच एक रेखा खीच दी जाती है. इसे 'पाला' कहते हैं। इसके दोनों ओर खिलाडी खड़े होते है। दोनों ओर के खिलाड़ी संख्या मे बराबर होने चाहिएँ। खेल आरम्भ होने पर एक ओर का खिलाड़ी दूसरी ओर 'कबड्डी-कबड्डी' कहता हुआ जाता है। वह यह प्रयत्न करता है कि जब तक उसके मुँह से 'कबड्डी' शब्द निकलना बन्द नही होता, वह दूसरी ओर के खिलाडी या खिलाड़ियों को छूकर पाले तक पहुँच जाए। दूसरी ओर के खिलाडियों का प्रयत्न होता है कि वे उसको ऐसे पकड़े कि वह छूटकर पाले तक न पहुँच पाए और स्वयं भी सावधान रहे कि उसे पकड न सके, तो वह उन्हें छू भी न जाए। यदि वह छू गया तो जिन खिलाडियों को उसने छूआ है, वे सब खिलाड़ी 'आउट' हो जाएँगे अर्थात् बैठ जाएँगे। दूसरी ओर से भी यही क्रिया होती है।

बैठा हुआ या 'आउट' खिलाडी तभी खेल में पुनः भाग ले सकता है, जब उसका कोई साथी दूसरी ओर के किसी खिलाड़ी को 'आउट' कर दे।

इस प्रकार जिस ओर के सब खिलाडी आउट हो जाएँगे, वह पार्टी हारी हुई समझी जाएगी। कई बार खिलाड़ियों को आउट करके बैठाने के बजाए 'प्वाइंट' गिन लिए जाते हैं। निर्धारित समय मे जिसके 'प्वाइंट' ज्यादा होते हैं, वह पार्टी जीती हुई मानी जाती है।

इस खेल मे चोट लगने का भय रहता है। जैसे—यदि कोई खिलाड़ी दूसरे खिलाड़ी को पकड़ने के लिए 'कैंची' मारे, तो उससे टाँग मे चोट लगने का बहुत डर रहता है। दूसरे, कभी-कभी एक खिलाडी को जब दूसरी पार्टी के सभी खिलाड़ी पकड़कर उसके ऊपर चढ़ने की कोशिश करते हैं, तब शरीर पर चोट लगने का भय रहता है। यदि पकड़ते समय किसी खिलाड़ी का वस्त्र हाथ मे आ जाए, तो हार-जीत की चिन्ता किए बिना छोड़ देना चाहिए, अन्यथा वस्त्र फटने की सम्भावना रहती है।

यदि हम उक्त बातों का ध्यान रखेंगे, तो यह खेल इतना सुन्दर और रोचक बन जाएगा कि आपका मन यह गवाही नही देगा कि इसे छोड़कर कोई और खेल खेला जाए।



(क) समाज में नारी का स्थान
(ख) भारतीय नारी

(ऑल इण्डिया दिल्ली क्षेत्र १९८७)

भारतीय नारी मातृत्व की गरिमा से मंडित है; पत्नीत्व के सौभाग्य से ऐश्वर्य-शालिनी है; धार्मिक अनुष्ठानों की सहधर्मिणी होने से धर्मपत्नी तथा अर्धांगिनी है; गृह की व्यवस्थापिका होने के कारण वह गृहलक्ष्मी है; सम्भोग-सुख निमित्त पत्नी प्रेयसी तथा रम्भा है; अर्थ-अर्जन में पुरुष की सहयोगिनी है।

नारी के अभाव में समाज की कल्पना असम्भव है। नारी जननी है, इसलिए सृष्टि की निर्मात्री है। पुरुष को पुत्र प्रदान कर उसको पितृऋण से मुक्त करती है, पुत्री देकर संसार के अस्तित्व को स्थिरता प्रदान करती है। इस रूप में वह पूज्या है।

पत्नी रूप में नारी ऐश्वर्यशालिनी है। इसलिए मनुस्मृति कहती है, 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः'। नारी परामर्श में मन्त्री, गृह-कार्य में दासी, धर्मकार्य में पत्नी, सहिष्णुता में पृथ्वी, स्नेह करते हुए माता, विलास में रम्भा तथा क्रीडा में मित्र का स्थान रखती है। प्रसाद जी ने नारी के इसी महान् रूप पर रीझ कर कहा है—

नारी! तुम केवल श्रद्धा हो, विश्वास रजत नग पगतल में।
पीयूष-स्रोत सी बहा करो, जीवन के सुन्दर समतल में॥

गृह की व्यवस्थापिका होने के कारण, नारी 'गृह-लक्ष्मी' के उच्च सिंहासन पर आरूढ है, किन्तु अर्थ-स्वातन्त्र्य के अधिकार से वंचित होने के कारण वह दीन है, रंक है। उसे प्रत्येक पग पर, प्रत्येक साँस के साथ पुरुष से सहायता की भिक्षा माँगते हुए चलना पड़ता है। उसका 'गृह-लक्ष्मी' का गौरवपूर्ण पद, उसका सम्पूर्ण त्याग, सारा स्नेह और आत्म-समर्पण बन्दी के विवश कर्त्तव्य के समान जान पड़ते है। अर्थ-परतंत्रता के कारण उसका सामाजिक व्यक्तित्व मूल्यहीन हो गया; अर-

छिन्न रह गया। मुस्लिम महिलाओं की दशा तो और भी शोचनीय है। मैथिलीशरण गुप्त का कथन सार्थक सिद्ध हो रहा है—

अबला जीवन, हाय ! तुम्हारी यही कहानी।
आंचल में है दूध और आँखों में पानी ॥

अर्थ-उपार्जन, समाज-सेवा तथा राजनीतिक उत्कर्ष में नारी ने समाज में अपना स्थान प्रतिष्ठित किया, अर्थोपार्जन कर अपने महत्त्व को दर्शाया और अहं की संतुष्टि की; नर्स और डॉक्टर बनकर उसने पीड़ित, घायल समाज को स्नेह दिया, सहानुभूति दी; अध्यापिका बनकर ज्ञान के नेत्र खोले, विवेक जागृत किया; वैज्ञानिक बनकर अंधविश्वास के तिमिर को ज्योति प्रदान की; व्यापारी बन देश की अर्थ-व्यवस्था की सुदृढ़ता में हाथ बटाया; सैनिक बन राष्ट्र की रक्षा में योगदान दिया, लिपिक और टाइपिस्ट बन कार्यालय-व्यवस्था का संचालन किया; राजनीति में भाग लेकर राष्ट्र का मार्ग-दर्शन किया। जन-सेवा कार्य-क्षमता और दूरदर्शिता के कारण समाज में नारी का स्थान महत्त्वपूर्ण है, अक्षुण्ण है। उसकी उपेक्षा से समाज-पंगु बन सकता है, हृदयहीन हो सकता है।

नारी जहाँ सृष्टि-सर्जन की एकमात्र स्वामिनी है, वहाँ प्रणय-सुख और रति आनन्द की एकमात्र अधिकारिणी है। इस सुख और आनन्द की प्राप्ति के लिए पुरुष उसे अर्द्धांगिनी बनाता है, प्रेयसी रूप में उसकी अर्चना करता है, कॉलगर्ल और रम्भा रूप में उसके यौवन का खरीदार बनता है।

नारी का हृदय प्रेम का रंगमंच है। नारी का सौन्दर्य आकर्षण का केन्द्र-बिन्दु है। नारी के चपल कटाक्ष पत्थर हृदय को भी घायल कर देते हैं। उसकी भाव-भंगिमा पुरुष को पागल बना देती है। उसकी मधुर मुस्कान पुरुष को पराजित कर देती है। उसे केवल नारी में सत्, चित् आनन्द का अनुभव होता है। सत्य, शिव और सुन्दर की अनुभूति होती है। वह अमृत पीकर भी तृप्त न हुआ, उसकी प्यास बुझी नहीं, बढ़ गई। नारी नाम सार्थक हुआ। स्वयम्भूदेव ने पउमचरिउ में लिखा 'नर उसमें रति से तृप्त नहीं होता, इसलिए उसे नारी कहते हैं।'

अर्थोपार्जन और रति-सुख के लिए नारी ने उच्छृंखलता का चोला पहना। शारीरिक सौन्दर्य को प्रदर्शित किया। नग्नता को अपनाया। सहपाठी को चरित्र-हीन बनाया, बॉस को प्रसन्न किया, ब्रह्मचारी के तेज को खंडित किया। नारी के

सम्मान और सुरक्षा पर प्रश्न चिन्ह लग गया। दिन दहाड़े अपहरण, बलात्कार होने लगे। नारी का चरित्र पतित हुआ, शालीनता भ्रष्ट हुई।

धर्म सत्य का प्रतिष्ठापक है, चरित्र का निर्माता है। मन की तामसिक वृत्तियों का अवरोधक है। सुख-शांति तथा समृद्धि का स्रोत है। धर्म पर नारी का अटल विश्वास है। पूजा, अर्चना, स्नान-ध्यान, व्रत-पर्व पर उसकी श्रद्धा है। कुप्रथाएँ, जादू-टोना, गंडे-ताबीज पर उसे अंधविश्वास है। इसी धर्माचरण के कारण समाज में कुकर्मों के प्रति भय है, भय के कारण समाज सदाचरण के लिए विवश है। सदाचार की इस प्रेरणा के लिए नारी समाज में पूज्य है, श्रद्धा की प्रतिमा है।

नारी के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए महादेवी जी लिखती हैं, 'आदिम काल से आज तक विकास-पथ पर पुरुष का साथ देकर, उसकी यात्रा को सरल बनाकर, उसके अभिशापों को झेलकर और अपने वरदानों से जीवन में अक्षय शक्ति भरकर मानव ने जिस व्यक्तित्व-चेतना और हृदय का विकास किया है, उसी का पर्याय नारी है।'

नारी स्नेह और सौजन्य की देवी है। वह नर-पशु को मनुष्य बनाती है, वाणी से जीवन को अमृतमय बनाती है, उसके नेत्र में आनन्द का दर्शन होता है। वह संतप्त हृदय की शीतल छाया है, उसके हास्य में निराशा मिटाने की अपूर्व शक्ति है। उसकी करुणा अन्तर्जगत का उच्चतम विकास है, जिसके बल पर समस्त सदाचार ठहरे हुए हैं।

नारी समाज की आधारशिला है। नारी से समाज का धर्म, सभ्यता, संस्कृति, परम्पराएँ टिके हैं; समाज का सौन्दर्य, समृद्धि और सौष्ठव स्थिर है। इसलिए समाज में नारी का स्थान अडिग है, अतुलनीय है, और है सबसे महान्।

(क) संगठन
(ख) एकता में बल है

(ऑल इण्डिया १९८८)

किसी विशिष्ट वर्ग, क्षेत्र या राष्ट्र के लोगों का मिलकर एक इकाई का रूप धारण करना, जिसमें वे सामूहिक रूप में अपने हितों की रक्षा कर सकें, संगठन कहलाता है। बिखरी शक्तियों का एकजुट होकर किसी कार्य के लिए तैयार होना संगठन है।

प्राचीन युग में शक्ति का केन्द्र कभी तपस्या, कभी ज्ञान और कभी त्याग रहा है। वर्तमान काल में शक्ति का केन्द्र संघ अर्थात् संगठन है। महाभारत में लिखा है, 'संघे शक्तिः कलौ युगे।' वैदिक सभ्यता ने नारा दिया, 'संगच्छध्वं संवदध्वं' अर्थात् मिलकर चलें, मिलकर बोलें।

परिवार संगठित रहेगा, तो श्री और ऐश्वर्य की वृद्धि होगी। समाज संगठित होगा, तो प्रगति-पथ पर अग्रसर होगा। राष्ट्र संगठित होगा, तो विश्व में अपना भाल गर्व से उन्नत कर सकेगा। भारत में परिवारों के विकास एवं व्यक्तियों की प्रगति' में परिवार का सहयोग तथा विघ्न-बाधाओं को मिल-जुलकर झेलने की प्रवृत्ति हमारी श्री-समृद्धि का कारण रही है। मुस्लिम और ईसाई समाज के सुदृढ़ संगठन ने ही उन्हें विश्व की महान शक्ति बना दिया है। जापान, चीन, जर्मनी, अमेरिका, रूस, ग्रेट ब्रिटेन और फ्रांस की विश्व-शक्ति बनने के मूल में उनके राष्ट्र का संगठन ही है।

शरीर विभिन्न अवयवों का संगठित रूप है। क्या अद्भुत संगठन है! काँटा पैर में चुभता है, वेदना मस्तिष्क में होती है, और हाथ शत्रु कंटक के मर्दन को तुरन्त दौड़ते हैं। मधुमक्खियाँ संगठन का अनुपम उदाहरण प्रस्तुत करती हैं। वे मिल-जुलकर मधु संचय करती हैं, जरूरत पड़ने पर शत्रु पर सामूहिक आक्रमण करती हैं। संगठन में अपूर्व शक्ति है। एक और एक मिलकर ग्यारह

मामूली तिनको को मिलाकर रस्सा बन जाता है, जो मदमस्त हाथी को बाँधने मे सक्षम होता है। पानी की एक बूँद अग्नि में पडकर स्वयं को नष्ट कर लेती है, किन्तु जल की धार प्रचड अग्नि को भी शांत कर देती है। अग्नि की एक चिंगारी को फूंक मारकर बुझा दिया जाता है, किन्तु उसकी संगठित ज्वाला से विशाल भवन स्वाहा हो जाते है।

जान डिकिन्स का कथन है, 'संगठन मे हमारा अस्तित्व कायम रहता है, विभाजन में हमारा पतन होता है।' इतिहास इस बात का साक्षी है। हिन्दू नरेशों की पृथक्तावादी मानसिकता के कारण भारत मुगलों के दासो का गुलाम रहा। मुगलो की फूट के कारण मुगल सल्तनत डूबी और सात समुद्र पार के मुट्ठी भर अंग्रेज विशाल भारत पर राज्य कर गए। १८५७ के स्वातन्त्र्य-संघर्ष की विफलता विभाजित शक्ति का प्रमाण है। भारत-विभाजन भारतीयो मे संगठन के अभाव की ही मुंहबोलती तस्वीर है। सन् १९८० मे इन्दिरा जी के पुनः सत्तारूढ़ होने के लिए विपक्ष-विभाजन ही दोषी है।

सगठन के विभिन्न चार आधार है—जातीयता, भौगोलिक सीमाएँ, व्यावसायिक क्षेत्र तथा मानसिकता। विभिन्न राष्ट्रो और विभिन्न भाषाओं के बोलने वाले यहूदी जातीयता के कारण एक सूत्र मे बद्ध हैं। राष्ट्रो की एकता भौगोलिक सीमाओं के कारण है। व्यावसायिक एकता व्यापार-विशेष के हित-चिन्तन, समृद्धि आर प्रगति पर आधारित है। मानसिक एकता धार्मिकता की पृष्ठभूमि है। विश्व हिन्दू-परिषद्, विश्व मुस्लिम-सम्मेलन, विश्व ईसाई-एकता इसके प्रमाण हैं।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से सगठन के तीन आधार है—(१)आतक (२) प्रलोभन (३) अहकार। पीडित वर्ग, समाज या दल अपनी पीडा निवारणार्थ संगठित होते है। मुस्लिम आतंक के विरुद्ध राष्ट्रीय स्वयंसेवक-सघ का जन्म हुआ, और वह प्रचण्ड शक्ति सिद्ध हुआ। इन्दिरा-आतंक के विरुद्ध १९७७ मे अपनी-अपनी ढपली बजाकर अपना-अपना राग सुनाने वाले विरोधी दल एकजुट हुए। इन सगठनों के मूल मे आतक था, अतः आतंक समाप्त हुआ और बिखराव शुरू हुआ। राष्ट्रीय स्वयसेवक-सघ को लेकर जनता पार्टी के बिखराव की स्याही अभी सूखी नही है।

प्रलोभन संगठन का दूसरा मनोवैज्ञानिक कारण है। व्यापारिक संगठन, कर्म-

चारी यूनियनें, सत्ता-सुख के लिए दल-बदल, सब प्रलोभन के संगठन हैं। जहाँ प्रलोभन को आँच आई, संगठन विभक्त हुआ। एक ही व्यापार को विभिन्न परिषदें, कर्मचारियों की अनेक यूनियनें इसका प्रमाण है।

राजनैतिक और धार्मिक संगठन अहंकार के प्रमाणित दस्तावेज हैं। इन्दिरा कांग्रेस श्रीमती इन्दिरा जी के अहंकार का पोषक है, तो 'जनता (ज)' श्री जगजीवन के अहं का रूप है। सभी धर्मों में विद्यमान पंथ, मठ, गद्दियाँ किसी न किसी धार्मिक नेता के अहं का ही तो प्रतीक है।

शासन की दृष्टि से विश्व दो संगठनों में विभक्त है—(१) लोकतन्त्र (२) अधिनायकवाद। लोकतन्त्र का प्रतिनिधित्व अमेरिका करता है, तो अधिनायकवाद का रूस। लोकतन्त्र में विद्या, चरित्र प्रतिभा की आवश्यकता नहीं, वहाँ बहुसंख्यक को संगठित करने में ही सिद्धि है। अधिनायकवाद में पाशविक चरित्र ही नेता बनता है। उसका संगठन आतंक के सहारे जीवन-यापन करता है।

सच्चा संगठन त्याग की भूमि पर ही इस्पात की प्राचीर खड़ी कर सकता है और नेता के अहं को निरस्त करके ही फल-फूल सकता है, उपनेताओं के प्रलोभन को संकुचित कर सुख की साँस ले सकता है। सदस्यों के प्रति मंगल-कामना रखकर प्रगति-पथ पर अग्रसर हो सकता है। गीता में संगठन की रथ से उपमा देते हुए कृष्ण समझाते हैं—इन्द्रियाँ घोड़े हैं, मन लगाम है, बुद्धि सारथी है और आत्मा रथ का स्वामी है। घोड़ों को लगाम के अधीन रहना चाहिए; लगाम को सारथी के और सारथी को मालिक के। संगठन का यही मूल मन्त्र है।' संगठन 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' का समर्थक है।



(क) देश-भक्ति
(ख) देश-प्रेम

(ऑल इण्डिया दिल्ली क्षेत्र १९८८)

अपने देश की स्वतन्त्रता और उसके हित को सर्वोपरि समझने का गुण या भाव 'देश-भक्ति' है। अपने देश के लिए तन, मन और धन से किया गया कार्य देश-भक्ति है। अपने देश को मातृभूमि-पुण्यभूमि मानना देशभक्ति है। देश की सुरक्षा, समृद्धि, सुख-शान्ति, गौरव-वर्धन और अभ्युत्थानार्थ ही प्रत्येक कार्य करना देश-भक्ति का लक्षण है।

हमारे पालन-पोषण में देश का प्रत्येक पदार्थ योग देता है। देश के अन्न और जल से हम बड़े होते हैं, देश की वायु और वातावरण हमें जीवनदान देते हैं। देश की सभ्यता और संस्कृति हमारे व्यक्तित्व का विकास करती है। इसलिए देश को स्वर्ग से भी बढ़कर माना गया है। मैथिलीशरण गुप्त ने देश के गौरव से अनभिज्ञ अभिमान-शून्य व्यक्ति को 'वह नर नहीं नर-पशु निरा और मृतक समान' बताया है।

अंग्रेज कवि स्कॉट ने कहा है— 'जिस व्यक्ति ने अपनी जननी जन्मभूमि में प्रेम प्रदर्शित नहीं किया, वह चाहे जितना धनवान, ज्ञानवान, बुद्धिमान क्यों न हो, किन्तु वह अपनी जाति का आदर-भाजन, सम्मान-भाजन और प्रेम-भाजन नहीं बनता। अपने जीवन-काल में वह निजबंधुवर्ग के द्वारा अपमान की दृष्टि से देखा जाता है और मृत्यु के बाद उसकी इस लोक में निन्दा होती है और परलोक में भी उसकी आत्मा को शान्ति नहीं मिलती।'

राष्ट्र पर आई विपत्ति में प्राणोत्सर्ग करना ही देशभक्ति की कसौटी नहीं। हमारे दैनन्दिन कार्य देशभक्ति की मुँहबोलती तस्वीर है। व्यापार में लोभ-वश जनहित-विरुद्ध कार्य देशभक्ति के विरुद्ध है। मिलावट करना, नकली तथा तस्करी की चीजें बनाना-बेचना देश के साथ द्रोह है। औद्योगिक संस्थान में कार्य से जी

चुराना, कम काम करना, हड़ताल करना देश-भक्ति नहीं। भ्रष्टाचार, बलात्कार, समाज-पीड़न देश-द्रोह हैं। कार्यालयों में लाल फीताशाही, जानबूझकर फाइलों को दबाना, कार्य में प्रमाद प्रकट करना देश के अहित में है। दल-बदल, पार्टी-भंजन जनता से विश्वासघात देश-विरुद्ध कार्य है।

जो व्यक्ति राष्ट्र-विरुद्ध कार्य करता है, उसे मनुष्य कहलाने का अधिकार नहीं है. इसी तथ्य को उपस्थित करते हुए राष्ट्रकवि श्री मैथलीशरण गुप्त ने कहा है—'वह हृदय नहीं वह पत्थर है, जिसमें स्वदेश का प्यार नहीं।'

स्वर्णमयी लंका को देखकर जब लक्ष्मण ने वहीं रहने की इच्छा प्रकट की, तो भगवान् श्री राम ने कितने सुन्दर शब्दों में उसे समझाया है, 'जननी जन्म-भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।' (जननी और जन्मभूमि स्वर्ग से भी महान् है)। योगेश्वर कृष्ण ब्रज से जाने के बाद बार-बार ब्रज को स्मरण करते हैं, 'ऊधो! मोहि ब्रज बिसरत नाही।' सन् १९१९ में अमृतसर में जलियाँवाला बाग में बैशाखी के पावन दिन जनरल डायर ने निहत्थे भारतीयों पर गोली-वर्षा कर दी। फलतः सहस्रों व्यक्ति मारे गए। लाला लाजपतराय उस समय विदेश में थे। उनका हृदय रो पड़ा और वे स्वदेश आगमन के लिए मचल उठे। यह है देश-भक्ति का उदाहरण।

देश-भक्ति के लिए शिवाजी आजन्म मुगलों से युद्ध करते रहे, महाराणा प्रताप जंगलों की खाक छानते रहे, रानी झाँसी युद्ध करते हुए वीरगति को प्राप्त हुई; सहस्रों लाखों दिवाने गोलियाँ सीने पर झेलते हुए परलोक को प्राप्त हुए, सुभाषचन्द्र बोस ने विदेशों में जाकर सेना सुसज्जित की, भगतसिंह, सुख-देव ने असेम्बली में बम फेंका; सावरकर जल-यान से समुद्र में कूद पड़े।

देश प्रेम वह पुण्य क्षेत्र है, अमल असीम त्याग से विकसित।
जिसकी दिव्य रश्मियाँ पाकर, मानवता होती है विकसित॥

देशद्रोही की स्थिति इसके सर्वथा विपरीत होती है। समाज में उसका क्या स्थान होता है, इस सम्बन्ध में अंग्रेजी के एक कवि ने लिखा है, 'कोई उसके लिए रोएगा नहीं, कोई उसके गीत नहीं गाएगा।' कितना बड़ा व्यंग्य है, देश-द्रोही के जीवन पर।

दुर्भाग्य से आज भारत में हर चीज राजनीति के कुचक्र में पिस रही है। देशभक्ति भी इससे नहीं बची है। गीत यहाँ राष्ट्र-भक्ति के गाए जाते हैं, कार्य

देश-द्रोह के होते है। देश का चरित्र रसातल को चला जा रहा है, स्वार्थ राष्ट्र पर हावी है।

दूसरी ओर, राज्य-भक्ति सदा देश-भक्ति नहीं हो सकती। गुलाम भारत में अंग्रेजी सत्ता के प्रति राज्य-भक्त लोगों को देश-भक्त नही कहा जा सकता। उसी प्रकार स्वराज्य में शासन के राष्ट्र-विरोधी कार्य के समर्थकों को देश-भक्ति के गौरव से अलकृत नही किया जा सकता। आपातकाल के समर्थकों, सत्ता मे विद्यमान शासन की हाँ मे हाँ मिलाने वाले चापलूसो, सत्ता स्वार्थ की छत्रछाया में पनपते अराष्ट्रीय कृत्यों के सहयोगियो को राज्य-भक्त कह सकते है, राष्ट्र-भक्त नही।

आज देश मे शुद्ध देश-प्रेम, राष्ट्र-भक्ति तथा मातृ-वन्दना की अत्यन्त आवश्यकता है। केवल ऊँचे-ऊँचे नारो से 'भारत माता की जय' नही होगी। 'सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा' गाने मे और 'सुजला, सुफला मलयजशीतलाम् मातरम् वन्दे' के बारम्बार उच्चारण मे देश-भक्ति प्रकट नही होगी। इसके लिए सकीर्ण स्वार्थ भाव को त्यागकर राष्ट्रहित के कार्य करने की आवश्यकता है। जयशकर प्रसाद के शब्दो मे देश-भक्ति का सच्चा स्वरूप यह है—

जिएँ तो सदा इसी के लिए, यही अभिमान रहे, यह हर्ष।
निछावर कर दें हम सर्वस्व, हमारा प्यारा भारतवर्ष॥

●

भ्रष्टाचार का रोग

(दिल्ली १९८८)

'भ्रष्टाचार का रोग' वर्तमान युग मे सफलता का सर्वश्रेष्ठ साधन है, सकट-ग्रस्त मानव के प्राणो की रक्षा करने वाला अमृत है, काम निकालने तथा श्री-समृद्धि की रामबाण औषधि है, ऋद्धि-सिद्धि का प्रदाता है भाग्योदय का द्वार है, ऐश्वर्यमय जीवन जीने का साधन है, साहस धैर्य और विवेक की जननी है।

स्वार्थ और कामना इस रोग के कारण हैं दूषित और निन्दनीय आचार-विचार इसके लक्षण हैं। कमीशन, रिश्वत, घूस इस रोग के पर्याय है। मन की शुद्धता, आचार की पवित्रता तथा धन के प्रति विमोह इस रोग की औषधि है।

रोग का अर्थ 'बुरी आदत' या 'बुरी बात' लें, तो भी भ्रष्ट आचरण का रोग मानव और मानवता का शत्रु है। अपने कर्तव्य और दायित्व के प्रति उदासीनता का जनक है। कुतर्क, षड्यन्त्र तथा सही निर्णय न लेने की सौगन्ध उसका मित्र है। समाज की मान्यताओं, आस्थाओं को रौंदना वह अपना कर्तव्य समझता है। बिना रिश्वत लिए फाइल पर निर्णय लेने मे वह अपना अपमान समझता है। निर्बल-दुर्बल पर अत्याचार करता है। नारी को छेड़ता है, उसकी इज्जत लूटता है, बन्धु-बान्धवों से पशुवत् व्यवहार करता है।

भ्रष्टाचार का रोग बीमारी होते हुए भी बहुत मीठा है, प्यारा है। कुछ अपवादो को छोड़कर हर नर-नारी, गृहस्थी-संन्यासी, राजनीतिक-सामाजिक इससे प्यार पाने का आकांक्षी है। इसके प्यार मे आकण्ठ डूब जाने को सबका हृदय मचलता है। 'निराला' के शब्दो में आज का मानव भ्रष्टाचार से कहता है—

मेरे प्राणो मे आओ !
शत-शत शिथिल भावनाओ के
उर के तार सजा जाओ।

क्यों ? वह जानता है कि जीवन के हर क्षेत्र मे उसीका आधिपत्य है। इसका

परमिट लिए बिना कहीं भी प्रवेश असम्भव है। इसलिए **'भ्रष्टाचार की लूट है, लूटी जाए सो लूट, अन्तकाल पछताएगा, अब सत्ता जाएगी छूट।'** 'पब्लिक डीलिंग' के हर कार्यालय, राजकीय क्रय के मद, टेण्डर-स्वीकृति की प्रक्रिया; सभी प्रकार के ठेके पब्लिक-स्कूलों डाक्टरी, इंजीनियरी तथा टेकनीकल कॉलिजों में प्रवेश, चपरासी से लेकर उच्चपदों तक की नियुक्ति, परीक्षा के परिणाम और न्याय के निर्णय, पुलिस का आरक्षण इन्कमटैक्स तथा सेलटैक्स, बिक्री जाँच, चुनाव के टिकट, चुनाव-संग्राम के तौर-तरीके सभी भ्रष्टाचार के स्रोत हैं।

यही कारण है कि भ्रष्टाचारियों की आय वेतन से कई गुणा अधिक है। कोर्ट का चपरासी अहलमद, टाइपिस्ट और रीडर से उच्च स्तर का जीवन जीता है। दफ्तर का छोटा-सा अधिकारी लाखों की सम्पत्ति का मालिक है। गवर्नमेंट-परचेज कमेटी के सदस्य लाखों-करोड़ों की दलाली खाते हैं। 'बोफोर्स' का हंगामा, पनडुब्बी खरीद का शोर-शराबा, जापान तेल सौदे की कमीशन सदन में विपक्ष के प्रहार इस दलाली को नंगा कर दें, पर उसके सौन्दर्य-मोह से बचे वे भी नहीं हैं। कारण, राजनीतिज्ञों का लाखों रुपए का मासिक खर्च इस भ्रष्टाचार की पाइप-लाइन में से ही प्रवाहित होकर उन तक पहुँचता है। जहाँ सरस्वती आकर प्रणाम करती हो और लक्ष्मी आकर चरण दबाती हो, उस ऐश्वर्यमय जीवन की प्राप्ति के लिए भ्रष्टाचार के रोग से कौन प्रेम नहीं करेगा?

भ्रष्टाचार का रोग मन का रोग है, मानसिक विकार है। चित्त-वृत्ति को विकृत करने के लिए अन्तःकरण की एक प्रवृत्ति है। मन का विलास है। आकार, संकेत गति, चेष्टा वचन, नेत्र तथा मुख के विकारों से अन्तर्मन का ग्रहण हो जाता है। अतः इस रोग की चपेट में मानव शीघ्र आ जाता है। वह क्यू में लगकर अपनी बारी आने की प्रतीक्षा नहीं करता, द्वारपाल को टिप देकर पहले अन्दर घुस जाता है। विद्यार्थी पढ़ाई की ओर ध्यान नहीं देता, ट्यूशन रखकर अधिक अंक पा जाता है। अफसरों को उपहार तथा बड़े-बड़े ठेकों में सुरा-सुन्दरी का प्रयोग भ्रष्टाचार के ही तो तरीके हैं। इस प्रकार भ्रष्टाचारी दूसरों को भी अपने समान नंगा करने के लिए अपनी वित्तवृत्ति को विकृत करता है; दूसरों को भ्रष्ट कर उनके मन में रोग के कीटाणु घुसा देता है। इस मानसिक रोग के बारे में प्रसिद्ध है कि यह मृत्यु के साथ ही जाता है। इसी प्रकार भ्रष्टाचारी का भ्रष्ट आचरण भी बहु-विध दण्ड-सजा पाने एवं उत्पीड़न, दमन सहने पर भी स्वच्छ नहीं

होना : ललितमोहन मिश्रा तथा नागरवाला काड का अन्त उनके देह-विसर्जन पर ही हुआ। भ्रष्ट आचरण में सजा पाए सेठ डालमिया कारावास भोगने के बाद और अधिक तत्परता से अपने व्यापाय-साम्राज्य को बढाने मे संलग्न रहे।

भ्रष्टाचार-रोग के रोगियों की एक विशेषता है—मनसा, वाचा, कर्मणा वे एक हैं। विविध तन होते हुए भी मन मे एक है। उनका दुःख-सुख एक है। जैसे काँटा पैर में चुभता है, मन उसका दुःख दूर करने के लिए तुरंत चिंतित होना है और कर-कमल उसे सहयोग प्रदान करते हैं। उसी प्रकार रिश्वतखोर पकड़ा जाए, तो ऊपर से नीचे तक की मशीनरी उसको छुड़ाने के लिए तन, मन, धन से जुट जाएगी। अजिताभ बच्चन को तथाकथित भ्रष्टाचार के आरोप से बचाने के लिए अधिकारी और मन्त्रीगण किस प्रकार एकजुट है। सुप्रीमकोर्ट ने काश्मीर के राज्यपाल श्री जगमोहन के आचरण के विरुद्ध टिप्पणी की, तो क्या हुआ? वे आज भी राज्यपाल हैं। विदेशी बैंको में देश का धन जमा करवाने वालो पर कौन हाथ डालने देता है?

भ्रष्टाचार-रोग का एक ही निदान है—मन का नीरोग होना। मन तभी नीरोग होगा, जब हम बाहर और भीतर से मन को भ्रष्टाचार की ओर ले जाने वाली पशु-वृत्तियो को छोड़ देंगे एवं इन्द्रिय-संयम द्वारा जीवन में त्यागपूर्ण भोग—'तेन त्यक्तेन भुंजीथाः'—का आनन्द लेंगे।

छोटे परिवार के सुख-दुःख

(दिल्ली १९८८)

छोटा-परिवार ऐश्वर्य और सौभाग्य का प्रतीक है, सुख, शांति और समृद्धि का मूल है। जीवन में विकास और प्रगति का स्रोत है। नारी के स्वस्थ रहने का वरदान है। आज की परिस्थिति में मातृभूमि के प्रति उपकार है। राष्ट्र-हित की अनिवार्य शर्त है। भारत के भाग्य को पलटने का रहस्य है। इसलिए राष्ट्र-भक्ति का तमगा है।

दूसरी ओर, छोटा-परिवार मानवीय सीमा और शक्ति का अवरोधक है। वर्तमान जीवन जीने के लिए जीवन की भाग-दौड़ में पीछे पिछड़ने का अभिशाप है। छोटे-परिवार में केवल लड़के या लड़कियाँ होने पर जीवन-भर कुंठा रूपी क्षय-रोग का रोगी बनना है। केवल लड़कियों की स्थिति में वंश-परम्परा पर फुल-स्टॉप लगाकर पितृ-ऋण से उऋण न होने का शाप है।

छोटा-परिवार अर्थात् चार-पाँच प्राणियों का सीमित परिवार। पति-पत्नी तथा दो या तीन बच्चे। दादा-दादी की संख्या बढ़ने से पारिवारिक जनों की संख्या बढ़ेगी, फिर भी वह छोटा-परिवार ही कहलाएगा। राजकीय व्याख्या के अनुसार छोटा-परिवार अर्थात् दो या तीन बच्चे।

दो या तीन बच्चों को जन्म देने वाली नारी का शरीर नीरोग रहेगा। प्रसव-कालीन रोग उसे आक्रांत नहीं करेंगे, उसके शरीर को शिथिल नहीं करेंगे, अकर्मण्य नहीं होने देंगे। वह सुखपूर्वक नीरोग जीवन का आनन्द उठा सकेगी।

छोटे-परिवार में जननी शिशु की देख-रेख पर पूरा ध्यान दे सकेगी। उसके शारीरिक-मानसिक विकास में अपने दायित्व को निभा पाएगी; शारीरिक स्वस्थता के लिए पौष्टिक भोजन दे सकेगी; तन के रोग के लिए उचित इलाज करा पाएगी। मन के विकास के लिए शिक्षा की सुव्यवस्था करने में समर्थ होगी।

छोटे-परिवार में सुख-शांति होगी। सीमित भाई-बहनों में प्यार होगा, ऐक्य

होगा; एक-दूसरे की मंगल-कामना होगी। उनके मन में ईर्ष्या-द्वेष, मार-पिटाई से उत्पन्न अशांति नहीं होगी। वे पारिवारिक दुःख में एक-दूसरे के साथी होंगे और बाहरी कष्ट या दैवी विपत्ति में कंधे से कंधा जुटाकर सहयोग देंगे।

आर्थिक दृष्टि से छोटा-परिवार सुख का आधार है। सीमित आय में सीमित परिवार जीवन और जगत् की जरूरी खुशियाँ लेकर मजे से जी सकता है; जिन्दगी का लुत्फ उठा सकता है। खाने वाले कम, पहनने वाले कम, पढ़ने वाले कम हों, तो फिर आय का भाग प्रत्येक के हिस्से ज्यादा आएगा। उदाहरणतः आमदनी एक हजार रुपए मासिक हो और परिवार-जन चार हों, तो प्रत्येक के हिस्से ढाई सौ रुपए आता है। यदि परिवार में छह प्राणी हों, तो यही राशि घटकर १६७ रुपए रह जाएगी। इसलिए छोटा-परिवार अच्छा खा सकता है और जीवन की खुशियों को लूट सकता है।

सामाजिक दृष्टि से छोटा-परिवार सम्मान का सूचक है तो बड़ा-परिवार अपमान का कारण। बड़े परिवार को बुलाते हुए भी अन्य परिवार-जन, मित्रगण डरते हैं। बड़े परिवार का अपमान 'फौज' कहकर किया जाता है— 'जीजाजी की फौज से डर लगता है।' दूसरी ओर छोटे परिवार में तीज-त्योहार, भात-छूछक, मित्रों की पार्टी निमन्त्रण सबका प्रेम-पूर्वक निर्वाह हो जाता है। वहाँ पारिवारिकता, सामाजिकता आनन्दपूर्वक निभ जाती है।

छोटा-परिवार भारत जैसे राष्ट्र पर महान् उपकार है। यहाँ बढ़ती जनसंख्या सारी विकास-योजना को खा जाती है और डकार भी नहीं लेती। यहाँ आय के साधन कम हैं और बेकारों की फौज असीम है, जो राष्ट्रीय जीवन में अराजकता फैला रही है; जन-जीवन को विषाक्त कर रही है। परिणामतः भारत के बहुसंख्यक जन अशिक्षित हैं, अल्पशिक्षित है, निराश्रित हैं, गरीबी की सीमा-रेखा से भी नीचे का जीवन जीने के लिए विवश हैं। ऐसी स्थिति में छोटा-परिवार होगा, तो राष्ट्र की विकास-योजनाओं का लाभ जन-जन तक पहुँचेगा। अस्पतालों में बीमारों की दुर्दशा न होगी; स्कूल-कॉलिजों में उच्च-शिक्षा का द्वार प्रत्येक के लिए खुला होगा तथा रोजी-रोटी कमाने के लिए रोजगार सहज सभाव्य होगा। इस प्रकार वर्तमान भारत में छोटा-परिवार राष्ट्र-चिन्तन की शर्त है, देशभक्ति का तमगा है। कारण, छोटा-परिवार राष्ट्र की समस्याओं को बढ़ाएगा नहीं, उलटा राष्ट्रीय विकास में सहायक सिद्ध होगा।

वैज्ञानिक और कम्प्यूटराइज्ड युग मे भी मानव-शक्ति की नितान्त आवश्यकता है; उसका अपना महत्त्व है। जीवन की समस्याएँ आज इतनी असीम और बहुमुखी हो गई हैं कि छोटा-परिवार उन्हें पूरा नही कर पाता। प्रातः-सायं दूध की लाइन, सब्जी-फल की खरीद, चूल्हा-चौका, कपड़े धोना, इस्त्री करना, घर की सफाई, दैनिक जरूरत की चीजों की मार्किटिंग, टैक्सों-बिलों के भुगतान के अतिरिक्त स्कूल-कॉलिजों की पढ़ाई और दफ्तर। ऊपर से रिश्तेदारी तथा मित्रगण में आना-जाना और शादी तथा त्योहार निबटाना। कहाँ है सम्भव? फिर कुछ काम ऐसे हैं, जहाँ बड़े-परिवार का महत्त्व है। खेती-बाड़ी और व्यापार-उद्योग मे छोटा-परिवार का सिद्धान्त अनुपयुक्त है, प्रगति का अवरोधक है।

दूसरी ओर एक लड़का, एक लड़की के परिवार मे माता-पिता का मन चिन्ताग्रस्त हो जाता है। उसे बालकों की सुरक्षा की चिन्ता सदा सताती रहती है। यदि कहीं दोनों लड़के हों या दोनों लड़कियाँ, तो माता-पिता का मन लड़की या लड़के की चाहना में तड़पता रहता है। पुत्र-पुत्री, दोनों का होना धार्मिक तथा पारिवारिक परम्पराओं के निर्वाह की अनिवार्य शर्त समझी जाती है। बहन न होगी, तो रक्षाबंधन पर राखी कौन बाँधेगा? भैयादूज पर टीका कौन करेगा? भाई नहीं होगा, तो बहन राखी किसको बाँधेगी? भैयादूज का टीका किसको करेगी?

छोटे-परिवार से दो महान हानियाँ देश को संकट-भँवर मे फँसा देंगी—(१) देश को सैनिक और पुलिस-मैन मिलते हैं ग्राम-समाज से। ग्राम का युवक जान से प्यारी खेती को छोड़कर सेना या पुलिस में जाएगा, तो देश की उपज कम होगी, और खेती करेगा, तो सैन्यबल प्रभावित होगा।

दूसरी ओर, 'छोटा-परिवार' का घोष और आचरण केवल हिन्दुओं के लिए है। अल्पसंख्यक धर्मावलम्बियो (मुसलमान और इसाई) पर यह लागू नही होता। परिणामतः हर वर्ष देश मे अल्पसंख्यकों की संख्या बढ़ रही है और हिन्दुओं की घट रही है। कहीं २१वीं सदी के प्रवेश तक अल्पसंख्यक संख्या मे इतने न बढ़ जाएँ कि एक और पाकिस्तान की माँग पैदा हो जाए।

सृष्टि सुख-दुःख का समन्वित रूप है। लाभ और हानि, हर्ष और रोदन, शांति और कलह सदा साथ-साथ चलते हैं। इसलिए देवों के साथ राक्षसों का अस्तित्व है, तो फूल के साथ काँटे भी हैं। छोटा-परिवार जहाँ जीवन में सुख-समृद्धि की कुंजी है, राष्ट्रीयता की पहचान है, वहाँ जीवन के गोरख-धंधों में उलझे रहने का अभिशाप भी है, और है मानसिक तनाव का कारण।

स्वतन्त्रता स्वच्छन्दता नहीं है

(दिल्ली १९८८)

स्वतन्त्रता का अर्थ इच्छा, मौज या रुचि के अनुसार अथवा मनक मे आकर काम करना नही; स्वतन्त्रता का अर्थ किसी प्रकार के अंकुश, नियंत्रण या मर्यादा का ध्यान न रखते हुए मनमाने ढंग से आचरण या व्यवहार करना भी नही, स्वतंत्रता का मतलब नैतिक और सामाजिक दृष्टि से अनुचित तथा निन्दनीय आचरण या व्यवहार करना भी नही, भ्रष्ट-आचरण भी स्वतंत्रता नही; बिना किसी अड़चन या बाधा के जहाँ चाहें, वहाँ विचरण करते फिरना भी स्वतन्त्रता नही।

स्वतंत्रता मुख्यतः प्रशासनिक और सामाजिक क्षेत्रों का शब्द है। इसमें परकीय तन्त्र या शासन से मुक्त या रहित होने का भाव प्रधान है। इसके विपरीत स्वच्छन्दता मुख्यतः आचारिक और व्यावहारिक क्षेत्रों का शब्द है और इसमें शिष्ट-सम्मत नियमों और विधि-विधानों के बंधनों के प्रति अवज्ञा का भाव प्रधान रहता है।

स्वतन्त्रता का सीमातिक्रमण स्वच्छन्दता है, आजादी का दुरुपयोग स्वच्छन्दता है। स्वतंत्रता के 'स्व' पर 'तन्त्र' की शिथिलता स्वच्छन्दता है; नियम-उपनियमो की अवहेलना स्वच्छन्दता है; अहं का विस्फोट स्वच्छन्दता है।

स्वयं अपने प्रति उत्तरदायी होने का संकल्प स्वतन्त्रता है। ज्ञान-दीप से मनुष्य का अन्तर्मम प्रकाशित हो जाना आत्मिक स्वतन्त्रता है। जनता का, जनता द्वारा, जनता के लिए शासन स्वतंत्रता है। समूह में चरित्र-विकास का अवसर सतत प्राप्त होना सामाजिक स्वतंत्रता है। अर्थ के उपार्जन और उपभोग की आजादी आर्थिक स्वतंत्रता है।

व्यक्ति जब स्वतंत्रता के साथ स्वच्छन्दता का उपभोग करे, तो वह प्रमादी बन जाता है, नारी स्वच्छन्दचारिणी बन जाए, तो वेश्या कहलाती है। समाज स्वच्छन्द हो जाए, तो उसमें गुंडा-गर्दी का वर्चस्व होता है। स्वच्छन्द राष्ट्र तो अपनी स्वतंत्रता खोकर परतन्त्रता ओढ़ता है। आर्थिक स्वच्छन्दता ऐय्याशी है; ऐय्याशी अंधी होती है और मनुष्य को बिगाड़ देती है।

रावण ने सीता-हरण कर स्वच्छन्दता प्रकट की, तो स्वर्णमयी लंका का विनाश हुआ। कौरवो ने द्रौपदी के चीरहरण का स्वच्छन्द कृत्य किया, तो महाभारत हुआ। मनु ने इडा से स्वच्छन्द आचरण करना चाहा, तो मनु आहत हुए। इन्दिरा गाँधी ने सत्ता मे स्वच्छन्दता का भोग किया, तो न केवल वे, बल्कि उनकी पार्टी भी सत्ता-सुख से वंचित हो गई।

१५ अगस्त, १९४७ से पूर्व देश परतंत्र था। राजनीतिक परतंत्रता के कारण व्यक्ति की स्वतंत्रता, सामाजिक और धार्मिक कृत्य विदेशियों के शासन मे कैद थे। अंग्रेजों की इच्छा के बिना यहाँ चिडिया भी पर नही मार सकती थी। भारत स्वतंत्र हुआ स्वतंत्रता का पहला वरदान(?)मिला धार्मिक स्वच्छन्दता। मुसलमान हिन्दुओं को गाजर-मूली की तरह काट रहा था, तो प्रतिक्रियास्वरूप हिन्दू मुसलमानों को मार रहा था। लाखों हिन्दू-मुसलमान इस धार्मिक स्वच्छन्दता पर बलि चढ गए।

देश ने घोर तपस्या करके आजादी ली थी। आजादी मिली, तो तपस्या विलास मे बदल गई। सत्ता के नशे ने हर कांग्रेसी के मन मे स्वच्छन्दता जाग्रत की। देश को लूटने-चूसने की होड लग गई। सत्ता-भोग का जादू सिर चढ़कर बोलने लगा। चरित्र का घोर पतन हुआ। मान-मर्यादाएँ धूल मे मिल गई। नव श्रेष्ठी-वर्ग उत्पन्न हुआ, जिसका उद्देश्य ही स्वतंत्रता को स्वच्छन्दता मे भोगना था। फलतः देश भ्रष्टाचार में डूबने लगा। हर व्यक्ति बिकाऊ हो गया। अन्तर केवल व्यक्ति के मूल्य का था, स्तर का था।

देश में सामाजिक स्वच्छन्दता ने भी अपने पैर फैलाए। समाज स्वच्छन्दता की ओर बढा, तो सर्वत्र गुंडा-गर्दी का साम्राज्य स्थापित हुआ। नर-नारी की स्वतंत्रता स्वच्छन्द समाज-द्रोही तत्त्वों के हाथों गिरवी हो गई। दुर्बल-वर्ग से मारपीट, नारी से बलात्कार और बच्चों को उठा ले जाना उनकी स्वच्छन्दता के प्रतीक हैं। दूसरी ओर समाज मे दहेज के दानव ने पुरुष की स्वतंत्रता को स्वच्छन्दता मे बदला और नारी-स्वतंत्रता घोर परतंत्रता मे परिवर्तित हुई। परिणामतः यह पुरुष-स्वच्छन्दता के सम्मुख पैर की जूती बनी; मार-पीट, गाली-गलौज, अपमान, भूख और उपेक्षा की पीडा में उसकी अग्नि-परीक्षा होने लगी।

संसद और विधान-सभाओ मे पार्टी-बहुमत ने सत्ता को स्वच्छन्दता प्रदान कर दी। पाशविक बहुमत के आगे विपक्ष बौना बन गया। श्रीमती इन्दिरा गांधी का १९ मास का आपातकाल अर्थात् 'गुलामी' सत्ता की स्वच्छन्दता का ही तो

खुला उपभोग था। 'इन्दिरा इज इण्डिया' का उद्घोष स्वच्छन्द अहम् की पराकाष्ठा ही तो थी।

राजनीतिक स्वच्छन्दता का नग्न रूप देखना हो तो राजीव-शासन को देखिए, जहाँ लॉ ऐन्ड आर्डर गुंडों और अराजकतावादी तत्त्वों का पानी भरता है। अराजकता की स्वतंत्रता ने उग्रवादी स्वच्छन्दता का बाना पहन लिया है। पंजाब, बंगाल, उड़ीसा और आंध्र उग्रवाद से मानव-जीवन को मूल्यहीन बना रहे हैं, तो काश्मीर पाकिस्तान-समर्थकों का गढ़ बन चुका है। दूसरी ओर, विदेशी पूँजी की स्वतन्त्रता ने भारत के उद्योगों को स्वायत्तता से स्वच्छन्द कर भारत-भू पर जन्म लेने वाले हर नवजात शिशु को विदेशों का ऋणी बना दिया है। और इस प्रकार भारतवासी आर्थिक दृष्टि से विदेशों का गुलाम बनता जा रहा है, स्वतन्त्र सत्ता की स्वच्छन्दता का यह अभिशाप है।

स्वतन्त्रता में जिस राष्ट्र के मानव या समाज ने स्वच्छन्दता से गुरेज किया, वह ऊपर उठता चला गया। जापान और इजराइल का उदाहरण सामने है। इजराइल के सैन्य-बल और जापान के औद्योगिक साम्राज्य ने विश्व को चकाचौंध कर दिया है। मुस्लिम समाज और धर्म में स्वतंत्रता को स्थान है, स्वच्छन्दता को नहीं। किसी पीर-पैगम्बर पर उँगली तो उठाकर देखिए, पवित्र कुरान के विरुद्ध कुछ लिखकर देखिए, उसकी कितनी कीमत चुकानी पड़ेगी विरोधी समाज को। इसलिए मुस्लिम धर्म विश्व का दूसरा धर्म बन गया है। तीसरी ओर, पाश्चात्य राष्ट्रों का नागरिक अपने राष्ट्र की स्वतंत्रता का भोग करता है पर नियमानुसार। वह स्वच्छन्दता को राष्ट्र का शत्रु समझता है, इसलिए वह चरित्रवान है, राष्ट्रीय उन्नति-प्रगति का स्तम्भ है।

स्वतंत्रता का अर्थ स्व पर तंत्र रखकर जीवन में विकास करना है, न कि स्व को तन्त्र के बंधन से मुक्त रखकर जीना। स्वतंत्रता परमात्मा की देन है, तो सत्, और चित् और आनन्द का स्रोत है। इसका उपयोग प्राणि-मात्र का अधिकार है, पर इसका यह अर्थ नहीं कि उस स्रोत को अवरुद्ध कर दें या भ्रष्ट आचरण से मलिन कर दें।

स्वतन्त्रता की अति स्वच्छन्दता है। अति की वर्जना में ही मानव-जीवन का मंगल है। अतः स्वतंत्रता को स्वच्छन्दता समझना विवेक का विनाश है; स्वतंत्रता रूपी सुखद यौवन को त्यागकर स्वच्छन्दता रूपी मृत्यु के प्रति आकृष्ट होना है। ●

आदर्श पड़ोसी

आदर्श पडोसी पारिवारिक सुख-शांति का प्रदाता है। दु:ख, कष्ट और क्लेश को कम करने अथवा समाप्त करने का साथी है। उत्सव तथा मंगल-आयोजनों पर पारिवारिक सदस्यों से बढ़कर है। घर की देख-रेख करने वाला है, परिवार का संरक्षक है। सामाजिक चेतना का जीवन्त प्रमाण है। राजद्वारे श्मशाने च' साथ निभाने वाला मित्र है।

जिसका घर हमारे पडोस में हो, वह पडोसी है। प्रतिवासी, प्रतिवेशी, हमसाया इसके पर्याय हैं। पंजाबी में एक कहावत है—'सम्बन्धी दूर, पड़ोसी नेड़े।' यह उक्ति शत-प्रतिशत सत्य है। घर में कोई चोर घुस गया है, असामाजिक व्यक्ति अपमान कर रहा है, अकस्मात् हार्ट-अटैक जैसी भयंकर बीमारी ने आक्रमण कर दिया है, उस समय पड़ोसी ही काम आएंगे। वे ही तन-मन और धन से सेवा करेंगे। इसीलिए बाइबिल ने चेतावनी दी है- -'अपने पड़ोसी के विरुद्ध कभी झूठी गवाही न दो।' हीरेस का कहना है कि, 'जब तुम्हारे पड़ोसी के घर में आग लगी हो, तो अपनी सम्पत्ति भी खतरे में समझो।' सच्चाई तो यह है कि पडोसी से प्रेम करने वाला विपत्ति में भी सुखी रहता है, जबकि पड़ोसी से वैर ठानने वाला सम्पत्ति में भी दु:खी होता है।

आदर्श पड़ोसी अपने पडोसी की कभी चुगली नहीं करेगा, बुराई नही करेगा। बाइबिल के उपदेश को मानते हुए उसके विरुद्ध कभी झूठी गवाही नही देगा। कारण, चुगली, बुराई, झूठी गवाही कलह की जड़ है, अकारण शत्रुता का उद्‌गम है।

आदर्श पड़ोसी सुख-शांति का प्रदाता है। उसमें पड़ोसी को सुख-शांति से रहने देने की भावना होती है। छोटी-छोटी बातों के मन-मुटाव से वह दूर रहता है। बच्चों के झगड़ों को अपनी प्रतिष्ठा का प्रश्न नही बनाता। औरतों की चख-चख को विष नहीं बनने देता। बहकावे में आकर पड़ोसी को ताना नहीं मारता, कटु शब्द नही कहता।

चार-पाँच पड़ोसी मिलकर प्रातः सैर को जाते हैं। सैर करते हैं, सेहत बनाते हैं और परस्पर हास्य-व्यंग्य के फव्वारे भी छोड़ते हैं। इस हँसी-ठठ्ठे में मन की मैल धुल जाती है। पड़ोसियों के बच्चे इकट्ठे खेलते हैं। लड़ते हैं, झगड़ते हैं, फिर एक के एक। दोपहर में पड़ोसिनें इकट्ठी होती हैं। एक-दूसरे की निन्दा-स्तुति उनका धर्म है, पर वह होती ऊपरी है। मन का कालुष्य, घृणा या द्वेष उसमें नहीं होता।

व्यावहारिक सत्य है कि पड़ोसी से प्रेम करने वाला विपत्ति में भी सुखी रहता है, जबकि पड़ोसी से बैर ठानने वाला समृद्धि में भी दुःखी होता है। इसलिए आदर्श पड़ोसी दुःख, दर्द, कष्ट-क्लेश में भी साथी बनने में कभी नहीं हिचकता। वह तन, मन तथा धन से पड़ोसी की सेवा करने में कभी नहीं झिझकता। पीड़ा हरने, कष्ट दूर करने तथा दुःख-विपत्ति-निवारण में सामर्थ्यानुसार सदा तत्पर रहता है। आदर्श पड़ोसी सदा ध्यान रखता है अपने रेडियो, टेलीविजन के स्वर को मंद रखने का, ताकि पड़ोसी डिस्टर्ब न हों। माँगी वस्तु लौटाने का भी ध्यान रखता है। वह हमारे दूरभाष को भी अनावश्यक कष्ट नहीं देता और न ही हमारा समय गँवाने के लिए गपशप करने आता है। बच्चों का झगड़ा पहले तो होता ही नहीं, यदि हो भी जाय अच्छे पड़ोसी अपने बच्चों की गलती पर उनका पक्ष नहीं लेते। लड़ाई को टालने का प्रयास करते हैं।

हमारे पड़ोसी को ब्रह्ममुहूर्त में अचानक हार्ट-अटैक हो गया। पड़ोस के डॉ० गुप्ता को बुलाया गया। मरीज की सीरियस कण्डीशन देखी, तो डाक्टर साहब अपनी कार में उसे अस्पताल ले गए। अपने प्रभाव से डाक्टरों द्वारा तुरन्त उपचार की तय्यारी करवाई, पर दुर्भाग्य से मरीज की जीवन-लीला समाप्त हो गई। डॉ० साहब ने शव को अपनी कार में रखा और घर वापिस। डॉ० गुप्ता ने यह सारा कार्य एक पड़ोसी के नाते ही किया था। अच्छे पड़ोसी की यही पहचान है।

उत्सव और मंगल-आयोजन परिवार का जीवन हैं। हर सौभाग्यशाली परिवार में ये शुभ दिन आते हैं। सुख और दुःख को व्यक्ति अकेला नहीं झेल सकता। साथी चाहिए। पड़ोस से बढ़कर कौन अच्छा साथी होगा। पुत्र-पुत्री का विवाह है, बच्चों के मुण्डन हैं, पुत्र जन्मोत्सव है, पड़ोसी हाथ बँटाते हैं। वे उसे अपना ही कार्य समझते हैं।

पड़ोसी पड़ोस का चौकीदार तो है ही, उसका संरक्षक भी है। अवांछित

व्यक्ति को घर में घुसते देख लेगा, तो उस पर निगाह रखेगा, यदि वह कोई गड़बड़ करेगा तो उसका प्रतिकार करेगा। उसके बच्चे, उसकी स्त्री या परिवारजन गलती करेंगे, तो उन्हें समझाएगा, अपनत्व में डाँटेगा भी।

पड़ोसिन ने देखा भरी दोपहर शर्मा जी के घर चार अपरिचित व्यक्ति घुस रहे हैं। दिल धक् से बैठ गया। दो क्षण बाद देखा उनका दरवाजा अन्दर से बन्द कर दिया गया। उसने साहस से काम लिया। गली में शोर मचा दिया। औरतें इकट्ठी हो गईं। उन असामाजिक व्यक्तियों का साहस छूट गया शोर सुनकर दूसरे दरवाजे से भाग गए।

वस्तुत आदर्श पड़ोसी सामाजिक चेतना का जीवन्त प्रमाण है। चाहे राजद्वार की प्रसन्नता हो या श्मशान का शोकाकुल वातावरण, वह साथ है—यथाशक्ति पड़ोसी के कर्त्तव्य को आदर्श रूप में निभाने के लिए।



भाग्य और पुरुषार्थ

अदृश्य की 'लिपि' भाग्य है और लक्ष्य पूरा करने के लिए अपनी समस्त शक्तियों द्वारा परिश्रम करना ही 'पुरुषार्थ' है। भाग्य शरीर है, पुरुषार्थ शरीर में अन्तर्निहित शक्तितत्त्व है जो भाग्य को प्रत्यक्ष करता है। शेक्सपीयर के शब्दों में 'भाग्य वेश्या है' तो अथर्ववेद घोषणा करता है, 'पुरुषार्थ मेरे दायें हाथ में है और सफलता मेरे बायें हाथ में है।'

'अजगर करे न चाकरी, पछी करे न काम'—इस सिद्धात को मानने वाले भाग्य को बलवान मानकर पुरुषार्थ को निरर्थक मानते है। वे कार्य मे असफलता मिलने पर भाग्य को ही दोष देते है। उनका सिद्धांत वाक्य है, 'भाग्यहीन खेती करे, बैल मरे या सूखा पड़े।'

भर्तृहरि कहते है, कि "करील वृक्ष में यदि पत्ते नही है तो वसन्त का क्या दोष ? उल्लू यदि दिन मे नही देख पाता, तो सूर्य का क्या दोष ? स्वाति नक्षत्र मे वर्षा का जल यदि पपीहा के मुख में नहीं पड़ता, तो मेघ का क्या दोष ? विधाता ने जो भाग्य में लिख दिया है, उसे कौन मिटा सकता है ?'

भगवान शकर की पत्नी पार्वती अन्नपूर्णा हैं, जो तीनों लोको को अन्नदान कर सबका पालन करती हैं, फिर भी शंकर हाथ मे कपाल लिए भिक्षा मागते फिरते हैं, यह भाग्य की ही तो विडम्बना है।

महाकवि तुलसी ने 'हंसि बोले रघुवंश कुमारा। विधि का लिखा को मेटनहारा' कहकर भाग्य को बलवान माना है।

भाग्यवादी 'भाग्यं फलति सर्वत्र, न हि विद्या न च पौरुषम्' का उद्घोष करते हुए प्रमाण रूप में समुद्रमंथन का दृष्टान्त देते है; जिसमे विष्णु को लक्ष्मी और शंकर को विष प्राप्त हुआ था। उनका यह भी तर्क है कि एक ही क्षेत्र मे समान परिश्रम करने पर भी दो व्यक्तियो को भिन्न-भिन्न फल क्यों प्राप्त होता है ? एक भाग्य की अनुकूलता से लखपति बन जाता है, जबकि दूसरा दु:ख-सागर में डूबा

रहता है। अतः जीवन की सफलता असफलता भाग्य पर ही निर्भर करती है।

भाग्यवादी तो मानव की शक्ति को चुनौती देते हुए यह भी कहते हैं कि 'स्त्री के चरित्र और पुरुष के भाग्य को देवता भी नहीं जानते, मानव क्या जानेगा?' इसीलिए करम (भाग्य) की गति टाले नहीं टलती। सत्यवादी हरिश्चंद्र को श्मशान में दाह-संस्कार करवाने का काम करना पड़ा; मर्यादा पुरुषोत्तम राम को १४ वर्ष वनवास भोगना पड़ा; पाण्डवों को वनवास और अज्ञातवास की वेदना सहनी पड़ी। १९७७ में परम शक्ति सम्पन्न इन्दिरा जी को पराजय का मुख देखना पड़ा।

इसके विपरीत पुरुषार्थ के समर्थकों का दृष्टिकोण कुछ और ही है। उनका कहना है कि 'अजगर करे न चाकरी पंछी करे न काम' को उद्धृत करते समय भाग्यवादी यह भूल जाते हैं कि 'नहि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः', अजगर यदि शिकार को पकड़ने का उद्यम न करे और पक्षी गगन में घूमकर अपना आहार तलाश न करे तो भूखे मर जाएं।

पुरुषार्थ का अर्थ है निरन्तर साहस और लगन से कार्य करने में कटिबद्ध रहना। पुरुषार्थ से ही मनुष्य ने पृथ्वी को पृथु की भांति दुह डाला है, जिससे मानव ने पृथु की भांति न केवल शस्य ही प्राप्त किया, अपितु तेल, कोयला, लोहा, टीन, एलमोनियम आदि धातुओं को भी प्राप्त किया है, जो शक्ति के महान् स्रोत हैं। सागर की छाती पर चक्कर लगाने वाले जलयान तथा आकाश में उड़ने वाले विमान पुरुषार्थ के बल के प्रतीक हैं। चंद्रलोक, शुक्रलोक और मंगललोक की खोज पुरुषार्थ का जीता-जागता पुरस्कार है। विज्ञान द्वारा प्रदत्त सुख, सम्पन्नता ऐश्वर्य मानवीय पुरुषार्थ का पुरस्कार ही तो है।

प्रभु राम पुरुषार्थ के बल पर रामेश्वरम् के समीप समुद्र पर पुल निर्माण कर सके। पुरुषार्थ के बल पर राजा मानसिंह ने उफनती नदी को पार कर लिया। नेपोलियन ने ऐल्पस पर्वत को लांघ लिया। छत्रपति शिवाजी मुगल शहंशाह औरंगजेब की कैद से भाग निकले। पुरुषार्थ के बल पर भारतीय जनता ने आपात्काल के सृष्टाओं को जीवन-भर याद रखने वाला पाठ पढ़ाया।

स्वामी शंकराचार्य पुरुषार्थहीन मानव को जीते जी मरा हुआ मानते हैं। संस्कृत के प्रसिद्ध नाटककार भारवि का कथन है, 'पुरुषार्थहीन पुरुष को विपत्तियां आक्रान्त कर लेती हैं। विपत्तियों से आक्रान्त होने पर उसकी भावी उन्नति

रुक जाती है, उसका गौरव नष्ट हो जाता है।' महाभारत की धारणा है कि 'जो पुरुषार्थ नहीं करते, वे धन, मित्र-वर्ग, ऐश्वर्य, उत्तम कुल तथा दुर्लभ लक्ष्मी का उपयोग नहीं कर सकते।' गीता का सार भी यह है, 'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।' यहाँ कर्म का तात्पर्य पुरुषार्थ ही है।

पुरुषार्थ के बल पर जीव जीवन धारण करता है, जिससे संसार-चक्र चलता है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, इन चारों पुरुषार्थों की प्राप्ति ही जीवन का लक्ष्य है। महाभारत के अनुसार 'किया हुआ पुरुषार्थ ही भाग्य का अनुसरण करता है, किन्तु पुरुषार्थ न करने पर भाग्य किसी को कुछ नहीं दे पाता।' वस्तुतः पुरुषार्थ का सहारा पाकर भाग्य का बल विशेष बढ़ जाता है।

भारतीय मनीषी मानते हैं कि कर्म भी भाग्य का एक रूप है। मानव जो कर्म करता रहता है, वह कर्म का वह रूप है जिसको क्रियमाण कहा जाता है। यह संचित होता रहता है। ईश्वरीय व्यवस्था के अनुसार मनुष्य के कर्मों का कुछ अंश भाग्य बन जाता है। अतः महर्षि वाल्मीकि ने रामायण में कहा, 'पूर्वजन्म में किया हुआ कर्म ही भाग्य कहलाता है। इसीलिए पुरुषार्थ किए बिना भाग्य का निर्माण नहीं हो सकता।' महाकवि तुलसीदास ने इस बात की पुष्टि करते हुए लिखा है—'कर्मप्रधान विश्व रचि राखा, जो जस करहि सो तस फल चाखा।'

संस्कृत में एक सुक्ति है, 'उद्योगिनं पुरुषसिंह मुपैति लक्ष्मी.' सम्पत्ति और सफलता पुरुषार्थी के आँचल की वधू है। पसीने की कमाई का मूल्य पारितोषिक रूप में अवश्य मिलता है। खेत पुरुषार्थ है, भाग्य बीज है। जिस प्रकार खेत और बीज के संयोग से ही अनाज पैदा होता है उसी प्रकार पुरुषार्थ और प्रारब्ध (भाग्य) के संयोग से ही जीवन सफल हो सकता है। योगवशिष्ठ चेतावनी देते हुए कहते हैं, 'बुद्धिमान नियति का सम्बल लेकर पुरुषार्थ का त्याग न करें; क्योंकि नियति भी पुरुषार्थ रूप से ही नियामक होती है।'

*

अहिंसा

अहिंसा सत्य का प्राण है, स्वर्ग का द्वार है, जगत की माता है, आनन्द का अजस्र स्रोत है, उत्तम गति है, शाश्वत श्री है और है मानव-मात्र के लिए परम धर्म।

शत-पथ ब्राह्मण के वचन 'तथा अहिंसा सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य परिग्रह', मानस का उद्घोष 'परमधर्म श्रुति विदित अहिंसा', योगदर्शन की उक्ति 'सर्वत्र सर्वदा सर्वभूतानाम नभिद्रोहः अहिंसा', पुराणो का सार 'पापाय परपीड़नम्' वैदिक युग की मान्यता 'अहिंसा परमो धर्मः' अहिंसा के महत्त्व का समर्थन हैं।

प्राचीन ग्रन्थों और महर्षियों के उद्घोष, 'सर्वं कल्याणेषु भूतेषु', 'आत्मवत् सर्वभूतेषु', 'सर्वं भूतेषु कल्याणेषु', 'वसुधैव कुटम्बकम्', 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' अहिंसा के प्रेरक हैं। इतना ही नही, महाभारत तो दुष्टो की हिंसा को अहिंसा मानता है, 'अहिंसाऽसाधुहिंसेतिश्रेयान्धर्म परिग्रहः।'

अहिंसा है क्या? संत ज्ञानेश्वर ने विस्तृत, सुस्पष्ट व्याख्या करते हुए कहा, 'संसार को सुखी करने के एक मात्र उद्देश्य को ध्यान मे रखकर किया गया प्रत्येक शारीरिक, वाचिक, मानसिक कार्य ही अहिंसा कहलाता है।'

प्रभु राम का असुर संहारार्थ युद्ध, योगेश्वर कृष्ण का 'विनाशाय च दुष्कृताम्' महाभारत युद्ध, शिवाजी का हिन्दू रक्षार्थ मुगलो पर आक्रमण, क्रांतिकारियो का स्वातन्त्र्य प्राप्ति के लिए सशस्त्र विद्रोह, पवित्र 'स्वर्ण मन्दिर' मे सैनिक कार्यवाही, सब अहिंसा की सीमान्तर्गत है। जैन महामुनि उमा स्वाति जी के 'तत्त्वार्थ सूत्र' का प्रस्तुत सूत्र इसका समर्थन करता है। 'प्रमत्त योगात् प्राणव्यरोपणं हिंसा'—'प्रमत्तयोग' हिंसा हैं। शात, सुविचारित, कल्याणार्थ हिंसा भी अहिंसा ही है।

'प्रमत्त योग' के लक्षण देखिए—मुर्दाबाद के नारों मे, सम्पत्ति को भस्म करने में, पुलिस सेना से टक्कर लेने में, बसों के अपहरण, टायर पंचर तथा भस्म करने में, हड़ताल करने में, लूट-मार में पत्थर मार कर भवनों और मनुष्यों को आहत

करना 'प्रमत्तयोग' है। यह भस्मासुरीय आचरण स्वयं का विनाशक है।

[illegible] परिस्थितियों में साक्षात्कार का अभाव, [illegible] है, प्रदर्शन है, प्रवचन है। आततायी लोगों के अत्याचार सहन करना, प्रतिकार या प्रतिरोध न करना अहिंसा नहीं। धर्म विरोधी आचरण अहिंसा नहीं। असामाजिक तत्त्वों के अनाचार को सहना अहिंसा नहीं। भारत-विभाजन इसी प्रवंचनामयी अहिंसा का दुष्परिणाम है। उग्रवाद के आगे अहिंसात्मक समर्पण अहिंसा का ढोंग ही तो है। दिनकर जी का यह कथन, 'क्षमा शोभती उस भुजंग को, जिसके पास गरल है,' सच्ची अहिंसा के लक्षण प्रस्तुत करता है। अतः अहिंसा वीरता का भूषण है, कायर के भाल का कलंक।

ईर्ष्या-द्वेष से रहित, लोभ-लालच, स्वार्थ से ऊपर उठकर, सौम्य व्यवहार, मधुर तथा हितकर वचन, पर-पीड़ा हरण अहिंसा के विविध सोपान हैं। राज्य के स्थान पर वनवास मिलने पर विमाता कैकेयी के प्रति श्रीराम का लेशमात्र भी मन में विपरीत न सोचना, द्वारिकाधीश श्रीकृष्ण का दीन-दरिद्र मित्र सुदामा का सेवा-सत्कार, युधिष्ठिर के यज्ञ में कृष्ण का जूठी पत्तल उठाने का कर्म शत्रु वर्ग की नारी को माँ कहकर, सुरक्षित लौटा देने वाले छत्रपति शिवाजी का कार्य 'अहिंसा' के जीवन्त रूप हैं।

इसके विपरीत 'पत्नी से कठोर व्यवहार करना, उससे अप्रामाणिक हो जाना, बच्चों से उपेक्षापूर्ण व्यवहार करना, उनके स्वास्थ्य, शिक्षा, शील आदि की चिन्ता न करना, भृत्यों (नौकरों) से तुच्छता का व्यवहार, पड़ोसी से लड़ाई, मित्रों से वंचना, निर्धनों का उत्पीड़न, वृद्ध और रोगियों की सेवा न करना, अधिकार-पद का दुरुपयोग करना, किसी को झूठी आशा दिलाकर धोखा करना, ये सब हिंसा के विविध प्रकार हैं। विश्व-युद्ध की अपेक्षा ये अधिक भयानक हैं।' (डॉ. प्र ग. सहस्रबुद्धे : जीवन मूल्य; भाग १)

वैदिक युग की कामना 'सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः' अहिंसा की सुदृढ़ नींव है। राम और कृष्ण-युग में 'विनाशाय च दुष्कृताम्' अहिंसा का बीजारोपण है। बौद्ध और जैन युग अहिंसा का यौवन काल था, जिसमें न केवल भारत, अपितु विदेश भी अहिंसा की दीक्षा में दीक्षित हुए। मुगलों की परतन्त्रता में संत युग का आविर्भाव हुआ। सूर, तुलसी, नानक, मीरा आदि सन्तों ने अहिंसा

की ज्योति को प्रदीप्त रखा। आधुनिक युग में महात्मा गांधी को अहिंसा का देवता माना गया। इस प्रकार भारत अहिंसा की जन्म भूमि, कर्म भूमि तथा प्रेरणा भूमि है।

गांधी जी की अहिंसा विभिन्न रूपा थी, विरोधात्मक थी। इसमें सत्य का आग्रह था, आत्मा की आवाज थी, किन्तु देश को इस प्रयोग की बहुत बड़ी कीमत चुकानी पड़ी। एक ओर चौरा-चोरी सत्याग्रह के मामूली से अहिंसात्मक रूप में गांधी जी ने आन्दोलन वापिस लेकर हिंसा के प्रति विरोध प्रकट किया, तो सन् १९४२ के 'भारत छोडो' आन्दोलन मे कांग्रेसियों ने इतनी भयंकर हिंसा की कि बिहार का कोई स्टेशन भस्म होने से बचा नही, फिर भी वे मौन रहे। तीसरी ओर उन्होंने अली बन्धुओ के साथ मिलकर अफगानिस्तान को भारत पर आक्रमण करने के लिए प्रेरित किया। शायद इसीलिए गांधी जी ने कहा, 'अहिंसा का मार्ग तलवार की धार पर चलने जैसा है, जरा-सी गफलत हुई कि नीचे गिरा। देहधारी के लिए उसका सोलह आने पालन असम्भव है।'

अहिंसा मन में शान्ति, हृदय मे उत्साह और जीवन में सफलता का पथ प्रशस्त करती है। राष्ट्र को सुखी-समृद्ध एव विकासवान बनाती है। संसार मे शांति, भौतिक उन्नति तथा मानवता की महानता को प्रेरित करती है। 'आत्मवत् सर्व भूतेष' का चिन्तन जागृत कर 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का स्वप्न साकार करती है एवं आनन्द के अजस्र स्रोत को प्रवहमान रखती है।



(११६) भारत में आतंकवाद

अपने प्रभुत्व से, शक्ति से, जन-मन में भय की भावना का निर्माण कर अपना उद्देश्य सिद्ध करने का सिद्धान्त आतंकवाद है। प्रत्यक्ष युद्ध के बिना जन-मन तथा सत्ता पर अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए भयप्रद वातावरण निर्माण करने का सिद्धान्त टैरिरिज्म है, आतंकवाद है।

भारत में आतंकवाद अपने नक्सलवादी रूप में १६६७ में शुरू हुआ था। बंगाल के उत्तरी छोर पर नक्सलवाड़ी से शुरू हुए खूनी आंदोलन ने एक नये विचार, नई राजनीति का आरम्भ किया। गाँव के कुछ मंझोले किसानों के सिर काटकर क्रान्ति शुरू की गई। तेलंगाना में विफल कम्युनिस्ट-क्रांति की पीड़ा भोग रहे आंध्रप्रदेश के आदिवासी बहुल श्रीकाकुलम जिले में नक्सलवाद तेजी से फैला। बंगाल में नौजवानों की बेकारी, बिहार में जाति तथा भूमि के नाम पर कमजोरों का दमन तथा आंध्रप्रदेश के आदिवासियों के शोषण ने नक्सलवाद के लिए उर्वर भूमि दी।

१६७४ तक नक्सलवाद का इतिहास विनाश की कहानी है और है, बेगुनाह हिंसा के शिकार लोगों की अभिशप्त आत्मा की चीख-पुकार। आपातकाल की घोषणा से पूर्व तक देश के छः राज्य—आंध्र, बिहार, पश्चिमी बंगाल, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश तथा उड़ीसा नक्सलवादी क्षेत्र थे।

१६७५ में आपातकाल की घोषणा की गई। आपातकाल की सीमा सम्पूर्ण भारत थी, अतः राष्ट्रव्यापी आपातकाल राष्ट्रव्यापी आतंकवाद के रूप में परिणत हुआ। १६ मास के आपातकालीन आतंक ने जन-जन से 'त्राहि माम्, त्राहि माम्' कहला कर छोड़ा। विरोधी नेता ही नहीं, परतन्त्र भारत में देश के लिए सर्वस्व न्यौछावर करने वाले देश-भक्त कांग्रेसी भी, जिन्होंने इन्दिरा जी की सत्ता का विरोध किया, जेल में डाल दिए गए।

१६७७ में आपातकाल समाप्त हुआ। जनता पार्टी की सरकार पदासीन हुई। देश ने सुख की सांस ली है, किन्तु यह सरकार ढाई साल में ही धराशायी हो गई।

१६८० में इन्दिरा जी पुनः प्रधानमंत्री बनीं। सत्ता का मोह बड़ा विषाक्त

होता है। कांग्रेस-प्रांतो मे गुटबंदी थी। प्रांतीय गुटबंदी का पंजाब में भी बीजारोपण हुआ और कांग्रेसी गुटवदी बीज से उत्पन्न हुए श्री भिंडरवाला। कांग्रेस की छत्रछाया और परोक्ष आशीष से वे नेता बने। अपने पराक्रम और शौर्य से वे पंजाब के डिक्टेटर वने। जिसने उनके विरुद्ध आवाज उठाई, उसे पूरी तरह कुचल दिया गया। अनेक पत्रकार, पुलिस अफसर तथा सेनाधिकारी, राजनैतिक नेता उनके शिकार हुए। महाबली और महाशक्तिशाली सत्तासम्पन्न नेता और अधिकारी उनके द्वार पर जीवन की भीख मागने जाते थे।

स्वर्णमदिर पर सैनिक वल-प्रयोग से श्री भिंडरवाला का अंत हुआ, प[illegible] पजाव मे निरीह जनता की मारकाट चल रही है। इन्दिरा जी ने क्योंकि स्व[illegible] मंदिर पर सैनिक वल प्रयोग किया था, इसलिए उनकी भी हत्या कर दी गई[illegible] पंजाव के आतंकवाद ने देश की सर्वोच्च वलि ली।

श्री राजीव गाधी देश के प्रधानमंत्री बने। वे समझौतावादी प्रवृत्ति के प्रवर्तक हैं। उन्होंने आतंकवाद को समाप्त करने के लिए संत लोगोवाल से समझौता किया। आतंकवादियो ने संत लोगोवाल की हत्या कर अपने वर्चस्व का परिचय दिया। पंजाब में आतंकवाद निरन्तर निर्बाध रूप मे चल रहा है। प्रतिदिन टी० वी० और आकाशवाणी से प्रसारित होने वाले समाचार इसके प्रमाण हैं। इसलिए वहाँ लोकतन्त्रात्मक सरकार बन नही पाती। बन जाए तो वह जीवित रह नही पाती। केन्द्रीय सरकार आतंकवादियों के मनोबल और उनकी कमर टूटने की मृग-मरीचिका मे भले ही रहे पर सच्चाई यह है कि पंजाब आतंकवाद की छाया मे सांसे ले रहा है। अब तो उस आतंकवाद की ज्वाला से पड़ोसी राज्य हरियाणा भी झुलसने लगा है।

जब सत्ता स्वार्थ-द्वन्द्व से ग्रस्त हो, तो उसकी पराजित मनोवृत्ति पहचा[illegible] आतंकवाद सिर उठाता है। सत्ता के वर्ग-विशेष के सहयोग से वह चिरायु [illegible] है और गर्व-गौरव मे सिर उन्नत कर चलता है। आज भारत के अधिकांश प्र[illegible] सत्ता-दुर्बलता की हीनता के कारण आतंकवाद के नखरे झेल रहे हैं। त्रिपुरा म[illegible] टी० एन० वी० (त्रिपुरा नेशनल वालिंटियर्स) विहार और आंध्र मे नक्सलवादी तथा माफिया गिरोह, पश्चिमी बंगाल में जी० एन० एल० एफ० (गोरखा राष्ट्रीय मुक्ति मोर्चा), आसाम में बोडो आन्दोलन आतंकवाद के प्रांतीय रूप हैं। 'पीपुल्स वार' नामक आतंकवादी संगठन बंगाल तथा बिहार के भूमिहीन देहातियों मे

'एन० सी० सी०' के नाम पर तथा आंध्रप्रदेश, महाराष्ट्र व मध्यप्रदेश में 'पी० वार' के नाम से आदिवासियों में सक्रिय है।

भारत मे आतंकवाद के विष-बीज विविध रूपेण पुष्पित पल्लवित हैं। इनकी दुर्गंध से आम जनता भयभीत है, कर कुछ नहीं सकती। सत्ता राजनैतिक स्वार्थ मे अंधी है। दलगत राजनीति से दबी है। अतः हवा में तलवार घुमाती है। वह आतंकवाद के विरुद्ध आक्रामक रुख अपना नहीं पाती। सुरक्षात्मक उपायों (Defensive side) की बालू-रेत की दीवार पर आतंकवाद को पराजित करने के स्वप्न देखती है।

'डिफेन्सिव साईड' (Defensive side) अपनाना सेना की पराजय का प्रतीक माना जाता है। आज भारत-सरकार आतंक के हमले से डरकर 'सुरक्षात्मक स्थिति' ढूंढ रही है। नेताओं के साथ बॉडीगार्ड देना, सरकारी भवनों पर [illegible]ा-प्रबन्ध सुदृढ़ करना, स्थान-स्थान पर रेत की बोरियां इकट्ठी करके युद्ध-[illegible]ाना, बसों मे सुरक्षात्मक उपाय ढूंढना, जनता को बमों से बचने के उपाय [illegible], सब 'डिफेन्सिव मैथड' हैं। निहत्थे, निरीह नागरिकों की हत्या पर निन्दा प्रस्ताव पास करना, स्वयं प्रहरियों के मध्य सुरक्षित रहकर उनके आक्रमण को कायरतापूर्ण हमला कहना, संसद की सुदृढ़ प्राचीन के अन्दर तीव्रतम वाक्-बमों से हमले करना सत्ता की नपुंसकता को प्रकट करते हैं। पाकिस्तान-भारत सीमा को सुरक्षा-पट्टी घोषित कर सेना के हवाले करना, पंजाब में सत्ता सेना को सौंपना, आतंक-गढ़ पर प्रहार करना ऑफेन्सिव मैथड (Offencive Method) हैं। जिन्हें केन्द्रीय सत्ता प्रयुक्त नहीं करना चाहती।

आतंकवाद सत्ता के लिए खुली चुनौती है, लॉ एण्ड आर्डर की शव-रूप में परिणति है। निरीह नागरिक के जीवन जीने के अधिकार का अपहरण है। धन-सम्पत्ति की असुरक्षा की घंटी है। दमघोटू वातावरण मे जीवन की विवशता है। लोकतन्त्र के मुँह पर चांटा है। राष्ट्र को अस्थिर कर उसे परतन्त्र करने का दुश्चक्र है।

इस राष्ट्रघाती वाद को सत्ता के आतंक से दबाना होगा। मनोबल से इसके विरुद्ध आक्रामक रुख अपनाना होगा। स्वार्थी, कूटनीति और आतंकवादियों के परोक्ष पक्षधर राजनीतिज्ञों को सबक सिखाना होगा। सैन्य-बल से आतंकवाद का सिर कुचलना होगा। तभी विजयश्री हमारे चरण चूमेगी, तभी भारतीय जनता सुख और चैन की सांस लेगी; राष्ट्र फले-फूलेगा।

(११७) राष्ट्रीय-एकता

राष्ट्रीय एकता राष्ट्र की सुख-शान्ति और समृद्धि की द्योतक है, राष्ट्र की प्रगति का चिह्न है, राष्ट्र के विकास का सोपान है; राष्ट्रीय समस्याओं को सफलतापूर्वक सुलझाने का साधन है, राष्ट्र पर आई विपदाओं का सामना करने के लिए लोह-प्राचीर है।

राष्ट्रीय-एकता का मूलाधार है, राष्ट्रीयता, मातृभूमि के प्रति सच्चा प्रेम। राष्ट्रीयता राष्ट्र के चरित्र का निर्माण करती है, देश को खंड-खंड होने से बचाती है। राष्ट्र का आह्वान जीवन की चुनौती है। सम्पूर्ण मोह-बन्धन छोड़कर धर्म, जाति, सम्प्रदाय, पार्टी या दल का हित त्यागकर, राष्ट्र-प्रेम की पावन गंगा में अपने को निमग्न कर देना राष्ट्रीय एकता है।

राष्ट्रीय एकता के लिए सर्वप्रथम आवश्यकता है—राष्ट्र को मातृभूमि के रूप में देखने की, उसके प्रति आस्था और श्रद्धा रखने की। दुर्भाग्य से भारत का देश-भक्त राजनीतिज्ञ भी क्षेत्रीयता से ऊपर नहीं उठ पा रहा। महाराष्ट्र का मुख्यमंत्री पंजाब जाकर राष्ट्रीय-एकता का उपदेश देकर आता है, किन्तु स्वयं कर्नाटक से कुछ भू-भाग को महाराष्ट्र में मिलाने के लिए जान की बाजी लगाने को तैयार है। यही हाल पंजाब का है। भाखड़ा के निर्माण में हिमाचल का बहुत बड़ा भू-भाग पानी में डूबा। उसका लाभ हिमाचल के अतिरिक्त हरियाणा और राजस्थान को भी मिलना चाहिए था। पंजाब का राजभक्त राजनीतिज्ञ इतनी उदारता नहीं दिखा पाता कि भारतमाता के शरीर के हिस्से हिमाचल, हरियाणा और राजस्थान से मिल बैठकर नदी-जल का बंटवारा कर लें। यही नदी-जल-समस्या दक्षिण के तीन राज्यों के बीच वर्षों से चल रही है और सैकड़ों बेगुनाह जानें इस पर न्यौछावर हो चुकी हैं। इस पर क्षेत्रीयता की भावना राष्ट्रीय एकता में बाधक है। अलगाववाद की जननी है।

राष्ट्रीय एकता की दूसरी आवश्यकता है—धर्म-निरपेक्ष दृष्टि। भारत में हिंदू, मुसलमान, सिख और ईसाई—ये चार धर्म प्रमुख रूप से हैं। जहाँ तक धार्मिक दृष्टि से पूजा-अर्चना और प्रभु-भक्ति में विश्वास की बात है, उसमें

राष्ट्रीय एकता को कोई क्षति नहीं पहुँचती। राष्ट्रीय एकता को क्षति पहुँचती है राजनीति से। राजनीति में आकर धर्म और धर्मावलम्बी अल्पसंख्यक और बहुसंख्यक में बँट जाते हैं। सम्पूर्ण राष्ट्र की दृष्टि से हिन्दू बहुसंख्यक हैं और मुसलमान, सिख और ईसाई अल्पसंख्यक। यदि प्रांतानुसार देखें तो मुसलमान जम्मू-कश्मीर राज्य में, सिख पंजाब प्रांत में तथा ईसाई नागालैंड, मेघालय, अरुणाचल और मिजोरम में बहुसंख्या में है, यहाँ हिन्दू अल्पसंख्यक हैं। राजनीतिक दृष्टि से अल्पसंख्यक और बहुसंख्यक का बँटवारा राष्ट्रीय एकता का विरोधी है।

अल्पसंख्यकों के संरक्षण के लिए अल्पसंख्यक आयोग का निर्माण हुआ। वह अल्पसंख्यकों की शिकायतों के निराकरण और उनकी समृद्धि के लिए बनाया गया है, किन्तु इस आयोग ने जिन प्रांतों में हिन्दू अल्पमत में हैं, उनकी सुनाई नहीं की। दूसरी ओर, अल्पसंख्यकों की समृद्धि के लिए प्रधानमंत्री का १५ सूत्री कार्यक्रम भी प्रांत विशेष के हिन्दू अल्पसंख्यकों को लाभ नहीं पहुँचाता।

हमारा संविधान स्वयं धर्म-निरपेक्षता को अल्पसंख्यक और बहुसंख्यक में बाँटता है। कोडबिल हिन्दुओं तक सीमित है, मुसलमानों पर लागू नहीं होता। नारी-संरक्षण कानून भी अलग-अलग हैं—हिन्दू नारी के लिए अलग और मुस्लिम नारी के लिए अलग।

अल्पसंख्यकों द्वारा संचालित शिक्षण-संस्थाओं के प्रबन्ध में राजकीय हस्तक्षेप नगण्य है, जबकि बहुसंख्यकों की शिक्षण-संस्थाओं में सरकार का शत-प्रतिशत हस्तक्षेप है। जहाँ कानून ही धर्म-विशेष पर आधारित हो, वहाँ राष्ट्रीय-एकता की कार्यान्विति कल्पना मात्र है।

राजनीति ने हिन्दुओं को दो खंडों में बाँट दिया—एक सवर्ण और दूसरा हरिजन। हरिजन-उद्धार राष्ट्रहित में हैं, यह निर्विवाद है, पर राजनीतिक लाभ के लालच ने राष्ट्रीय-एकता में नागरिक-नागरिक में विभेद खड़ा कर दिया।

राज्य-कार्य-संचालन में नियुक्ति और पदोन्नति योग्यता के आधार पर न करके उसे कुछ विशिष्ट जातियों का जन्मसिद्ध अधिकार मान लिया गया है। निर्वाचन के क्षेत्र में विभेद है। विशिष्ट क्षेत्रों की सीटें विशिष्ट वर्ग के लिए सुरक्षित हैं।

'अल्पसंख्यकों को विशेषाधिकार प्राप्त होने से समय-समय पर और स्थान-स्थान पर धर्म-निरपेक्ष भारत में हिन्दुओं को ऐसा भेदभाव व पक्षपात सहन करना पड़ता है, जिससे उसके मन में यह क्षोभ पैदा होता है कि 'क्या हिन्दुस्तान

में हिन्दू होना अपराध है'—डॉ० विजयकुमार मलहोत्रा। कर्नाटक के भू० पू० राज्यपाल श्री गोविन्द नारायण अल्पसंख्यकों के अत्यधिक तुष्टिकरण पर चिन्ता व्यक्त करते हुए कहते हैं, 'इस नीति के कारण बहुसंख्यक हिन्दुओं में क्षोभ और कुण्ठा पैदा हो रही है, जो राष्ट्रीय-एकता के मार्ग में खतरनाक संकेत है।'

राजनीतिक दृष्टि से भारत में मजहबी अल्पसंख्यकों की समस्या विभाजन और अलगाववादी प्रवृत्ति के अनेक रूपों में से एक है। 'अल्पसंख्यकवाद एक ऐसी विक्षिप्त अवधारणा है, जो हमें अंधी गली में ले जाकर छोड़ देती है। यह अवधारणा स्वयं अल्पसंख्यकों के लिए एक विशाल एवं सम्पन्न राष्ट्र तक पहुँचने के मार्ग बन्द कर देती है।'

राष्ट्रीय-एकता की बहुत बड़ी पहचान है—राष्ट्रभाषा। सम्पूर्ण राष्ट्र की एक राष्ट्रीय भाषा हो, यह अनिवार्य है। भारत की राष्ट्रभाषा अटक से कटक और हिमालय से कन्याकुमारी तक विशाल राष्ट्र को एक सूत्र में पिरो सकती है। संविधान ने हिन्दी को राजभाषा माना। भारत की राजनीति ने राष्ट्रीय-एकता के इस सूत्र को अपमानित करके छोड़ दिया। श्री मस्तराम कपूर का कहना है, 'राष्ट्रीय एकता की प्रतीक हिन्दी की बात करने वालों को संकीर्णतावादी कहकर गालियाँ दी जाती हैं और दो-ढाई प्रतिशत जनसंख्या के कैरियर बाज तबकों को जोड़ने वाली तथा उनके हित को साधने वाली अंग्रेजी की वकालत करने वाले राष्ट्रीय एकता के पुजारी बन गए। इससे बढ़कर राष्ट्रीय-एकता की विडम्बना क्या हो सकती है?'

राष्ट्रीय-एकता में प्रांतों का अपना महत्त्व है। इस महत्त्व को ठेस लगती है, जब प्रांत-प्रांत के संवैधानिक-अधिकारों में अन्तर किया जाता है। जम्मू-कश्मीर के विशेषाधिकार उसको राष्ट्रीय-एकता-धारा में मिलने ही नहीं देते। परिणामतः वहाँ राष्ट्र-विरोधी झगड़े अपनी चरम सीमा पर है।

राष्ट्रीय-एकता को क्षति तब पहुँचती है, जब हम सभी संस्कृतियों के समन्वय का प्रयास करते हैं। लगता है हम एक नैसर्गिक सच्चाई को झुठलाने पर आमदा हो गए हैं। संस्कृति मानव की आस्था का प्रकाश पुंज है। उनमें समन्वय का अर्थ है सांस्कृतिक झगड़े।

भारत में 'राष्ट्रीय-एकता' के लिए जरूरी है कि एक समान कानून तथा एक राष्ट्र भाषा लागू करें। धर्म को राजनीति की तुला पर न तोलें।'

(११८) साम्प्रदायिकता

साम्प्रदायिकता का अभिशाप पड़ता है, तो जन और धन, दोनों की हानि करता है, सम्पत्ति का विध्वंस करता है, नर-नारियों की हत्या करता है, दुकानों और व्यापारिक प्रतिष्ठानों की लूट होती है और होली जलाई जाती है। मानव, मानव के रक्त का प्यासा हो जाता है।

सरकार कर्फ्यू लगाती है। जीवन्त नगर श्मशान की शान्ति में बदल जाता है। व्यापार ठप्प हो जाता है। दैनिक जीवन के लिए अनिवार्य चीजों के अभाव में जीवन रक्षा दुष्कर हो जाती है; बीमार दवाई के अभाव में मृत्यु की घड़ियाँ गिनते हैं, तो बच्चे दूध के लिए हाहाकार मचाते हैं।

साम्प्रदायिक दगें भारत-माता के भाल पर भयंकर कलंक हैं, राष्ट्र की प्रगति के लिए सबसे बड़े बाधक हैं; कानून और व्यवस्था के शत्रु हैं, सुखी और शांतिपूर्ण जीवन के लिए अभिशाप हैं।

राष्ट्र के लिये व्यापक निष्ठा के मुकाबले किन्हीं भी क्षुद्र सकीर्ण निष्ठाओं के जगाने को 'साम्प्रदायिकता' का नाम दिया जा सकता है। ये संकीर्ण निष्ठाएँ है— धर्म पर आधारित सम्प्रदायों की समस्या, जाति-उपजाति की समस्या, भाषा या प्रदेश पर आधारित गुटों की समस्या।

भारत मे विभिन्न धर्मावलम्बी लोग रहते हैं—सनातन धर्मी, आर्यसमाजी, ब्रह्मसमाजी, शैव, वैष्णव, जैन, बौद्ध, कबीरपंथी, दादूपंथी, निरंकारी, सिख, ईसाई, मुसलमान, पारसी आदि। ये धार्मिक सम्प्रदाय न केवल एक-दूसरे से लड़ते हैं, अपितु प्रत्येक सम्प्रदाय के अन्दर भी विभिन्न वर्ग हैं, जो परस्पर टकराते है। मुसलमानों में शिया और सुन्नियों का, ईसाइयों में कैथोलिक और प्रोटेस्टेंटों का, हिन्दुओं में सवर्ण और हरिजनों का झगड़ा इतिहास-प्रसिद्ध घटनाएँ हैं।

साम्प्रदायिक अभिशाप ने क्या-क्या गुल नहीं खिलाए। भारत-विभाजन साम्प्रदायिक अभिशाप का अमिट कलंक है। पाकिस्तान का निर्माण साम्प्रदायिक अभिशाप का वरदान है। लाखों लोगों की हत्या और स्थानान्तरण साम्प्रदायिक अभिशाप का ऐतिहासिक प्रसाद है। मोपला-विद्रोह, मुस्लिम लीग का एक्शन-डे,

स्वर्ण-मन्दिर पर सैन्य-कार्यवाही, पंजाब में निरीह हिन्दुओं का कत्ल; दिल्ली, उत्तर प्रदेश में सामूहिक सिख-संहार, सेना मे सिख-विद्रोह, गणेशणकर विद्यार्थी, स्वामी श्रद्धानन्द तथा श्रीमती इन्दिरा गांधी की हत्या इतिहास के पन्नों पर अश्रु-धारा की अभिशप्त श्रद्धांजलि अर्पित कर रहे हैं।

क्या कारण है कि भारत मे साम्प्रदायिकता की अग्नि शांत होने की बजाए दावानल बनती जा रही है? वर्षानुवर्ष साम्प्रदायिक दंगों को सख्या बढती जा रही है। दंगो मे उग्रता, तीव्रता और भीषणता प्रचण्डतर होती जा रही है? धर्म के प्रति कट्टरता, दुराग्रही प्रवृत्ति दृढतर होती जा रही है? सच्चाई यह है कि १९४७ मे जिस साम्प्रदायिकता की अन्त्येष्टि के लिए भारत-विभाजन का कड़वा घूंट पिया था, कांग्रेस के ४० वर्षीय राज्य में वह भूत बनकर देश की शांति, समृद्धि तथा स्वातन्त्र्य को भयभीत कर रहा है। विषैले डक से राष्ट्र की भावना और आत्मा को विषाक्त कर रहा है। १९८९ तक पहुँच-पहुँचते 'भारत के कमजोर धर्म-निरपेक्ष ढांचे पर दबाव बढता रहा है। जब भी कोई इस्लामी देश छीकता है तो भारत को साम्प्रदायिक जुकाम हो जाता है।' (इण्डिया टुडे)।

भारत का शासन साम्प्रदायिक दगो का मूल कारण है। पजाब का आतकवाद, राम-जन्मभूमि विवाद, मुस्लिम और ईसाई-धर्म को प्रोत्साहन, शिव सेना, बजरग दल का निर्माण कांग्रेस राजनीति के कुफल हैं। पजाब मे भिंडरावाला की उपज, प्रेरणा और प्रोत्साहन का कारण कांग्रेस है। रामजन्म विवाद में न्यायालय के हिन्दू-पक्ष के निर्णय को हाई-कोर्ट में चुनौती देने की बात कांग्रेस की सरकार ने की है। चुनाव मे मुस्लिम लीग से गटबन्धन कांग्रेस करती है। मिजोरम में ईसाइयत के सवर्द्धन की बात और ईसाई धर्म का चोगा कांग्रेस पहनती है, मध्य-प्रदेश की वर्णमाला पुस्तक मे से 'गणेश' को हटाकर 'गधा' पढाया जाना कांग्रेस सरकार की कृपा है। १९८८ के इलाहाबाद संसदीय चुनाव मे दूरदर्शन के लोकप्रिय सीरियल रामायण के नायक श्री अरुणगोविल को श्री राम के रूप मे कांग्रेस ने ही अवतरित किया था। 'परित्यक्ता मुस्लिम नारी' के 'भत्ता अधिकार' पर सुप्रीम कोर्ट के निर्णय को ससद में ले जाकर शक्तिहीन कांग्रेस ने ही किया। जब शासन धर्म का आँचल पकड़कर राजनीति करता हो तो साम्प्रदायिकता समाप्त कैसे होगी? धर्म को राजनीति से अलग कैसे किया जा सकता है?

दूसरे, सत्ता के मोह-जाल मे फँसकर शासन भयभीत है। शासन का भय

राष्ट्र का विनाश करेगा। विश्व के दो प्रमुख धर्म — मुस्लिम तथा ईसाई—विश्व राजनीति में अपना वर्चस्व रखते है। अरब के पास तेल है। तेल के बिना विश्व पगु है। ईसाई-राष्ट्र उन्नति के चरम शिखर पर हैं। उनकी भृकुटी पर पड़ा जरा-सा बल विश्व को कँपा देता है। ऐसी स्थिति में भारत की केन्द्रीय सरकार मुसलमानों तथा ईसाइयों से डरती है, उनके विरुद्ध कोई कठोर पग उठाते हुए झिझकती है। भारत मे साम्प्रदायिक अभिशाप का यह भी एक प्रमुख कारण है।

राजनीतिज्ञों के द्वारा साम्प्रदायिक तुष्टिकरण साम्प्रदायिकता की अग्नि मे घी डालने के समान है। दोषी साम्प्रदायिक तत्त्वों को दडित न करना साम्प्रदायिकता को खुली छूट देना है। साम्प्रदायिकता का सरक्षण जनता को राष्ट्रीय-धारा मे समान रूप से प्रवाहित न होने देने का षड्यन्त्र है।

अल्पसख्यक मतावलम्बी अपने-अपने धर्मों के प्रति आस्थावान है। कट्टरता उनकी नस-नस मे है, धर्म-प्रचार उनका पावन कर्म है। स्वधर्म के प्रचार और प्रसार के लिए प्रत्येक बलिदान पर सिख, मुसलमान तथा ईसाई गर्व करता है। तर्क के लिए इन धर्मों मे स्थान नही। धर्म के नाम पर वे टूट सकते हैं, झुक नही सकते, समझौता नही कर सकते।

साम्प्रदायिकता के अभिशाप से राष्ट्र की मुक्ति तभी सम्भव है, जब शासन साम्प्रदायिक दंगो में बिना किसी दबाव के पक्षपात रहित रहकर दोषी व्यक्तियों को कठोर दण्ड दे। दूसरे, देश के कानून धर्म-विशेष पर आधारित न हों। जैसे—हिन्दू तो बहु-विवाह-निषेध के कानून से बद्ध है, किन्तु मुसलमान नही। तीसरे, भारत के नागरिक होने के नाते सबमें भारत के मातृभूमि, पितृभूमि तथा पुण्यभूमि के रूप मे श्रद्धा उत्पन्न की जाए। चौथे, सब लोगों मे समान रूप से भारत की पुरातन सांस्कृतिक तथा राष्ट्रीय धारा मे एकरूप होने की ललक जागृत की जाए। पाँचवे, अल्पसख्यकों का राजनीतिक सरक्षण बन्द कर दिया जाए।

(११६) विश्व शांति और भारत

विश्व-शान्ति संसार की समृद्धि और प्रगति की सूचक है; मानव-कल्याण के लिए नित्य प्रति चिन्तन और अन्वेषण का उद्गम है; विश्व के राष्ट्रों में परस्पर प्रबल सहयोग की कामना है; विकासशील देशों के अपने पाँव पर खड़े होने की सहायता की शर्त है, नए-नए शस्त्रास्त्रों की खोज और निर्माण का कारण है; औद्योगिक प्रगति और हरित क्रांति का माध्यम है।

भारत वैदिककाल से ही 'सर्वे भवन्तु सुखिन, सर्वे सन्तु निरामयाः' (सब सुखी हों तथा सब नीरोग हों) की कामना करता आया है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' उसका सिद्धान्त-वाक्य है। अहिंसा का वह प्रचारक है। त्याग और परोपकार उसकी घुट्टी में मिले हैं। 'बहुजनहिताय' उसकी कामना है तथा 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' उसका लक्ष्य है।

भारत विश्व-शान्ति का प्रबल समर्थक है। विश्व के किसी भी भाग में युद्ध-रत देशों के मध्य वह सन्धि करवाने के लिए सदा तत्पर रहता है। भारत राष्ट्रों के मतभेदों को वार्ता से निबटाने का हिमायती है, शीत-युद्ध तथा शस्त्र-युद्ध का प्रबल विरोधी है, संहारक शस्त्रास्त्र-निर्माण के विरुद्ध, वैज्ञानिक आविष्कारों को मानव-कल्याण के लिए प्रयोग का इच्छुक है।

किन्तु विश्व-शान्ति की कामना करने वाला भारत विश्व-युद्ध को रोक नहीं सकता। विश्व-युद्ध क्या, परस्पर राष्ट्रों के युद्ध अथवा शीत-युद्ध को रोकना भी भारत की शक्ति और सामर्थ्य के बाहर है। वह शान्ति-स्थापनार्थ शोर मचा सकता है, शान्तिमिशन भेज सकता है, निरर्थक दौड़-धूप कर सकता है, किन्तु अपने साहस और शक्ति के बल पर युद्धरत राष्ट्रों को धमकी नहीं दे सकता। न ही वह युद्धरत राष्ट्रों के बीच पड़कर आत्माहुति दे सकता है। भूतपूर्व अमरीकी राष्ट्रपति केनेडी ने एक बार रूस को अल्टीमेटम दिया। उस अल्टीमेटम पर रूस सिहर उठा। उसने अपनी सेनाएं गंतव्य पर पहुँचने से पूर्व ही वापिस बुला लीं। यह है शान्ति- स्थापना के लिए सामर्थ्य का प्रमाण।

शांति की जोरदार अपील से, विदेश-मन्त्री-वार्ताओं से तथा राष्ट्राध्यक्षों की

कानाफूनी से विश्व शान्ति का अपहरण रुकने वाला नहीं। विश्व-शांति रूपी भगवती सीता का महाप्रतापी अमरीका और महाबलशाली रूस रूपी रावण जब अपहरण करेंगे तो भारत जैसा विकासशील देश जटायु की तरह अपने पंख फटवाकर लहुलुहान होते हुए अपनी स्वतन्त्रता भले ही खो दे, किन्तु विश्व-शान्ति रूपी सीता के अपहरण को रोक नहीं सकेगा। अमेरिका द्वारा लीबिया पर हमला, इस्राइल-अरब-युद्ध, उत्तर दक्षिणी वियतनाम युद्ध, दक्षिण अफ्रीका-नाम्बिबिया-युद्ध, तंजानिया-युगांडा-संघर्ष, वियतनाम-कम्बुजिया-संघर्ष रूस द्वारा हंगरी और और अफगानिस्तान में घुसपैठ तथा ईरान-ईराक एवं इसराइल-फिलिस्तीनी युद्ध में भारत की स्थिति इस कथन का प्रमाण है।

विश्व-शान्ति में भारत की भूमिका पिटे हुए के आँसू पोंछने तथा मरणासन्न को जीवित रखने की इच्छा तक सीमित रही है। राष्ट्र-संघ के तत्त्वावधान में उसने दक्षिण कोरिया, वियतनाम, मिश्र और कांगो में अपनी सेना भेजकर युद्धविराम को सफल बनाने का प्रयास किया, तो पाकिस्तान बंगलादेश-युद्ध में भागे हुए लाखों बंगालियों को अपने यहाँ शरण दी। भारत ने उन शरणार्थियों पर एक ओर ३०० करोड़ रुपया वार्षिक खर्च कर अपनी आर्थिक स्थिति को बहुत नाजुक बना लिया, तो दूसरी ओर अपने देश के एक भाग आसाम में गृहयुद्ध की स्थिति उत्पन्न कर ली थी।

शांति सबल का मित्र है, तो निर्बल-दुर्बल से उसका कोई सम्बन्ध नहीं। भारत विश्व-शान्ति की भूमिका तब निभाएगा, जब वह पहले अपने पड़ोसी राष्ट्रों से निबट ले। पाकिस्तान के शस्त्र-संग्रह पर भारत गला फाड़-फाड़कर चिल्ला रहा है; पर कौन सुनता है? दूसरी ओर १९४७ के आक्रमण में पाकिस्तान ने कश्मीर का ३/८ भाग दबा लिया था, जिसे भारत आज तक हस्तगत नहीं कर सका।

हमारे द्वारा पाला-पोसा गया बंगलादेश आज हमें आँखें दिखाता है। गंगाजल के बँटवारे का प्रश्न अनेक वर्षों से निबट नहीं पा रहा था कि उसने नवमूर द्वीप का झंझट खड़ा कर दिया। उधर, वह बिहारी मुसलमानों तथा बंगाली हिन्दुओं को भारत में भगा रहा है, उनकी सम्पत्ति जब्त कर रहा है। हमारे लिए सिरदर्द पैदा कर रहा है। अखबारी कागज सम्बन्धी लिखित समझौते पर वह मुकर सकता है।

तीसरी ओर, हमारा एक पड़ोसी राष्ट्र श्रीलंका है। जिसने हमारे 'कच्चा टीवू' को हथिया लिया। तमिलों की नृशंस हत्या की और उन्हें अपने देश से

(१२०) २१वीं सदी का भारत

"२१वीं सदी का भारत विज्ञान की नई उपलब्धियों से पूर्ण होगा; कम्प्यूटराइज्ड मस्तिष्क भारत और भारतवासियों की सेवा मे संलग्न होगा; यहाँ विविधता में एकता-एकात्मता के दर्शन होंगे; हम गरीबी से मुक्त होंगे। दुनिया के एक बड़े औद्योगिक राष्ट्र के रूप मे भारत का भाल गर्व से दमक रहा होगा।" भारत के युवा प्रधानमन्त्री श्री राजीव गाँधी अपने इस स्वप्न को सत्य में प्रकट करने के लिए कटिबद्ध हैं।

प्रधानमन्त्री के स्वप्न पर जाएँ; तो मन को प्रसन्नता होती है। जगमगाते भविष्य की कल्पना से प्रत्येक भारतीय की आत्मा गद्‌गद् हो उठती है, किन्तु यदि उनकी सूरत पर नहीं, सीरत पर ध्यान देते हैं, रैली पर नहीं शैली पर ध्यान देते हैं, तो लगता है कि यह भारतीय जनता के साथ एक बड़ा विश्वासघात है। 'गरीबी हटाओ' की तरह यह भी एक सम्मोहक नारा है जिसने इन्दिरा जी को सत्ता तो समर्पित की, किन्तु गरीबी न हटी। हाँ, गरीब और अधिक गरीब जरूर हो गए।

कम्प्यूटर अर्थात् मशीनी मस्तिष्क का प्रथम अभिशाप होगा—'बेरोजगारी मे बढ़ोत्तरी'। यह बेरोजगारी इतनी भीषण होगी (अनुमानतः ४० करोड़ बेकार) कि इनकी तुलना मे मौजूदा महंगाई और तीसरे दशक (सन् १९२२ से १९३० तक) का आर्थिक संकट एक सुखद परिहास प्रतीत होंगे। कारण, श्रमिकों को फालतू और बेरोजगार बनाना स्वचालित मशीनों और तकनीकी-परिवर्तन की नियति ही है।

इस पर प्रश्न उठता है कि क्या हम अपनी बुद्धिवादी प्राथमिकता को औसत भारतवासी, जो कि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर गरीबी की रेखा के इर्द-गिर्द या इसकी निचली या ऊपरी सतह को छूता हुआ घिसटकर जी रहा है, से हटाकर पराश्रित और अंधी तकनीकी वैज्ञानिक प्रगति की चकाचौंध पर केन्द्रित करना चाहते हैं।

अमेरिका और रूस जैसे विकसित देशों के श्रमिक अत्यधिक कम्प्यूटराइजेशन के विरुद्ध हैं। वे कम्प्यूटर के सीमित प्रयोग के पक्ष में हैं, ताकि वह मानव की होड़

में न आ सके।

बीसवी शताब्दी की समाप्ति पर सम्पूर्ण विश्व इक्कीसवी सदी मे प्रवेश करेगा। ऐसा तो होगा नही कि अमीर और प्रभुता-सम्पन्न लोग २००१ मे प्रवेश करेंगे तथा गरीब और पिछड़े वर्ग की जनता यहीं बनी रहेगी। समय का प्रवाह बाढ के पानी की तरह कूड़े-कचरे सहित आगे बढता है। इस वैज्ञानिक सत्य को स्वीकार करने मे क्यो हिचक है कि २००१ से मात्र बारह वर्ष पूर्व (१९८९) जो भारत शिक्षा, समाज, अर्थ, आकांक्षा सभी स्तरों पर वर्गों में विभाजित है, वह केवल १२ वर्ष में ही उस भारत के सारे निवासियों को 'दून-स्कूल' वालों की प्रतियोगिता मे कैसे खड़ा किया जा सकेगा?

श्री भानुप्रताप शुक्ल इस सन्दर्भ में विश्लेषणात्मक तथ्य प्रस्तुत करते हुए लिखते हैं—'भारत की नब्बे प्रतिशत आबादी केवल अभाव एवं आतंक झेलने और कोरे आश्वासनों मे आनन्दित होने के लिए बाध्य है। ७० फीसदी लोगो का इलाज नही हो पाता, ५५ प्रतिशत गरीबी की रेखा के नीचे है। यदि उनको साथ लिए भारत का नेतृत्व इक्कीसवी सदी में प्रवेश करेगा तो वह स्वस्थ नही, विकलांग भारत होगा; शैक्षणिक, सामाजिक, आर्थिक और एकता-एकात्मकता की दृष्टि से पूरी तरह विकलाग और विभक्त भारत। प्रधानमन्त्री जी ने केवल ७० लाख आयकर दाताओं और २० लाख सम्पत्ति-कर देने वालो को ही भारत मान लिया हो तो बात दूसरी है।'

इक्कीसवी शताब्दी मे प्रवेश के समय देश औद्योगिक समृद्धि की ओर अग्रसर होगा, आर्थिक दृष्टि से उन्नत होगा। पर यह सब होगा विदेशी पूंजी और टेकनीक की बैसाखी पर। आज का भारत दैनिक जरूरत की चीजों से लेकर विशाल वैज्ञानिक सुविधाओं तक बहुउद्योगीय विदेशो पर निर्भर है। २००१ में प्रवेश करते समय भारत औद्योगिक क्षेत्र मे पूर्णतः पराश्रित होगा, विदेशों की दया और कृपा पर निर्भर होगा। जनसत्ता के सम्पादक प्रभाष जोशी के अनुसार, 'सम्पन्नता की इक्कीसवी सदी में पहुँचते हुए हम बौद्धिक और मानसिक गुलामी की १९वीं शताब्दी में होंगे और हमारा आत्म-सम्मान धूल चाट रहा होगा।'

१९८९ का भारत धर्म के प्रति अधिक आस्थावान है। इसलिए साम्प्रदायिक झगड़ों की सख्या बढ़ रही है। पृथकतावादी आंदोलन हिंसक होते जा रहे हैं। उग्रवाद और आतंकवाद फैल रहा है। प्रायः प्रत्येक राज्य मे धर्म, सम्प्रदाय या

अंचल-विशेष के नाम पर विभाजन की माँग बढ़ रही है। केन्द्रीय सत्ता पृथकतावादी आन्दोलनों को दबाने में असमर्थ रही है, इसलिए २१वी सदी मे प्रवेश तक धर्मों की धर्म-ध्वजा के नीचे भारतवासी खून की होली ज्यादा खेलेंगे और वे आतंक की छाया मे जीने के आदी हो जायेंगे।

२०वीं सदी की समाप्ति तक आर्थिक दृष्टि से भारतवासी अधिक सम्पन्न होंगे, इसमे कोई सन्देह नही। पर यह भी निर्विवाद सत्य होगा कि भारत-भू पर जन्म लेने वाला हर शिशु विदेशी कर्ज का पैदाइशी कर्जदार होगा। दूसरी ओर, महँगाई इतनी अधिक होगी कि रुपये की कीमत ५-१० पैसे ही रह जायेगी।

पंचवर्षीय योजनाओं द्वारा भारत के प्रत्येक क्षेत्र में होने वाले महत्त्वपूर्ण विकास, उन्नति और समृद्धि की उपलब्धियों को जनसंख्या की वृद्धि नीचा दिखा रही है, हड़प कर डकार भी नही लेती, तो २०वी सदी के अन्त में जब जनसख्या १०० करोड़ होगी, तब विकास-दर, समृद्धि की रेखा, उन्नति व वैभव कहाँ होगा, इस कल्पना से दिल-दहल उठता है।

लुभावने नारे देना हर प्रधानमन्त्री की नियति है, जनता को क्षितिज के उस पार के सुनहरे सपनो मे सुलाना हर प्रधानमन्त्री की लाचारी है। सत्ता के शिखर पर सवार होकर अपनी छवि बनाने के लिए जरूरी भी है यह। प्रथम प्रधानमन्त्री जवाहरलाल नेहरू ने यही किया, मुरारजी और इन्दिराजी ने यही किया। अब यदि राजीव जी ऐसा करें, '२१वी सदी में भारत-प्रवेश की सुनहरी तस्वीर' प्रस्तुत करें, तो इसमें दोष ही क्या है? वे तो प्रधानमन्त्री परम्परा और संस्कृति का पालन कर रहे हैं, ताकि २००१ तक उनकी सत्ता स्थिर रहे। अन्यथा सच्चाई तो यह है कि 'गिनीज बुक ऑफ वर्ल्ड रिकॉर्डस' मे राजीव के २१वी सदी के भारत के विषय में कुछ इस तरह लिखा जायेगा। सर्वाधिक जनसंख्या वाला देश : भारत (जनसंख्या १.२ अरब), सर्वाधिक गरीब देश : भारत (प्रति व्यक्ति औसत आय ३०० रुपये) सर्वाधिक अनपढ़ों वाला देश : भारत (अनपढ़ों की संख्या ६० करोड) सर्वाधिक बेरोजगारी वाला देश : भारत (बेरोजगारों की संख्या : ४० करोड) सर्वाधिक बेघरों का देश : भारत (बेघरों की संख्या : ६० करोड)'—इण्डिया टुडे।

(१२१) (क) सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा
(ख) भारत देश महान

महाकवि इकबाल की ये काव्य-पंक्तियाँ देश-प्रेम की परिचायक हैं; विश्व में भारत की सर्वश्रेष्ठता, महानता को सिद्ध करती हैं; भारत की संस्कृति-सभ्यता की भव्यता के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करती हैं।

महाकवि इकबाल से पूर्व संस्कृत और हिन्दी-साहित्य में भारत-भू का गुण-गान करने वालों की भरमार है। विष्णु पुराण ने कहा, 'भारत भूमि में जन्मे लोग देवताओं की अपेक्षा भी अधिक धन्य हैं। नारद पुराण ने कहा, 'आज भी देवगण भारत भूमि में जन्म लेने की इच्छा करते हैं।' श्रीधर पाठक ने 'जगत मुकुट जगदीश-दुलारा, शोभित सारा देश हमारा' कहकर भारत की वंदना की। मैथिलीशरण गुप्त पूछ ही बैठे, 'भूलोक का गौरव, प्रकृति की पुण्य लीला स्थली है कहाँ ?' फिर स्वयं उत्तर देते हुए वे कहते हैं, 'फैला मनोहर गिरि हिमालय और गंगाजल जहाँ।'

महाकवि इकबाल का जन्म सन् १८३७ और मृत्यु १६३८ में हुई थी। उनके जीवनकाल में भारत अखण्ड था, परतन्त्र था। वर्तमान पाकिस्तान, बँगलादेश और श्रीलंका भारत के अंग थे। उस अखण्ड भारत के प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त करते हुए महाकवि इकबाल ने ये पंक्तियाँ लिखी थी, न कि आज के खण्डित भारत के प्रति। फिर भी भारत की श्रेष्ठता के आधारभूत तत्त्व संस्कृति और सभ्यता, हिमालय और गंगा-यमुना, आज भी भारत की धरोहर हैं, इसलिए यह काव्य-पंक्ति आज के भारत पर भी सटीक सही उतरती है।

महादेवी वर्मा कहती है, "संसार में इतना सुन्दर देश दूसरा नहीं है। जिन्होंने बाहर जाकर देखा है, वे भी यही कहेंगे कि वास्तव में ऐसी हरी-भरी भूमि जिसमें तुषारमंडित हिमालय भी है, जिसमें सूर्य की किरणें केसर के फूलों की तरह शोभा बरसाती हैं, जिसके कंठ में गंगा-यमुना जैसी नदियों की माला पड़ी हुई—नदियाँ है, जिसके चरण तीन ओर से कन्याकुमारी में सागर धोता है। कितनी हरी-भरी है, कितनी सम-विषम है ! ऐसी सुजला-सुफला भारत की ही धरती है।"

जलवायु की दृष्टि से भी भारत सारे जहाँ से अच्छा है। विश्व की जलवायु का ऐसा सन्तुलित विभाजन और कहाँ है? कोई देश ग्रीष्म मे तप रहा है, तो कठोर शीत से संत्रस्त है। यह भारत ही है जहाँ प्रचण्ड गर्मी भी है तो प्रबल शीत और अधिक वर्षा भी। शुष्क पतझर भी है, तो हृदयहारी वसंत भी। गर्मी, बरसात और सर्दी अपने चातुर्मासीय काल में भारत को तृप्त करते है। षड्ऋतुएँ वसन्त, ग्रीष्म, पावस, शरद, हेमन्त और शिशिर—वर्ष भर के वातावरण को भिन्न-भिन्न ऋतुओ में विभक्त कर भारतवासियो को सुख-शान्ति प्रदान करते हैं। भारत-भू को सुजला-सुफला, सुवर्णा, सुरत्ना बनाते है।

भारत विश्व-सभ्यता का आदि-स्रोत है। इसने विश्व के नंगे और अनाश्रित मानव को सभ्यता का पाठ पढाया। जीवन जीने की शैली समझाई। मानव-मूल्यो की पहचान करवाई। मानवता को विकसित करने का पथ-प्रशस्त किया। व्यक्ति और समाज का जो समन्वय प्राचीन वर्णाश्रम व्यवस्था में मिलता है, उसका उदाहरण अन्यत्र दुर्लभ है।

विश्व की आदि पुस्तक वेद है। वेद ज्ञान के भण्डार है। सृष्टि मे ज्ञान का उदय करने का और युगों-युगो से विश्व में ज्ञान की ज्योति जलाये रखने का पूर्ण दायित्व निर्वाह करने का श्रेय पूज्य वेदों को है। वेद संस्कृत मे है। संस्कृत भारत की आदि भाषा है। वेद, उपनिषद्, गीता, छहो दर्शन तथा मानस के समान अध्यात्म का पाठ पढाने वाले धार्मिक ग्रंथ अन्य कहाँ?

भारत की प्राचीन वास्तुकला आज के वैज्ञानिको को विस्मय मे डाल देती है। ज्योतिष, गणित, राजनीति, चित्रकला, वस्त्र-निर्माण आदि सभी मे प्राचीन भारत किसी समय बहुत उन्नत था। अजन्ता के रंगीन चित्र आकृतिक आघातों का सामना करते हुए आज तक सुरक्षित हैं। आध्यात्मिक तत्त्व-ज्ञान मे तो संसार का कोई भी देश भारत का सामना कर ही नही सकता।

विश्व मे तत्त्वज्ञान या आध्यात्मिकता का अभाव है। भारतीय सभ्यता और धर्म का आधार प्रायः ईश्वर रहा है। ईसा ने ईश्वर की सत्ता को स्वीकार अवश्य किया, किन्तु यूरोपीय सभ्यता प्रायः नास्तिकता-प्रधान रही है। गाँधी जी के शब्दों मे यह 'ईश्वर-विहीन' संस्कृति है। विश्व भौतिक-सौन्दर्य मे पीछे हटा, उसने भारत के आन्तरिक सौन्दर्य को अपनाया। भारत के उद्यान गुलाब, चमेली जूही के सौरभपूर्ण पुष्पों से मकरन्द बिखरते हैं, तो विदेशों मे रूपव

सुगन्ध विहीन सौन्दर्य बिखेरते है। विश्व बाहरी वेष-भूषा तथा तड़क-भड़क की ओर गया, तो भारत आडम्बर शून्यता की ओर, सादगी की ओर।

विश्व ने जीवन की समृद्धि के लिए एक ही उपाय स्वीकार किया— और वह है आवश्यकताओं की वृद्धि, किन्तु भारत ने अपरिग्रह का और आवश्यकताएँ घटाओ का उपदेश दिया, 'सादा जीवन उच्च विचार का सन्देश सुनाया', 'तेन त्यक्तेन भुंजीथाः मागृधः कस्यस्विद्धनम्' का आदर्श प्रस्तुत किया। इतना ही नहीं वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम में समाज-कल्याण के लिए जीवन, समर्पण का पथ-प्रशस्त किया। चिन्तन के इसी अन्तर के कारण पाश्चात्य नागरिकों का अन्तःकरण अशान्त है, अतृप्त है, विक्षुब्ध है। और इसीलिए नैराश्य-पूर्ण जीवन में वहाँ आत्म-हत्याओं की प्रमुखता है, विक्षिप्तता का प्राचुर्य है।

भौतिकवादी पाश्चात्य समाज अधिकार मात्र को महत्त्व देता है। अधिकार प्राप्ति-इच्छा ही उसके संघर्ष और असंतोष का मूल कारण है। मजदूर मालिक से, किसान जमींदार से, शासित-शासक से और इतना ही नहीं विद्यार्थी अपने अध्यापक से अधिकार-लिप्सा में संघर्षरत है। संयुक्त राष्ट्र संघ ने भी करोड़ों रुपए व्यय कर, समय लगाकर मानवीय अधिकारों की ही व्याख्या की है। कहीं कर्तव्य-भावना का जिक्र नहीं। भारत में कर्तव्य सर्वोपरि है। 'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन' की शिक्षा माँ के दूध के साथ दी जाती है। इसलिए अधिकार लिप्सित राष्ट्र एक दूसरे को नष्ट करने के लिए संहारकारी शस्त्रास्त्र निर्माण की होड़ में लगे हैं। मानव और मानवता को नष्ट करने पर तुले हैं और भारत 'सर्वेभवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः' की प्रार्थना करते हुए भौतिक उन्नति करने के साथ-साथ मानव और मानवता का संरक्षण कर रहा है। मानवीय मूल्यों के संरक्षण-संवर्द्धन के कारण भी 'सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा' है।

संस्कृति, सभ्यता, जीवन-मूल्य, जीवन-शैली, जीवन मुक्ति तथा आत्म-विकास का ज्ञान भारत-भूमि के कण-कण में व्याप्त है। इसी के तत्त्वज्ञान के आचरण में जीवन का सच्चा सुख है और है परलोक की उन्नति। इसीलिए भारत सारे जग से श्रेष्ठ है, अजर है, अमर है। 'सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा' के गायक महाकवि इकबाल ने इसी तथ्य-चिन्तन की पृष्ठभूमि में कहा था, 'कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी।'

(१२२) हमारी सांस्कृतिक एकता

सास्कृतिक-एकता राष्ट्र की एकात्मकता का प्रमाण है। मानव की जन्मजात उच्छृंखल प्रवृत्तियो पर प्रतिबन्ध का परिचायक है। व्यक्ति और राष्ट्र की उन्नति का सोपान है। विश्व के विशाल प्रांगण में व्यक्ति की पहचान का प्रतीक है।

सांस्कृतिक एकता का अर्थ भारत की दो, तीन या चार धार्मिक प्रवृत्तियों से जुड़ी संस्कृतियों का मिलन नहीं। न ही इसका अर्थ एक मिश्रित संस्कृति का उदय है। इसका सीधा-सा अर्थ है कि हिन्दू धर्म मे विभिन्न मत-मतान्तरो के होते हुए भी, खान-पान, रहन-सहन, पूजा-उपासना मे भेद रहते हुए भी विश्व का हिन्दू सांस्कृतिक दृष्टि से एक सूत्र मे बंधा है, वह एक है।

हिन्दू-संस्कृति, मुस्लिम-संस्कृति तथा ईसाई या पाश्चात्य सस्कृति विश्व की तीन सशक्त संस्कृतियाँ हैं। विश्व के किसी भी राष्ट्र मे इन संस्कृतियों के ऐक्य की बात नहीं उठती। कारण, मानव अपनी संस्कृति में ही विकास प्राप्त कर सकता है। दूसरी संस्कृति की ओर पलायन अपनी हीनता का द्योतक है, न कि संस्कृति मे घटियापन का।

भारत मे सांस्कृतिक-एकता का अर्थ हिन्दू मुस्लिम तथा पाश्चात्य सस्कृतियों के एकीकरण मे है। परिणामस्वरूप हिन्दू-संस्कृति मुस्लिम और पाश्चात्य संस्कृति के सम्मुख समर्पण करती जाती है। इस समर्पण का प्रभाव हिन्दुओ की हीनता और राष्ट्र-विभाजन में प्रकट हो रहा है। भारत-विभाजन मे इस विकृत सांस्कृतिक ऐक्य का प्रथम प्रसाद था, जो सारे राष्ट्र ने चखा। स्वतन्त्र भारत मे यह नासूर बनकर साम्प्रदायिक दंगों के रूप मे, रक्त-रंजित ज्वालामुखी के रूप में फूट पड़ता है। भारत और भारतीयों को तबाह कर देता है। कैसी है यह सांस्कृतिक-एकता ?

संस्कृति का निर्माण खुल सम-सम की भांति होता नही, सौ-पचास वर्षों में उसकी पताका फहराती नही। अनेक पीढ़ियों के सस्कार तथा सहस्रो वर्ष की तपस्या, चिन्तन से संस्कृति का भवन खड़ा होता है। परम्पराएँ, मान्यताएं, अवस्थाएँ, जीवन मूल्य उसके इस्पाती स्तम्भ होते हैं। धार्मिक सिद्धान्त, सामाजिक-

पारिवारिक परम्पराएँ जीवन जीने का दृष्टिकोण तथा शैली वह माँ के स्तनपान के समय सीखता है, संस्कृति का उपासक बनता है।

अनेकरूपता किसी राष्ट्र की जीवन्तता, सम्पन्नता तथा समृद्धि की द्योतक है। भारत विभेदों का समुद्र है शायद इसीलिए इसे उपमहाद्वीप माना जाता है। यहाँ ढाई कोस पर बोली बदलती है, संविधान स्वीकृत १५ भाषाएँ हैं, सनातन धर्म, आर्यसमाज, ब्रह्मसमाज, नाथपंथी, कबीरपंथी, शैव, शाक्त, वैष्णव आदि उपासना-पद्धति के विविध भेद है। जैन, बौद्ध, सिक्ख हिन्दू-धर्म के परिवर्तित रूप हैं। परिधान की विविधता मे सतरंगिता के दर्शन होते हैं। रुचि की विविधता तथा जलवायु की आवश्यकता के अनुसार खान-पान में विभिन्नता है, पर ये विभिन्नताएँ भारतीय-संस्कृति की एकता की पोषक हैं।

भारत की बोलियाँ और भाषाएँ संस्कृत से सम्बद्ध हैं। सभी भाषाओं की वर्णमाला एक नही, तो एक-सी अवश्य है, केवल भेद लिपि का है। संस्कृति की परिनिष्ठित लिपि होने के कारण देवनागरी प्रायः भारतीयो द्वारा पहचानी जाती है। सबकी पृष्ठभूमि तथा व्याकरण एक से हैं। भाषाओं के भेद के बावजूद विचारों की एकरूपता कभी खडित नही हुई। आजादी की लड़ाई के लिए उत्तर और दक्षिण पूर्व और पश्चिम सभी ने बलिदान दिए। शोषण के विरुद्ध सभी ने आवाज बुलन्द की, विदेशी आक्रमण के समय सभी ने एक स्वर से प्रतिकार किया।

समस्त साहित्य मे एकात्मता के दर्शन होते हैं। राम और कृष्ण पर सभी भारतीय भाषाओं में ग्रन्थ रचे गये। तुलसी के 'मानस' और सूर के पद अनेक भाषाओं में अनूदित हुए। बंगाल के 'वन्दे मातरम्' और 'जन-गण-मन' कोटि-कोटि भारतीयो के राष्ट्रगीत बने। विद्यापति हिन्दी, मैथली और बंगला मे सम्मानित हुए, तो मीरा हिन्दी और गुजराती में समान रूप से कवयित्री मानी जाती हैं। सन्तों की वाणी ने एकात्मता के दर्शन करवाए।

विभिन्न धार्मिक-उपासना पद्धतियो एवं मान्यताओ के बावजूद सबमें एक भावना है, एक दर्शन है। अयोध्या; मथुरा, माया (हरिद्वार), काशी, काची, अवन्तिका (उज्जयिनी) तथा द्वारिका दर्शन किए बिना हिन्दू आज भी अपने को मोक्ष का अधिकारी नही समझता। उत्तर में ज्योतिर्मठ, दक्षिण में शृंगेरीमठ, पूर्व मे गोवर्धनमठ तथा पश्चिम मे शारदामठ के दर्शन के लिए हिन्दू आत्मा

तड़पती है। शिव भक्त-ठेठ उत्तर की गंगोत्री से गंगाजल लेकर दक्षिण सीमा के रामेश्वरम् महादेव का अभिषेक कर आत्म-सन्तुष्टि अनुभव करता है।

पर्व और त्योहार हमारी सांस्कृतिक एकता की आधारशिला हैं तथा एकात्म-दर्शन के साक्षी है। होली का 'हुड़दंग', रक्षाबन्धन की 'राखी', विजय दशमी का उल्लास तथा दीपावली का 'पूजन' हर हिन्दू स्वप्रेरणा से मनाता है। नवरात्र-पूजन, राम-नवमी और कृष्ण-जन्माष्टमी मनाने के लिए हिन्दू की आत्मा उद्वेलित होती है। कुंभ और महाकुंभ पर लाखो हिन्दुओ का अपनी गाँठ से पैसा खर्च करके, कष्ट सहकर भी एकत्र होना अटूट सांस्कृतिक-एकता का प्रमाण है।

जन्म से मृत्यु-पर्यन्त १६ संस्कारो मे अटूट विश्वास हमारी सांस्कृतिक एकता का संस्कारित दस्तावेज है। अग्नि को साक्षी करके सप्तपदी के विना हिन्दू-विवाह की कल्पना नही की जा सकती, तो शव को अग्नि मे भस्म किए बिना शरीर की अन्त्येष्टि अपूर्ण रह जाती है।

जैन, सिख और बौद्ध सांस्कृतिक दृष्टि से हिन्दू-संस्कृति की ही प्रतिछवि मात्र हैं। सभी पुनर्जन्म पर विश्वास करते हैं, सभी हिन्दू पर्वो तथा त्योहारो मे श्रद्धा और आस्था रख कर उन्हे मनाते है। होली कौन नही खेलता ? दीपावली में लक्ष्मी-पूजन कौन नही करता ? ये सभी वर्ग हिन्दुओ से वैवाहिक सम्बन्ध के पावन-सूत्रों मे भी आबद्ध है। भगवान बुद्ध को हिन्दुओ द्वारा अवतार माना गया। जैनियों के भगवान ऋषभदेव की श्रीमद्भागवत मे परम आदर के साथ उल्लेख हुआ है। सिख-धर्म का निर्माण ही 'हिन्दू रक्षा' के लिए हुआ था।

बाबू गुलाबराय का कहना है, 'मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा की शिक्षा हिन्दू, जैन और बौद्ध धर्मों मे समान रूप से प्रतिष्ठित है। स्वस्तिक चिह्न और ओंकार हिन्दुओं और जैनो में समान रूप से मान्य है। कमल, हाथी तथा अश्वत्थ वृक्ष (पीपल) बौद्धों और हिन्दुओ द्वारा समान रूप मे पूजनीय है। जैनों का अणुव्रत, हिन्दू-धर्म के योगशास्त्र में 'यम' और बौद्धो के 'पचशील' प्रायः एक ही हैं।'

इस सास्कृतिक एकता के कारण सृष्टि के आदि से चली आती भारतीय संस्कृति आज भी गौरव और गर्व से विश्व के प्रांगण मे उन्नत मस्तक है। मिस्र, रोम, असीरिया वेबीलोनिया, यूनान की संस्कृतियां काल के थपेडों से नष्ट हो गई, किन्तु हमारी सास्कृतिक एकता के कारण ही महाकवि इकबाल को कहना पड़ा, 'कुछ बात है कि हस्ती मिटती नही हमारी।'

(१२३) भारत की सामाजिक समस्याएँ

भारतीय समाज विभिन्न धर्मों, सम्प्रदायो एवं जातियों का समूह है। यहाँ धार्मिक दृष्टि से हिन्दू, बौद्ध, मुसलमान तथा ईसाई; साम्प्रदायिक दृष्टि से सनातन धर्म, आर्य समाज, ब्रह्म समाज, सिख, जैन, शिया, सुन्नी, कैथोलिक्स तथा प्रोटेस्टेण्ड रहते है। जातियाँ तो अनगिनत हैं। देश की सर्वाधिक जनसंख्या हिन्दू-धर्मावलम्बियो की है, अतः भारतीय शब्द 'हिन्दू' का पर्यायवाची बन गया है।

बीसवी सदी का भारतीय समाज असाध्य रोगों से ग्रस्त, कुप्रथाओ से पीड़ित, अन्धविश्वासों से दलित और प्राचीन परम्पराओं से प्रताड़ित है। आज के वैज्ञानिक युग में भी वह अपने कुसंस्कारों तथा कुप्रथाओं को छोड़ने के लिए तैयार नही। अन्य देश चन्द्र, मंगल ग्रह तक पहुँच गए हैं और भारतीय-समाज का रास्ता आज भी बिल्ली काट जाती है।

समाज में फैले अन्ध-विश्वासों को ही लीजिए। यदि किसी ने छींक दिया या बिल्ली रास्ता काट गई तो यात्रा के लिए अपशकुन हो गया। पानी भरा लोटा हाथ से गिर गया या पीछे से किसी ने आवाज दे दी, तो समझिए कार्य नहीं होगा। मार्ग मे यदि काना मिल गया और दुर्भाग्य से वह ब्राह्मण हो तो समझिए अशुभ हो गया—'प्राण जाहि बस संशय नाही।'

जादू टोना की तो और भी भयंकर स्थिति है। बीमारो मे ओझो, गुनियो एवं मन्त्र फूँकने वालो को बुलाना, गंडे तावीज पर आस्था और पोए-पीर पूजा में श्रद्धा वैज्ञानिक प्रगति का घोर अपमान है। इनसे लाखों पाखण्डियों को आश्रय मिलता है, जिनमे साधना का बल नही, ज्ञान की ज्योति नही, ब्रह्मचर्य की सात्विकता नही।

'यत्र नार्यस्तु पूजयन्ते, रमन्ते तत्र देवता' का उद्घोष करने वाला भारतीय समाज नारी पर भिन्न-भिन्न रूपो मे अत्याचार कर रहा हैं। पर्दा-प्रथा, अनमेल विवाह, बाल-विवाह, विधवा-विवाह का निषेध, रूढ़िवादिता तथा बहु-विवाह के आक्रमण नारी की निरीहता और विवशता को प्रकट करते हैं। सहिष्णुता की साक्षात् प्रतिमा कर्त्तव्यशीलता की वेदी पर चढ़ रही है। शारदा ऐक्ट के बावजूद

उत्तर-प्रदेश, राजस्थान और विहार में वाल-विवाह धड़ल्ले से हो रहे है । आर्थिक परतन्त्रता के कारण नारी नर की कारा मे आजीवन बन्द रहती है । भोग-विलास की प्रतिमा और घर की नौकरानी से अधिक उसका मूल्य नहीं । मुस्लिम समाज मे नारी का और भी बुरा हाल है । बहु-विवाह, बाल विवाह, पर्दा-प्रथा तथा तलाक-पद्धति ने मुस्लिम नारी की स्थिति अत्यन्त शोचनीय बना दी है । भारत के उच्चतम न्यायालय ने तलाकशुदा मुस्लिम नारी को पूर्व पति से जीवन-भत्ता दिलाने का मानवीय निर्णय दिया, तो हमारे प्रधानमन्त्री श्री राजीव गाँधी ने उनका यह अधिकार छीनकर उनको दर-दर की ठोकरे खाने को विवश कर दिया । शायद, वे नारी को सम्मान से जीने देना ही नही चाहते ।

शिक्षा के क्षेत्र मे नारी ने जो प्रगति की है, उसने नारी की रूढ़ि-कारा को तो तोड़ा, किन्तु उच्छृंखलता की अग्नि मे झोक दिया । फैशन की मारी, धन के नशे मे अपने आपको विस्मरण करने वाली तथा भोग-विलास को चरम ध्येय मानने वाली नारी भारतीय समाज के लिए गर्व की वस्तु नही ।

दहेज प्रथा भारतीय समाज पर कोढ़ है, जो समाज को कुरूप कर रहा है । दहेज जुटाने में कन्या के माता-पिता का आत्म-पीड़न, उचित दहेज न मिलने पर लालची सास-ससुर तथा पति के अत्याचार निरीह नवविवाहिता को जीवित ही नरक मे धकेल देते हैं । वर पक्ष को उसके जीने से घृणा होने लगती है, तो आग लगाकर, मकान की छत से गिराकर या नदी मे धक्का देकर उसकी हत्या करने में भी नही झिझकते । अनेक समाज-सुधारक, दहेज-प्रथा पर शोर तो खूब मचाते है, किन्तु अपने वेटो को वह भी बेचते है । ऐसे अत्याचारी समाज का भला तभी होगा, जब कोई चाणक्य अपनी शिखा खोलकर दृढ़ प्रतिज्ञा करके इसके पीछे पड़ जाएगा ।

इस शताब्दी का भारतीय समाज वैयक्तिकता, स्वार्थ और भ्रष्टाचार की ओर रॉकेट की तीव्र गति से बढ रहा है । गुण्डा किसी सज्जन को पीट रहा है, उसकी हत्या कर रहा है, जेब-कतरा किसी की जेब काट रहा है, किसी नारी का आभूषण झपट रहा है, किन्तु साथ में खड़ा समाज सम्पूर्ण कुकृत्य को देखते हुए भी उस पीड़ित का साथ नही देता । आज का समाज इतना स्वार्थी है कि अपने तुच्छ लाभ के लिए दूसरो को बड़ी-से-बड़ी हानि पहुँचा सकता है । भ्रष्टाचार तो भारतीय समाज में इतना घुल-मिल गया है कि जीवित रहने के लिए भी उसका

सहारा अनिवार्य है।

यह भारतीय समाज है जहाँ दिन-दहाड़े चोरी होती है, छाती ठोककर डाके डाले जाते है, नारी की अस्मत और आभूषण लूटे जाते है; रेलों, बसों और कारों को लूटा जाता है, ठोक-पीटकर वेश्या और भिखारी बनाये जाते हैं, झूठे मुकद्दमे गढ़े जाते हैं, सदाचारी को जीवन का अधिकार प्राप्त नही है।

जातिवाद भारतीय समाज का रक्षक भी है और नाशक भी। कर्म के आधार पर कभी जातिवाद रहा होगा, किन्तु आज जन्मतः है। जातियो मे उपजाति, उपजाति में उप-श्रेणी, उप-शृंखलाएँ, विभाजन और विशृंखलता की सीमा नहीं। इसी प्रकार धर्म के विविध अंगो, शाखा-प्रशाखाओं की भी गिनती नही की जा सकती। फिर भी, जिस प्रकार वृक्ष मे फूल और पत्तियों का विकास उसका विभेदक नही, उसी प्रकार हिन्दू समाज की विविधाएँ भी विघटन की सूचक नही हैं। हाँ, कट्टरता अवश्य कष्टप्रद है। शूद्रों से दुर्व्यवहार सामाजिक खोखलेपन को प्रकट करता है। उन्हे प्यास बुझाने के लिए पानी न देना, देवदर्शन से वंचित रखना, उनसे स्पर्श होने पर आत्मग्लानि उत्पन्न होना समाज-पतन का परिचायक है। गाँवों में तो हरिजनों का इससे बदतर हाल है। वहाँ वे सवर्ण हिन्दुओं के रहमो-करम पर जीते हैं। उच्च-शिक्षा और विदेशी-सम्पर्क सम्भवतः हरिजनों को इस दिशा से छुटकारा दिला दे।

भारतीय समाज कु-शिक्षा और अ-शिक्षा से पीड़ित है। अ-शिक्षा के कारण वह भले-बुरे, कायदे-कानून और जीवन के विकास से वंचित है, कु-शिक्षा के कारण वह भारतीय-सभ्यता और संस्कृति से दूर भाग रहा है। जीवनोपयोगी न होने के कारण आधुनिक शिक्षा ने भारतीय समाज मे बेरोजगारों की पलटन खड़ी कर दी है।

सामाजिक बुराइयों को मिटाने के लिए समाज-सुधारकों की भी समाज में कमी नही। वे दिन रात-भाषण देकर, लेख लिखकर, संस्थाएँ खड़ी करके समाज उद्धार का बीड़ा उठाए है, फिर भी निकट भविष्य में सामाजिक परिवर्तन की कोई सम्भावना दिखाई नही देती। इस दिशा मे अत्यन्त क्रान्तिकारी प्रयत्नों की आवश्यकता है।

पत्र-लेखन

पत्र आरम्भ करने की विधि

१. सबसे पहले कागज के दाएँ सिरे पर अपना पूरा पता लिखना चाहिए। दिनांक वाली पंक्ति के नीचे की ओर थोड़ा-सा स्थान छोड़कर पत्र की प्रशस्ति आरम्भ करनी चाहिए। जैसे—

परीक्षा-भवन,
१२ मार्च, १९८८

परम पूज्य पिताजी,

सादर प्रणाम।

२. व्यावसायिक पत्रों में शिष्टाचार के लिए नमस्ते आदि लिखना ठीक नहीं।

पत्र की समाप्ति से पूर्व लिखे जाने योग्य कुछ वाक्य

(१) शेष फिर, (२) शेष मिलने पर, (३) धन्यवाद सहित (४) पत्रोत्तर की प्रतीक्षा में, (५) बड़ों को सादर प्रणाम, छोटों को प्यार, (६) कष्ट के लिए क्षमा कीजिए, (७) विशेष कृपा बनाए रखिए, (८) योग्य सेवा से सूचित करते रहें, आदि।

पत्र की समाप्ति

पत्र की समाप्ति के कितने ही ढंग हैं। पत्र जिसके लिए लिखा जाता है, समाप्त करते समय उसके साथ कुछ सम्बन्ध-सूचक शब्द या किसी अन्य प्रकार के औपचारिक शब्दों का प्रयोग किया जाता है। इसके बाद लेखक अपने हस्ताक्षर करता है। जैसे—

यदि पत्र पिता को लिखा गया हो तो—

आपका आज्ञाकारी पुत्र,
या
आपका आज्ञाकारी,
अ. ब. स.

परीक्षा में पत्र लिखते समय ध्यान रखने योग्य दो बातें

(१) पत्र के आदि में स्थान की जगह केवल 'परीक्षा-भवन' लिखें तथा नीचे तारीख डाल दें। किसी शहर का नाम तथा अन्य कोई पता न लिखें।

(२) पत्र के अन्त मे अपना रोल नम्बर अथवा नाम कदापि न लिखें। उसके लिए अ, ब; क, ख आदि का प्रयोग सर्वोत्तम है।

पत्र-प्रारम्भ तथा समाप्ति के शब्दों की तालिका

प्रशस्ति (प्रारम्भ)	समाप्ति
(१) आदरणीय सम्बन्धियों को (माता, पिता, गुरु, ज्येष्ठ भाई, बहन आदि)	
परम पूज्य, पूजनीय, आदरणीय, परमादरणीय, श्रद्धास्पद, परम श्रद्धेय।	आपका आज्ञाकारी, स्नेहपात्र, कृपाभाजन।
(२) प्रतिष्ठित व्यक्ति को	
माननीय, परम माननीय, आदरणीय, श्रद्धेय, महामान्य।	आपका सेवक, कृपाभाजन, विनीत।
(३) मित्र को	
प्रिय मित्र, प्रिय मित्रवर, प्रिय, प्रिय बन्धु, प्रिय बिशन।	आपका, आपका अभिन्न, आपका मित्र, सदा आपका।
(४) छोटों को	
प्रिय, परम प्रिय, प्रियवर, प्रिय दर्शन।	तुम्हारा शुभचिन्तक, हितैषी, शुभाकांक्षी, शुभेच्छु।
(५) व्यावसायिक पत्रों में	
श्रीमान् महोदय, श्रीमान्, महोदय, प्रिय महोदय, महाशय।	भवदीय, आपका, निवेदक।

(१) आपके विद्यालय में वृक्षारोपण समारोह सम्पन्न हुआ। उसका विवरण देते हुए किसी समाचार-पत्र के सम्पादक को पत्र लिखिए। **(दिल्ली १९८८)**

रा० व० मा० विद्यालय,
नई-दिल्ली-११०००२
२५ अप्रैल, १९८८

सम्पादक,
जनसत्ता,
नई दिल्ली-२

मान्यवर,

अपने विद्यालय में सम्पन्न हुए वृक्षारोहण-समारोह का विवरण आपकी सेवा मे भेज रहा हूँ। छात्रों के उत्साह-वर्द्धन के लिए इसे अपने लोकप्रिय पत्र मे प्रकाशित करने की कृपा करें !

भवदीय.
अ० व० स०

विद्यालय में वृक्षारोपण-समारोह

रविवार २४-७-८८ को रा० व० मा० विद्यालय'''मे वृक्षारोपण का कार्यक्रम सोल्लास सम्पन्न हुआ। केन्द्रीय कृषि मन्त्री श्री भजनलालजी मुख्य अतिथि थे। इस अवसर पर विद्यालय के छात्रो, अध्यापको, अभिभावको एव प्रबन्धकर्तृ-समिति के सदस्यों के अतिरिक्त अनुमानतः तीन सहस्र जन उपस्थित होंगे।

मुख्य अतिथि श्री भजनलाल जी के आगमन पर स्कूल के अध्यक्ष, महामन्त्री तथा प्रिंसिपल ने उनका स्वागत किया, तो स्कूल-बैंड ने उनका अभिनन्दन किया तथा एन० सी० सी० के कैडिटों ने सलामी देकर उनका सम्मान किया।

श्री भजनलाल ने अपने संक्षिप्त भाषण में आज के युग मे फैलते पर्यावरण-प्रदूषण में उत्पन्न रोगों की चर्चा की और बताया कि इसका हल वृक्षारोपण है। वृक्ष पर्यावरण-प्रदूषण के नाशक हैं। आपका विद्यालय वृक्षारोपण करके राष्ट्रहित का एक बडा कार्य कर रहा है. अतः बधाई का पात्र है।

मन्त्री-महोदय ने स्कूल-प्रांगण मे एक पौधा रोपा। गड्ढे को मिट्टी से भरा, उसमें पानी डालकर उसे खूब पुष्पित-पल्लवित होने का आशीर्वाद मुख्य अतिथि के पौधा रोपने के बाद सौ विद्यार्थियो ने पहले मे खोदे गए में पौधे रोपे। इस प्रकार तालियों की गड़गड़ाहट मे यह समारोह

(२) आपका छोटा भाई परीक्षा में नकल करते हुए पकड़ा गया। इस आदत के दुष्परिणामों को समझाते हुए उसे एक पत्र लिखिए। (दिल्ली १९८८)

परीक्षा-भवन,
१८-३-८८

प्रियवर अजय,

माताजी के पत्र से पता चला कि तुम परीक्षा में नकल करते हुए पकड़े गए हो, इसलिए सुपरिटेंडेंट ने तुम्हारी कॉपी कैंसिल कर दी है। यह बहुत बुरा हुआ।

नकल करने का पहला दुष्परिणाम यह हुआ कि तुम भरे हाल में अपराधी घोषित हुए, अपमानित हुए। यह चारित्रिक कलंक जीवनभर नहीं मिटेगा। दूसरे, तुम परीक्षा में फेल हो जाओगे। यदि किसी तरह पास हो भी गए, तो, तृतीय श्रेणी में। तृतीय श्रेणी में पास होने का अर्थ है पढ़ाई का अध्याय बन्द कर देना, ज्ञान का द्वार बन्द कर देना, जो भविष्य के उन्नति-पथ को अवरुद्ध करेगा।

नकल एक अभिशाप है, जो सोचने-विचारने में रोकता है, मन-मस्तिष्क को कुंठित करता है, विवेक पर पर्दा डालता है।

'बीती ताहि बिसार दे, आगे की सुध ले।' भविष्य में नकल न करने की शपथ लेना ही इसका प्रायश्चित्त है।

बहिन अलका को आशीष। माताजी को चरण-वंदना।

तुम्हारा अग्रज,
अ. ब. ज.

(३) अपने विदेशी-मित्र को अपनी बहिन के विवाह पर निमन्त्रण-पत्र लिखिए। (ऑल इण्डिया १९८८)

परीक्षा-भवन,
५ मार्च, १९८८

मित्रवर यासीन,

नमस्कार।

प्रभु-कृपा से मेरी बड़ी बहिन ऋचा का विवाह ११ मार्च, १९८८ को हो रहा है। विवाह-स्थल है--नेशनल क्लब, फतेहपुरी, दिल्ली। समय है--सायं ७ बजे। हमारे होने वाले जीजाजी हैं--श्रीयुत् श्रीप्रकाश जी, एक वायुसेना-अधिकारी।

आप शादी के समारोह में सम्मिलित होकर मुझे उपकृत कीजिए, समारोह की शोभा बढ़ाइए और दो-चार दिन दिल्ली में रहकर-घूमकर भारत और पाकिस्तान के जन-जीवन का अन्तर समझने की चेष्टा कीजिए।

तुम्हारा अभिन्न,
क ख ग.

श्री यासीन,
५०३, अनारकली बाजार,
लाहौर।
(पाकिस्तान)

(४) अपने प्रधानाचार्य को खेल का सामान उपलब्ध कराने की प्रार्थना करते हुए आवेदन-पत्र लिखिए।

(ऑल इण्डिया १९८८)

प्रधानाचार्य,
केन्द्रीय विद्यालय,
जोरहाट।

मान्यवर,

व्यायाम-शिक्षक श्री सक्सेना जी खेल-पीरियड में हमें खेलने का सामान—हॉकी और बाल; जाल और वॉलीबाल—नहीं देते। उनका कहना है कि तुम लोग सामान को तोड़ देते हो, तुम्हें खेलना नहीं आता।

श्रीमन्! खेलना आएगा कैसे, जब सामान 'अंडर लॉक एण्ड की' रखा हो। रही तोड़ने की बात, उपयोग में आने वाली हर वस्तु क्षीण होती है, खराब होती है, टूटती है।

श्रद्धेय! हमारी यह प्रार्थना है, शिकायत नहीं। इसे स्वीकार कर सक्सेना जी को हमें खेल-उपकरण देने का निर्देश दीजिए।

भावदीय,
१० वी 'ए' कक्षा के विद्यार्थी

केन्द्रीय विद्यालय,
जोरहाट।
१५ जनवरी, १९८९

(५) अपनी आर्थिक कठिनाइयों का वर्णन करते हुए, फीस माफ करने के लिए प्रधानाचार्य को पत्र लिखिए।

(ऑ० इं० दिल्ली क्षेत्र १९८८)

प्रधानाचार्य,
राजकीय व० मा० बालिका-विद्यालय,
तीमारपुर, दिल्ली।

मान्य महोदया,

अपनी स्कूल फीस माफ करवाने के लिए निवेदन कर रही हूँ। पिताजी की आय आठ सौ रुपए मासिक है। आज की मँहगाई के युग मे हम येन-केन प्रकारेण गुजारा कर पाते है।

परिवार मे पाँच प्राणी हैं। माता-पिता और तीन भाई-बहन। सभी भाई-बहन पढने वाले है। पढाई का खर्च पिताजी की सामर्थ्य से बाहर है।

जीवन-यापन के लिए अनिवार्य हर वस्तु की कीमत बढती जा रही है, जिससे गरीबो के जीने पर प्रश्न-चिन्ह लग गया है। मुझे डर है कि कही धनाभाव के कारण मुझे पढाई छोडनी न पड़े।

अत आपसे प्रार्थना है कि मेरी स्कूल-फीस माफ करने की कृपा करें, ताकि मैं पढ-लिखकर अपना भविष्य सँवार सकूँ।

निवेदिका,
ऋतम्भरा ऋणी
१० वी 'बी'

५ अप्रैल, १९८८

(६) दैनिक पत्र के सम्पादक को पत्र : अपने क्षेत्र में बिजली-संकट से उत्पन्न कठिनाइयों का वर्णन।

(प्र० इ० दिल्ली बोर्ड १९८९ तथा ८८)

सम्पादक,
जनसत्ता,
नई दिल्ली।

मान्यवर,

आपके सुप्रसिद्ध पत्र के माध्यम से, बिजली-संकट से उत्पन्न कठिनाइयों की ओर प्रशासन और अपने विद्युत-वितरण केन्द्र का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ।

बिजली-संकट होने पर सरकारी-अर्द्धसरकारी संस्थाओं, व्यापारिक प्रतिष्ठानों और बैंक-कर्मचारी-वर्ग की कार्यक्षमता पर एकदम पूर्ण विराम लग जाता है। औद्योगिक प्रतिष्ठानों का दैनिक काम ठप हो जाता है। यातायात-व्यवस्था ठप हो जाती है। जीवन की गति अवरुद्ध हो जाती है। करोड़ों की आर्थिक हानि से मानसिक तनाव और रोष स्वतः उत्पन्न करता है।

यदि विद्युत-संकट की घड़ी निश्चित हो तो उतने समय के लिए सब्र किया जा सकता है, किन्तु जब चाहे तब की अनियमितता से जीवन दूभर हो जाता है। जरा कल्पना कीजिए सायं ७ बजे 'पीक आवर्स' में बिजली चली जाए, तो एक्सीडेंटस् की कितनी सम्भावना है। सायं ९.०० से ९.३० बजे तक बिजली का जाना दूरदर्शन के रुचिकर कार्यक्रमों से अकस्मात् वंचित कर देता है। कितना जुल्म है, दर्शकों पर।

बार-बार बिजली बंद होने से समाज-विरोधी तत्त्वों को प्रोत्साहन मिलता है। उन्हें महिलाओं से छेड़छाड़ करने, लूट-मार करने तथा आभूषण झपटने का अवसर मिलता है। कितना महान पाप होता है विद्युत्-व्यवस्था की अनियमितता से।

भवदीय,

१५ नवम्बर, १९८८

भारतभूषण अग्रवाल
III / ३२७, आर० के० पुरम्
नई दिल्ली

(७) नगर-निगम के स्वास्थ्य-अधिकारी को पत्र : मोहल्ला-सफाई-कर्मचारी की शिकायत।

(दिल्ली १९८०, ८२, ८४, ८६ : 'ए', ऑल इंडिया १९८२ 'ए')

क्षेत्रीय स्वास्थ्याधिकारी,
शहादरा जोन,
नगर-निगम कार्यालय,
दिल्ली-३२

मान्य महोदय,

गत पन्द्रह दिनों से नन्दनगरी क्षेत्र की गन्दगी देखकर लगता है कि हम भारत की राजधानी की आधुनिक कॉलोनी मे नही, बल्कि किसी गाँव के सड़े-गले वातावरण मे दिन बिता रहे हैं। गन्दगी और बदबू के मारे गली मे निकलना दूभर हो जाता है। सडको पर कूड़ा-करकट तो बिखरा मिलेगा ही, स्थान-स्थान पर कूडे के ढेर भी दुर्गन्ध मे नागरिकों की नाक को भरकर अपने अस्तित्व का परिचय देते रहते है।

कारण है, गली के सफाई-कर्मचारी। अमरीकन कार्य-पद्धति के अनुसार सप्ताह मे दो दिन का अवकाश जैसे उनका अधिकार है। शेष पाँच दिन मे कभी केवल भंगी आता है और कभी केवल भगिन। और जिस दिन दोनो आ जाएँ, उस दिन गली की शामत आ जाती है। सफाई के नाम पर वे इधर-उधर झाडू मारकर किसी के भी मकान के सामने कूडे का ढेर इकट्ठा कर देते है और दोपहर तक उसे उठाते ही नही। इस पर उस मकान के रहने वालो से उनका झगड़ा होता है, जिसमे सारी गली वालो को सुननी पडती हैं—'कर्ण-कटु सूक्तियाँ'।

यदि आप 'झाडू-लगी' गली को देख लें, तो आपका मन सफाई-कर्मचारी को पुरस्कृत (?) करने को अवश्य करेगा। रही सफाई दरोगा की बात—नन्दनगरी चौराहे पर आकर हाजिरी ली और घर वापिस। उनसे शिकायत की, तो लगा कि भैंस के आगे बीन बजा रहे हैं। आपको पत्र लिखे, वे कूडेदान की गोद में समा गए। गंदगी रग लाई। नन्दनगरी वासी हैजे के शिकार हुए। काल के ग्रास बने, परन्तु आपके अधिकारियों ने ५-७ दिन उछल-कूद दिखाकर नन्दनगरी वासियों को फिर यमराज के भरोसे छोड़ दिया है।

अब हम पुनः प्रार्थना कर रहे हैं कि सफाई की समुचित सुव्यवस्था करके हमें जीवन जीने का अधिकार प्रदान करें।

भवदीय,
बाबूराम गुप्ता
अध्यक्ष,
नन्दनगरी सुधार-समिति

२१ जून, १९८८

(८) पिताजी को पत्र : जिसमें उनकी बीमारी के प्रति चिन्ता व्यक्त की गई हो। (दिल्ली १९८६)

परीक्षा-भवन,
१८ मार्च, १९८८

पूज्य पिताजी,

सादर चरणस्पर्श।

अग्रज 'अ' का पत्र प्राप्त हुआ, जिसमें आपकी बीमारी की चर्चा थी। पढ़कर बहुत दुःख हुआ। उसने लिखा है कि आप अत्यधिक दुर्बलता के कारण चल-फिर भी नहीं सकते। प्रायः लेटे रहते है। उठते-बैठते तीव्र वेदना अनुभव कर कराहते हैं। पढ़कर चित्त चिन्ता में डूब गया है। भविष्य अन्धकारमय नजर आता है।

परम पिता परमेश्वर से प्रार्थना है कि आप शीघ्र स्वस्थ हों और हमें आशीर्वाद प्रदान करते हुए हमारा पथ-प्रदर्शन करते रहें।

आजकल मेरी वार्षिक परीक्षा चल रही है। परीक्षा समाप्त होते ही मैं घर लौट आऊँगा और आपकी सेवा करूँगा।

माताजी को चरण-स्पर्श। भाई-भाभी को प्रणाम।

आपका पुत्र,
य. र. ल.

(६) दिल्ली परिवहन-निगम के मुख्य प्रबन्धक को पत्र : जिसमें एक बस-चालक के प्रशंसनीय व्यवहार की सूचना देते हुए उसे सम्मानित करने का आग्रह हो। (ऑल इण्डिया १९८६)

मुख्य प्रबन्धक,
दिल्ली परिवहन निगम,
महात्मा गाँधी मार्ग,
नई दिल्ली-११०००२

मान्यवर,

मार्ग नं० १०, बस क्रमांक ६५४ के बस-चालक के प्रशंसनीय व्यवहार से गद्गद् होकर मैं आपको यह पत्र लिख रहा हूँ।

बस को निर्धारित समय पर चलाना, प्रत्येक स्टॉप पर ठहराना, यात्रियों की सुविधा का ध्यान रखना, आगे से किसी को बस में न चढ़ने देना, यात्रियों को चलती बस से न उतरने देना, स्टॉप पर यात्रियों के उतर जाने पर ही बस को चलाना, दुराग्रही यात्रियों से भी नम्रता का व्यवहार एवं कण्डक्टर की घंटी का पालन उसकी व्यवहारगत विशेषताएँ है, जो प्रायः इस वर्ग में नगण्य हैं।

इसलिए मेरा आग्रह है कि ऐसे कर्तव्यपरायण एवं व्यवहार-कुशल बस-चालक को पुरस्कार आदि से सम्मानित करके प्रोत्साहित कीजिए। इसके सम्मान से दूसरे बस-चालक सद्व्यवहार के लिए प्रेरित होंगे।

१५ मार्च, १९८६
अशोककुमार एण्ड कम्पनी,
मालीवाड़ा, दिल्ली-६

भवदीय,
अ. ब. स.

(१०) प्रधानाचार्य को पत्र : खेल-सम्बन्धी कठिनाइयों की सूचना तथा उन्हें दूर करने की प्रार्थना। (ऑल इण्डिया १६८६)

प्रधानाचार्य महोदय,
राजकीय वरिष्ठ माध्यमिक बाल विद्यालय,
मोती नगर, नई दिल्ली।

मान्यवर,

मैं विद्यालय में खेल सम्बन्धी कठिनाइयों की ओर आपका ध्यान खींचना चाहता हूँ, जिनके कारण खेलने में व्यवधान पड़ता है।

स्कूल का खेल-मैदान प्रायः गंदा रहता है। उसमें स्थान-स्थान पर पत्थर निकले हुए हैं, जिनमें ठोकर लगती है। आपसे प्रार्थना है कि मजदूर लगवा कर इन पत्थरों को कुटवा दें, ताकि मैदान समतल हो जाए। दूसरी ओर, भंगी को आदेश दें कि वह खेल-मैदान को नित्य-प्रति साफ किया करे।

आशा है, प्रार्थना स्वीकार कर खेल-प्रेमी विद्यार्थियों के खेलने में आने वाली कठिनाइयों को दूर कर कृतार्थ करेंगे।

आपका,
क. ख. ग.
१०वीं 'ए'

१ सितम्बर, १६८६

(११) छोटे भाई को पत्र : कुसंगति से बचने की शिक्षा।

(ऑ० इ० दिल्ली क्षेत्र १९८६)

परीक्षा भवन,
१० मार्च, १९८६,

प्रिय अनुज अरुण,

शुभाशीष।

माता जी के पत्र से पता चला कि तुम दसवी कक्षा मे फेल हो गए हो। पढकर दुःख हुआ। उससे भी अधिक दुःख तब हुआ, जब उन्होने तुम्हारे फेल होने का कारण तुम्हारी कुसंगति बताया।

प्रिय अरुण ! याद रखो, यह कुसंगति न केवल वर्तमान जीवन को ही चौपट करेगी, अपितु भविष्य को भी अन्धकारमय बना देगी। आवारा-गर्दी करना गुण्डा-गर्दी की ओर कदम बढ़ाना, दादाओ की तरह अपने को प्रस्तुत करना मित्रों के साथ षड्यन्त्र रच कर चोरी करना—इन सबके परिणामो को भोगोगे, तब पछताओगे। इस वर्ष परीक्षा मे अनुतीर्ण होना, इसका प्रथम परिणाम है, जो वर्ष भर के लिए अभिशाप बनकर तुम्हे अन्तर्दाह की ज्वाला मे जलाएगा।

'मारी मरै कुसंग की केरा के ढिग बेर' की चेतावनी कबीर देते है, तो वृन्द सावधान करते हुए कहते है—'पाँव कुल्हाडा देत है, मूरख अपने हाथ।' और तुलसी ने तो निष्कर्ष ही निकाल दिया, "बरु भल वास नरक कर त्राता, दुष्ट-सग जनि देहु विधाता।"

प्रिय अरुण ! तुम्हे पता है कि पिता जी का साया अब हमारे सिर पर नही है। मात्र मेरी आय से परिवार का पोषण हो रहा है। तुम्हे पढाना मेरा कर्त्तव्य है, किन्तु पढ़ना, परीक्षा मे सफल होना तुम्हारा धर्म है। यदि तुम अपने धर्म का पालन नही करोगे, तो मै भी अपने कर्त्तव्य मे विमुख हो सकता हूँ। यह मेरी चेतावनी है। मेरा कहा मानकर कुसंगी साथियों का साथ छोडकर आदर्श विद्यार्थी-जीवन अपनाओ।

माता जी को चरण-स्पर्श।

तुम्हारा बडा भाई,
च. छ. ज.

(१२) विद्यालय के प्रधानाचार्य को एक पत्र लिखिए, जिसमें विद्यालय में अध्यापक पद के लिए आवेदन किया गया हो।

(ऑल इण्डिया १९८५)

प्रधानाध्यापिका,
लक्ष्मीदेवी जैन गर्ल्स सीनियर सेकेण्डरी स्कूल,
पहाड़ी धीरज, दिल्ली-६

मान्य महोदया,

१०-८-१९८८ के हिन्दुस्तान टाइम्स में प्रकाशित विज्ञप्ति से ज्ञात हुआ कि आपके विद्यालय के लिए 'हिन्दी-अध्यापिका' की आवश्यकता है। इस पद के लिए मैं एक प्रत्याशी हूँ। मेरा विवरण निम्नलिखित है—

(१) मैंने १९८४ में दिल्ली विश्वविद्यालय से ६० प्रतिशत अंक प्राप्त कर एम० ए० (हिन्दी) की उपाधि प्राप्त की है।

(२) १९८५ मे जामामिलिया इस्लामिया विश्वविद्यालय में बी० एड्० परीक्षा उत्तीर्ण की है।

(३) मुझे कहानी लिखने का शौक है। मेरी कहानियाँ प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में छपती रहती हैं।

(४) मैं २५ वर्षीया स्वस्थ, सुन्दर, चुस्त नवयुवती हूँ।

विश्वास दिलाती हूँ कि नियुक्त होने पर मैं अपनी योग्यता और तल्लीनता से अध्यापन-कार्य करूँगी।

विश्वास है, सेवा का अवसर प्रदान कर कृतार्थ करेंगी।

भवदीय,
निर्मल गुप्ता,
सुपुत्री—श्री जगदीश गुप्त
जटवाड़ा, तेलीवाड़ा, दिल्ली-६

दिनांक १६ अगस्त, १९८८

(१३) मित्र को उसके जन्म-दिवस के उपलक्ष्य में बधाई-पत्र।

(ऑल इण्डिया १६७८, ८१, ८५)

५, सन्तनगर,
करोलबाग, नई दिल्ली-५
२० मार्च, १६८६

मित्रवर हरिकृष्ण,

नमस्कार।

जन्म-दिवस के उपलक्ष्य में तुम्हारा जलपान का निमन्त्रण प्राप्त हुआ। पढ़कर बहुत खुशी हुई। आप मेरी ओर से बधाई स्वीकार करें। परमपिता से प्रार्थना है कि तुम्हें कम-से-कम सौ वर्ष की आयु प्रदान करें।

आज तुम्हारा जन्म-दिन है। कितना सौभाग्यशाली दिन है यह। चाचा नेहरू बचपन में सोचा करते थे कि जन्म-दिन साल में एक ही बार क्यों आता है? नए-नए कपड़े, अच्छी-अच्छी मिठाइयाँ, मित्रों के उपहार और बुजुर्गों के आशीष, सब कुछ जो मिलते हैं इस दिन।

एक बात का ख्याल रखना, मेरे हिस्से की मिठाइयाँ स्वयं न खा जाना। तुम जानते ही हो, आज मेरी हिन्दी 'ए' की परीक्षा है। कल तुम्हें मिलूँगा और अपने हिस्से की मिठाई भी खाऊँगा।

बधाई तुम्हें आज भेज रहा हूँ, क्योंकि तुम्हारा जन्म-दिन आज है। आशा है, बधाई स्वीकार करोगे।

तुम्हारा प्रिय मित्र,
क. ख. ग.

(१४) समाचार-पत्र के सम्पादक को पत्र : मुहल्ले में लाउड-स्पीकरों के शोर के कष्ट के निवारणार्थ।

(दिल्ली १६८१, ८५)

सम्पादक,
नवभारत टाइम्स,
बहादुरशाह जफर मार्ग,
नई दिल्ली-११०००२

मान्यवर,

हमारे मुहल्ले मे, लाउड-स्पीकरों ने मुहल्ला-निवासियों का जीना हराम कर रखा है। जैसा नाम वैसा गुण। 'लाउड-स्पीकर' अर्थात् जोर-जोर से बोलने वाला। इनके शोर से समाचार-पत्र पढने मे बाधा पडती है, विद्यार्थी पढ-लिख नही सकते, स्नानोपरांत भजन-पूजन मे एकाग्रचित्तता नही आ पाती, परस्पर बातचीत मे व्यवधान पड़ता है, विषय-विशेष पर चिन्तन नही हो पाता, बीमार आदमी को सरदर्द हो जाता है, वह चारपाई पर पड़ा-पड़ा शोर करने वालों को कोसता रहता है। खाना-पीना हराम, मुफ्त मे सिरदर्दी। अनचाहा क्रोध, और क्रोध से शरीर की हानि।

आपके पत्र के माध्यम से दिल्ली के कर्णधारों के कानो तक पहुँचाने के लिए यह कष्टपूर्ण अनुभूति व्यक्त कर रहा हूँ, ताकि दिल्ली सरकार लाउड-स्पीकरों के 'लाउड' के कान मोड़कर 'स्लो' बना दे।

भवदीय,
क. ख. ग.
कूचा नटवाँ, चाँदनी चौक, दिल्ली-६

दिनांक १६ मार्च, १६८६

(१५) अपने क्षेत्र के पोस्टमास्टर को पत्र : क्षेत्र में डाक-वितरण की अव्यवस्था की शिकायत। (ऑल इण्डिया १६८३, ८५)

क्षेत्रीय पोस्टमास्टर महोदय,
क्षेत्र क्रमांक ५,
करोलबाग, नई दिल्ली-५

मान्यवर,

हमारे क्षेत्र में सुबह और शाम को डाक-वितरण के लिए दो डाकियों की नियुक्ति आपने की हुई है, इसके लिए धन्यवाद।

ये डाकिए एक मकान की सभी चिट्ठियाँ नीचे की मंजिल में एक ही स्थान पर फेंक जाते हैं। अब यह पड़ोसियों की कृपा पर निर्भर है कि वे चिट्ठियाँ ठीक-ठीक बाँट दें, या न बाँटें।

१६-सी की चिट्ठियाँ १६-डी में या १६ बी में डाल देना तो इनका स्वभाव बन गया है। इतना ही नहीं, ये हजरत १६-सी की चिटिठयाँ १७-सी में भी डाल देते हैं।

सचित्र पत्र-पत्रिकाओं को उड़ा लेना उनका धर्म है। दीपावली, होली तथा किसी शुभ सूचना कार्ड पर इनाम लेना उनका अधिकार है तथा इनाम न मिलने पर डाक गायब कर देना उनका कर्त्तव्य है।

कृपया इस राहु-केतु-युगल को समझाइए। न समझें, तो इन्हें दण्डित कीजिए।

भवदीय.
दिनांक २५ मार्च, १६८८
तिलकराज शर्मा,
प्रधान
गवर्नमेंट डबलस्टोरी क्वार्टर्स कल्याण-समिति,
करोलबाग, नई दिल्ली।

(१६) अपने मित्र को परीक्षा में प्रथम स्थान प्राप्त करने पर बधाई देते हुए एक पत्र लिखिए। (दिल्ली १९८६)

मित्रवर पवन,

नमस्कार।

नवभारत टाइम्स में दसवीं के परीक्षा-परिणाम का विवरण पढ़ते हुए आँखें विस्मित हो गईं, हृदय गद्-गद् हो गया, जब मैंने पढ़ा कि मेरा प्रिय मित्र अर्थात् तुम सेन्ट्रल बोर्ड में प्रथम आए हो।

इस शुभ अवसर पर मेरी हार्दिक बधाई स्वीकार करें। मेरी हार्दिक कामना है कि प्रभु तुम्हें इसी प्रकार जीवन में शानदार सफलता प्रदान करता रहे।

माता-पिता को चरण-वन्दना। अगले मास दिल्ली आकर इस उपलक्ष्य में तुमसे मुँह मीठा करूँगा।

दिनांक २१ जून, १९८८

तुम्हारा अभिन्न,
य. र. ल. व.

(१७) अपने विद्यालय में एक नए शिक्षक आए हैं। उनकी दो-तीन विशेषताओं का उल्लेख करते हुए अपने मित्र को पत्र लिखिए।

(ऑल इण्डिया दिल्ली क्षेत्र १९८७)

मित्र सतीश,

नमस्कार।

आशा है सपरिवार स्वस्थ और प्रसन्न होंगे। परीक्षा का भूत अवश्य सिर पर सवार होगा। दिन को 'घोटे' और रात्रि को अध्ययन द्वारा औषध-उपचार चल रहा होगा।

हमारी कक्षा के सहपाठी मातृभाषा हिन्दी की पढ़ाई के सम्बन्ध में चिंतित थे, किन्तु सौभाग्य से एक नए हिन्दी-शिक्षक आए हैं। नियमितता, समय की पाबन्दी तथा मनोयोग से अध्यापन उनकी विशेषताएँ हैं। उनकी पढ़ाने की शैली की अनुपमता और छात्रों द्वारा किए हुए कार्य के पूरी तरह निरीक्षण के स्वभाव ने हमारी हिन्दी की कमी को दूर कर दिया है।

उनका विस्तृत परिचय क्या दूँ? निश्चित ही वे अध्यवसायी है, श्रेष्ठ अध्यापक हैं।

माताजी को चरण-स्पर्श। मेरे योग्य सेवा?

आपका मित्र,

दिनांक २ जनवरी, १९८९ — अ. आ. ई.

(१८) पुस्तक-विक्रेता को पुस्तकें मँगवाने के लिए एक पत्र लिखिए।

(ऑल इण्डिया १९८७)

व्यवस्थापक,
सूर्य-प्रकाशन,
नई सड़क, दिल्ली-६

मान्य महोदय,

निम्नलिखित पुस्तकों की एक-एक प्रति वी० पी० पी० से शीघ्र भेजकर कृतार्थ करें। भेजने से पहले देख लीजिए कि कोई पुस्तक कटी-फटी न हो।

(१) हिन्दू धर्म का क. ख. ग. — तनसुखराम गुप्त
(२) सुदामा-चरित — डॉ० सुषमा गुप्ता

१० मई, १९८८
केन्द्रीय विद्यालय,
सेक्टर ४७, चण्डीगढ़,

भावदीय,
नाभिनन्दन जैन,
कक्षा १० वी 'बी'

(१९) अपनी दिनचर्या बताते हुए अपने पिताजी को एक पत्र लिखिए। (ऑल इण्डिया १९८७)

पूज्य पिताजी,

सादर चरण-स्पर्श।

आपका पत्र मिला। सुख और सन्तोष की अनुभूति हुई।

आपने मेरी दिनचर्या जाननी चाही है। मेरी दिनचर्या इस प्रकार है—

ब्राह्ममुहूर्त में चार बजे उठकर अध्ययन करता हूँ। ६ से ७ बजे तक का समय व्यायाम तथा स्नानादि के लिए निर्धारित है। फिर होता है विद्यालय-गमन।

२ बजे विद्यालय से लौटता हूँ। भोजन करके विश्राम करता हूँ। पाँच बजे से साढ़े छः बजे तक स्कूल का गृह-कार्य करता हूँ। साढ़े छः से साढ़े सात बजे तक का समय खेल के मैदान में कटता है। खेल से लौटने पर भोजनोपरान्त दूरदर्शन के दर्शन। साढ़े नौ से साढ़े दस बजे तक पढ़ाई और फिर निन्द्रा देवी की गोद में विश्रान्ति।

दिनचर्या नियमित है। व्यवधान-रहित है। अतः पढ़ाई पूरी हो जाता है और खेल-कूद से शारीरिक शक्ति भी पूरी हो जाती है। मन संतुष्ट और प्रसन्न रहता है।

माताजी को चरण-वन्दना। भाई-बहनों को आशीष।

२५ अगस्त, १९८८

आपका प्रिय पुत्र,
श. प. स. ह.

(२०) आवश्यक विवरण देते हुए छात्रवृत्ति के लिए 'छात्र-कल्याण परिषद्' के अध्यक्ष को एक आवेदन-पत्र लिखिए।

(ऑल इण्डिया दिल्ली क्षेत्र १९८७)

अध्यक्ष,
छात्र-कल्याण-परिषद्,
रामजस सी० से० स्कूल क्रमांक १,
दरियागज, नई दिल्ली-२

मान्यवर,

मैं कक्षा १० वी 'ए' का छात्र हूँ। गरीब माता-पिता की संतान हूँ। पिता जी के सात सौ रुपए के वेतन में पाँच प्राणियों का येन-केन प्रकारेण गुजारा चलता है। विद्यालय की फीस, स्कूल ड्रेस, स्टेशनरी तथा पुस्तकों का खर्चा परिवार की रीढ़ तोड़ने वाला सिद्ध हो रहा है।

आर्थिक कठिनाई के कारण मेरी पढ़ाई में कठिनाई आ रही है। अब तक मैं प्रत्येक कक्षा में बहुत अच्छे अंक लेकर उत्तीर्ण होता रहा हूँ। आपसे नम्र-निवेदन है कि छात्र-कल्याण-परिषद् की ओर से मुझे छात्र-वृत्ति प्रदान करने की कृपा करें, जिससे मैं सुचारु रूप से अध्ययन करके बोर्ड की परीक्षा दे सकूँ।

भवदीय,
दिनांक १६ जुलाई, १९८८ — प. फ. ब. भ.



(२१) प्रधानाचार्य को प्रार्थना-पत्र : अंग्रेजी की पढ़ाई न होने के कारण उत्पन्न कठिनाई का वर्णन।

प्रधानाचार्य,
राजकीय बाल उच्च० मा० विद्यालय,
तिलकनगर,
नई दिल्ली।

मान्यवर,

गत तीन मास से हमारी अंग्रेजी की पढ़ाई बन्द-सी पड़ी है। नियमित रूप से न अध्ययन करवाया जाता है, न होमवर्क दिया जाता है, और जो कुछ हम लिखते हैं, उसकी चैकिंग भी नही की जाती है।

अंग्रेजी अध्यापक अस्वस्थता के कारण दो मास छुट्टी पर रहे हैं। उनके पीरियड में आने वाले अध्यापकों ने कभी अंग्रेजी नहीं पढ़ाई। वे कहते थे, 'क्लास में शोर न मचे, इसलिए हमारा पीरियड लगा है। पढ़ाई करवाना हमारा काम नहीं।'

दो महीने के अवकाश के बाद स्कूल मे आने पर भी अंग्रेजी शिक्षक हमारी कक्षा के लिए ईद का चाँद बन गए हैं। सप्ताह मे एक-आध दिन आते हैं। कभी कही से, कभी कहीं से, १५-२० मिनिट पढ़ा कर 'याद करो' का आर्डर देकर स्वयं कोई पुस्तक पढ़ने बैठ जाते हैं। गत एक मास मे एक 'ऐस्से' तथा दो 'लैटर' लिखने के लिए दिए हैं, तो आज तक हमारी कापी देखने का अवकाश उन्हें नही मिला।

एक करेला, दूजे नीम चढ़ा। एक तो विदेशी भाषा और ऊपर से नियमित पढ़ाई का अभाव। परिणाम होगा—असफलता; हमारे एक वर्ष की बरबादी और माता-पिता के खून-पसीने की कमाई की हानि।

आपसे प्रार्थना है कि इन महापुरुष के स्थान पर दूसरे अध्यापक को नियुक्त कर हम पर उपकार करें एवं स्कूल का 'रिजल्ट' श्रेष्ठतर बनवाने की व्यवस्था करके यश के भागी बनें।

भवदीय,

२४ नवम्बर, १६८६

कक्षा १० का 'ए' के विद्यार्थी।